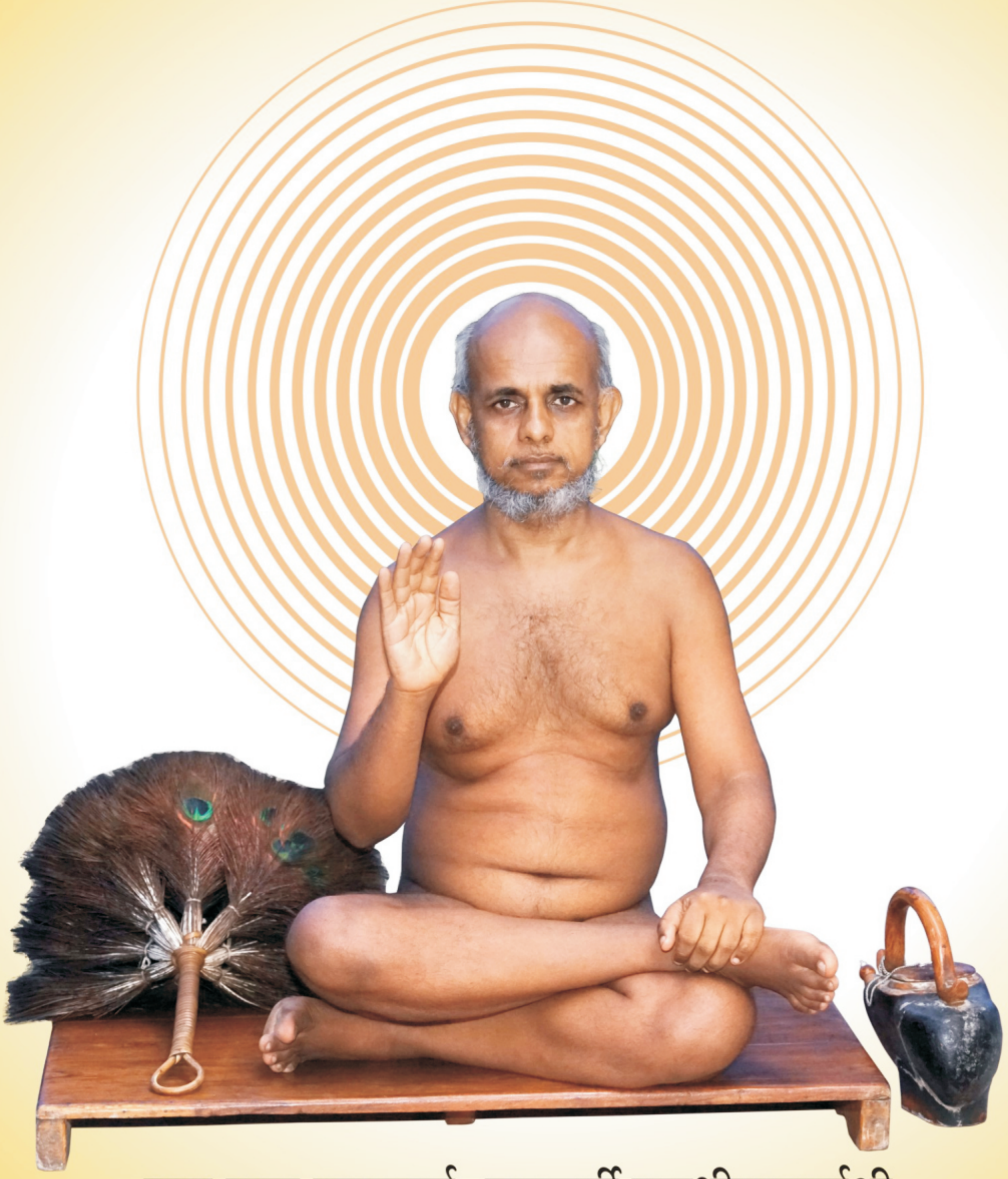

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जयधवला

भाग 13

ग्रन्थकार

आचार्यश्री वीरसेन जी महाराज

सम्पादक

पण्डित फूलचन्द्र जी शास्त्री
पण्डित महेन्द्रकुमार जी जैन
पण्डित कैलासचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ ग्रन्थमाला
चौरासी मथुरा (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

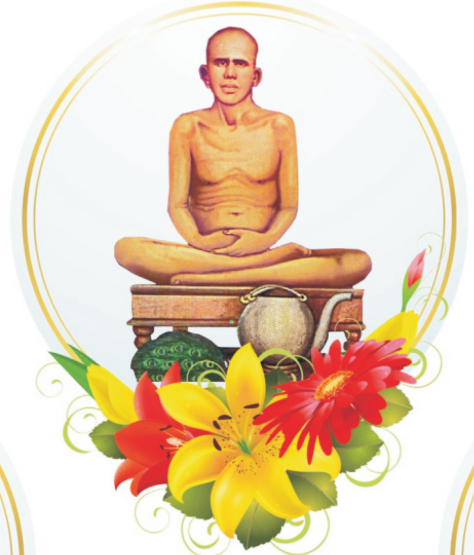

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

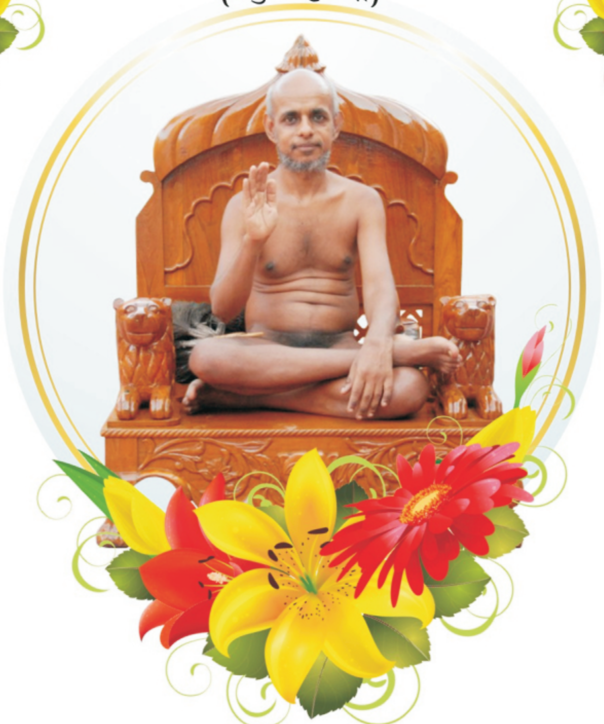

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

भा० दि० जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य त्रयोदशोदलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्

श्रीभगवद्गुणभद्राचार्यप्रणीतम्

कसायपाहुडं

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

[एकादशमोऽधिकारः दर्शनमोहक्षपणानुयोगद्वारम्, द्वादशमोऽधिकारः संयमासंयम-लब्ध्यनुयोगद्वारम्, त्रयोदशमोऽधिकारः संयमलब्ध्यनुयोगद्वारम्, चतुर्दशमोऽधिकारः चारित्रमोहोपशामनानुयोगद्वारम्]

सम्पादकौ

पं० फूलचन्द्र
सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्य
सम्पादक महाबन्ध, सह सम्पादक
धवला आदि

पं० कैलाशचन्द्र
सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्ताचार्य,
सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय
काशी

प्रकाशक

मंत्री, साहित्य विभाग

भा० दि० जैन संघ, चौरासी, मथुरा

वीरनिर्वाणाब्द २४९८

वि० सं० २०२९] मूल्यं रूप्यकषोडशकम् [ई० सं० १९७२

विषय-परिचय

११ दर्शनमोहक्षपणा अनुयोगद्वार

जयधवलाका यह तेरहवाँ भाग है। इसमें दर्शनमोहक्षपणा, संयमासंयमलब्धि, चारित्रलब्धि और चारित्रमोह-उपशामनाका बहुभाग ये चार अर्थाधिकार संगृहित हैं। उनमेंसे दर्शनमोहक्षपणा यह एक अपेक्षासे सम्यक्त्व महाधिकारका दूसरा अर्थाधिकार और एक अपेक्षासे ग्यारहवाँ स्वतन्त्र अर्थाधिकार है। इसमें दर्शनमोहकी क्षपणाका सांगोपांग विवेचन किया गया है। इस अर्थाधिकारमें कुल ५ सूत्रगाथाएँ आई हैं। उनमेंसे प्रथम सूत्र गाथा 'दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो' इत्यादि है। इसमें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक नियमसे कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य होता है और उसका निष्ठापक चारों गतियोंका जीव होता है यह निर्देश किया गया है।

इसका विशेष स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है वह इस क्रियाको तीर्थंकर, केवली और श्रुतकेवलीके पादमूलमें ही करता है ऐसा एकान्त नियम है, क्योंकि जिसने तीर्थंकर आदिके माहात्म्यको नहीं देखा है उसके दर्शनमोहकी क्षपणाके कारणभूत परिणाम ही उत्पन्न नहीं होते। यद्यपि सूत्रगाथामें इस तथ्यका निर्देश नहीं किया गया है, पर यह तथ्य षट्खण्डागम जीवस्थान चूलिकासे जाना जाता है। उसके प्रकृत विषयके प्रतिपादक सूत्रमें 'जम्हि जिणा केवली तित्थयरा' ऐसा पाठ आया है। उससे ज्ञात होता है कि तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमें ही कर्मभूमिज मनुष्य क्षायिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका प्रारम्भ करता है।

इस विषयमें यह प्रश्न होता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध कर जो मनुष्य दूसरे और तीसरे नरकमें उत्पन्न होते हैं, वहाँसे आकर मनुष्य होने पर उन्हें क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कैसे होती है, क्योंकि ऐसे जीवोंके प्रारम्भमें क्षयोपशम सम्यग्दर्शन ही पाया जाता है और उन्हें तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली तथा अन्य श्रुतकेवलीका सानिध्य मिलता नहीं, अतः उसी भवमें तीर्थंकर केवली होनेवाले ऐसे मनुष्योंके क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कैसे होती है? यह एक प्रश्न है। इसका समाधान यह किया है कि उक्त जीव स्वयं जिन अर्थात् श्रुतकेवली होने पर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेमें समर्थ होते हैं।

निष्ठापक चारों गतियोंका जीव होता है इसका यह आशय है कि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होने पर ऐसे जीवका मरण भी सम्भव है और ऐसे जीवने पहले जिस आयुका बन्ध किया हो, मर कर वह उस गतिमें उत्पन्न होता है। यदि नरकायुका बन्ध किया है तो प्रथम नरकमें मध्यम आयुके साथ उत्पन्न होता है। यदि मनुष्यायु और तिर्यञ्चायुका बन्ध किया है तो उत्तम भोगभूमिमें पुरुषवेदी मनुष्य और तिर्यञ्च होता है और यदि देवायुका बन्ध किया है तो वैमानिक देव होता है ऐसा नियम है।

'मिच्छत्तवेदणीए कम्मे' यह दूसरी सूत्र गाथा है। इसमें पहली बात तो यह बतलाई गई है कि जब मिथ्यात्व कर्मका सम्यक्त्वप्रकृतिमें अपवर्तन कर लेता है तब उक्त जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है। इस पर यह शंका की गई है कि मिथ्यात्वका सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रम कर अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्व प्रकृतिमें

संक्रम होनेका नियम है, मिथ्यात्वको पूरा अपवर्तन कर सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है यह कथन घटित नहीं होता ? इसका समाधान करते हुए बतलाया गया है कि मिथ्यात्वका पूरा संक्रम होने पर [illegible] विधान किया है, अतः कोई दोष नहीं है।

उक्त सूत्रगाथामें दूसरी बात यह बतलाई गई है कि ऐसे जीवके कमसे कम जघन्य पीतलेश्या अवश्य होती है। इसका आशय यह है कि जो जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है उसके शुभ तीन लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या ही होती है। अशुभ लेश्याओंके रहते हुए दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक नहीं हो सकता। किन्तु यह नियम प्रस्थापकके लिए ही समझना चाहिए, निष्ठापकके लिए नहीं, क्योंकि जिसने पहले नरकायुका बन्ध किया है ऐसा जीव कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होने पर यदि मर कर प्रथम नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके मरणके समय अन्तर्मुहूर्त काल पहलेसे कपोतलेश्या नियमसे हो जाती है ऐसा नियम है।

'अंतोमुहुत्तमद्धं' यह तीसरी सूत्रगाथा है। इसमें पहला नियम तो यह किया गया है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नियमसे तीन करणपूर्वक ही होती है और तीनों करणोंमेंसे प्रत्येकका काल जब कि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, अतः दर्शनमोहकी क्षपणामें अन्तर्मुहूर्त कालका लगना स्वाभाविक है। दूसरा नियम यह किया गया है कि जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर ली है ऐसा जीव देवगति और मनुष्यगतिसम्बन्धी आयु और नामकर्मका ही बन्ध करता है, अन्यका नहीं। स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नारकी या देव हुआ है तो मनुष्यगतिसम्बन्धी आयुकर्म और नामकर्मका बन्ध करेगा और यदि मरकर तिर्यञ्च हुआ है या मनुष्य है तो देवगतिसम्बन्धी आयुकर्म और नामकर्मका बन्ध करेगा। यहाँ सूत्रगाथामें 'सिया' पद आया है सो उससे यह आशय ग्रहण करना चाहिए कि यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तिम भवमें स्थित है अर्थात् चरमशरीरी है तो उसके आयुकर्मका बन्ध नहीं ही होगा। ऐसे जीवके देवगतिसम्बन्धी नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका बन्ध भी अपने बन्ध योग्य गुणस्थान तक ही होता है।

'खवणाए पट्ठवगो' यह चौथी सूत्रगाथा है। इसमें इस नियमका विधान किया गया है कि जिस मनुष्यभवमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है उस भवमें यदि मुक्तिलाभ नहीं होता है तो नियमसे उस भवके साथ तीसरे या चौथे भवमें मुक्तिलाभ करता है। यदि ऐसा जीव मरकर नारकी और देव होता है तो तीसरे भवमें मुक्तिलाभका अधिकारी होता है और यदि उत्तम भोगभूमिका तिर्यञ्च या मनुष्य होता है तो चौथे भवमें मुक्तिलाभ करता है यह एकान्त नियम है।

'संखेज्जा च मणुस्सेसु' यह पाँचवीं सूत्रगाथा है। इसमें चारों गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी संख्याका निर्देश किया गया है। खुलासा इसप्रकार है—प्रथम नरकके नारकी, उत्तम भोगभूमिके तिर्यञ्च और वैमानिक देव असंख्यात हैं। साथ ही इनकी आयु भी संख्यातातीत वर्षप्रमाण है। यद्यपि प्रथम नरकमें संख्यात वर्षप्रमाण भी आयु पायी जाती है, परन्तु प्रकृतमें उसकी मुख्यता नहीं है, इसलिए इन तीनों गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात बतलाये गये हैं, क्योंकि वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे नरक, तिर्यञ्च और देवगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः प्रत्येक गतिमें उनका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। यही कारण है कि उक्त सूत्र गाथामें उक्त तीन गतियोंमेंसे प्रत्येक गतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण असंख्यात बतलाया गया है। अब रही

मनुष्यगति सो इस गतिमें जब कि पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण ही संख्यात है ऐसी अवस्थामें इस गतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण भी संख्यात ही प्राप्त होगा। फिर भी उनकी निश्चित संख्या कितनी है ऐसा प्रश्न होनेपर निश्चित संख्याका निर्देश करते हुए वह संख्यात हजार बतलाई है।

यह दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नामक अनुयोगद्वारमें निबद्ध पाँच सूत्रगाथाओंमें प्रतिपादित विषयका स्पष्टीकरण है। आगे गाथासूत्रोंके आश्रयसे विशेष व्याख्या की गई है। ऐसा करते हुए आगे गाथासूत्रोंमें निबद्ध अर्थका विशेष व्याख्यान तो किया ही गया है, साथ ही प्रकृतमें उपयोगी जो अर्थ गाथासूत्रोंमें निबद्ध नहीं है उसका भी विशेष व्याख्यान किया गया है।

नियम यह है कि असंयत, संयतासंयत प्रमत्तसंयत या अप्रमत्तसंयत इनमेंसे किसी एक गुणस्थानवाला वेदक सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज मनुष्य तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेका प्रारम्भ करता है। उसमें भी सर्वप्रथम वह अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करता है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है वह दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेमें समर्थ नहीं होता। इसके बाद अन्तर्मुहूर्त विश्रामकर वह दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके योग्य अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन प्रकारके करणपरिणामोंको क्रमशः करता है। इनके लक्षण जैसे दर्शनमोहकी उपशामना अनुयोगद्वारका स्पष्टीकरण करते समय भाग १२ में बतला आये हैं वैसे ही यहाँपर जानने चाहिए।

इसप्रकार दर्शनमोहकी क्षपणाके लिए उद्यत हुए इस जीवके अधःप्रवृत्तकरणरूप परिणामोंको प्राप्त होनेके अन्तर्मुहूर्त पूर्वसे ही (१) प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिंगत होता हुआ विशुद्ध परिणाम होता है। (२) चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिककाययोग इनमेंसे कोई एक योग होता है। (३) क्रोध, मान, माया और लोभ इनमेंसे कोई एक कषाय होती है जो उत्तरोत्तर हीयमान होती है। (४) साकार उपयोग होता है, क्योंकि ज्ञान-दर्शनस्वभाव आत्माविषयक विशेष उपयोग हुए बिना दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके सन्मुख नहीं हो सकता। यद्यपि इस विषयमें एक उपदेश यह भी पाया जाता है कि उक्त जीवके मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनरूप उपयोगका होना भी सम्भव है। सो इसका यह आशय समझना चाहिये कि जब उक्त जीव अन्य अशेष विषयोंसे निवृत्त होकर आत्माके सन्मुख होता है तब उसके चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शनरूप उपयोग भी बन जाता है और श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिए उक्त क्रम परिपाटीमें मतिज्ञान भी बन जाता है। (५) पीत, पद्म और शुक्ल इन तीन शुभ लेश्याओंमेंसे कोई एक वर्धमान लेश्या होती है। (६) तीनों वेदोंमेंसे कोई एक वेद होता है। (७) पूर्वबद्ध कर्मोंकी सत्ता पूर्वोक्त चार गुणस्थानोंमेंसे जिस गुणस्थानमें क्षपणाके लिए प्रारम्भ करता है प्रायः उसके अनुसार है। इतना अवश्य है कि इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी सत्ता नहीं होती है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नियमसे होती है। (८) वर्तमान कालमें यह किन प्रकृतियों का बन्ध करता है इसका विचार यथासम्भव उक्त चारों गुणस्थानोंके अनुसार जान लेना चाहिये। इतना अवश्य है कि यह यथासम्भव इन गुणस्थानोंमें बन्धयोग्य नोकषायोंमेंसे अरति और शोकका बन्ध नहीं करता, किसी आयुका बन्ध नहीं करता तथा नामकर्मकी परावर्तमान किसी अशुभ प्रकृतिका बन्ध नहीं करता। सत्कर्मकी अपेक्षा इन कर्मोंकी संख्यातगुणी हीन स्थितिका बन्ध करता है। प्रशस्त प्रकृतियोंका चतुःस्थानीय और अप्रशस्त

प्रकृतियोंका द्विस्थानीय अनुभागबन्ध करता है तथा अजघन्यानुत्कृष्ट या कुछ प्रकृतियोंका स्यात् उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है। जिन प्रकृतियोंका स्यात् उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध करता है उनका नामनिर्देश मूलमें किया ही है। (९) इसके कितनी प्रकृतियाँ उदयावलिमें प्रवेश करती हैं और किन प्रकृतियोंका यह प्रवेशक होता है इसका विशेष विचार मूलमें किया ही है, इसलिए वहाँसे जान लेना चाहिये। (१०) यहाँ जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनके सिवाय शेष प्रकृतियोंकी पहले ही बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है। (११) जिन प्रकृतियोंकी यहाँ उदय-उदीरणा होती है उनके सिवाय शेषकी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है। (१२) यहाँ दर्शन-मोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंमेंसे किसी भी प्रकृतिका अन्तरकरण नहीं होता। तथा (१३) यह जीव किस स्थितिवाले और किन अनुभागवाले कर्मोंका अपवर्तनकर किस स्थानको प्राप्त होता है। इसप्रकार इन विशेषताओंका अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें विचार कर लेना चाहिए।

इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणको करके पश्चात् यह जीव अपूर्वकरणको प्राप्त होता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे ही स्थितिकाण्डकघात आदि क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। स्थिति-मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात तथा गुणश्रेणि रचनाकी प्रवृत्ति अधःप्रवृत्तकरणमें नहीं होती। वहाँ मात्र प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। शुभ-कर्मोंका उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए अनुभागबन्ध होता है और अशुभकर्मोंका उत्तरोत्तर अनन्तगुणी हानिको लिये हुये अनुभागबन्ध होता है। तथा एक एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तकाल तक उत्तरोत्तर पल्योपमका संख्यातवाँ भाग कम अन्य-अन्य स्थितिबन्ध होता है।

इसप्रकार अधःप्रवृत्तकरणरूप क्रियाको करनेके बाद अपूर्वकरणरूप परिणाम होते हैं। वहाँ सब जीवोंका स्थितिसत्कर्म एक समान नहीं होता। जो एक साथ उपशम सम्यक्त्वको प्राप्तकर पश्चात् अनन्तानुबन्धीकी एक साथ विसंयोजनाकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिए उद्यत हो अपूर्वकरणमें एक साथ प्रवेश करते हैं उनका स्थितिसत्कर्म एक समान होता है और तदनुसार घातके लिए गृहीत स्थितिकाण्डक भी एक समान होता है। किन्तु इनके सिवाय अन्य जीवोंका स्थितिसत्कर्म विसदृश ही होता है। तथा तदनुसार घातके लिए गृहीत स्थितिकाण्डक भी विसदृश होता है। इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण मूलमें किया है, अतः उसे वहाँसे जान लेना चाहिए। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो विशेष कार्य प्रारम्भ होते हैं उनका विवरण—

(१) स्थितिकाण्डकघातका प्रारम्भ। उसमें जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका प्रमाण सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है।

(२) अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्तकाल तक सदृश परिमाणको लिए हुए होनेवाले एक स्थितिबन्धसे उत्तरोत्तर पल्योपमके संख्यातवें भागकम दूसरे-तीसरे आदि स्थितिबन्धका होना।

(३) अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकाण्डकघातका प्रारम्भ। यहाँ प्रत्येक अनुभागकाण्डक अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण होता है।

(४) उदयावलि बाह्य गुणश्रेणि रचनाका प्रारम्भ। जो गुणश्रेणि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक आयामको लिये हुए होती है। दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें उदयादि गुणश्रेणि नहीं होती।

(५) मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंका गुणसंक्रम—उत्तरोत्तर गुणितक्रमसे संक्रम होने लगना।

प्रकृतमें ये अपूर्वकरणके प्रथम समयसे प्रारम्भ होनेवाले विशेष कार्य हैं। द्वितीयादि समयोंमें भी अन्तर्मुहूर्तकाल तक ये कार्य इसीप्रकार चालू रहते हैं। मात्र गुणश्रेणि प्रत्येक समयमें बदलती रहती है, क्योंकि प्रथम समयमें गुणश्रेणिमें जितने द्रव्यका निक्षेप होता है, दूसरे आदि समयोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप होता है। दूसरे यह गुणश्रेणि गलित शेष आयामवाली होनेसे इसके आयाममें भी एक-एक निषेककी कमी होती जाती है। यही बात गुणसंक्रमके विषयमें भी जानना चाहिये। अर्थात् प्रथम समयमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जितने द्रव्यका संक्रम होता है, द्वितीयादि समयोंमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यका संक्रम जानना चाहिये।

यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि एक स्थितिकाण्डकघातके कालके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात हो लेता है। मात्र एक स्थितिबन्धका काल स्थितिकाण्डकके बराबर ही है। इस विधिसे अपूर्वकरणके कालमें हजारों स्थितिकाण्डक और तत्प्रमाण ही स्थितिबन्ध होते हैं।

दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम स्थितिकाण्डकसे द्वितीयादि स्थितिकाण्डक विशेष हीन होते हैं और इसप्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिकाण्डकसे अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें होनेवाला स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा हीन होता है। इसप्रकार अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें होनेवाला स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल, अनुभागकाण्डक उत्कीरणकाल, और स्थितिबन्धकाल ये तीन एक साथ समाप्त होते हैं। इस विधिसे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्कर्म होता है उससे उसीके अन्तिम समयमें वह संख्यातगुणा हीन हो जाता है। इसीप्रकार स्थितिबन्ध भी प्रथम समयके स्थितिबन्धकी अपेक्षा संख्यातगुणा हीन हो जाता है।

इसके बाद अनिवृत्तिकरणका प्रारम्भ होता है। वहाँ भी ये कार्य प्रारम्भ होकर उक्त क्रमसे चालू रहते हैं। यहाँ इतनी विशेषता है कि जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट जैसे स्थिति-सत्कर्मके साथ ये जीव अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करते हैं उनके प्रथम स्थितिकाण्डकका आयाम उसीके अनुसार होता है। मात्र इनके द्वितीयादि स्थितिकाण्डक सदृश आयामवाले होते हैं, क्योंकि उनके परिणाम सदृश ही होते हैं। यहाँ यह विशेषता दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा कही है।

यहाँ अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयके उपशामकरण, निधत्तिकरण और निकाचितकरण इन तीनोंकी व्युच्छित्ति हो जाती है। इससे दर्शनमोहनीयके जो कर्मपरमाणु उदय आदिमें देनेके अयोग्य रहे वे सब उदय आदिमें देनेके योग्य हो जाते हैं। इस समय दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म एक कोटिके भीतर शतसहस्रपृथक्त्वसागरोपम होता है और शेष कर्मोंका स्थितिसत्कर्म कोड़ा-कोड़ीके भीतर कोटिशतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण होता है।

इसके बाद हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागके व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म क्रमसे असंज्ञीपंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान हो जाता है। पुनः स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके घात द्वारा पल्योपमप्रमाण हो जाता है। यहाँ तक सर्वत्र स्थितिकाण्डकका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण रहा है। किन्तु यहाँसे दूरापकृष्टि संज्ञक स्थितिसत्कर्मके होने तक उत्तरोत्तर शेष रही स्थितिके संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिकाण्डक होता है। जिस अवशिष्ट रहे सत्कर्ममेंसे संख्यात बहुभागको ग्रहणकर स्थितिकाण्डकका घात करनेपर शेष बचा स्थिति-सत्कर्म नियमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर अवशिष्ट रहता है उसे दूरापकृष्टि कहते हैं। यहाँसे लेकर स्थितिकाण्डक शेष रही स्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण होता है।

इसप्रकार उक्त विधिसे बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। पुनः बहुत स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वके उदयावलिके बाहरके समस्त द्रव्यको घातके लिए ग्रहण किया। उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य शेप रहता है, शेष सब द्रव्य घातके लिए ग्रहण कर लिया जाता है। मिथ्यात्वकी सर्व प्रथम क्षपणा होती है, इसलिए यहाँ

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इतनी विशेषता हो जाती है। इतना अवश्य है कि मिथ्यात्वके अन्तिम काण्डकका फालिरूपसे अन्य दो प्रकृतियोंमें संक्रमण करता हुआ अन्तिम फालिका सम्यग्मिथ्यात्वमें ही संक्रमण करता है।

इसप्रकार यथोक्त विधिसे मिथ्यात्वका घातकर पुनः उसी विधिसे सम्यग्मिथ्यात्वका घात करता हुआ जब उसके उदयावलि बाह्य समस्त द्रव्यको घातके लिए ग्रहण करता है तब सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थिति शेष रहती है। किन्तु इस विषयमें एक मत यह भी पाया जाता है कि उस समय सम्यक्त्वकी संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थिति शेष रहती है। वहाँ पर इस जीवको दर्शनमोहनीयक्षपक यह संज्ञा प्राप्त होती है।

यद्यपि प्रारम्भसे ही यह जीव दर्शनमोहनीयका क्षपक है पर यदि कोई समझे कि सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय तो सम्यग्दृष्टिके वेदकसम्यक्त्वके साथ होता है, इसलिए इसकी क्षपणा करनेवाले जीवको दर्शनमोहक्षपक कहना योग्य नहीं है तो उसका ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व प्रकृति भी दर्शनमोहनीयका एक भेद है, इसलिए उसकी क्षपणा करनेवाले जीवको भी दर्शनमोहक्षपक कहना योग्य है यह बतलानेके लिए यहाँसे यह संज्ञा विशेषरूपसे प्रवृत्त हुई है।

सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेप रहनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिकाण्डक होता है। एक तो यह विशेषता होती है और यहाँसे लेकर दूसरी यह विशेषता होती है कि सम्यक्त्वके अनुभागका प्रत्येक समयमें अपवर्तन होने लगता है। तथा यहाँसे लेकर अपवर्तित होनेवाली स्थितियोंमेंसे उदयमें थोड़े प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है। यह क्रम गुणश्रेणिशीर्ष तक चालू रहता है। पुनः उससे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है और आगे विशेष हीन देता है। इस क्रमसे सम्यक्त्व प्रकृतिका भी घात करता हुआ जब अन्तिम स्थितिकाण्डक समाप्त हो जाता है तब इस जीवकी कृतकृत्य संज्ञा होती है।

कृतकृत्य होनेपर इसका मरण भी हो सकता है। लेश्या भी बदल सकती है। लेश्या परिवर्तन होनेपर जघन्य कापोत तथा पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यामेंसे अन्यतर लेश्या हो सकती है। इस जीवके संक्लेश या विशुद्धि इनमेंसे किसीके भी प्राप्त होनेपर सम्यक्त्वकी एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितिके शेष रहने तक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती रहती है। फिर भी यह उदीरणा उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है।

कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें यदि यह जीव मरता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अन्य गतिके योग्य उस समय लेश्या नहीं पाई जाती। अन्तर्मुहूर्त बाद यह जीव जैसी लेश्या प्राप्त हो उसके अनुसार अन्य तीन गतियोंमें भी मरकर उत्पन्न हो सकता है।

इसप्रकार क्रमसे सम्यक्त्वका भी घात होनेपर यह जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

१२ संयमासंयमलब्धि अनुयोगद्वार

संयमासंयमलब्धि जयधवला टीकाके अनुसार यह बारहवाँ अर्थाधिकार है। इसके आगे चारित्रलब्धि नामक तेरहवाँ अर्थाधिकार है। इन दोनों अर्थाधिकारोंमें 'लद्धी य संयमासंयमस्स' यह एक सूत्रगाथा निबद्ध है। इसमें बतलाया गया है कि जो जीव अलब्ध-पूर्व संयमासंयमलब्धि और चारित्रलब्धिको प्राप्त करते हैं उनके अन्तर्मुहूर्तकाल तक प्रति समय विशुद्धिरूप परिणामोंमें अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे वृद्धि होती जाती है। दूसरे इसमें यह भी बतलाया गया है कि उक्त दोनों लब्धियोंके यथासम्भव प्रतिबन्धक कर्मोंकी उपशामना होने पर उन दोनों लब्धियोंकी प्राप्ति होती है।

उन दोनों लब्धियोंके प्रतिबन्धक कर्म कौन हैं और उनकी किस प्रकारकी उपशामना होती है इसका विशेष खुलासा करते हुए उनकी टीकामें बतलाया है कि उपशामना चार प्रकारकी है—प्रकृति उपशामना, स्थितिउपशामना, अनुभागउपशामना और प्रदेशउपशामना।

संयमासंयमलब्धिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क इनकी उदयाभावस्वरूप प्रकृतिउपशामना ली गई है। यद्यपि संयमासंयमके कालमें प्रत्याख्यानावरण-चतुष्क; संज्वलनचतुष्क और नौ नोकषायोंका यथासम्भव उदय [illegible] सर्वघातिस्वरूप नहीं होता। इसलिए उन कर्मोंकी भी देशोपशामना यहाँ पर बन जाती है। यदि कहा जाय कि प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका उदय तो सर्वघाति है, इसलिए उसकी देशोप-शामना कैसे सम्भव है सो यह भी कहना उचित नहीं है, क्योंकि संयमासंयमलब्धिमें उसका व्यापार नहीं होता। इसलिये इस अपेक्षासे उसका उदय देशघातिस्वरूप होनेसे उसका भी देशोपशम स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं आती।

यह तो संयमासंयमलब्धिकी अपेक्षा प्रकृति-उपशामनाका विचार है। चारित्रलब्धिकी अपेक्षा विचार करनेपर प्रारम्भकी बारह कषायोंके उदयाभावरूप प्रकृति उपशामना तथा चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी देशोपशामना प्रकृतमें लेनी चाहिये।

स्थितिउपशामना—यहाँ उक्त दोनों लब्धियोंमें पूर्वोक्त जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं है उनकी स्थितियोंके उदयका न होना एक तो यह स्थितिउपशामना है और सभी कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसे उपरिम स्थितियोंका उदय नहीं होना यह दूसरी स्थिति उपशामना है।

अनुभाग-उपशामना—पूर्वोक्त कषायप्रकृतियोंके द्विस्थानीय, त्रिस्थानीय और चतुः-स्थानीय अनुभागका उदय नहीं होना तथा उदयप्राप्त कषायोंके सर्वघाति स्पर्धकोंका उदय नहीं होना यह अनुभाग-उपशामना है। ज्ञानावरणादि कर्मोंके त्रिस्थानीय और चतुःस्थानीय अनुभागके परित्यागपूर्वक द्विस्थानीय अनुभागकी प्राप्ति होना यह भी प्रकृतमें अनुभाग-उप-शामना है ऐसा स्वीकार करनेमें भी कोई विरोध नहीं आता।

प्रदेश-उपशामना अनुदयरूप उन्हीं पूर्वोक्त प्रकृतियोंके प्रदेशोंका उदय नहीं होना यह प्रदेशोपशामना है।

यह उक्त सूत्र गाथामें आये हुए 'उपसामणा—य तह पुव्वबद्धाणं। इस पदकी व्याख्या है।

संयमासंयम और संयमकी प्राप्ति उपशमसम्यक्त्वके साथ भी होती है, इसलिये सूत्रमें आये हुये 'उपसामणा' पद द्वारा इसका भी ग्रहण हो जाता है। इसीप्रकार 'वड्ढावड्ढी' पदमें 'वड्ढी' पद द्वारा संयमासंयम और संयमको प्राप्त करते समय जो एकान्तानुवृद्धिरूप परिणाम

होते हैं उनका तथा 'अवड्डी' पद द्वारा संयमासंयम और संयमसे गिरते समय जो संक्लेश परिणाम होते हैं उनका ग्रहण किया गया है।

'लद्धी य संजमासंजमस्स' इसके अनुसार लब्धि तीन प्रकारकी है—प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान। जिस स्थानके प्राप्त होनेपर यह जीव मिथ्यात्व या असंयमको प्राप्त करता है उसे प्रतिपातस्थान कहते हैं। जिस स्थानके प्राप्त होनेपर यह जीव संयमासंयम और संयमको प्राप्त होता है उसे प्रतिपद्यमान स्थान कहते हैं और स्वस्थानमें अवस्थानके योग्य तथा उपरिम गुणस्थानकी प्राप्तिके योग्य शेष स्थानोंको अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थान कहते हैं।

यहाँ इस पूर्वोक्त विवेचनको ध्यानमें रखकर सर्वप्रथम संयमासंयमलब्धिका विचार करते हैं—

संयमासंयमलब्धिकी प्राप्ति दो प्रकारसे होती है—एक तो उपशमसम्यक्त्वके साथ होती है और दूसरे वेदकसम्यग्दर्शनपूर्वक होती है। यहाँ जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमलब्धिको प्राप्त करते हैं उनका अधिकार है। वे इसे प्राप्त करनेके अन्तर्मुहूर्त पहले ही प्रति समय अनन्तगुणी स्वस्थान विशुद्धिसे विशुद्ध होते हुए आयुकर्मको छोड़कर शेष सभी कर्मोंका स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर करते हैं। सातावेदनीय आदि शुभ कर्मोंका अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्म चतुःस्थानीय करते हैं तथा पाँच ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मोंका अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्म द्विस्थानीय करते हैं।

इतना करनेके अन्तर्मुहूर्तबाद अधःप्रवृत्तकरणको करते हुए प्रति समय तद्योग्य अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होते हैं। इन परिणामोंके कालमें स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये कार्य नहीं होते। केवल स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम स्थितिको बाँधते हैं तथा शुभ कर्मोंको उत्तरोत्तर अनन्तगुणे अनुभागके साथ और अशुभकर्मोंको अनन्तगुणे हीन अनुभागके साथ बाँधते हैं।

मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशुद्धिकी अपेक्षा विचार करनेपर पहले समयमें जितनी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होती है उससे दूसरे समयमें अनन्तगुणी जघन्य विशुद्धि प्राप्त होती है। इसप्रकार विशुद्धिका यह क्रम अन्तर्मुहूर्तकाल तक जानना चाहिये। पुनः अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तिम समयमें जो जघन्य विशुद्धि प्राप्त होती है उससे प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी होती है। उससे अन्तर्मुहूर्तके अन्तिम समयमें प्राप्त हुई जघन्य विशुद्धिसे अगले समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी प्राप्त होती है। उससे दूसरे समयमें उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी प्राप्त होती है। इसप्रकार विशुद्धिकी इस परिपाटीको दर्शनमोहनीयके उपशामकके अधःप्रवृत्तकरणमें प्राप्त हुई विशुद्धिके समान जानना चाहिए।

इस विधिसे अधःप्रवृत्तकरणके सम्पन्न होनेपर अपूर्वकरणकी प्राप्ति होती है। इसमें स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ये दोनों कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। यहाँ जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है। शुभ कर्मोंका अनुभागघात तो नहीं होता। मात्र अशुभकर्मोंका प्रत्येक अनुभागकाण्डक अनुभागसत्कर्मके अनन्तबहुभागप्रमाण होता है। तथा स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हीन होता है।

यहाँ भी अपूर्वकरणके कालके भीतर हजारों स्थितिकाण्डकघात और उतने ही स्थितिबन्धापसरण होते हैं। तथा एक स्थितिकाण्डकघातके कालके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं।

एक स्थितिकाण्डकघातका काल जिस समय समाप्त होता है उसी समय उसके साथ होनेवाले स्थितिबन्धापसरणका काल भी समाप्त होता है। तथा इस एक स्थितिकाण्डकघातके कालके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं। उनमेंसे अन्तिम अनुभागकाण्डकघात भी उक्त दोनोंके साथ ही समाप्त होता है।

इस प्रकार हजारों स्थितिकाण्डकघातों, हजारों बन्धापसरणों और एक-एक स्थितिकाण्डकघातके भीतर हजारों अनुभागकाण्डकघातोंके होनेपर अपूर्वकरणका काल समाप्त होकर तदनन्तर समयमें संयतासंयत हो जाता है। यह भाव संयतासंयतका स्वरूप है, द्रव्य-संयतासंयत तो पहलेसे ही था। किन्तु इसके बिना उसको पालन करनेवाला जीव यथार्थमें संयतासंयत कहलानेका अधिकारी नहीं था। इसके पहले वह भावसे असंयत ही था। इसलिए भावोंकी अपेक्षा यहाँ वह असंयमरूप पर्यायको छोड़कर संयमासंयमरूप पर्यायको प्राप्त करता है।

इस प्रकार जिस समय यह जीव संयमासंयमको प्राप्त करता है उसके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक इसके परिणामोंमें प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि होती रहती है। इसलिए इस विशुद्धिको एकान्तानुवृद्धिरूप विशुद्धि कहते हैं। यद्यपि यह विशुद्धि करणस्वरूप नहीं है फिर भी इसके माहात्म्य वश अपूर्व स्थितिकाण्डकघात, अपूर्व अनुभागकाण्डकघात और अपूर्व स्थितिबन्धको यह जीव प्रारम्भ करता है। तथा असंख्यात समयप्रबन्धोंका अपकर्षण-कर उदयावलि बाह्यगुणश्रेणि रचना भी करता है। आशय यह है कि संयमासंयमको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें ही उपरिम स्थितिमें स्थित द्रव्यका अपकर्षणकर गुणश्रेणनिक्षेप करता हुआ उदयावलिके भीतर असंख्यात लोकसे भाजित लब्ध द्रव्यको गोपुच्छाकारसे निक्षिप्तकर उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थितिमें असंख्यात समयप्रबद्धोंका निक्षेप करता है। इसप्रकार गुणश्रेणि शीर्षतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेपकर उससे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। उसके बाद प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। यहाँ यह अवस्थित गुणश्रेणि है, इसलिए द्वितीयादि समयोंमें उतना ही गुणश्रेणि निक्षेप होता है।

इसप्रकार बहुत स्थितिकाण्डकघात आदिके साथ एकान्तानुवृद्धि संयतासंयतकाल समाप्त होनेपर यह जीव अधःप्रवृत्त संयतासंयत हो जाता है। यहाँसे इसकी स्वस्थान विशुद्धिका प्रारम्भ हो जाता है। इसके स्थितिघात और अनुभागघात ये कार्य नहीं होते। ऐसा जीव कुछ काल तक संयमासंयमका पालनकर तीव्र विराधनाकी कारणभूत बाह्य सामग्रीके बिना केवल तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम होनेपर संयमासंयमसे च्युत होकर असंयमभावको भी प्राप्त हो जाता है। यह तत्प्रायोग्य विशुद्धिके साथ मन्द संवेगरूप परिणामके द्वारा स्थिति और अनुभागमें वृद्धि किये बिना जीवादि पदार्थोंको यथावत् स्वीकार करता हुआ शीघ्र ही संयमासंयमको भी प्राप्त हो सकता है। इसके करणपरिणाम न होनेसे स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात आदि कार्य नहीं होते।

इतनी विशेषता है कि संयतासंयतके निमित्तसे गुणश्रेणिनिर्जराके सतत होते रहनेका नियम है, इसलिए संयतासंयतके गुणश्रेणिनिर्जराका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। इतना अवश्य है कि यह गुणश्रेणिनिर्जरा यथासम्भव विशुद्धि और संक्लेशके अनुसार न्यूनाधिक होती रहती है। विशुद्धिके अनुसार प्रत्येक समयमें पूर्व समयकी अपेक्षा कभी असंख्यातगुणी, कभी संख्यातगुणी, कभी संख्यातवाँ भाग अधिक और कभी असंख्यातवाँ भाग अधिक होती है। तथा संक्लेशके अनुसार कभी असंख्यातगुणी हीन,

कभी संख्यातगुणी हीन, कभी संख्यातवाँ भाग हीन और कभी असंख्यातवाँ भाग हीन होती है।

यदि संक्लेशकी बहुलता वश यह जीव संयमासंयमसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्तकालमें या बहुत काल बाद पूर्वमें प्राप्त तथावस्थित वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको प्राप्त करता है तो उसके पूर्ववत् उक्त दोनों करणपरिणाम पूर्वक ही उसकी प्राप्ति होती है और उसके स्थितिकाण्डकघात आदि वे सब कार्य भी होते हैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संयमासंयमगुणकी प्राप्ति तिर्यञ्चोंके भी होती है और मनुष्योंके भी होती है। उसमें जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य तत्प्रायोग्य विशुद्धिके द्वारा संयमासंयमगुणको प्राप्त करते हैं उनके विशुद्धिरूप लब्धिस्थानसे जो मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च तत्प्रायोग्य विशुद्धिके साथ संयमासंयमगुणको प्राप्त करते हैं उनका विशुद्धिरूप लब्धिस्थान अनन्तगुणा होता है। उससे जो असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च उत्कृष्ट विशुद्धिके साथ संयमासंयमको प्राप्त करते हैं उनका वह लब्धिस्थान अनन्तगुणा होता है। उससे असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य उत्कृष्ट विशुद्धिके साथ संयमासंयमगुणको प्राप्त करते हैं उनका वह लब्धिस्थान अनन्तगुणा होता है। इसीप्रकार प्रतिपात स्थानों अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थानोंके विषयमें भी मूलसे जान लेना चाहिए। मूलमें इस विषयका स्वतन्त्र विचार किया है।

संयतासंयत जीव अनन्तानुबन्धी कषायका तो वेदन करता ही नहीं, क्योंकि सासादन गुणस्थानमें ही इनकी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है। यह जीव अप्रत्याख्यान कषायका भी वेदन नहीं करता, क्योंकि इनकी उदयव्युच्छित्ति चौथे गुणस्थानमें ही हो जाती है। इसलिए संयमासंयमलब्धि औदयिक तो है नहीं। यद्यपि इसके प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और नौ नोकषायोंका उदय पाया जाता है। परन्तु उनमेंसे प्रत्याख्यानावरणचतुष्क तो सकलसंयमके प्रतिबन्धक हैं। वे संयमासंयमगुणका प्रतिबन्ध नहीं करते। इसलिए इस अपेक्षासे भी संयमसंयमगुण औदयिक नहीं है। अब रहे चार संज्वलन और नौ नोकषाय सो ये देशघातिरूपसे उदीर्ण होते हैं, इस कारण संयमासंयमगुण देशघाति अर्थात् क्षायोपशमिकभावपनेको प्राप्त करता है। यहाँ यद्यपि क्षयोपशम कर्मका होता है पर कार्यमें कारणका उपचारकर इस गुणको भी क्षायोपशमिक कहा गया है। आशय यह है कि प्रकृतमें चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके सर्वघाति स्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे और उन्हींके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होनेसे संयमासंयमगुणकी प्राप्ति होती है, इसलिए संयमासंयमगुण क्षायोपशमिक सिद्ध होता है।

संयमासंयमलब्धि क्षायोपशमिक है इसकी सिद्धि इस प्रकार भी होती है कि संयतासंयत जीवके अप्रत्याख्यानावरणीयका तो उदय है नहीं। प्रत्याख्यानावरणीयका उदय होकर भी वह संयमासंयमगुणका न तो उपघात ही करता है और न अनुग्रह ही करता है, इसलिए प्रत्यख्यानावरणीयचतुष्कका वेदन करता हुआ यदि चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका कुछ भी वेदन न करे तो संयमासंयमगुण क्षायिक भावके समान एकप्रकारका ही हो जावे। परन्तु यह सम्भव नहीं है, अतः चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका देशघातिरूपसे वहाँ उदय स्वीकार कर लेना चाहिए और यतः चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके असंख्यातलोकप्रमाण भेद हैं, अतः क्षयोपशमस्वरूप लब्धिके भी असंख्यात लोकप्रमाण भेद जान लेने चाहिए।

इसप्रकार संयमासंयमलब्धिका संक्षेपमें विचार किया।

१३ चारित्रलब्धि अर्थाधिकार

जयधवलाके निर्देशानुसार चारित्रलब्धि यह तेरहवाँ अर्थाधिकार है। इसका दूसरा नाम संयमलब्धि भी है। 'लद्धी च संजमासंजमस्स' इस सूत्रगाथामें आये हुए 'लद्धी तहा चरित्तस्स' इस गाथावयव द्वारा इसकी सूचना मिलती है। पहले अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जिन चार सूत्रगाथाओंका निर्देश कर आये हैं उनके अनुसार यहाँ भी परिणाम आदिका विचार कर लेना चाहिये। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि संयमगुणकी प्राप्ति मात्र पर्याप्त कर्मभूमिज मनुष्य पर्यायमें ही होती है, इसलिए इस बातको ध्यानमें रखकर उसका स्पष्टीकरण करना चाहिये। दूसरे इस अर्थाधिकारमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके क्षायोपशमिक चारित्रलब्धिकी प्राप्ति कैसे होती है इसकी मीमांसा की गई है, इसलिए इसकी प्राप्तिमें अधःकरण और अपूर्वकरण ये दो प्रकारके ही परिणाम होते हैं, अतः उसकी प्राप्तिके समय आगे चलकर यह जीव न तो किसी कर्मका अन्तर करता है और न ही सर्वोपशामना द्वारा किसी कर्मका उपशामक ही होता है। शेष व्याख्यान मूलसे जान लेना चाहिए।

जैसा कि पूर्व में बतला आये हैं कि जो वेदकसम्यग्दृष्टि मनुष्य संयमलब्धिके प्राप्तिके सन्मुख होता है उसके अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो प्रकारके ही करण परिणाम होते हैं सो इनका जैसा व्याख्यान संयमासंयमलब्धिके प्रसंगसे कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिए। जिसके संयमलब्धिकी प्राप्ति उपशमसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके साथ भी होती है उसके अधःप्रवृत्त आदि तीनों प्रकारके करणपरिणाम पूर्वक ही उसकी प्राप्ति होती है पर उस आधारसे यहाँ विचार नहीं करना है, क्योंकि जिसने पूर्वमें द्रव्यसंयम स्वीकार किया है और जो उसका चरणानुयोगमें बतलाई गई विधिके अनुसार यथावत् पालन करता है उसके जीवादि नौ पदार्थोंके यथावत् परिज्ञानपूर्वक आत्माके सन्मुख होनेपर अधःप्रवृत्त आदि तीन करणपूर्वक प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय ही संयमभावकी प्राप्ति होती है। यहाँ तो ऐसे मनुष्यको लक्ष्यमें रखकर विचार किया जा रहा है जो वेदक सम्यग्दृष्टि होनेके साथ चरणानुयोगके अनुसार द्रव्यसंयमका यथावत् पालन करता है। ऐसा द्रव्यसंयमका पालन करनेवाला मनुष्य मात्र अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो प्रकारके करण परिणाम करके ही संयमका अधिकारी हो जाता है सो इसका संयमासंयमकी प्राप्तिके समय जैसा विचारकर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी विचार कर लेना चाहिए।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इस संयमको प्राप्त हुआ मनुष्य बहुत संक्लेशको प्राप्त हुए बिना परिणामवश कर्मोंकी स्थितिमें वृद्धि किये बिना यदि असंयमपनेको प्राप्त होकर पुनः संयमको प्राप्त होता है तो न तो उसके अपूर्वकरणरूप परिणाम ही होते हैं और न ही स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात ही होता है। परन्तु जो संक्लेशकी बहुलतावश मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके साथ असंयमपनेको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तबाद या दीर्घकाल बाद संयमको प्राप्त करता है उसके पूर्वोक्त दोनों करण भी होते हैं और यथास्थान स्थितिकाण्डकघात तथा अनुभागकाण्डकघात भी होते हैं।

इस प्रकार संयमको प्राप्त हुए जीवोंके संयमस्थान तीन प्रकारके होते हैं—प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान। जिस स्थानमें स्थित यह जीव संक्लेशकी बहुलतावश गिरकर मिथ्यात्व, असंयमसम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त होता है उसकी प्रतिपातस्थान संज्ञा है। जिस स्थानमें स्थित यह जीव संयमभावको प्राप्त करता

है उसकी प्रतिपद्यमानस्थान संज्ञा है। उत्पादकस्थान यह इसका दूसरा नाम है। इन दोनों स्थानोंमेंसे प्रतिपातस्थान संयमसे गिरते समय होता है और प्रतिपद्यमानस्थान संयमको प्राप्त होनेके पहले समयमें होता है। इन दोनोंके अतिरिक्त अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंको विषय करनेवाले अन्य जितने चारित्रस्थान हैं उनकी लब्धिस्थान संज्ञा है। अथवा जितने चारित्रस्थान हैं उन सबकी लब्धिस्थान संज्ञा है।

इनमें प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे प्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं और उनसे लब्धिस्थान—अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। यहाँ सर्वत्र गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अथवा प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे प्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं और उनसे लब्धिस्थान विशेष अधिक हैं। यहाँ लब्धिस्थानोंसे पूरे चारित्रसम्बन्धी स्थानोंको ग्रहण किया गया है।

संयमको प्राप्त करनेके अधिकारी पर्याप्त मनुष्य दो प्रकारके होते हैं—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज। सबसे जघन्य और सबसे उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान संयमस्थान कर्मभूमिज मनुष्योंके ही होते हैं। अकर्मभूमिज मनुष्योंके मध्यके होते हैं। विशेष स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है। सबसे उत्कृष्ट चारित्रलब्धिस्थान वीतरागके होता है। वह एक ही प्रकारका होता है, क्योंकि कषायके तारतम्यके अनुसार अन्य संयमस्थानोंमें प्राप्त तारतम्यके समान इसमें तारतम्य उपलब्ध नहीं होता, इसलिए वह उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, संयोगकेवली जिन और आयोगकेवली जिन इन सबके एक ही प्रकारका होता है। इस विषयको शंका-समाधान द्वारा मूलमें इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

'एसा उवसंतकसायभयवंतये जहण्णा होदु, खीणकसाय-सजोगि-अजोगीसु च उक्कस्सिया होउ, खइयलद्धिमाहप्पादो त्ति णासंकणिज्जं, खीणोवसंतकसाएसु कसायाभावेण अवट्ठिदसंजमपरिणामेसु जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदस्स भेदाणुवलंभादो।'

शंका—यह उपशान्तकषाय भगवन्तके जघन्य होओ तथा क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिकलब्धिके माहात्म्यवश उत्कृष्ट होओ ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि क्षीणकषाय और उपशान्तकषाय जीवोंमें कषायका अभाव होनेसे अवस्थित संयमपरिणाम होता है, इसलिए यथाख्यातविहारशुद्धिसंयममें भेद नहीं उपलब्ध होता।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके उदयाभावरूप उपशमके होनेपर तथा संज्वलनचतुष्क और नौ नोकषायोंके देशघाति स्पर्धकोंके उदय होनेपर चारित्रलब्धिकी प्राप्ति होती है, इसलिए सकलसंयमरूप चारित्रलब्धि क्षायोपशमिक है ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

१४ चारित्रमोहनीय-उपशामना

चारित्रमोहनीय उपशामना यह जयधवलाके अनुसार चौदहवाँ अर्थाधिकार है। इसमें आठ सूत्रगाथाएँ निबद्ध हैं। उनमें 'उवसामणा कदिविधा' यह पहली सूत्रगाथा है। इसमें तीन अर्थ निबद्ध हैं—१. उपशामना कितने प्रकारकी है ? इस द्वारा प्रशस्तोपशामना और अप्रशस्तोपशामना आदि रूपसे उपशामनाके भेदोंका सूचन किया गया है। २. किस किस कर्मकी उपशामना होती है ? इस द्वारा क्या सभी कर्मोंकी उपशामना सम्भव

है या सम्भव नहीं है ऐसी पृच्छा करके चारित्रमोहनीयविषयक प्रकृत उपशामनाकी सूचना की गई है। ३. कौन कर्म उपशान्त होता है और कौन कर्म अनुपशान्त रहता है? ऐसी पृच्छा द्वारा नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंके किस अवस्था विशेषमें कौन कर्म उपशान्त होता है अथवा कौन कर्म अनुपशान्त रहता है इस प्रकारके अर्थकी सूचना की गई है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

'कदिभागुवसामिज्जदि' यह दूसरी सूत्रगाथा है। यह चारित्रमोहनीयको उपशमाते समय उपशमाये जानेवाले प्रदेशपुञ्जका तथा स्थिति और अनुभागके प्रमाणका निश्चय करनेके लिए पुनः उन्हींके सम्बन्धसे बँधनेवाले, वेदे जानेवाले, संक्रमित होनेवाले और उपशमाये जानेवाले स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आई है।

'केवचिरमुवसामिज्जदि' यह तीसरी सूत्रगाथा है। इस द्वारा उपशमन क्रिया तथा उपशमाई जानेवाली प्रकृतिके संक्रमण, उदीरणा आदिके कालके निर्देश करनेकी पृच्छा की गई है। इसके उत्तरस्वरूप उपशामनक्रियामें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है ऐसा निर्देश करना चाहिये। इसी प्रकार संक्रमण आदिके विषयमें मूलके आधारसे निर्णय कर लेना चाहिए।

'कं करणं वोच्छिज्जदि' यह चौथी सूत्रगाथा है। इस द्वारा उपशामकके मूल और उत्तर प्रकृतियोंके अप्रशस्त उपशामना आदि आठ करणोंमेंसे किस अवस्थामें कौन करण व्युच्छिन्न रहता है और कौन करण व्युच्छिन्न नहीं रहता तथा कौन करण उपशान्त रहता है और कौन करण उपशान्त नहीं रहता इस विषयकी पृच्छा की गई है। इसका विशेष निर्णय आगे यथास्थान करेंगे।

'पडिवादो च कदिविधो' यह पाँचवीं सूत्रगाथा है। इस द्वारा प्रतिपात कितने प्रकारका है, किस कषायमें प्रतिपतित होता है तथा गिरता हुआ किन प्रकृतियोंका बन्ध करता है यह पृच्छा की गई है।

'दुविहो खलु पडिवादो' यह छठी सूत्रगाथा है। इस द्वारा प्रतिपात भवक्षयसे होनेवाला और उपशमक्षयसे होनेवाला इस तरह दो प्रकारका है। यदि भवक्षयसे प्रतिपात होता है तो बादर रागमें अर्थात् स्थूल कषायसे युक्त अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें प्रतिपात होता है और यदि उपशमक्षयसे होता है तो वह सूक्ष्मसाम्परायमें होता है इन सब तथ्योंका निर्देश किया गया है। इस प्रकार इस सूत्रगाथा द्वारा पिछली सूत्रगाथाके पूर्वार्धमें निबद्ध दो पृच्छाओंका निर्णय किया गया है।

'उवसामणाखएण दु' यह सातवीं सूत्रगाथा है। इस द्वारा पिछली सूत्रगाथामें निर्दिष्ट अर्थकी ही पुनः पुष्टि की गई है। इतना अवश्य है कि पिछली सूत्रगाथामें किस क्षयसे किस कषायमें प्रतिपात होता है यह स्पष्ट नहीं किया गया था। किन्तु इस सूत्रगाथामें यह स्वतन्त्ररूपसे स्पष्ट कर दिया गया है कि भवक्षयसे बादर रागमें और उपशमक्षयसे सूक्ष्म रागमें प्रतिपात होता है।

'उवसामणाक्खएण दु' यह आठवीं सूत्रगाथा है। इस द्वारा यह पृच्छा की गई है कि उपशामनाके क्षय होनेसे गिरनेवाला जीव आनुपूर्वीसे किन कर्मप्रकृतियोंका बन्ध करता है और किन कर्मप्रकृतियोंका वेदन करता है?

इस प्रकार ये आठ सूत्रगाथाएं हैं जो इस अनुयोगद्वारमें निबद्ध हैं। आगे इनके आधारसे पूरे विषयको स्पर्श करते हुए बतलाया गया है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना किये बिना चारित्रमोहनीयकी उपशामना करना सम्भव नहीं है। इसलिए इस अनुयोगद्वारके प्रारम्भमें सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनाका निर्देश करते हुए

बतलाया गया है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जीव अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करणपूर्वक ही उक्त प्रकृतियोंकी विसंयोजना करता है। दर्शनमोहनीयकी उपशामना अनुयोगद्वारमें इनके लक्षणोंका कथन कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। अधःप्रवृत्तकरणरूप विशुद्धिके ये विशेष कार्य हैं—हजारों स्थितिबन्धापसरण, अशुभ कर्मोंका प्रतिसमय अनन्तगुणी हानिरूपसे अनुभागबन्धापसरण और शुभ कर्मोंका प्रतिसमय अनन्तगुणी वृद्धिरूपसे चतुःस्थानीयबन्ध। यहाँ न तो स्थितिकाण्डकघात होता है और न ही अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रमरूप कार्य विशेष ही होते हैं। ये सब कार्य अपूर्वकरणरूप परिणामोंके होनेपर ही प्रारम्भ होते हैं। इतना अवश्य है कि यहाँ होनेवाली गुणश्रेणि सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, संयतासंयत और संयतसम्बन्धी गुणश्रेणियोंसे प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणी होती है और गुणसंक्रम मात्र अनन्तानुबन्धीचतुष्कका होता है, अन्य प्रकृतियोंका नहीं। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्म होता है उससे उसके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन होता है। उसके बाद यह अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंको प्राप्त करता है। वहाँ प्रथम समयमें अनन्तानुबन्धियोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर लक्ष्यपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होता है और शेष कर्मोंका अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर होता है। यहाँ भी वे सब कार्य प्रारम्भ रहते हैं जो अपूर्वकरणमें प्रारम्भ हुए थे। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनामें अन्तरकरणरूप क्रिया नहीं होती। यह क्रिया दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी उपशामना और चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें ही होती है, अन्यत्र नहीं। इसके बाद हजारों अनुभागकाण्डकघातगर्भित एक-एक स्थितिकाण्डकघातपूर्वक हजारों स्थितिकाण्डकघातोंको करता हुआ अनन्तानुबन्धीके स्थितिसत्कर्मको क्रमसे असंज्ञी, पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान करके पुनः उसी विधिसे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मको स्थापित कर तत्पश्चात् शेष स्थितिके संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिकाण्डकको ग्रहणकर दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिसत्कर्मको स्थापित करता है। पश्चात् उत्तरोत्तर शेष स्थितिके असंख्यात बहुभागप्रमाण प्रत्येक स्थितिकाण्डकके द्वारा घात करता हुआ अन्तमें उदयावलि बाह्य अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिको शेष कषायोंकी स्थितिमें संक्रमित कर प्रकृत क्रियाको सम्पन्न करता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनाका यह क्रम है। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेके बाद अन्तर्मुहूर्तकालतक अधःप्रवृत्तसंयत होकर असातावेदनीय और अरति आदिका बन्ध करता है।

पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा दर्शनमोहनीयको उपशमाता है, क्योंकि वेदकसम्यग्दर्शनके साथ उपशमश्रेणिपर चढ़ना सम्भव नहीं है। या तो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण करता है या जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेके पूर्व द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है वह उपशमश्रेणिपर आरोहण करता है ऐसा नियम है।

इसके भी पहलेके समान तीन प्रकारके करणपरिणाम होते हैं तथा प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवालेके अधःप्रवृत्तकरणमें जो कार्य विशेष बतला आये हैं वे सब तथा अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर जिसप्रकार स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँपर भी जानना चाहिए। वहाँकी अपेक्षा इस विषयमें यहाँ कोई अन्तर नहीं है। यहाँ गुणसंक्रम नहीं होता। यहाँ स्थितिबन्धापसरणका कथन भी उसी

प्रकार कर लेना चाहिए। इस प्रकार इस विधिसे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जितना स्थितिसत्कर्म और स्थितिबन्ध प्राप्त होता है, उसके अन्तमें वह संख्यातगुणा हीन होता है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अनिवृत्तिकरणमें भी स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य विशेष उसी प्रकार जानने चाहिए। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणके संख्यात बहुभागके व्यतीत होने पर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर दर्शनमोहनीयका अन्तर करता है। इस क्रियाको करते समय सम्यक्त्वकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और मिथ्यात्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उदयावलिप्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित करता है। यहाँ जिन स्थितियोंका अन्तर करता है उनमेंसे उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशपुञ्जको बन्ध न होनेके कारण प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है।

सम्यक्त्वकी द्वितीय स्थितिमें स्थित प्रदेशपुञ्जको अपकर्षण द्वारा अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है। अन्तर स्थितियोंमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त नहीं करता।

मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भी द्वितीय स्थितिमें स्थित प्रदेशपुञ्जको अपकर्षण कर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। तथा अतिस्थापनावलीको छोड़ कर स्वस्थानमें भी निक्षिप्त करता है, अपनी अन्तर स्थितियोंमें निक्षिप्त नहीं करता। तथा सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके सदृश उदयावलि बाह्य मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशपुञ्जको सम्यक्त्वके ऊपर समान स्थितिमें संक्रमित करता है। अन्तरकी द्विचरम फालिके पतन होने तक स्वस्थानसंक्रमका यह क्रम चालू रहता है। किन्तु चरम फालिके पतनके समय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशपुञ्जको स्वस्थानमें नहीं देता है। किन्तु उनके अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिके द्रव्यको सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें ही गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है।

सम्यक्त्वकी द्विअन्तिम फालिके द्रव्यको अन्यत्र निक्षिप्त नहीं करता, अपनी प्रथम स्थितिमें ही निक्षिप्त करता है। प्रथम स्थितिमें स्थित द्रव्यका उत्कर्षण कर उसे द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त नहीं करता, बन्धका अभाव होनेके कारण स्वस्थानमें ही अपकर्षित करता है। द्वितीय स्थितिके द्रव्यका अपकर्षण होकर आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहने तक प्रथम स्थितिमें निक्षेप होता है। उसके बाद आगाल-प्रत्यागालका विच्छेद हो जाता है तथा वहाँसे लेकर गुणश्रेणिरचना नहीं होती। मात्र प्रत्यावलिमेंसे उदीरणा होती है। और इस प्रकार प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें अनिवृत्तिकरण समाप्त होकर तदनन्तर समयमें उपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है।

यहाँ पर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके क्षीण होनेपर मिथ्यात्वके प्रदेशपुञ्जका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें गुणसंक्रमद्वारा संक्रम नहीं होता, विध्यातसंक्रम होता है। प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न करनेवाले जीवका गुणसंक्रमद्वारा जितना पूरणकाल प्राप्त होता है उससे संख्यातगुणे कालतक यह द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव विशुद्धि द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है। उसके बाद संक्लेश-विशुद्धिवश वह स्वस्थानमें हानि-वृद्धि और अवस्थानको प्राप्त होता है। तथा हजारों बार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें परिवर्तन करता हुआ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें असातावेदनीय और अरति आदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है।

इस प्रकार द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको ग्रहणकर कषायोंको उपशमानेके लिए अप्रमत्तसंयत होकर अधःप्रवृत्तकरणरूप परिणामको करता है। इस करणमें जो विशेष कार्य होते हैं उनका निर्देश पूर्वमें किया ही है। अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें 'कसायउवसामग-

पट्ठवगस्स' इन चार सूत्र गाथाओंका व्याख्यान करना चाहिए। इन सूत्रगाथाओंके अनुसार कषायोंको उपशमानेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है आदिको मूलसे जान लेना चाहिए। उपयोग कौन होता है ऐसी पृच्छाका स्पष्टीकरण करते हुए टीकामें दो उपदेशोंका निर्देश किया गया है। प्रथम उपदेशके अनुसार नियमसे श्रुतज्ञानरूपसे उपयुक्त होता है यह बतलाया गया है। किन्तु दूसरे उपदेशके अनुसार उक्त जीव श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अचक्षुदर्शन या चक्षुदर्शनरूपसे उपयुक्त होता है यह कहा गया है। सो यहाँ ध्यानकी भूमिका होनेसे यद्यपि मुख्यतासे श्रुतज्ञानरूप उपयोग होता है पर एक तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका जोड़ा है, दूसरे श्रुतज्ञान, मतिज्ञानपूर्वक होता है और मतिज्ञानके पूर्व चक्षुदर्शन या अचक्षुदर्शन नियमसे होता है, अतः इस क्रमको दिखलानेके लिए जहाँ तक हम समझते हैं कि इस विवक्षासे यहाँपर श्रुतज्ञानके अतिरिक्त अन्य उपयोग स्वीकार किये गये हैं।

इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें परिणाम कैसा होता है, योग कौनसा होता है आदि तथ्योंको मूलसे जान लेना चाहिये। इसके बाद यह जीव अपूर्वकरणमें प्रवेश करता है। इसके प्रथम समयसे ही स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि कषायोंको उपशमानेवाला जीव यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि है तो उसके घातके लिए गृहीत स्थितिकाण्डक नियमसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। प्रत्येक स्थितिबन्धापसरणके द्वारा स्थितिबन्धमेंसे जितनी स्थितिका अपसरण करता है वह भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। अनुभागकाण्डक अशुभ कर्मोंके अनन्त बहुभागप्रमाण होता है तथा गुणश्रेणि आयाम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। इसप्रकार पूर्वोक्त विधिसे स्थितिकाण्डकसहस्रपृथक्त्व जानेपर निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। यहाँ यशःकीर्तिकी बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती, इसलिए उसे छोड़ देना चाहिए। ये सब नामकर्मकी प्रकृतियाँ गोत्रकी सहचर हैं, इसलिए सूत्रमें इन्हें गोत्रसंज्ञासे अभिहित किया गया है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति अपूर्वकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालके जानेपर होती है और परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति छह बटे सातभागप्रमाण कालके जानेपर होती है। तथा अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी बन्धव्युच्छित्ति होती है। यह अपूर्वकरणमें बन्धव्युच्छित्तिका विचार है। उदयव्युच्छित्तिकी अपेक्षा विचार करनेपर हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उदयव्युच्छित्ति भी इस गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है।

इसके बाद अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेपर यहाँ भी स्थितिकाण्डकघात आदि वे सब कार्य होते हैं जो अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रारम्भ किये थे। साथ ही इसके प्रथम समयमें अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण इनकी व्युच्छित्ति हो जाती है। कर्मके उत्कर्षण, अपकर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके योग्य होनेपर भी उदीरणाके अयोग्य होना अप्रशस्त उपशामनाकरण है। कर्मके उत्कर्षण और अपकर्षणके योग्य होकर भी परप्रकृति संक्रम और उदीरणाके अयोग्य होना निधत्तीकरण है तथा कर्मके उत्कर्षण आदि चारोंके अयोग्य होना निकाचनाकरण है। जिन कर्मोंकी बन्धके समय अप्रशस्त उपशामना निधत्ती और निकाचनारूप अवस्था होती है, यहाँ अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें उनकी व्युच्छित्ति होकर यहाँसे आगे वे सब कर्मपरमाणु उदीरणा आदिके योग्य हो जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

यहाँ आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमके भीतर होता है और स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्व सागरोपम होता है। इसके बाद अनिवृत्तिकरणके संख्यातवें बहुभागके व्यतीत होनेपर क्रमसे घटता हुआ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान हो जाता है। इसके बाद बँधनेवाले सातों कर्मोंके स्थितिबन्धमें जब मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि चार कर्मोंके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा हीन होता है तब नाम और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक होता है। उससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है और उससे ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है।

इसके बाद जब हजारों स्थितिबन्ध हो लेते हैं तब मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे थोड़ा होता है। नाम-गोत्रका उससे असंख्यातगुणा और शेष चार कर्मोंका उससे असंख्यातगुणा होता है।

इसके बाद हजारों स्थितिबन्धोंके होनेपर वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि तीनके स्थितिबन्धसे भी असंख्यातगुणा होता है। शेष अल्पबहुत्व पूर्ववत् है।

इसके बाद हजारों स्थितिबन्ध होनेपर मोहनीयका स्थितिबन्ध सबसे थोड़ा होता है। ज्ञानावरणादिका उससे असंख्यातगुणा होता है। नाम-गोत्रका उससे असंख्यातगुणा होता है और वेदनीयका उससे विशेष अधिक होता है।

इसके बाद हजारों स्थितिबन्धापसरण होनेपर जो कर्म बँधते हैं उन सबका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। वहाँसे असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है। इसके बाद संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होनेपर क्रमसे, मनःपर्ययज्ञानावरण और दानान्तरायको, पुनः अवधिज्ञानावरण, अवधिदर्शनावरण और लाभान्तरायको, पुनः श्रुतज्ञानावरण, अचक्षुदर्शनावरण और भोगान्तरायको, पुनः चक्षुदर्शनावरणको पुनः आभिनिबोधिकज्ञानावरण और परिभोगान्तरायको देशघाति करता है।

देशघातिकरणके बाद हजारों स्थितिबन्धापसरण होनेपर बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अन्तरकरण करता है। यह जीव जिस संज्वलनके साथ और जिस वेदके साथ उपशमश्रेणिपर आरोहण करता है उसकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त स्थापितकर अन्तरकरण करता है। तथा उनके सिवाय शेष कर्मोंकी प्रथम स्थिति उदयावलिप्रमाण स्थापितकर अन्तर करता है। यहाँ प्रकृतमें पुरुषवेद और संज्वलन क्रोधके उदयसे श्रेणि चढ़ा जीव विवक्षित है, अतः उनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापितकर उससे संख्यातगुणी उपरिम स्थितियोंका अन्तरकरण करता है। इन सब कर्मोंके अन्तरकी अन्तिम स्थिति समान होती है और अधस्तन स्थिति विषम होती है। कारण स्पष्ट है। तदनुसार यहाँ पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति नपुंसकवेदका उपशामनाकाल, स्त्रीवेदका उपशामनाकाल और सात नोकषायोंका उपशामनाकाल इन तीनों कालोंके योगप्रमाण होती है। परन्तु क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थिति इससे कुछ अधिक होती है।

जब यह जीव अन्तरकरणका प्रारम्भ करता है तब अन्य स्थितिबन्धका प्रारम्भ करता है तथा अन्य स्थितिकाण्डक और अन्य अनुभागकाण्डकको ग्रहण करता है। यहाँ भी एक स्थितिबन्धके अपसरणमें जितना काल लगता है उतने ही कालमें अन्तरकरणका कार्य सम्पन्न होता है।

बारह कषाय और नौ नोकषाय इन इक्कीस प्रकृतियोंका अन्तरकरण होता है। इनमेंसे चार संज्वलन और पुरुषवेदका [illegible] चार संज्वलनोंमेंसे किसी एकका और तीन वेदोंमेंसे किसी एकका होता है। शेष मध्यकी आठ कषाय और छह नोकषाय ये अबन्ध और अनुदयरूप प्रकृतियाँ हैं। तदनुसार ये सब प्रकृतियाँ चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं। यथा—

१. स्वोदयकी विवक्षामें बन्धके साथ उदय प्रकृतियाँ—पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलन।

२. परोदयकी विवक्षामें बन्धप्रकृतियाँ—पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलन।

३. स्वोदयकी विवक्षामें अबन्धरूप उदयप्रकृतियाँ—स्त्रीवेद और नपुंसकवेद।

४. अबन्धरूप अनुदयप्रकृतियाँ—मध्यकी आठ कषाय और छह नोकषाय।

इसप्रकार उक्त २१ प्रकृतियाँ चार भागोंमें विभक्त हो जाती हैं। इनमेंसे (१) जिसके पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलनका बन्धके साथ उदय भी होता है उसके इन दोनों प्रकृतियोंकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका अपकर्षण होकर एक तो प्रथम स्थितिमें निक्षेप होता है, क्योंकि उक्त अवस्थामें इनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाई जाती है। दूसरे इनके उक्त निषेकपुञ्जका उत्कर्षण होकर आबाधाको छोड़कर बन्ध प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें निक्षेप होता है। उत्कर्षित द्रव्यका आबाधामें निक्षेप नहीं होता ऐसा नियम होनेसे आबाधामें उक्त द्रव्यका निक्षेप नहीं होता है ऐसा कहा है। (२) जिसके अन्यतर संज्वलनको छोड़कर शेष संज्वलनोंका तथा पुरुषवेदका उदय नहीं होता, केवल बन्ध होता है उसके तब इनकी प्रथम स्थिति मात्र आवलिप्रमाण होनेसे इनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका एक तो अपनी द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है, दूसरे जो अनुदयरूपबन्ध प्रकृतियाँ हैं उनकी भी द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है और तीसरे जो उदयसहित बन्ध प्रकृतियाँ हैं उनकी प्रथम स्थितिमें अपकर्षण होकर और द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है। (३) जो स्त्रीवेद या नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणि चढ़ा है उसके इन दोनों प्रकृतियोंकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका एक तो अपकर्षण होकर अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षेप होता है, दूसरे जो केवल बन्ध प्रकृतियाँ हैं उनकी द्वितीय स्थितिमें परप्रकृतिसंक्रमरूपसे उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है और तीसरे जो सोदय बन्ध प्रकृतियाँ हैं उनकी प्रथम स्थितिमें परप्रकृतिसंक्रमरूपसे अपकर्षण होकर और द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है तथा (४) अबन्ध और अनुदयरूप जो आठ कषाय और छह नोकषाय हैं उनके अन्तरसम्बन्धी निषेकपुञ्जका एक तो जो कर्म बँधते हैं वेदे नहीं जाते उनकी द्वितीय स्थितिमें परप्रकृति संक्रमरूपसे उत्कर्षण होकर निक्षेप होता है, दूसरे जो कर्म बँधते हैं और वेदे जाते हैं उनकी परप्रकृतिसंक्रमरूपसे अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमें और उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षेप होता है। तथा तीसरे जो कर्म बँधते नहीं, वेदे जाते हैं उनकी प्रथम स्थितिमें परप्रकृतिसंक्रमरूपसे अपकर्षण होकर निक्षेप होता है।

इस प्रकार इस विधिसे अन्तरकरण क्रियाके सम्पन्न हो जानेपर उसके समाप्त होनेके समयसे लेकर चारित्रमोहनीयके ये सात करण प्रारम्भ हो जाते हैं। यथा—(१) चारित्र मोहनीयकी वहाँ अवस्थित सभी प्रकृतियोंका आनुपूर्वी संक्रम होने लगता है। खुलासा इस प्रकार है—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका नियमसे पुरुषवेदमें संक्रम होता है, अन्यत्र संक्रम

नहीं होता। पुरुषवेद छह नोकषाय, अप्रत्याख्यान क्रोध और प्रत्याख्यान क्रोधका नियमसे क्रोध संज्वलनमें संक्रम होता है अन्यत्र संक्रम नहीं होता। क्रोधसंज्वलन, अप्रत्याख्यान मान और प्रत्याख्यान मानका नियमसे मानसंज्वलनमें संक्रम होता है, अन्यत्र संक्रम नहीं होता। मानसंज्वलन, अप्रत्याख्यानमाया और प्रत्याख्यान मायाका नियमसे मायासंज्वलनमें संक्रम होता है, अन्यत्र संक्रम नहीं होता। तथा मायासंज्वलन, अप्रत्याख्यान लोभ और प्रत्याख्यान लोभका नियमसे संज्वलन लोभमें संक्रम होता है, अन्यत्र संक्रम नहीं होता। इन प्रकृतियोंका पहले जो आनुपूर्वीके विना संक्रम होता रहा, वह यहाँसे उक्त विधिसे होने लगता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

(२) उक्त समयसे लेकर लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं होता यह दूसरा करण है। पहले इसका आनुपूर्वीके विना प्रतिलोम विधिसे जो संक्रम होता था वह अब नहीं होता, इसलिए आगे लोभसंज्वलनका संक्रम ही नहीं होता।

(३) मोहनीयकर्मका एकस्थानीय बन्ध होता है यह तीसरा करण है। इससे पूर्व मोहनीयका जो द्विस्थानीय बन्ध होता था वह यहाँसे परिणामोंके माहात्म्यवश एकस्थानीय होने लगता है।

(४) यहाँसे लेकर सर्व प्रथम आयुक्तकरण द्वारा नपुंसकवेदके उपशमानेकी क्रियाको करता है। आयुक्तकरण, उद्यतकरण और प्रारम्भकरण ये तीनों एकार्थवाची शब्द हैं। अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न करनेके साथ नपुंसकवेदके उपशमानेकी क्रियाका प्रारम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(५) अन्तरकरणके बाद मोहनीय और मोहनीयके अतिरिक्त अन्य जिन प्रकृतियोंका बन्ध होता है उनकी बन्धसे लेकर छह आवलि काल जानेपर उदीरणा होती है यह पाँचवाँ करण है। सामान्य नियम यह है कि बन्ध होनेके बाद एक आवलि काल जानेपर बन्ध-प्रकृतिकी उदीरणा होने लगती है। परन्तु अन्तरकरण क्रिया सम्पन्न होनेपर यह नियम यहाँ लागू न होकर बन्ध समयसे लेकर छह आवलि काल जानेपर उदीरणा होती है ऐसा यहाँ समझना चाहिए। इसी तथ्यको कल्पित उदाहरण द्वारा मूलमें स्पष्ट किया गया है।

(६) मोहनीयका एकस्थानीय उदय होता है यह छठा करण है। इससे पूर्व मोहनीयका देशघातिस्वरूप द्विस्थानीय उदय होता था, वह यहाँसे एकस्थानीय होने लगता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

(७) मोहनीयका संख्यात वर्षप्रमाण बन्ध होने लगता है यह सातवाँ करण है। अन्तरकरणक्रिया सम्पन्न करनेके पूर्व जो असंख्यात वर्षप्रमाण बन्ध होता रहा वह अन्तरक्रिया सम्पन्न होनेके समयसे लेकर बहुत घटकर संख्यात वर्षप्रमाण होने लगता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार उक्त करणोंका प्रारम्भ कर अन्तर्मुहूर्तमें नपुंसकवेदका उपशम करता है। पुनः अन्तर्मुहूर्तमें स्त्रीवेदका उपशम करता है। स्त्रीवेदका उपशम करते समय जब ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तब केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणको छोड़कर उक्त तीनों मूल प्रकृतियोंका एकस्थानीय अनुभागबन्ध होता है। पुनः स्त्रीवेदका उपशम करनेके बाद सात नोकषायोंका उपशम करता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जिस समय सात नोकषायोंका उपशम होता है उस समय

पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं, क्योंकि जो अन्तिम आवलिमें बँधे हैं उनकी बन्धावलिका काल अभी व्यतीत नहीं हुआ और जो एक समय कम द्विचरमावलिमें बँधे हैं उनकी उपशमनावलि अभी पूर्ण नहीं हुई है। इनका बादमें उपशम होता है।

सवेद भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका स्थितिबन्ध सोलह वर्षप्रमाण, चार संज्वलनोंका स्थितिबन्ध बत्तीस वर्षप्रमाण और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होता है।

पुरुषवेदकी प्रथम स्थिति जब दो आवलि काल शेष रहती है तब आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है। प्रथम स्थितिमें स्थित प्रदेशपुंजका उत्कर्षण होकर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त होना आगाल कहलाता है और द्वितीय स्थितिमें स्थित प्रदेशपुंजका अपकर्षण होकर प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त होना प्रत्यागाल कहलाता है।

अवेदभागके प्रथम समयसे अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन इन तीन क्रोधोंको उपशमानेका प्रारम्भ करता है। इसके वही पुरानी प्रथम स्थिति होती है। पहले अन्तरकरण क्रिया करते समय पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिसे जो क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति कुछ अधिक स्थापित की थी, समय-समयमें गलित होनेसे जितनी शेष बची वही यहाँपर उक्त तीन क्रोधोंके उपशमानेके प्रथम समयमें स्वीकार की गई है। आगे चलकर मानादिककी उपशमना करते समय जिस प्रकार सवेदभागसे एक आवलि अधिक उनकी प्रथम स्थिति स्थापित की जाती है उस प्रकार उक्त तीन क्रोधोंकी नहीं स्थापित की जाती है। इस प्रकार उक्त तीन क्रोधोंकी उपशमना करते हुए जब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति आवलि-प्रत्यावलिप्रमाण शेष रहती है तब द्वितीय स्थितिमेंसे आगाल और प्रथम स्थितिमेंसे प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उसके बाद क्रोधसंज्वलनका गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता, मात्र प्रत्यावलिमेंसे प्रदेशपुञ्जकी उदीरणा होती है। जब क्रोधसंज्वलनकी प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहता है तब उसकी जघन्य उदीरणा होती है। उस समय चार संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चार माहप्रमाण और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण होता है। इसके बाद प्रत्यावलिके एक समयके गल जानेपर तब क्रोधसंज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर तीन प्रकारके क्रोधोंके शेष सब प्रदेश उपशमभावको प्राप्त हो जाते हैं। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें तीन आवलियाँ शेष रहने तक क्रोधसंज्वलनमें शेष दो क्रोधोंके प्रदेशपुञ्ज संक्रमित होते हैं। उसमें एक समय कम तीन आवलियाँ शेष रहनेपर उक्त दो क्रोधोंके प्रदेशपुञ्जका क्रोधसंज्वलनमें संक्रमित होना बन्द हो जाता है। तथा जब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम एक आवलि शेष रहती है तब क्रोधसंज्वलनके बन्ध और उदय दोनों व्युच्छिन्न हो जाते हैं। कारणका खुलासा मूलमें किया ही है।

जिस समय क्रोधसंज्वलनकी उदय व्युच्छित्ति होती है उसके अगले समयमें ही वह मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति करनेके साथ उसका वेदक होकर तीन प्रकारके मानोंका उपशामक होता है। तब चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम चार माह और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होता है। पुनः आगे मानसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि शेष रहनेपर दो प्रकारका मान मानसंज्वलनमें संक्रमित नहीं होता। प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल-प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहनेपर मानसंज्वलनके एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धको छोड़कर तीन प्रकारके

मानका शेष प्रदेशसत्कर्म तब उपशान्त हो जाता है। उस समय मान, माया और लोभसंज्वलनका दो मासप्रमाण और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।

तदनन्तर समयमें मायासंज्वलनका अपकर्षणकर उसकी प्रथम स्थिति करता है तथा वहाँसे लेकर वह तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है। उस समय माया और लोभसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्त कम दो माहप्रमाण और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। अन्तरकरणक्रियाके समाप्त होनेके प्रथम समयसे लेकर मोहनीयका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता, आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका होता है। उसमें भी शेष कर्मोंके स्थितिकाण्डकका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है तथा अनुभागकाण्डककी अनन्तगुणहानिरूपसे प्रवृत्ति होती है। इस विधिसे जब मानसंज्वलनका एक समय कम उदयावलिप्रमाण सत्कर्म शेष रहता है तब उसका स्तिवुकसंक्रमके द्वारा मायाके उदयरूपसे विपाक होता है। इस समय मानसंज्वलनके जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं वे गुणश्रेणिरूपसे उतने ही समयमें क्रमसे उपशान्त हो जाते हैं। उस समय जो प्रदेशपुंज मायामें संक्रमित होता है वह विशेष हीन श्रेणिक्रमसे संक्रमित होता है। मायाके प्रथम समयमें उपशामककी यह प्ररूपणा है। पुनः क्रमसे हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर मायासंज्वलनकी जब एक समय कम तीन आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहती है तब दो प्रकारकी माया मायासंज्वलनमें संक्रमित न होकर लोभसंज्वलनमें संक्रमित होती है। प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है। जब प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहता है तब वह एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धको छोड़कर तीन प्रकारकी मायाका अन्तिम समयवर्ती उपशामक होता है। उस समय माया और लोभसंज्वलनका एक माह और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। इसके एक समय बाद मायासंज्वलनकी बन्ध और उदयव्युच्छित्ति होती है तथा उसकी प्रथम स्थितिमें जो एक समय कम एक आवलि शेष है उसका स्तिवुकसंक्रमद्वारा लोभसंज्वलनरूपसे विपाक होने लगता है।

इस प्रकार जहाँ एक ओर यह क्रिया सम्पन्न होती है वहीं दूसरी ओर उसी समय लोभसंज्वलनका अपकर्षणकर उसकी प्रथम स्थिति करता है। यहाँसे लेकर जितना लोभसंज्वलनका वेदककाल है उसके साधिक दो-तीन भागप्रमाण वह प्रथम स्थिति करता है, क्योंकि लोभवेदककालमेंसे कुछ कम तीसरे भागप्रमाण सूक्ष्मसाम्परायका काल कम हो जाता है। उस समय लोभसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्त कम एक माह और शेष कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। पश्चात् जहाँ जाकर संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए रहते हैं वहाँ तक लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थितिका अर्धभाग व्यतीत हो चुकता है। वहाँ इस अर्धभागके अन्तिम समयमें लोभका दिवसपृथक्त्व और शेष कर्मोंका हजार वर्षपृथक्त्वप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तथा वहीं तक लोभसंज्वलनका स्पर्धकगत अनुभागसत्कर्म रहता है।

इसके अनन्तर दूसरे त्रिभागके प्रथम समयमें लोभसंज्वलनके जघन्य स्पर्धकके नीचे अनन्तगुणहानिरूपसे अपकर्षितकर सूक्ष्म अनुभाग कृष्टियोंको करता है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें बादर कृष्टियाँ नहीं होतीं। एक स्पर्धकमें जो अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाएँ होती हैं, वहाँ की गई कृष्टियोंका प्रमाण उनके अनन्तवें भागप्रमाण होता है। अर्थात् एक स्पर्धककी वर्गणाओंमें अनन्तका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी वर्गणाप्रमाण वे कृष्टियाँ होती हैं।

पहले समयमें बहुत कृष्टियोंको करता है। दूसरे समयमें उनसे असंख्यात गुणी हीन अपूर्व कृष्टियोंको करता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर दूसरे त्रिभागके अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी हीन अपूर्व कृष्टियाँ करता है। यहाँ प्रत्येक समयमें जितने द्रव्यका अपकर्षण करता है उसके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यसे अपूर्व कृष्टियोंकी रचनाकर शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यका पूर्वकी कृष्टियों और स्पर्धकोंमें निक्षेप करता है। यहाँ प्रथम समयमें कृष्टियोंके लिए जितना द्रव्य देता है, दूसरे समयमें उससे असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। इस प्रकार अन्तिम समयतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। उस समय वहाँ जो कृष्टियाँ की जाती हैं उनमेंसे जो जघन्य अनुभागयुक्त कृष्टि होती है उसमें सबसे अधिक द्रव्य देता है। उससे दूसरी कृष्टिमें विशेष हीन द्रव्य देता है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टितक उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्य देता है। यहाँ अन्तिम कृष्टिको जितना द्रव्य प्राप्त होता है उससे अनन्तगुणा हीन द्रव्य जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणामें निक्षिप्त करता है।

दूसरे आदि समयोंमें भी ऐसा ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रथम समय-से दूसरे समयमें और द्वितीयादि समयोंसे तृतीयादि समयोंमें जो जघन्य कृष्टि प्राप्त होती है उसमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे द्रव्यको देता है। अर्थात् प्रथम समयकी जघन्य कृष्टिमें प्राप्त द्रव्यसे दूसरे समयमें प्राप्त जघन्य कृष्टिमें असंख्यातगुणा द्रव्य देता है। इसी प्रकार तृतीयादि समयोंमें भी जानना चाहिए।

तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा विचार करनेपर इस दृष्टिसे जघन्य कृष्टिमें जितना अनुभाग होता है उससे दूसरी कृष्टिमें अनन्तगुणा अनुभाग होता है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अनुभाग होता है।

यहाँ जघन्य कृष्टिसे लेकर प्रत्येक कृष्टिमें कितने परमाणु होते हैं इस अपेक्षासे विचार करते हुए बतलाया है कि एक-एक परमाणुके अविभागप्रतिच्छेदोंको लेकर एक-एक कृष्टि बनती है। उनमेंसे जिसमें स्तोक अविभागप्रतिच्छेद होते हैं उसका नाम जघन्य कृष्टि है। उससे दूसरी कृष्टिमें अनन्तगुणे अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। यही क्रम अन्तिम कृष्टितक जानना चाहिए।

अथवा जघन्य कृष्टिमें समान धनवाले अनन्त परमाणु होते हैं। दूसरी कृष्टिमें भी सदृश धनवाले सब परमाणुओंको ग्रहणकर अनन्तगुणा जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्तिम कृष्टि-तक समझना चाहिए। इन कृष्टियोंमें स्पर्धकोंके समान उत्तरोत्तर अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा क्रमवृद्धि नहीं है, इसलिए इनकी कृष्टि संज्ञा है। अन्तिम कृष्टिसे जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी होती है। प्रथम स्थितिके इस दूसरे भागमें स्थित जीव कृष्टियोंकी रचना करता है, इसलिए इस भागकी कृष्टिकरणकाल संज्ञा है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जिस प्रकार क्षपकश्रेणिमें समस्त पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका अपवर्तनकर कृष्टियाँ की जाती हैं उस प्रकार यहाँपर सम्भव नहीं है। किन्तु सभी पूर्व स्पर्धकोंके यथावत् बने रहते हुए उनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यका अपकर्षणकर एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण सूक्ष्म कृष्टियोंकी यहाँपर रचना करता है।

कृष्टिकरणकालका जहाँ संख्यात बहुभाग व्यतीत होता है वहाँ लोभसंज्वलनका अन्त-र्मुहूर्त और तीन घातिकर्मोंका दिवस पृथक्त्वप्रमाण स्थितिबन्ध होता है। यहाँ तक नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मका संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही स्थितिबन्ध होता रहता है, क्योंकि अभी भी घातिकर्मोंके समान अघातिकर्मोंका बहुत अधिक स्थितिबन्धापसरण नहीं हुआ है। कृष्टिकरण-

कालके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण, तीनों घातिकर्मोंका कुछ कम दिन-रातप्रमाण और नाम, गोत्र तथा वेदनीयकर्मका कुछ कम एक वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।

उस कृष्टिकरणकालके एक समय कम तीन आवलिप्रमाण काल शेष रहनेपर दो प्रकारके लोभका लोभसंज्वलनमें संक्रम न होकर स्वस्थानमें ही उपशम होता है, क्योंकि संक्रमणावलि और उपशमनावलिका यहाँपर परिपूर्ण होना नहीं बनता है। पुनः कृष्टिकरणकालमें आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है। प्रत्यावलिमें जब एक समय शेष रहता है तब लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति-उदीरणा होती है। उस समय कृष्टिगत लोभसंज्वलन, एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध और उच्छिष्टावलिको छोड़कर तीन प्रकारका शेष सब लोभ उपशान्त रहता है। इस प्रकार यहाँ जाकर यह जीव अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक संयत होता है।

पश्चात् अगले समयमें सूक्ष्मसाम्परायसंयत होकर यह जीव लोभसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थिति करता है। लोभवेदकने प्रथम समयमें जो प्रथम स्थिति की थी यह उसके कुछ कम द्वितीय भागप्रमाण होती है। इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायको प्राप्तकर यह जीव उसके प्रथम समयमें किन कृष्टियोंका किस प्रकार वेदन करता है इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि—

(१) एक तो प्रथम और अन्तिम समयकी कृष्टियोंको छोड़कर शेष समयोंमें जो अपूर्व कृष्टियाँ की जाती हैं उनमें प्राप्त धनके असंख्यातवें भागप्रमाण सदृश धनका वेदन करता है।

(२) दूसरे प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ की जाती हैं उनके उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियोंमेंसे सदृश धनका वेदन करता है।

(३) तीसरे अन्तिम समयमें जो कृष्टियाँ की जाती हैं उनमें जो सबसे जघन्य कृष्टि है उससे लेकर असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष बहुभागप्रमाण कृष्टियोंका वेदन करता है।

इससे स्पष्ट है कि प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीव प्रथम समयमें रचित कृष्टियोंके उपरिम असंख्यातवें भागको और अन्तिम समयमें रचित कृष्टियोंके अधस्तन असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष प्रथम और अन्तिम समय सहित सब समयोंमें रचित कृष्टियोंका उक्त विधिसे वेदन करता है।

यहाँ प्रथम और अन्तिम समयमें की गई जिन कृष्टियोंके वेदनका निषेध किया है उनके विषयमें ऐसा समझना चाहिये कि उनका अपने रूपसे वेदन नहीं होनेका ही यहाँ निषेध किया है, मध्यम कृष्टिरूपसे उनके वेदनका निषेध नहीं है। अर्थात् वे कृष्टियाँ मध्यम कृष्टिरूपसे परिणमकर उदयमें आती हैं।

यह सूक्ष्मसाम्परायके प्रथम समयमें कृष्टियोंके वेदनकी विधि है। कृष्टियोंको उपशमाता किस विधिसे है इसका निर्देश करते हुए बतलाया है कि उन्हें गुणश्रेणिरूपसे उपशमाता है। क्रम यह है कि सब कृष्टियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उसको प्रथम समयमें उपशमाता है। पुनः सब कृष्टियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने प्रदेशपुंजको दूसरे समयमें उपशमाता है, जो कि प्रथम समयमें उपशमाये गये द्रव्यसे असंख्यातगुणा होता है। इसी प्रकार तृतीयादि समयोंमें उपशमाये जानेवाले प्रदेशपुंजके विषयमें सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। इसी प्रकार जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण स्पर्धकगत नवकबन्ध अनुपशान्त

हैं उन्हें भी असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाता है। तथा बादरसाम्परायिक संयतके पहले जो स्पर्धकगत उच्छिष्टावलि वैसी ही रही आई थी उसको यहाँ स्तिवुकसंक्रम द्वारा कृष्टिरूपसे वेदन करता है।

सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत दूसरे समयमें किन कृष्टियोंका वेदन करता है इसका निर्देश करते हुए वहाँ बतलाया है कि—

(१) एक तो प्रथम समयके उदयसे दूसरे समयका उदय अनन्तगुणा हीन होता है, इसलिये प्रथम समयमें उदीर्ण होनेवाली कृष्टियोंके सबसे उपरिम भागसे लेकर नीचे असंख्यातवें भागको छोड़ता है। अर्थात् छोड़ी गई उन कृष्टियोंका वेदन न कर अधस्तन बहुभागप्रमाण कृष्टियोंका दूसरे समयमें वेदन करता है।

(२) दूसरे प्रथम समयमें नीचेकी जिन कृष्टियोंका वेदन नहीं किया था उनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्व कृष्टियोंका वेदन करता है। तात्पर्य यह है कि प्रथम समयमें उदीर्ण कृष्टियोंसे दूसरे समयमें उदीर्ण कृष्टियाँ असंख्यातवें भागप्रमाण विशेष हीन होती हैं।

इसी प्रकार तीसरे समयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके अन्तिम समय तक जानना चाहिये।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

इस प्रकार इस विधिसे सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके कालका पालन करता हुआ जब उसके कालमें आवलि और प्रत्यावलि शेष रहे तब आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्तिकर तथा एक समय अधिक एक आवलि शेष रहनेपर जघन्य स्थिति-उदीरणा करके क्रमसे सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयको प्राप्त होता है। उस समय ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण, नाम और गोत्रका सोलह मुहूर्तप्रमाण और वेदनीयका चौबीस मुहूर्तप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।

तदनन्तर समयमें सम्पूर्ण मोहनीय कर्म उपशान्त रहनेसे यह जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त होता है। यहाँ चारित्रमोहनीयका बन्ध, उदय, संक्रम, उदीरणा, अपकर्षण और उत्कर्षण आदि सभी करणोंकी अपेक्षा उपशम रहता है। अर्थात् उपशान्तकषाय गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयसम्बन्धी सभी कर्मपुंज तदवस्थ रहता है, उसमें किसी भी प्रकारका फेरबदल नहीं होता। अतः यहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक कषायोंका उदय नहीं होनेसे अशेष रागका अभाव होकर अत्यन्त स्वच्छ वीतरागपरिणाम होता है। और इसलिए उस गुणस्थानमें वृद्धिहानिके बिना एकरूप अवस्थित यथाख्यातविहारशुद्धि संयमसे युक्त वीतरागपरिणामका यह जीव भोक्ता होता है।

इस गुणस्थानमें जो जो कार्य होते हैं उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) यहाँ ज्ञानावरणादि कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप आयाम इस गुणस्थानके कालके संख्यातवें भागप्रमाण होता है जो कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किये गये गलित शेष गुणश्रेणिनिक्षेपके इस समय प्राप्त हुए शीर्षसे संख्यातगुणा होता है।

(२) यतः इस गुणस्थानमें अवस्थित परिणाम होता है अतः यहाँ गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम भी अवस्थित रहता है और उसमें होनेवाला प्रदेशविन्यास भी अवस्थित होता है।

(३) जिस समय इस जीवके इस गुणस्थानके प्रथम समयमें निक्षिप्त गुणश्रेणिनिक्षेपकी अग्रस्थितिका उदय होता है उस समय ज्ञानावरणादि कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है।

(४) इस गुणस्थानवाला जीव केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनुभागके उदयकी अपेक्षा अवस्थित वेदक होता है।

(५) निद्रा और प्रचला अध्रुव उदयवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनका कदाचित् वेदक होता है और कदाचित् वेदक नहीं होता। जब तक वेदक होता है तब तक अवस्थित वेदक होता है।

(६) पाँच अन्तरायोंके उदयका भी अवस्थित वेदक होता है। यद्यपि इन प्रकृतियोंकी क्षयोपशमलब्धि सम्भव होनेसे नीचे छह वृद्धि और छह हानिरूपसे इनका उदय सम्भव है। परन्तु यहाँपर इनका अवस्थित ही उदय परिणाम होता है।

(७) इतना अवश्य है कि लब्धिकर्मांशरूप जो शेष चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण कर्म हैं उनका अनुभागोदय वृद्धि, हानि और अवस्थान तीनों प्रकारका होता है। यद्यपि पाँच अन्तराय कर्म भी लब्धिकर्मांशस्वरूप होते हैं पर उनपर यह नियम लागू नहीं होता। आशय यह है कि इस गुणस्थानमें मतिज्ञानादि चार ज्ञानोंमें और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शनोंमें तारतम्य पाया जाता है, इसलिए मतिज्ञानावरणादि चार ज्ञानावरणों और चक्षुदर्शनावरणादि तीन दर्शनावरणोंके अनुभाग उदयमें भी यहाँ तारतम्य पाया जाता है। हाँ जो सर्वावधिज्ञानी इस गुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके अवधिज्ञानावरणका अनुभागोदय अवस्थित होता है। इसी प्रकार यथासम्भव अन्य कर्मोंकी अपेक्षा भी घटित कर लेना चाहिए।

(८) इस गुणस्थानमें नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंका उदय होता है उनमें परिणामप्रत्यय कर्म हैं—तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्षस्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण तथा गोत्रकर्ममें उच्चगोत्र। इस प्रकार ये जितने परिणामप्रत्यय कर्म हैं उनका अनुभागोदय भी अवस्थित ही होता है। यहाँपर वेदे जानेवाले भवप्रत्यय सातावेदनीय आदि अघातिकर्म हैं उनका उदय छह वृद्धि और छह हानिको लिये हुए होता है। इस प्रकार कषायोंके उपशामकका यह विधान है।

●

विषय-सूची

दर्शनमोहक्षपणा अर्थाधिकार

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषय.	पृ. पं.
मंगलाचरण	१
दर्शनमोहक्षपणा[illegible] के सर्वप्रथम कहनेकी सूचना	१
प्रथम सूत्रगाथा	२
इसके अन्तर्गत तीर्थंकर केवली, सामान्य केवली और श्रुतकेवलीके पादमूलमें उक्त सम्यक्त्वकी प्राप्तिका सकारण निर्देश	२
क्षायिकसम्यक्त्वका निष्ठापक कौन होता है इसका खुलासा	३
द्वितीय सूत्रगाथा	४
सूत्रगाथामें मिच्छत्तवेदणीयपदसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व दोनोंका ग्रहण किया गया है इसका खुलासा	५
तृतीय सूत्रगाथा	७
गाथामें आये हुए 'सिया' पदका स्पष्टीकरण	८
चतुर्थ सूत्रगाथा	९
पञ्चम सूत्रगाथा	१०
उक्त सूत्रगाथाओंका निर्देश करनेके बाद प्रकृत विषयके स्पष्टीकरणकी प्रतिज्ञा	११
असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा किस विधिसे होती है इसका खुलासा	१२
उक्त क्षपणाके लिए तीन प्रकारके करण परिणामोंका निर्देश	१४
उक्त तीनों करणोंके लक्षण दर्शनमोहके उपशामकके समान जाननेकी सूचना	१५
अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें जिन चार गाथाओंका कथन करना चाहिए उनकी उल्लेखपूर्वक सूचना	१५
उक्त चार सूत्रगाथाएँ चारित्रमोहक्षपणामें अन्तदीपकभावसे निबद्ध हैं इत्यादि विषयका विशेष खुलासा	१६
उक्त चार सूत्र गाथाओंमेंसे प्रथम सूत्र गाथाके अनुसार प्ररूपणा	१६

विषय.	पृ. पं.
दूसरी सूत्र गाथाके अनुसार प्ररूपणा	१७
तीसरी ,, ,,	२०
चौथी ,, ,, ,,	२१
अपूर्वकरणमें दो जीवोंके स्थिति सत्कर्म और स्थितिकाण्डकके सदृश और विशेषाधिक होनेका सकारण निर्देश	२२
एक अपेक्षा दूसरेके संख्यातगुणे होनेका सकारण निर्देश	२६
दोनोंके स्थिति सत्कर्मके तुल्य होनेका सकारण निर्देश	२७
पुनः प्रकारान्तरसे दो जीवोंके एककी अपेक्षा दूसरेके स्थितिसत्कर्मके स्तोक होने और संख्यातगुणे होनेका सकारण निर्देश	२९
अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किसके स्थिति-काण्डकका क्या प्रमाण होता है इसका खुलासा	३१
वहीं स्थिति बन्धापसरणका प्रमाणनिर्देश	३२
वहीं अनुभागकाण्डकका प्रमाणनिर्देश	३२
यहाँ गुणश्रेणि किस प्रकारकी होती है इसका निर्देश	३३
अपूर्वकरणके द्वितीय समयमें स्थितिकाण्डक आदिका विचार	३४
एक स्थितिकाण्डकके कालमें हजारों अनुभागकाण्डक होते हैं परन्तु एक स्थिति-काण्डक तथा स्थितिबन्धका काल समान है इसका निर्देश	३५
प्रथमस्थितिकाण्डकसे आगेके सब स्थितिकाण्डक उत्तरोत्तर विशेषहीन होते हैं	३६
उक्त विधिसे प्रथम स्थितिकाण्डकसे अपूर्व-करणके कालके भीतर संख्यातगुणा हीन भी स्थितिकाण्डक होता है	३६
अपूर्वकरणके कालमें सब स्थितिकाण्डक संख्यात हजार होते हैं	३७
जहाँ एक स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल समाप्त होता है वहाँ उस सम्बन्धी	

विषय	पृ. सं.
अनुभागकाण्डक उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल उसके साथ समाप्त होता है	३७
अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्कर्म आदिके अल्पबहुत्वका निर्देश	३८
अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अपूर्व स्थितिकाण्डक आदिका निर्देश	३८
गुणश्रेणि और गुणसंक्रमका निर्देश	३९
अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीय सम्बन्धी अप्रशस्त उपशामना आदिकी व्युच्छित्ति	४०
वहीं सब कर्मोंके स्थितिसत्कर्मका विचार	४१
अनिवृत्तिकरणका संख्यात बहुभाग जानेपर दर्शनमोहका स्थितिसत्कर्म क्रमसे कितना रहता है इसका खुलासा	४१
दर्शनमोहका पल्योपमप्रमाण या इससे कम स्थितिसत्कर्म रहने पर स्थितिकाण्डक कितना होता है इसका निर्देश	४२
दूरापकृष्टिप्रमाण स्थिति रहने पर स्थितिकाण्डक कितना होता है इसका विचार	४४
सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा कहां पर होती है इसका विचार	४८
जब मिथ्यात्वका आवलि बाह्य सब द्रव्य क्षपणाके लिये ग्रहण किया तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति कितनी रहती है इसका निर्देश	४९
मिथ्यात्वका जघन्य संक्रम तथा उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म कहाँ पर होता है इसका विचार	५१
मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म कहाँ पर होता है इसका निर्देश	५२
जब मिथ्यात्वका सर्वसंक्रम होता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिकाण्डक कितना होता है इसका निर्देश	५३
सम्यग्मिथ्यात्वके आवलि बाह्य सर्व द्रव्यकी क्षपणा कहाँ होती है इसका निर्देश	५३
सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मके विषयमें दो उपदेशोंका निर्देश	५४
जब सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकका पतन हो जाता है तब उसका जघन्य स्थितिसंक्रम और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है तथा सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है इसका निर्देश	५५
पहले सम्यक्त्वकी स्थितिके विषयमें दो उपदेशोंका निर्देश किया उनमेंसे आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मकी अपेक्षा विचार करनेका निर्देश	५६
सम्यक्त्वकी उक्त स्थिति शेष रहनेपर जीवको दर्शनमोहक्षपक यह संज्ञा प्राप्त होती है इसका निर्देश	५८
यहीं यह संज्ञा क्यों प्राप्त हुई इसका टीकामें विशेष स्पष्टीकरण	५८
प्रकृतमें स्थितिकाण्डकके प्रमाणका निर्देश	५९
अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर यहाँ तक जो गुणश्रेणिनिक्षेप होता है उसमें गुणकार परिवर्तन नहीं है इसका स्पष्टीकरण	६०
सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके रहने पर अनुभाग अपवर्तनसम्बन्धी एक क्रियापरिवर्तन	६२
अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होनेरूप दूसरा क्रियापरिवर्तन	६३
सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थितिके ऊपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके द्रव्यका निक्षेप करते समय किस प्रकार गुणाकार परिवर्तन होता है इसका निर्देश	६४
यह गुणाकारपरावर्तन द्विचरमस्थितिकाण्डके अन्तिम समय तक होता है	७०
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	७१
सम्यक्त्व के अन्तिम स्थितिकाण्डकके घात के लिए प्रथम समयमें ग्रहण करने पर प्रदेशपुंजका निक्षेप किस प्रकार होता है इसका निर्देश	७३

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषय	पृ. सं.
यहाँ जो स्थिति गुणश्रेणिशीर्ष बनती है इसके निर्देशपूर्वक विशेष खुलासा	८५
अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतन होनेपर कृतकरणीय संज्ञा प्राप्त होती है	८१
इस कालमें मरण और लेश्यापरिवर्तन भी हो सकता है इसका विशेष खुलासा	८१
इसका परिणाम संक्लिष्ट या विशुद्ध किसी प्रकारका भी हो, उदीरणा असंख्यात समयप्रबद्धोंकी होती है इसका खुलासा	८२
इसके उत्कृष्ट उदीरणा भी उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है इसका खुलासा	८३
गुणकारपरावृत्तिके विषयमें स्पष्टीकरण	८४
कृतकरणीयका मरण होने पर कब कहाँ …	
उक्त जीवके पीतादि लेश्याओंमें रहनेके कालनियमका निर्देश	८८
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	९०
सूत्र गाथाओंके अनुसार विशेष कथनका निर्देश	१०१
उसमें भी पाँचवीं गाथाके आधारसे सत्, संख्या आदिको जाननेकी सूचना	१०१

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संयमासंयम अर्थाधिकार

विषय	पृ. सं.
मंगलाचरण	१०५
इस अनुयोगद्वारके विषयमें एक सूत्रगाथा निबद्ध है इसका निर्देश	१०५
वह एक सूत्रगाथा	१०६
प्रकृतमें उपयोगी शंका-समाधान	१०६
उक्त सूत्र गाथाका स्पष्टीकरण	१०७
सूत्रगाथामें आये हुए वृद्धावृद्धि पदका खुलासा	१०८
प्रकृतमें उपशामना पदका खुलासा	१०९
प्रकारान्तरसे संयमासंयमलब्धिका खुलासा करते हुए उसके मुख्य तीन भेदोंका स्पष्टीकरण	१११
वृद्धावृद्धिपदका प्रकारान्तरसे खुलासा	१११
उक्त सूत्रगाथाके अनुसार विशेष व्याख्यान की प्रतिज्ञा	११३
संयमासंयमलब्धिकी प्राप्तिमें दो ही करण होते हैं, अनिवृत्तिकरण नहीं होता इसका खुलासा	११३
संयमासंयमलब्धिके प्राप्त होनेके पूर्व वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके होनेवाले कार्य विशेष	११४
अधःप्रवृत्तकरणमें क्या कार्य विशेष होते हैं इसका खुलासा	११६
अधः प्रवृत्तकरणमें होनेवाली तीव्र-मन्दतासम्बन्धी अल्पबहुत्व	११७
अपूर्वकरणमें होनेवाले कार्यविशेषोंका निर्देश	१२०
यहाँ संयमासंयमपरिणामनिमित्तक गुणश्रेणिका निषेध	१२१
अपूर्वकरणके अनन्तर समयमें संयमासंयमलब्धिकी प्राप्ति	१२३
संयमासंयमलब्धिके प्राप्त होने पर भी स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य होते हैं इसका निर्देश	१२४
संयमासंयमसम्बन्धी गुणश्रेणिका विधान	१२४
यहाँ गुणश्रेणि अवस्थितप्रमाणवाली होती है इसका खुलासा	१२५
अधःप्रवृत्तसंयतासंयत होने पर स्थितिकाण्डकघात आदि कार्य नहीं होते इसका निर्देश	१२६
संयमासंयमसे पतन होने पर पुनः उसकी प्राप्ति कब कैसे होती है इसका विचार	१२७
संयमासंयम रहने तक गुणश्रेणि होते रहनेका नियम	१२९
परिणामोंके अनुसार गुणश्रेणिमें तारतम्यका निर्देश	१३०
संयमासंयमसे गिरकर पुनः किस अवस्थामें दो करणपूर्वक उसे प्राप्त करना है इसका निर्देश	१३१
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	१३२

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषय	पृ. सं.	विषय	पृ. सं.
संयतासंयतविषयक सत्, संख्या आदि आठ अनुयोगद्वारोंको जाननेकी सूचना	१३७	तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा लब्धिस्थान विषयक अल्पबहुत्व	१४९
प्रकृतमें तीव्र-मन्दताविषयक स्वामित्वका निर्देश	१३९	संयतासंयत किस कषायका वेदन करता है और किसका नहीं करता है इसका स्पष्टीकरण	१५३
तथा एतद्विषयक अल्पबहुत्वका निर्देश	१४१		
संयतासंयतके लब्धिस्थानोंका निर्देश	१४१		

चारित्रलब्धि अर्थाधिकार

मंगलाचरण	१५७	संज्ञा होती है इसकी सकारण सूचना	१६६
चारित्रलब्धि अर्थाधिकारमें संयमासंयम-लब्धिमें अर्थाधिकारमें निबद्ध सूत्र-गाथाको जाननेकी सूचना	१५७	तदनन्तर चारित्रलब्धिमें यथासम्भव वृद्धि हानि होनेका सकारण निर्देश	१६७
अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें प्ररूपणायोग्य चार गाथाओंका निर्देश	१५८	प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	१६८
जो वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि या वेदक-सम्यग्दृष्टि संयमको प्राप्त करता है उसकी अपेक्षा क्रमसे प्रथम सूत्र-गाथाका विशेष स्पष्टीकरण	१५४	जो असंयमी होकर पुनः संयमको प्राप्त करता है उसके सम्बन्धमें स्पष्टीकरण	१७०
दूसरी सूत्रगाथाका विशेष खुलासा	१६०	चारित्रलब्धि सम्पन्न जीवोंके आठ अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	१७१
तीसरी सूत्रगाथाका ,, ,,	१६२	चारित्रलब्धिसम्बन्धी तीव्र-मन्दता विषयक स्वामित्व और अल्पबहुत्व	१७४
चौथी ,, ,, ,,	१६३	तीन प्रकारके चारित्रलब्धिस्थानोंका नाम निर्देश	१७५
संयमको प्राप्त होनेवालेकी उपक्रमविधिके व्याख्यानकी प्रतिज्ञा	१६४	प्रतिपातस्थानका स्वरूपनिर्देश	१७६
उक्त जीवके प्रारम्भके दो करण होनेका निर्देश तथा उनका विवेचन पहलेके समान जाननेकी सूचना	१६४	उत्पादकस्थानका ,, ,,	१७७
चारित्रलब्धिकी प्राप्ति होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होते जानेका निर्देश	१६५	लब्धिस्थान किन्हें कहते हैं इसका निर्देश	१७७
इसकी एकान्तानुवृद्धिके कालमें अपूर्व करण		उक्त लब्धिस्थानोंके अल्पबहुत्वका निर्देश	१७८
		तीव्र-मन्दताद्वारा संयमविशेषविषयक अल्पबहुत्वका निर्देश	१७९
		चूर्णिसूत्रों द्वारा उक्त अल्पबहुत्वका निर्देश	१८२
		उपशान्तकषाय आदि सभी वीतरागोंका चारित्रलब्धिस्थान एक प्रकारका होता है इस विषयका स्पष्टीकरण	१८७

चारित्रमोहनीय उपशामना अर्थाधिकार

मंगलाचरण	१८९	चौथी ,, ,, ,,	१९३
चारित्रमोहनीय उपशामना अर्थाधिकारमें सर्वप्रथम सूत्रगाथाओंको जाननेकी सूचना	१९०	पाँचवीं ,, ,, ,,	१९४
प्रथम सूत्रगाथाका निर्देश	१९१	छठी ,, ,, ,,	१९४
दूसरी ,, ,, ,,	१९१	सातवीं ,, ,, ,,	१९५
तीसरी ,, ,, ,,	१९२	आठवीं ,, ,, ,,	१९५
		उपक्रमपरिभाषाका निर्देश	१९६

विषय	पृ. सं.
वेदकसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये बिना उपशमश्रेणी पर आरोहण नहीं करता इसका निर्देश	१९७
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका निर्देश	१९७
तीन करणोंका नामनिर्देश	१९८
अधःप्रवृत्तकरणमें जो कार्य नहीं होते उसका खुलासा	१९८
अपूर्वकरणमें होनेवाले कार्य विशेषोंका निर्देश	१९९
अनिवृत्तिकरणमें होनेवाले कार्यविशेषोंका निर्देश	२००
प्रकृतमें अन्तरकरण नहीं होता इसका निर्देश	२००
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेके बाद यह जीव प्रमत्तसंयत होकर असातावेदनीय आदिका बन्ध करता है इसका निर्देश	२०१
तत्पश्चात् वह दर्शनमोहनीयकी उपशामना करता है इसका निर्देश	२०२
यह दर्शनमोहनीयकी उपशामनाके लिये तीन करण करता है इसका निर्देश	२०३
यहाँ अपूर्वकरणसे स्थितिघात आदि सब कार्य होते हैं इसका निर्देश	२०३
अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन होता है इसका निर्देश	२०४
अनिवृत्तिकरणके संख्यात बहुभाग जाने पर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका निर्देश	२०५
पश्चात् अन्तर्मुहूर्तबाद दर्शनमोहनीयका अन्तर करनेके साथ वहाँ होनेवाले कार्य विशेषोंका निर्देश	२०५
सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके क्षीण होने पर इस जीव के मिथ्यात्वके प्रदेशपुंजका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें विध्यातसंक्रम होता है गुणसंक्रम नहीं इसका निर्देश	२०७
यह जीव कितने कालतक विशुद्धि द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है इसका निर्देश	२०८
पश्चात् यह जीव भी प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानोंमें परिवर्तन करता हुआ असातावेदनीय आदिका बन्ध करता है इसका निर्देश	२०९
पश्चात् कषायोंको उपशमानेके लिये अधःप्रवृत्तकरण परिणाम करता है इसका निर्देश	२०९
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेवाले इस जीवने स्थिति अनुभागसत्कर्मकी अपेक्षा किन कर्मोंका नाश किया इसका निर्देश	२१०
इसके भी अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात आदि कार्य नहीं होकर क्या होता है इसका निर्देश	२१२
अधःप्रवृत्तकरण के अन्तिम समयमें प्ररूपणा योग्य चार सूत्रगाथाओंका निर्देश	२१४
प्रथम सूत्रगाथाका निर्देश	२१४
दूसरी सूत्रगाथाका निर्देश	२१५
तीसरी सूत्रगाथाका निर्देश	२१५
चौथी सूत्रगाथाका निर्देश	२१६
उन्हीं चार सूत्रगाथाओंके अर्थका विशेष खुलासा	२१८
अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिकाण्डक आदि कार्य जिसरूपमें आवश्यक होते हैं उनका निर्देश	२२२
नियमानुसार स्थितिकाण्डकपृथक्त्व होने पर निद्रा-प्रचलाकी यहाँ बन्धव्युच्छित्ति होती है इसका निर्देश	२२५
पश्चात् अन्तर्मुहूर्त जाने पर परभवसम्बन्धी नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होती है इसका निर्देश	२२६
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	२२७

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषय	पृ. सं.
अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिकाण्डक आदि एक साथ समाप्त होते हैं इसका निर्देश	२२८
उसी समय हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी बन्धव्युच्छित्ति होती है इसका निर्देश	२२८
उसी समय छह नोकषायोंकी उदयव्युच्छित्ति होती है इसका निर्देश	२२८
अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डक आदिका प्रमाण निर्देश	२२९
उसी समय सभी कर्मोंके अप्रशस्त उपशामनाकरण आदिकी व्युच्छित्तिका निर्देश	२३१
वहीं आयुकर्मके सिवाय शेष कर्मोंके स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका निर्देश	२३१
वहीं होनेवाले स्थितिबन्धके प्रमाणका निर्देश	२३२
पुनः आगे कब कितना स्थितिबन्ध रहता है इसका निर्देश	२३२
तत्पश्चात् कब किस कर्मका कितना स्थितिबन्ध रहता है इसका निर्देश	२३२
इस अवस्थामें स्थितिबन्धमें अपसरण कितना होता है इसका निर्देश	२३५
नाम-गोत्रका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होने पर तदन्तर संख्यातगुणा हीन स्थितिबन्ध होता है इसका निर्देश	२३५
परन्तु शेष कर्मोंके स्थितिबन्धमें अपसरण पूर्वोक्त ही होता है इसका सकारण निर्देश	२३६
आगे किस कर्ममें किस विधिसे स्थितिबन्धका अपसरण होता है इसका खुलासा	२३६
आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाण कब होता है इसका निर्देश	२३८
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	२३९
पश्चात् हजारों स्थितिबन्धापसरण होने पर एतद्विषयक उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	२४०
पुनः उक्त विधिसे प्राप्त अन्य अल्पबहुत्वका निर्देश	२४१
,, ,,	२४२
[illegible] कर्मोंकी अपेक्षा मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध युगपत् कितना घट जाता है इसका सकारण निर्देश	२४३
इस अवस्थामें प्राप्त एतद्विषयक अल्पबहुत्वका निर्देश	२४४
पुनः उक्त विधिसे प्राप्त अन्य अल्पबहुत्वका निर्देश	२४४
,, ,,	२४५
,, ,,	२४७
उक्त विधिसे स्थितिबन्ध घटते हुए जब सब कर्मोंका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है तब आगे उदीरणा कितनी होती है इसका निर्देश	२४९
आगे उत्तरोत्तर संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होने पर किन कर्मोंका किस क्रमसे देशघातिकरण होता है इसका निर्देश	२४९
इसके पहले संसार अवस्थामें इन कर्मोंका कैसा बन्ध होता रहा इसका निर्देश	२५२
प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वका निर्देश	२५२
तत्पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होने पर अन्तरकरण करता है इसका निर्देश	२५२
बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अन्तरकरण करता है इसका निर्देश	२५३
जिस संज्वलन तथा जिसवेदका उदयहोता है उसकी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थिति करता है इसका निर्देश	२५३
अन्तरके लिए कितनी स्थितियोंको ग्रहण करता है इसका निर्देश	२५४
शेष ११ कषाय और ८ नोकषायों की आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति करता है इसका निर्देश	२५४

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विषय	पृ. सं.
इन सब कर्मोंका ऊपर समस्थिति अन्तर होता है और नीचे विषम स्थिति अन्तर होता है इसका खुलासा	२५४
अन्तर करण करते समय स्थितिबन्ध आदिका विचार	२५५
अन्तरकरण क्रिया कितने कालमें समाप्त होती है इसका अन्य बातोंके साथ निर्देश	२५६
किन कर्मोंकी अन्तरकी स्थितियोंके प्रदेशपुंज का किस विधिसे अन्यत्र निक्षेप होता है इसका निर्देश	२५६
अन्तरकरण क्रियाके समाप्त होने पर जो सात करण युगपत् आरम्भ होते हैं उनका निर्देश	२६३
यहाँसे बन्धप्रकृतियों की छह आवलि बाद उदीरणा क्यों होती है इसका कल्पित उदाहरण द्वारा समर्थन	२६५
अन्तरकरण करनेके अनन्तर सर्वप्रथम नपुंसक वेदके उपशमाने का निर्देश	२७२
उक्त कार्यके चालू रहते स्थितिबन्ध किस प्रकार होता है इसका निर्देश	२७५
अनन्तर स्त्रीवेदके उपशमाने का निर्देश	२७८
इस कार्यके चालू रहते कर्मोंका स्थिति-बन्ध किस प्रकार होता है इसका निर्देश	२८०
इस स्थल पर स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्प-बहुत्वका निर्देश	२८१
स्त्रीवेदका उपशम होने पर सात नोक-षायोंके उपशमानेका निर्देश	२८२
इस अवस्थामें स्थितिकाण्डक आदिका विचार	२८२
सात नोकषायोंके उपशमकालके संख्यातवें भागके जाने पर किनकर्मोंका कितना स्थितिबन्ध होता है इसके निर्देश के साथ एतद्विषयक अल्प-बहुत्वका निर्देश	२८३
पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलि-प्रमाण नवकबन्धको छोड़कर सात नोकषायोंके उपशान्त होने पर किस कर्मका कितना स्थितिबन्ध होता है इसका निर्देश	२८५
आवलि और प्रत्यावलि कब व्युच्छिन्न होते हैं इसका निर्देश	२८५
अन्तरकरण होनेके बाद छह नोकषायों-का द्रव्य पुरुषवेदमें संक्रमित नहीं होता	२८६
अवेद भागके प्रथम समय में पुरुषवेदका जितना द्रव्य अनुपशान्त रहता है उसका निर्देश	२८७
पुरुषवेदके अनुपशान्त प्रदेशपुंजके उप-शमाने और संक्रमित होने के क्रमका निर्देश	२८७
अवेदभागके प्रथम समयमें किस कर्मका कितना स्थितिबन्ध होता है इसका विचार	२८९
आगे तीन क्रोधोंके उपशमाने का प्रक्रिया के निर्देशके साथ अन्य बातों का खुलासा	२९०
संज्वलन क्रोधकी समयाधिक आवलि प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर किस कर्मका कितना स्थितिबन्ध होता है इसका विचार	२९२
क्रोध संज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध तीनों क्रोधोंके उपशान्त होने के बादमें उपशान्त होते हैं इस बातका निर्देश	२९३
क्रोधसंज्वलनकी प्रथमस्थितिमें तीन आवलि शेष रहने तक ही दो क्रोध उसमें संक्रमित होते हैं उसके बाद नहीं इस तथ्यका निर्देश	२९३
क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम एक आवलि शेष रहने पर उसकी बन्ध और उदयव्युच्छित्ति हो जाती है इस तथ्य का निर्देश	२९५
उसी समय मानसंज्वलन की प्रथम स्थिति-का कारक और वेदक होता है इस बातका निर्देश	२९५

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

	पृ. सं.
प्रथम स्थितिको करते हुए उदय आदिमें प्रदेशनिक्षेपके क्रमका निर्देश	२९६
जब तीन प्रकारके मानका उपशामक होता है इस बातका निर्देश	२९७
उस समय स्थितिबन्धका विचार	२९७
मानसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें तीन आवलि शेष रहने पर उसमें दो मान संक्रमित नहीं होते इस बातका निर्देश	२९८
उसकी प्रत्यावलिके शेष रहने पर आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है इस बातका निर्देश	२९८
प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहने पर मानसंज्वलनके एक समय कम दो आवलि बन्धको छोड़कर तीन प्रकारके मानका प्रदेशसत्कर्म पूरा उपशान्त हो जाता है इसका निर्देश	९९
उस समय सब कर्मोंका स्थितिबन्ध कितना होता है इस बातका निर्देश	२९९
मायासंज्वलनकी प्रथम स्थिति करनेका निर्देश	३००
उस समयसे तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है इसका निर्देश	३००
तब स्थितिबन्धका विचार	३००
मानसंज्वलनका एक समय कम उदयावलिप्रमाण शेष रहने पर उसका मायाके उदयमें स्तिवुकसंक्रमका निर्देश	३०१
मानसंज्वलनके दो समय कम दो आवलि प्रमाण समयप्रबद्धोंका उतने ही समयमें उपशमित होनेका निर्देश	३०२
मायाके उपशमानेकी प्रक्रियाका निर्देश	३०२
जब दो प्रकारकी माया मायासंज्वलनमें संक्रमित नहीं होती इसका निर्देश	३०३
मायासंज्वलनमें प्रत्यावलि शेष रहने पर आगाल-प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है इसका निर्देश	३०३
जब तीन प्रकारकी मायाका अन्तिम समयवर्ती उपशामक होता है इसका निर्देश	३०३
जब मायासंज्वलनकी बन्ध और उदय व्युच्छित्तिके कालका निर्देश	३०४
मायासंज्वलनकी एक समय कम एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिका लोभसंज्वलनरूपसे उदयका निर्देश	३०४
तभी लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थिति करनेका निर्देश	३०४
लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थितिके प्रमाणका निर्देश	३०४
तभी सब कर्मोंके स्थितिबन्धके प्रमाणका निर्देश	३०५
लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थितिका अर्धभाग जब व्यतीत होता है उस कालका निर्देश	३०६
उस समय सब कर्मोंके स्थितिबन्धके प्रमाणका निर्देश	३०६
इसी समय तक लोभसंज्वलनका अनुभाग स्पर्धकगत होता है इस बातका निर्देश	३०७
आगे जघन्य अनुभागके नीचे अनुभाग कृष्टियोंके करनेका निर्देश	३०७
प्रकृतमें बननेवाली कृष्टियोंके प्रमाणका निर्देश	३०८
प्रथमादि समयोंसे द्वितीयादि समयोंमें कितनी कृष्टियाँ बनती हैं इसका निर्देश	३०८
कृष्टियोंमें प्रथमादि समयोंमें किस क्रमसे प्रदेश निक्षेप होता है इसका निर्देश	३०९
कृष्टियोंमें प्रदेशविषयक अल्पबहुत्वका निर्देश	३१०
तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा कृष्टियोंके अल्पबहुत्वका निर्देश	३१४
कृष्टिकरण काल कितना होता है इस बातका निर्देश	३१५
कृष्टिकरण-कालका संख्यात बहुभाग जाने	

	पृ. सं.
पर किस कर्मका कितना स्थिति-बन्ध होता है इसका निर्देश	३१५
कृष्टिकरण कालके अन्तिम समयमें किस कर्मका कितना बन्ध होता है इसका विचार	३१६
कौन कृष्टियाँ कब उदीर्ण होती हैं इसका निर्देश	३२१
कृष्टियोंके उपशमानेके क्रम और समय-का निर्देश	३२३
शेष नवकबन्धके उपशमानेका निर्देश	३२४
छोड़ी गई उदयावलिके कृष्टिरूपसे परिण-मन कर उदयको प्राप्त होनेका निर्देश	३२४
द्वितीय समयसे लेकर आगे किन कृष्टियों-का किस प्रकार विपाक होता है इसका निर्देश	३२४
सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें कर्मों के स्थितिबन्धका निर्देश	३२५
उपशान्तकषायके कालमें परिणाम अवस्थित रहता है इसका निर्देश	३२७
इस कालमें गुणश्रेणीका विचार	३२७
प्रथम गुणश्रेणिशीर्षमें प्रदेशोदय कितना होता है इसका निर्देश	३२८
उपशान्त कषायके कालमें केवलज्ञाना-वरण और केवलदर्शनावरणका अवस्थित वेदक होता है इसका निर्देश	३३०
निद्रा-प्रचलका जब तक वेदक होता है अवस्थित वेदक होता है इसका निर्देश	३३१
अन्तरायका अवस्थित वेदक होता है इसका निर्देश	३३१
शेष लब्धि कर्मांशोंके उदयकी वृद्धि, हानि व अवस्थान सम्भव है इसका निर्देश	३३२
परिणामप्रत्यय नाम और गोत्रके अनु-भागोदयका अवस्थितवेदक होता है इसका निर्देश	३३३

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

दंसणमोहक्खवणा णाम एगारसमो अत्थाहियारो

—⁂—

खवियघणघाइकम्मं भवियजणाणंदकारिणं वीरं ।
णमिऊण भणिस्सामो दंसणमोहस्स खवणविहिं ॥ १ ॥

*** दंसणमोहक्खवणाए पुव्वं गमणिज्जाओ पंच सुत्तगाहाओ ।**

§ १. दंसणमोहोवसामणापरूवणाणंतरं जहावसरपत्ताए दंसणमोहक्खवणाए अत्थविहासा एण्हिमहिकीरदि । तत्थ गुणहराइरियमुहकमलविणिग्गयाओ अणंतत्थ-गब्भिणाओ पंच सुत्तगाहाओ पडिबद्धाओ । ताओ पुव्वमेत्थ[1] परूवेयव्वाओ, ताहि

जिन्होंने अत्यन्त सान्द्र घातिकर्मोंका नाश कर दिया है और जो भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले हैं ऐसे वीर जिनको नमस्कार कर आगे दर्शनमोह-क्षपणाविधिका कथन करेंगे ॥ १ ॥

*** दर्शनमोहकी क्षपणाके विषयमें सर्व प्रथम इन पाँच सूत्र गाथाओंकी प्ररूपणा करनी चाहिए ।**

§ १. दर्शनमोहकी उपशमनाके कथनके अनन्तर इस समय यथा अवसर प्राप्त दर्शन-मोहकी क्षपणाके अर्थका विशेष व्याख्यान अधिकृत है । उसमें गुणधर आचार्यके मुखकमलसे निकली हुई, जिनमें अनन्त अर्थ गर्भित हैं, ऐसी पाँच सूत्रगाथायें प्रतिबद्ध हैं उनका यहाँ पर

---

१. ता० प्रतौ पुव्वमेव इति पाठः ।

विणा पयदत्थपरूवणाए णिण्णिबंधणत्तप्पसंगादो। संपहि ताओ कदमाओ त्ति आसंकाए पुच्छाणिद्देसमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* तं जहा।

§ २. सुगममेदं पुच्छावक्कं। एवं पुच्छाविसईकयाणं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिद्देसो—

(५७) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥११०॥

§ ३. एदीए गाहाए दंसणमोहक्खवणापट्ठवगस्स कम्मभूमिजमणुसविसयत्तमवहारिदं दट्ठव्वं, अकम्मभूमिजस्स य मणुस्सस्स च दंसणमोहक्खवणासत्तीए अच्चंताभावेण पडिसिद्धत्तादो। तदो सेसगदिपडिसेहेण मणुसगदीए चेव वट्टमाणो जीवो दंसणमोहक्खवणमाढवेइ। मणुसो वि कम्मभूमिजादो चेव, णाकम्मभूमिजादो त्ति घेत्तव्वं। कम्मभूमिजादो वि तित्थयर-केवलि-सुदकेवलीणं पादमूले दंसणमोहणीयं खवेदुमाढवेइ, णाण्णत्थ। किं कारणं? अदिट्ठतित्थयरादिमाहप्पस्स दंसणमोहक्खवण-

---

सर्व प्रथम कथन करना चाहिए, क्योंकि उनका कथन किये बिना प्रकृत अर्थकी प्ररूपणाको निर्निबन्धपनेका प्रसंग प्राप्त होता है। अब वे पाँच सूत्रगाथाएं कौनसी हैं ऐसी आशंका होनेपर पृच्छासूत्रका निर्देश करते हैं—

* वह जैसे।

§ २. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषयभावको प्राप्त हुए गाथासूत्रोंका क्रमसे यह स्वरूपनिर्देश है—

कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्यगतिका जीव ही नियमसे दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक (प्रारम्भ करनेवाला) होता है। किन्तु उसका निष्ठापक (उसे सम्पन्न करनेवाला) सर्वत्र (चारों गतियोंमें) होता है ॥ ११० ॥

§ ३. इस गाथा द्वारा दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कर्मभूमिज मनुष्य ही होता है इस विषयका निश्चय किया गया है ऐसा जानना चाहिए, क्योंकि अकर्मभूमिज मनुष्यके दर्शनमोहकी क्षपणा करनेकी शक्तिका अत्यन्त अभाव होनेके कारण वहाँ उसका निषेध किया गया है। इसलिए शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रतिषेध होनेसे मनुष्यगतिमें ही विद्यमान जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है। मनुष्य भी कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ ही होना चाहिए, अकर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ नहीं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य भी तीर्थंकर जिन, केवली जिन और श्रुतकेवलीके पादमूलमें अवस्थित होकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि जिसने तीर्थंकरआदिके माहात्म्यको नहीं अनुभवा है उसके दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके कारणभूत करणपरिणामोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

णिबंधणकरणपरिणामाणमणुप्पत्तीदो। सुत्तेणाणुवइट्ठो एसो अत्थविसेसो कधमुवलब्भइ त्ति णासंकणिज्जं, 'जम्हि जिणा केवली तित्थयरा' त्ति सुत्तंतरबलेण तदुवलंभसिद्धीए। एवं ताव दंसणमोहक्खवणापट्ठवगस्स कम्मभूमिजमणुसविसयत्तमवहारिय संपहि तण्णिट्ठवगस्स चदुसु वि गदीसु अविरोहेण संभवपदुप्पायणट्ठमिदमाह—'णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ'—णिट्ठवगो पुण सव्वासु वि गदीसु होइ, ण तस्स मणुसगइविसयणियमो अत्थि त्ति वुत्तं होइ। किं कारणमिदि चे? मणुसगदीए आढत्तदंसणमोहक्खवगस्स कदकरणिज्जकालब्भंतरे समयाविरोहेण कालं कादूण पुव्वाउअबंधवसेण चउण्हं गदीणं संकमणे विरोहाणुवलंभादो।

शंका—सूत्रद्वारा अनुपदिष्ट इस अर्थविशेषकी उपलब्धि कैसे होती है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि 'जिस क्षेत्रमें जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं' इस अन्य सूत्रके बलसे उस अर्थविशेषकी उपलब्धि सिद्ध है।

इस प्रकार सर्वप्रथम दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक कर्मभूमिमें उत्पन्न हुआ मनुष्य है इस विषयका निश्चय करके अब उसका निष्ठापक सामान्यसे चारों ही गतियोंमें सम्भव है इस विषयका कथन करनेके लिए गाथासूत्रमें यह वचन आया है—'णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ' परन्तु निष्ठापक चारों ही गतियोंमें होता है, वह मनुष्यगतिका ही होता है ऐसा नियम नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—इसका क्या कारण है?

समाधान—क्योंकि जिसने मनुष्यगतिमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका आरम्भ किया है उसका कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके कालके भीतर परमागमके निर्देशानुसार मरकर पूर्वमें परभवसम्बन्धी आयुका बन्ध होनेके कारण चारों ही गतियोंमें जानेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी उपशमना कौन जीव करता है इसका निर्देश पहले कर आये हैं। यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कौन जीव करता है इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि पन्द्रह कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुआ मनुष्य ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है। इस विषयका विशेष खुलासा करते हुए जीवस्थान चूलिकामें वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि साधारणतः दुषमसुषमा कालमें उत्पन्न हुए कर्मभूमिज मनुष्य ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि ऐसा नियम है कि कर्मभूमिमें भी जिस कालमें जिन, केवली और तीर्थंकर होते हैं, कर्मभूमियोंके उसी कालमें वहाँ उत्पन्न हुए मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं। किन्तु इसका एक अपवाद है वह यह कि कदाचित् सुषमादुषम कालमें उत्पन्न हुए मनुष्य भी दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं। वीरसेन स्वामीने यह तथ्य इस आधार पर फलित किया है कि इस अवसर्पिणी कालमें भगवान् आदिनाथ तीर्थंकर परम भट्टारक देव तीसरे सुषमादुषम कालके अन्तिम भागमें

---

१. जीवस्थान चूलिका ८ सू० ११।

(५८) मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते।
खवणाए पट्ठवगो जहण्णगो तेउलेस्साए ॥१११॥

§ ४. एसा गाहा दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्हि उद्देसे होइ त्ति पुच्छिदे

उत्पन्न होकर मोक्ष गये और उन्हींके विहार कालके समय एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए वर्द्धनकुमार आदिने दर्शनमोहनीयकी क्षपणा की। इससे स्पष्ट है कि दुषमसुषमा कालमें कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य जिन, केवली और तीर्थंकरके सद्भावमें तो दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते ही हैं पर कदाचित् जब सुषमादुषम कालके अन्तिम भागमें तीर्थंकर जन्म लेकर केवली होते हैं तब उस कालमें उत्पन्न हुए मनुष्य भी दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं। अब यहाँ पर यह विचार करना है कि जो जीव दूसरे और तीसरे नरकोंसे आकर तीर्थंकर होते हैं वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो होते नहीं, फिर उन्हें इसकी प्राप्ति कैसे होती है? इसका समाधान करते हुए यहाँ वीरसेन स्वामीने जो बतलाया है उसका आशय यह है कि मुनिपद अंगीकार करनेके बाद वे स्वयं श्रुतकेवली जिन हो जाते हैं, इसलिए उनके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेमें कोई बाधा नहीं आती। यहाँ 'दंसणमोहणीयं कम्मं खवेदु–' इत्यादि सूत्रमें 'जिणा केवली तित्थयरा' ये तीन पद आये हैं सो सर्वप्रथम तो वीरसेन स्वामीने 'जिणा' और 'केवली' इन दोनों पदोंको 'तित्थयरा' पदका विशेषण स्वीकार कर यह अर्थ फलित किया है कि तीर्थंकर केवली जिनके पादमूलमें ही यहाँ (कर्मभूमिमें) उत्पन्न हुए मनुष्य ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं। किन्तु इस अर्थके स्वीकार करने पर सामान्य केवलियों और श्रुतकेवलियोंका ग्रहण नहीं होता, इसलिए उन्होंने उक्त तीनों पदोंको स्वतन्त्र रखकर 'जिन' पद द्वारा श्रुतकेवलियों और 'केवली' पद द्वारा सामान्य केवलियोंका भी ग्रहण कर यह बतलाया है कि इन तीनोंके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करते हैं। यह तो हुआ इस बातका विचार कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ कौन जीव किस कालमें किसको निमित्त कर करता है। अब प्रश्न यह है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका निष्ठापन केवल कर्मभूमिज मनुष्य ही करता है या अन्यत्र भी निष्ठापन होता है सो इस प्रश्नका समाधान करते हुए यहाँ बतलाया है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी समाप्ति चारों गतियोंमें हो सकती है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला जीव यदि बद्धायुष्क हो तो कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वको प्राप्तकर उसके कालमें भुज्यमान आयुके समाप्त होनेपर आगमके अनुसार यथा नियम मरकर चारों गतियोंमें उत्पन्न हो सकता है। इतना अवश्य है कि नरकमें यदि जन्म ले तो प्रथम नरकमें ही जन्मता है, देवोंमें यदि जन्म ले तो भवनत्रिकों और देवियोंको छोड़कर वैमानिकोंमें ही जन्मता है। तथा तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें यदि जन्म ले तो उत्तम भोगभूमिके पुरुषवेदी तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें ही जन्मता है।

मिथ्यात्ववेदनीय कर्मके सम्यक्त्वमें अपवर्तित (संक्रमित) कर देने पर जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी प्रस्थापक संज्ञाको प्राप्त करता है। और ऐसा जीव अर्थात् दर्शनमोननीयकी क्षपणा करनेवाला जीव जघन्यसे अर्थात् कमसे कम तेजोलेश्यामें स्थित अवश्य होता है ॥ १११ ॥

§ ४. दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक जीव किस स्थानके प्राप्त होनेपर होता है

एदम्मि उद्देसे होदि त्ति पदुप्पायणट्ठं तस्स तदवत्थाए लेस्साविसेसावहारणट्ठं च आगया। तं जहा—'मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते' एवं भणिदे मिच्छत्तपरिणामो वेदिज्जदि जस्स कम्मस्स उदएण तं कम्मं मिच्छत्तवेदणीयमिदि भण्णदे। तम्मि ओवट्टिदे सव्वसंकमेण संछुद्धे संते तत्तो प्पहुडि दंसणमोहक्खवणा-पट्ठवगववएसमेसो लहदि त्ति भणिदं होदि। तं पुण ओवट्टिदूण कत्थ संछुहदि त्ति भणिदे 'सम्मत्ते' सम्मत्तस्सुवरि संछुहदि त्ति णिद्दिट्ठं। णेदं घडदे मिच्छत्तवेदणीयं कम्मं सव्वमोवट्टेदूण सम्मत्ते संपक्खिवदि त्ति। किं कारणं? मिच्छत्तमोवट्टिय सम्मा-मिच्छत्तम्मि संपक्खिविय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तं सम्मत्ते संछुहदि त्ति णियमदंसणादो? ण एस दोसो, मिच्छत्तं पडिक्खिविऊण ट्ठिदसम्मामिच्छत्तस्सेव मिच्छत्तववएसं कादूण सुत्ते तहा णिद्दिट्ठत्तादो। जइ वि अधापवत्तकरणपढमसमय-प्पहुडि पुव्वं पि दंसणमोहक्खवणाए पट्ठवगो चेव तो वि एत्थुद्देसे विसेसकिरियासु पयट्टत्तादो णिस्संसयं दंसणमोहक्खवणाए पट्ठवगो होदि त्ति एसो एत्थ सुत्तस्स भावत्थो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ऐसी पृच्छा होने पर इस स्थानपर होता है इस बातका कथन करनेके लिये तथा उसके उस अवस्थामें लेश्याविशेषका अवधारण करनेके लिये यह गाथा आई है।

'मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते' ऐसा कहने पर [जिस कर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्व परिणामको वेदता है उस कर्मको मिथ्यात्व कर्म कहते हैं,]उसके अप-वर्तित होनेपर अर्थात् सर्वसंक्रम द्वारा संक्रमित होनेपर वहाँसे लेकर यह जीव दर्शनमोह-नीयकी क्षपणाका प्रस्थापक इस संज्ञाको प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु उसका अपवर्तन कर किसमें संक्रमित करता है ऐसा पूछने पर 'सम्मत्ते' अर्थात् सम्यक्त्व कर्मप्रकृतिमें संक्रमित करता है यह निर्देश किया है।

शंका—मिथ्यात्व वेदनीयकर्मको पूरा अपवर्तन कर सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है यह घटित नहीं होता है, क्योंकि मिथ्यात्वका अपवर्तनकर सम्यग्मिथ्यात्वमें प्रक्षिप्त (संक्रमित) कर अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है ऐसा नियम देखा जाता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वका पूरा संक्रम करनेके बाद स्थित हुई सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी ही मिथ्यात्व संज्ञा रखकर गाथा सूत्रमें उस प्रकारसे निर्देश किया है।

यद्यपि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे लेकर पहले ही दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्था-पक ही है तो भी इस स्थानपर विशेष क्रियाओंमें प्रवृत्त होनेके कारण निःसंशय दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है यह यहाँ उक्त गाथासूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें सर्वप्रथम दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जीवकी प्रस्था-पक संज्ञा कहाँ जाकर प्राप्त होती है इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि जब

§ ५. संपहि तदवत्थाए वट्टमाणस्स तस्स लेस्साभेदो को होदि त्ति पुच्छिदे तव्विसेसावहारणट्ठमिदमुवइट्ठं—'जहण्णगो तेउलेस्साए' त्ति। दंसणमोहक्खवणद्धाए अब्भंतरे सव्वत्थेव वट्टमाणसुहतिलेस्साणमण्णदरलेस्सिओ चेव होइ, णाण्णलेस्सिओ, किण्ह-णील-काउलेस्साणं विसोहिविरुद्धसहावाणमच्चंताभावेण तत्थ पडिसिद्धत्तादो। तदो सुट्ठु वि मंदपरिणामे वट्टमाणो दंसणमोहक्खवगो तेउलेस्सं ण बोलेदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो।

मिथ्यात्व प्रकृतिका सम्यक्त्व प्रकृतिमें पूरा संक्रमण हो लेता है तब जाकर यह जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक कहलाता है। इस पर दो शंकायें उत्पन्न होती हैं। प्रथम यह कि मिथ्यात्वके द्रव्यकी अन्तिम फालिका एकमात्र सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिमें ही संक्रमण होता है सम्यक्त्व प्रकृतिमें नहीं, ऐसी अवस्थामें उक्त गाथासूत्रमें जो यह कहा है कि मिथ्यात्व वेदनीय द्रव्यको पूरा अपवर्तनकर सम्यक्त्वमें प्रक्षिप्त करता है; वह कहना कैसे बन सकता है? दूसरी यह कि जब कि यह जीव अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक हो जाता है ऐसी अवस्थामें मिथ्यात्व मोहनीयके समस्त द्रव्यका संक्रम होनेपर अनन्तर समयसे लेकर गाथासूत्रमें इसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक क्यों कहा? ये दो प्रश्न हैं। इनमेंसे प्रथम प्रश्नका समाधान करते हुए तो यह स्पष्टीकरण किया गया है कि मिथ्यात्वके द्रव्यका पूरा संक्रम करनेके बाद सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी मिथ्यात्व संज्ञा स्वीकार कर गाथासूत्रमें उक्त प्रकारसे विधान किया गया है। इस समाधानका आशय यह है कि मूलमें तो एक मिथ्यात्व प्रकृतिका ही बन्ध होता है और प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके पूर्वतक उसीकी सत्ता और उदय-उदीरणा होती है। मिथ्यात्वके द्रव्यका तीन भागोंमें त्रिभागीकरण तो प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेके प्रथम समयसे ही सम्यग्दृष्टिके होता है। अतः विचार कर देखा जाय तो सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिको मिथ्यात्वप्रकृति कहना बन जाता है। दूसरे प्रश्नके समाधानका आशय यह है कि मिथ्यात्वका पूरा संक्रम जहाँ यह जीव सम्यग्मिथ्यात्वमें करता है वहाँसे इसे दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक प्रयोजन विशेषसे कहा गया है वैसे यह जीव अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे ही दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक है ऐसा स्वीकार करना युक्तियुक्त ही है।

§ ५. अब उस अवस्थामें वर्तमान उसके कौनसा लेश्याभेद होता है ऐसी पृच्छा होनेपर लेश्याविशेषका अवधारण करनेके लिए यह वचन कहा है—'जहण्णगो तेउलेस्साए।' दर्शनमोहकी क्षपणा करते समय सर्वत्र ही वर्तमान शुभ तीन लेश्याओंमेंसे अन्यतर लेश्यावाला ही होता है, अन्य लेश्यावाला नहीं होता, क्योंकि विशुद्धिके विरुद्ध स्वभाववाली कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंका वहाँ अत्यन्त अभाव होनेसे निषेध किया है। अतः विशुद्धिरूप परिणामोंमेंसे जघन्यरूप मन्द परिणामोंमें विद्यमान दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव तेजोलेश्याका उल्लंघन नहीं करता यह उक्त गाथासूत्रांशका भावार्थ है।

विशेषार्थ—जब यह जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है तबसे लेकर कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होने तक इस जीवके एक मात्र शुभ तीन लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या ही पाई जाती है, क्योंकि अशुभ तीन लेश्याएँ विशुद्धिके विरुद्ध स्वभाववाली होनेके कारण उक्त जीवके उनमेंसे एक भी लेश्या नहीं पाई जाती। एकमात्र इसी तथ्यको स्पष्ट

**(५९) अंतोमुहुत्तमद्धं दंसणमोहस्स णियमसा खवगो।
खीणे देव-मणुस्से सिया वि णामाउगो बंधो ॥ ११२॥**

§ ६. एत्थ गाहापुव्वद्धेण दंसणमोहक्खवणापडिबद्धद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ती चेव होइ, ण तत्तो हीणाहियपरिमाणा त्ति जाणाविदं। तं कधं? णियमसा णिच्छएणेव दंसणमोहक्खवगो अंतोमुहुत्तमेत्तकालं होइ, एत्तियमेत्तेण कालेण विणा तिकरणपडिबद्धाए पयदकिरियाए अपरिसमत्तीदो। अंतोमुहुत्तमेत्तकालेण दंसणमोहक्खवणं परिसमाणिय खीणदंसणमोहो होदूण खइयसम्माइट्ठिभावे वट्टमाणस्स जीवस्स देव-मणुसगइसंजुत्तो चेव णामाउअबंधो होइ, णाण्णगइसंजुत्तो त्ति पदुप्पायणट्ठं गाहा-

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

करनेके लिए गाथासूत्रमें 'जहण्णगो तेउलेस्साए' यह वचन आया है। आशय यह है कि उक्त जीवके यदि सबसे मन्द विशुद्धिरूप भी परिणाम होगा तो वह तेजोलेश्याके जघन्य अंशरूप ही होगा, अशुभ तीन लेश्यारूप नहीं। किन्तु शुभ तीन लेश्याओंमें से किसी एक लेश्याके पाये जानेका नियम कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होनेके पूर्वतक ही जानना चाहिए। कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होनेके बाद तो उसके अन्य तीन शुभ लेश्याओंमें से जिस प्रकार किसी एक लेश्याका पाया जाना सम्भव है उसी प्रकार कापोत लेश्याका पाया जाना भी सम्भव है, क्योंकि जिस जीवने नरकायुका बन्ध करनेके बाद क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्तिका उपक्रम किया है उसका कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके कालके भीतर यदि मरण होता है तो ऐसी अवस्थामें उसके कापोत लेश्या भी पाई जाती है, क्योंकि ऐसा जीव मरकर प्रथम नरकमें भी उत्पन्न हो सकता है और यह तभी बन सकता है जब इसके मरणके समय कापोतलेश्या हो जाय।

*** यह जीव नियमसे अन्तर्मुहूर्त काल तक दर्शनमोहनीयका क्षपण करता है। तथा दर्शनमोहनीयके क्षीण हो जानेपर देव और मनुष्यसम्बन्धी नाम और आयुकर्मकी प्रकृतियोंका स्यात् बन्धक होता है ॥ ११२ ॥**

§ ६. यहाँपर गाथाके पूर्वार्ध द्वारा दर्शनमोहनीयकी क्षपणासे सम्बन्ध रखनेवाला काल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है, उससे न तो हीन परिमाणवाला होता है और न अधिक परिमाणवाला ही यह ज्ञान कराया गया है।

शंका—वह कैसे?

समाधान—क्योंकि 'णियमसा' अर्थात् निश्चयसे ही दर्शनमोहकी क्षपणा अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण होती है, क्योंकि इतने कालके बिना तीन करणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृत क्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा दर्शनमोहकी क्षपणाको समाप्त कर तथा क्षीण दर्शनमोहवाला होकर क्षायिक सम्यग्दृष्टिभावमें वर्तमान जीवके देव और मनुष्यगति संयुक्त ही नामकर्मकी प्रकृतियों और आयुकर्मका बन्ध होता है अन्य गतिसंयुक्त नामकर्मकी प्रकृतियोंका और आयुकर्मका नहीं इस तथ्यका कथन करनेके लिए गाथाके उत्तरार्धका अवतार हुआ है।

पच्छद्धस्सावयारो । तं कधं ? 'खीणे देव-मणुस्से' दंसणमोहणीए खीणे संते तदो देव-मणुसगइविसयाणं चेव णामाउअपयडीणं बंधो होइ, णाण्णगइविसयाणं । कुदो एवं चे ? सेसगइसंजुत्तणामाउअबंधसंताणस्स सम्मत्तपरसुणा पुव्वमेव छिण्णत्तादो । तदो तिरिक्ख-मणुस्सेसु वट्टमाणो खइयसम्माइट्ठी देवगइसंजुत्ताणं चेव णामाउआणं बंधओ होइ । देव-णिरयगदीसु च वट्टमाणो मणुसगइसंजुत्ताणं चेव तेसिं बंधगो होदि त्ति घेत्तव्वं । पयडिणिद्देसो एत्थ सुगमो त्ति ण पुणो परूविज्जदे । एदेसिं च बंधो खइयसम्माइट्ठिम्मि सिया होइ त्ति जाणावणट्ठं सिया विसेसणं कदं । सिया एदेसिं बंधगो होइ सिया च ण होइ त्ति । किं कारणं ? चरिमभवे वट्टमाणस्स आउअबंधाणुवलंभादो । णामपयडीणं च सगपाओग्गविसये बंधुवरमे जादे तत्तो उवरि बंधाणुवलंभादो ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'खीणे देव-मणुस्से' अर्थात् दर्शनमोहनीयके क्षीण होनेपर वहाँसे लेकर देव और मनुष्यगतिसम्बन्धी ही नामकर्म और आयुकर्मकी प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अन्य गतिसम्बन्धी प्रकृतियोंका नहीं ।

शंका—ऐसा किस कारणसे ?

समाधान—क्योंकि शेष गतिसंयुक्त नामकर्मकी प्रकृतियोंकी बन्धसन्तानका और आयुकर्मकी बन्धसन्तानका सम्यक्त्वरूपी परशुके द्वारा पहले ही छेद कर दिया है ।

अतः तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें वर्तमान क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव देवगति-संयुक्त ही नामकर्मकी प्रकृतियोंका और आयुकर्मका बन्धक होता है तथा देवगति और नरकगतिमें वर्तमान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगति संयुक्त उक्त प्रकृतियोंका बन्धक होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । प्रकृतमें प्रकृतियोंका निर्देश सुगम है, इसलिए उनका प्ररूपण नहीं करते हैं । इन प्रकृतियोंका बन्ध क्षायिकसम्यग्दृष्टिके कदाचित् होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये गाथासूत्रमें 'सिया' विशेषण दिया है । कदाचित् इनका बन्धक होता है और कदाचित् बन्धक नहीं होता, क्योंकि अन्तिम भवमें विद्यमान उक्त जीवके आयुकर्मका बन्ध नहीं पाया जाता और नामकर्मकी प्रकृतियोंके बन्धका अपने योग्य स्थानमें उपरम हो जाने पर उससे आगे बन्ध नहीं पाया जाता ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणा तीन करणपूर्वक होती है और तीन करणोंमेंसे प्रत्येक करणका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका कुल काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण बतलाया है, क्योंकि तीनों करणोंके समुच्चयरूप कालका योग भी अन्तर्मुहूर्त ही है, इससे अधिक नहीं । जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य और तिर्यञ्च हैं वह नामकर्मकी देवगतिके साथ बँधनेवाली प्रकृतियोंका तथा देवायुका ही बन्ध करता है, क्योंकि नरकगतिके साथ बँधनेवाली उक्त प्रकृतियोंका यद्यपि मनुष्य और तिर्यञ्च बन्ध करते हैं, पर इनका बन्ध उक्त जीवोंके मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही होता है आगेके गुणस्थानोंमें नहीं, इसलिए तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्यों और तिर्यञ्चोंके नरकगतिके साथ बँधनेवाली नामकर्मकी प्रकृतियों

(६०) खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णे।
णाधिच्छदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥११३॥

§ ७. एदीए चउत्थगाहाए खीणदंसणमोहणीयस्स जीवस्स संसारावट्ठाणकालो जइ वि सुट्ठु बहुगो होइ तो वि पट्ठवणभवं मोत्तूणण्णेसिं तिण्हं भवाणमुवरि ण होइ त्ति पदुप्पाइदं दट्ठव्वं। तं कधं ? जम्हि भवे दंसणमोहक्खवणाए पट्ठवगो होइ तदो अण्णे तिण्णि भवे णाइच्छइ। किंतु तं मोत्तूणण्णेहिं भवेहिं खीणदंसणमोहणीयो णिच्छएणेव सव्वकम्मकलंकविप्पमुक्को होदूण णिव्वाणं गच्छदि त्ति सुत्तत्थसमुच्चयो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

और आयुकर्मके बन्धका निषेध किया है। इसी प्रकार उक्त जीव (मनुष्य और तिर्यञ्च) तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिके साथ बँधनेवाली नामकर्मकी प्रकृतियोंका तथा तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका भी बन्ध करते हैं पर इन प्रकृतियोंका उक्त जीवोंके अधिकसे अधिक दूसरे गुणस्थान तक ही बन्ध होता है, इसलिए क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्चों और मनुष्योंके इन प्रकृतियोंके बन्धका निषेध किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जो तिर्यञ्च और मनुष्य क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं उनके तो एकमात्र देवगतिके साथ बन्धको प्राप्त होनेवाली नामकर्मकी प्रकृतियोंका और देवायुका ही बन्ध होता है, अन्य नामकर्मकी और आयुकर्मकी प्रकृतियोंका नहीं। अब रहे क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव और नारकी सो इस अवस्थामें इनके एकमात्र मनुष्यगतिके साथ बँधनेवाली नामकर्मकी प्रकृतियोंका और मनुष्यायुका ही बन्ध होता है यह नियम है। इस प्रकार नियमको देखकर यहाँ नाम और आयुसम्बन्धी अन्य प्रकृतियोंके बन्धका निषेध किया है। परन्तु इन प्रकृतियोंका बन्ध तभी क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंके होता हो ऐसा नहीं है। किन्तु जो तद्भव मोक्षगामी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव हैं उनके तो आयुकर्मका बन्ध ही नहीं होता, जो तद्भव मोक्षगामी उक्त जीव नहीं हैं उनके पूर्वोक्त विधिके अनुसार देवायु और मनुष्यायुका बन्ध होता है। नामकर्मके विषयमें यह नियम है कि गुणस्थान परिपाटीके अनुसार जिस गुणस्थान तक नामकर्मकी जिन प्रकृतियोंका बन्ध आगममें बतलाया है वहीं तक उक्त क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके यथायोग्य उन प्रकृतियोंका बन्ध जानना चाहिए, आगेके गुणस्थानोंमें नहीं।

यह जीव जिस भवमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है उससे अन्य तीन भवोंको वह नियमसे उल्लंघन नहीं करता है, अर्थात् नियमसे मुक्त होता है ॥ ११३ ॥

§ ७. जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है ऐसे जीवका संसारमें अवस्थान काल यद्यपि काफी बहुत है तो भी वह प्रस्थापक भवको छोड़कर अन्य तीन भवोंसे अधिक नहीं होता यह इस चौथी गाथा द्वारा कहा गया जानना चाहिए।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—क्योंकि जिस भवमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रस्थापक होता है उससे अन्य तीन भवोंको उल्लंघन नहीं करता। किन्तु उस भवको छोड़कर अन्य भवोंके अवलम्बन

तत्थ जो देव-णेरइएसु आउअबंधवसेणुप्पज्जदि खीणदंसणमोहणीओ जीवो सो देव-णेरइएहिंतो आगंतूणाणंतरभवे चेव चरिमदेहसंबंधमणुभूय सिज्झदि त्ति तस्स दंसण-मोहक्खवणाभवेण सह तिण्णि चेव भवग्गहणाणि होंति। जो उण पुव्वाउअबंधवसेण भोगभूमिजतिरिक्ख-मणुस्सेसुप्पज्जइ तस्स खवणापट्ठवणभवं मोत्तूण अण्णे तिण्णि भवा होंति। तत्तो गंतूण देवेसुप्पज्जिय तदो चविय मणुस्सेसुप्पण्णस्स णिव्वाण-गमणणियमदंसणादो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(६१) संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा।
सेसासु खीणमोहा गदीसु णियमा असंखेज्जा ॥११४॥

§ ८. एसा पंचमी मूलगाहा। एदीए खीणदंसणमोहाणं जीवाणं पमाणपदु-प्पायणदुवारेण संतादिअट्ठाणियोगद्दारेहिं परूवणा सूचिदा, देसामासयभावेणेदिस्से पयट्टत्तादो। तं जहा—मणुसगदीए मणुसा खीणदंसणमोहा केत्तिया होंति त्ति पुच्छिदे

द्वारा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव नियमसे सर्व कर्मकलंकसे मुक्त होकर निर्वाणको प्राप्त होता है यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है।

वहाँ क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव आयुबन्धके वशसे देव और नारकियोंमें उत्पन्न होता है। वह देव और नारक भवसे आकर अनन्तर भवमें ही चरम देहके सम्बन्धका अनुभव कर मुक्त होता है। इस प्रकार उसके दर्शनमोहनीयकी क्षपणासम्बन्धी भवके साथ तीन ही भवोंका ग्रहण होता है। परन्तु जो पूर्वमें बन्धको प्राप्त हुई आयुके सम्बन्धवश भोगभूमिज तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके क्षपणाके प्रस्थापनके भवको छोड़कर अन्य तीन भव होते हैं, क्योंकि वहाँसे (भोगभूमिसे) देवोंमें उत्पन्न होकर और वहाँसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए उसके निर्वाण प्राप्त करनेका नियम देखा जाता है।

विशेषार्थ—जो दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव तद्भव मोक्षगामी नहीं होता वह उस भवके अतिरिक्त अधिकसे अधिक अन्य तीन भव तक संसारमें रहता है यह नियम इस गाथा द्वारा किया गया है। यदि नरकायुका बन्ध करनेके बाद क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुआ है या उस भवमें देवायुका बन्ध किया है तो वह उस भवसे तीसरे भवमें मोक्षका पात्र होता है और यदि तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बंध करनेके बाद क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुआ है तो वह उस भवसे चौथे भवमें मोक्षका पात्र होता है यह उक्त गाथासूत्रका तात्पर्य है। विशेष खुलासा मूलमें किया ही है।

मनुष्योंमें क्षीणमोही अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव नियमसे संख्यात हजार होते हैं तथा शेष गतियोंमें नियमसे असंख्यात होते हैं ॥ ११४ ॥

§ ८. यह पाँचवी मूलगाथा है। इस द्वारा क्षीणदर्शनमोही जीवोंके प्रमाणके कथन द्वारा सत् आदि अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे प्ररूपणा सूचित की गई है, क्योंकि देशामर्षकभावसे यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है। यथा—मनुष्यगतिमें जिन्होंने दर्शनमोहका क्षय कर दिया है ऐसे मनुष्य कितने हैं ऐसी पृच्छा करनेपर नियमसे संख्यात ही हैं यह कहा है और वे गणनाकी

णियमा संखेज्जा चेव होंति त्ति भणिदं। ते च सहस्सगणणूणा ण होंति त्ति जाणावणट्ठं 'सहस्ससो णियमा' त्ति णिद्दिट्ठं। तप्पाओग्गसंखेज्जसहस्समेत्ता होंति त्ति वुत्तं होइ। सेसासु गदीसु पुण 'णियमा' णिच्छएण असंखेज्जा खीणदंसणमोहा जीवा होंति त्ति णिच्छओ कायव्वो, वासपुधत्तंतरेण तदाउट्ठिदिअब्भंतरे समयाविरोहेण संचिदाणं खइयसम्माइट्ठीणं पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्ताणं तत्थ संभवोवलंभादो।

§ ९. एवं ताव दंसणमोहक्खवणापडिबद्धाणं पंचण्हं सुत्तगाहाणं समुक्कित्तणं कादूण संपहि तदत्थविहासणं कुणमाणो तस्सेव परिकरभावेण परिभासत्थपरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* पच्छा सुत्तविहासा। तत्थ ताव पुव्वं गमणिज्जा परिहासा।

अपेक्षा हजारोंसे कम नहीं हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये गाथासूत्रमें 'सहस्सो णियमा' इस वचनका निर्देश किया है। तत्प्रायोग्य संख्यात हजार हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु शेष गतियोंमें जिन्होंने दर्शनमोहका क्षय कर दिया है ऐसे जीव 'णियमा' अर्थात् निश्चयसे असंख्यात हैं ऐसा निश्चय करना चाहिए, क्योंकि उन गतियोंमें प्राप्त आयुस्थितिके भीतर आगमानुसार वर्ष पृथक्त्वके अन्तरसे संचित हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उन गतियोंमें बन जाते हैं।

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें किस गतिमें कितने क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं इस बातका निर्देश किया गया है। मनुष्योंमें गर्भज संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्योंकी कुल संख्या ही संख्यात है, अतः उनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपमके भीतर संचित हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि कुल मनुष्य संख्यात हजार ही हो सकते हैं। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि जो कर्मभूमिज मनुष्य तीर्थंकर, केवली या श्रुतकेवलीके पादमूलमें क्षायिक सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करते हैं उनमेंसे कुछ तो उसी भवमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और जो तद्भव मोक्षगामी नहीं होते हैं वे जैसी आयुका बन्ध किया हो उसके अनुसार चारों गतियोंमें मरकर उत्पन्न होते रहते हैं। तथा गर्भज संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्योंका कुल प्रमाण संख्यात होनेसे अन्य गतियोंमें संचयका जो नियम है वह यहाँ लागू नहीं होता, इसी लिए मनुष्यगतिमें क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण संख्यात हजार बतलाया है। शेष तीन गतियोंमें वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे एक क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगतिसे आकर जन्म लेता है, इस नियमके अनुसार वहाँ प्रत्येक गतिमें अपनी-अपनी भवस्थितिके भीतर संचित हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंका प्रमाण पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्राप्त होनेसे वह तत्प्रमाण कहा है। इस प्रकार इस गाथासूत्रमें संख्याका निर्देश कर देशामर्षकभावसे सत् आदि आठों अनुयोगद्वारोंकी सूचना दी गई है यह सिद्ध हुआ।

§ ९. इस प्रकार सर्वप्रथम दर्शनमोहकी क्षपणासे सम्बन्ध रखनेवाली पाँच सूत्रगाथाओंकी समुत्कीर्तना कर अब उनके अर्थका व्याख्यान करते हुए उसीके परिकररूपसे व्याख्यान करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* इस प्रकार गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तनाके पश्चात् सूत्रोंकी विभाषा की जाती है। उसमें भी सर्वप्रथम परिभाषा जानने योग्य है।

§ १०. का सुत्तविहासा णाम ? गाहासुत्ताणमुच्चारणं कादूण तेसिं पदच्छेदादिमुहेण जा अत्थपरिक्खा सा सुत्तविहासा त्ति भण्णदे। सुत्तपरिहासा पुण गाहासुत्तणिबद्धमणिबद्धं च पयदोवजोगि जमत्थजादं तं सव्वं घेत्तूण वित्थरदो अत्थपरूवणा सा ताव पुव्वमेत्थाणुगंतव्वा। पच्छा सुत्तविहासा कायव्वा। किं कारणं ? सुत्तपरिभासमकादूण सुत्तविहासाए कीरमाणाए सुत्तत्थविसयणिच्छयाणुप्पत्तीदो। तदो सुत्तपरिभासमेव पुव्वं कुणमाणो तव्विसयं पुच्छावक्कमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* तं जहा।

§ ११. सुगमं।

* तिण्हं कम्माणं ट्ठिदीओ ओट्टिदव्वाओ।

§ १२. एत्थ ताव जो वेदगसम्माइट्ठी दंसणमोहक्खवणं पट्ठवेइ सो पुव्वं चेवाणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएइ, अविसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कस्स दंसणमोहक्खवणपट्ठवणाणुववत्तीदो। तदो अणंताणुबंधिविसंजोयणाए अधापवत्तादिकरणपडिबद्धाए पुव्वमेत्थाणुगमो कायव्वो। सो उण चरित्तमोहोवसामणाए सवित्थरं भणिस्समाणत्तादो णेह पवंचिज्जदे। तम्हा विसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्को वेदयसम्मादिट्ठी असंजदो

---

§. १०. शंका—सूत्रविभाषा किसे कहते हैं ?

समाधान—गाथासूत्रोंका उच्चारणकर उनकी पदच्छेद आदिके द्वारा जो अर्थपरीक्षा की जाती है उसे विभाषा कहते हैं।

परन्तु प्रकृतमें उपयोगी जो अर्थ समूह गाथासूत्रोंमें निबद्ध है या अनिबद्ध है उस सबको ग्रहण कर विस्तारसे अर्थकी प्ररूपणा करनेको सूत्र परिभाषा कहते हैं। उसे सर्वप्रथम यहाँ जानना चाहिए, उसके बाद सूत्रविभाषा करनी चाहिए, क्योंकि सूत्रोंकी परिभाषा न कर सूत्रोंकी विभाषा करने पर सूत्रोंका अर्थविषयक निश्चय नहीं बन सकता, इसलिए गाथासूत्रोंकी परिभाषाको ही सर्व प्रथम करते हुए तद्विषयक पृच्छावाक्यको कहते हैं—

* वह जैसे।

§ ११. यह सूत्र सुगम है।

* तीनों कर्मोंकी स्थितियोंकी पृथक्-पृथक् रचना करनी चाहिए।

§ १२. प्रकृतमें जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करता है वह पहले ही अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करता है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है वह दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं कर सकता। इसलिए अधःप्रवृत्त आदि करणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका यहाँ सर्वप्रथम अनुगम करना चाहिए। परन्तु उसका चारित्रमोहकी उपशमनाका कथन करते समय विस्तारसे कथन करेंगे, इसलिए यहाँ उसका कथन नहीं करते हैं। इसलिये जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत, संयतासंयत तथा

संजदासंजदो पमत्तापमत्ताणमण्णदरो संजदो वा सव्वविसुद्धेण परिणामेण दंसणमोह-क्खवणाए पयट्टदि त्ति घेत्तव्वं । तस्स तहा पयट्टमाणस्स तिण्हं कम्माणं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदाणं ट्ठिदीओ अंतोकोडाकोडिमेत्ताओ बुद्धीए पुध पुध ओट्टिदव्वाओ विरचेदव्वाओ, अण्णहा[1] तव्विसयट्ठिदिखंडयघादादिपरूवणाए सुहाव-गमत्ताणुववत्तीदो । एवमेदेसिं कम्माणं परिवाडीए ट्ठिदीणं विण्णासं कादूण पुणो किं कायव्वमिच्चासंकाए इदमाह—

* अणुभागफद्दयाणि च ओट्टिदव्वाणि ।

§ १३. तेसिं चेव तिण्हं कम्माणमणुभागफद्दयाणि च जहण्णफद्दयप्पहुडि जाव उक्कस्सफद्दयं ति ताव ट्ठिदिं पडि तिरिच्छेण विरचेयव्वाणि, तेसिं विरचणाए विणा तव्विसयकंडयघादादिपरूवणाए सिस्साणं सुहावबोहाणुववत्तीदो । एत्थ सेसकम्माणं पि णाणावरणादीणं ट्ठिदीओ अणुभागफद्दयाणि च ओट्टेयव्वाणि तव्विसयखंडयघाद-जाणावणणिमित्तमिदि चे ? सच्चमेदं, तत्थ पडिसेहाभावादो । किंतु पहाणभावेणेदेसिं तिण्हं कम्माणं विसेसघादपदुप्पायणट्ठं विसेसिऊण परूवणा कदा, तम्हा तेसिं पि ट्ठिदि-अणुभागा ओट्टिदव्वा । एवमेदं परूविय संपहि एत्थ तिण्हं करणाणं सरूव-

---

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंमेंसे अन्यतर संयत मनुष्य सर्व विशुद्ध परिणामके द्वारा दर्शन-मोहकी क्षपणा करनेमें प्रवृत्त होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकारसे प्रवृत्त हुए उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन तीन कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितियोंको बुद्धिमें पृथक् पृथक् 'ओट्टिदव्वाओ' अर्थात् रचित करनी चाहिए, अन्यथा तद्विषयक स्थितिकाण्डकघात आदिकी प्ररूपणाका सुखपूर्वक ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार इन कर्मोंकी स्थितियोंकी परिपाटीसे रचनाकर पुनः क्या करना चाहिए ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रवचनको कहते हैं—

* तथा उन्हीं तीनों कर्मोंके अनुभाग स्पर्धकोंकी भी पृथक्-पृथक् रचना करनी चाहिए।

§ १३. उन्हीं तीनों कर्मोंके जघन्य स्पर्धकसे लेकर उत्कृष्ट स्पर्धक तक अनुभागस्पर्धकोंकी भी प्रत्येक स्थितिके प्रति तिर्यक्‌रूपसे रचना करनी चाहिए, क्योंकि उनकी रचना किये बिना तद्विषयक काण्डकघात आदि प्ररूपणाका शिष्योंको सुखपूर्वक ज्ञान नहीं हो सकता।

शंका—यहाँ पर ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंकी भी स्थितियों और अनुभागस्पर्धकोंके तद्विषयक काण्डकघातका ज्ञान करानेके लिए रचना करना चाहिए ?

समाधान—यह कहना सत्य है, क्योंकि इस विषयमें प्रतिषेधका अभाव है। किन्तु प्रधानरूपसे इन तीन कर्मोंकी विशेष घातका कथन करनेके लिये विशेषरूपसे प्ररूपणा की है, इसलिए उन ज्ञानावरणादि कर्मोंकी भी स्थिति और अनुभागकी रचना करनी चाहिए। इस

---

१. ता० प्रतौ ओट्टिदव्वाओ अण्णहा इति पाठः ।

णिद्देसं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

तदो अण्णमधापवत्तकरणं पढमं, अपुव्वकरणं विदियं, अणियट्टि-करणं तदियं।

§ १४. तदो एदेसिं कम्माणं ट्ठिदि-अणुभागफद्दयाणमोकड्डणादो अणंतरमेदेसिं तिण्हं करणाणं पादेक्कमंतोमुहुत्तद्धापडिबद्धाणमेयसेढीए जहाकममुड्डायारेण समय-विरचणं कादूण तत्थ समयाविरोहेण परिणामरचणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ। एत्थ 'अण्णमधापवत्तकरणं' इदि भणंतस्साहिप्पाओ पुव्वं ट्ठिदि-अणुभागाणं रचणा परूविदा। संपहि तत्तो पुधभावेण एदेसिं तिण्हं करणाणं रचणा होइ त्ति जाणावणट्ठं 'अण्णं' इदि भणिदं।

* एदाणि ओट्टेदूण अधापवत्तकरणस्स लक्खणं भाणिदव्वं।

§ १५. 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायबलेण पढमं ताव अधापवत्त-करणस्स लक्खणमिह भणिदूण गेण्हियव्वमिदि वुत्तं होइ। तस्स च लक्खणे भण्ण-माणे जहा दंसणमोहोवसामणाए अधापवत्तकरणस्स लक्खणमणुकड्डिआदिविसेसेहिं परूविदं तहा णिरवसेसमेत्थ परूवेयव्वं इदि गंथगउरवभएण ण पुणो तदुवण्णासो कीरदे।

* एवमपुव्वकरणस्स वि अणियट्टिकरणस्स वि।

प्रकार इसकी प्ररूपणा कर अब यहाँपर तीनों करणोंके स्वरूपका निर्देश करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

तत्पश्चात् उक्त रचनासे भिन्न अधःप्रवृत्तकरण प्रथम, अपूर्वकरण द्वितीय और अनिवृत्तिकरण तृतीय हैं, अतः इनके समयोंकी रचना करनी चाहिए।

§ १४. 'तदो' अर्थात् इन कर्मोंकी स्थितियों और अनुभागस्पर्धकोंके अपकर्षणके अनन्तर प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालसे सम्बन्ध रखनेवाले इन तीन करणोंके समयोंकी एक श्रेणिमें यथाक्रम ऊर्ध्वाकाररूपसे रचना करनी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ 'अण्णमधापवत्तकरणं' ऐसा कहनेका यह अभिप्राय है कि पहले स्थितियों और अनुभागोंकी रचनाका कथन किया, अब उससे पृथक् इन तीन कारणोंकी रचना है ऐसा ज्ञान करानेके लिए 'अण्णं' ऐसा कहा है।

* इनके समयोंकी रचनाकर अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहना चाहिए।

§ १५. 'उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है।' इस न्यायके बलसे सर्वप्रथम अधः प्रवृत्तकरणके लक्षणको यहाँ कहकर ग्रहण करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है और उसका लक्षण कहने पर जिस प्रकार दर्शनमोहकी उपशामना अनुयोग द्वारमें अनुकृष्टि आदि विशेषताओंके साथ अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण कहा है उस प्रकार पूरा यहाँ पर कहना चाहिए, इसलिए ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे पुनः उसका उपन्यास नहीं करते हैं।

* इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका भी लक्षण कहना चाहिए।

§ १६. एवं णेदापुव्वाणियट्टिकरणाणं पि लक्खणमेत्थ परूवेयव्वमिदि वुत्तं होइ। एदेसिं च तिण्हं करणाणं लक्खणविहासाए उवसामगभंगादो णत्थि णाणत्तमिदि पदुप्पाएमाणो उत्तरसुत्तमाह—

*** एदेसिं लक्खणाणि जारिसाणि उवसामगस्स तारिसाणि णेय।**

§ १७. किं कारणं ? अणुकड्डियादिपरूवणाए तत्तो एदेसिं भेदाणुवलंभादो। तदो तत्थतणपरूवणा णिरवसेसमेत्थ वि कायव्वा। एवमेदेसिं लक्खणपरूवणं कादूण संपहि अधापवत्तकरणविसये चउण्हं सुत्तगाहाणं परूवणं कुणमाणो उवरिमं पबंधमाह—

*** अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ।**

§ १८. अधापवत्तकरणे ताव इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ पयदपरूवणाए परिभासत्थपदुप्पायणे वावदाओ पढममेव विहासियव्वाओ त्ति भणिदं होइ।

*** तं जहा।**

§ १९. सुगमं।

*** दंसणमोहउवसामगस्स०१, काणि वा पुव्वबद्धाणि०२, के अंसे झीयदे पुव्वं०३, किं ट्ठिदियाणि कम्माणि०४**

§ १६. इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके भी लक्षणका यहाँ पर कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है किन्तु इन तीनों करणोंके लक्षणोंका विशेष व्याख्यान उपशामनाके कथनसे भिन्न नहीं है इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इन तीनों करणोंके लक्षण जिस प्रकार उपशामककी प्ररूपणामें कह आये हैं उसी प्रकार हैं।**

§ १७. क्योंकि अनुकृष्टि आदि प्ररूपणाकी अपेक्षा वहाँके कथनसे इनके कथनमें भेद नहीं पाया जाता। इसलिए वहाँ की गई पूरी प्ररूपणा यहाँपर भी करनी चाहिए। इस प्रकार इनके लक्षणका कथन करके अब अधःप्रवृत्तकरणके विषयमें चार सूत्रगाथाओंका कथन करते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें इन चार सूत्र गाथाओंका कथन करना चाहिए।**

§ १८. अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी प्रकृत प्ररूपणाके परिभाषारूप अर्थके कथनमें व्यापृत हुई इन चार सूत्र गाथाओंका सर्वप्रथम व्याख्यान करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** वह जैसे।**

§ १९. यह सूत्र सुगम है।

*** दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है, किस योग**

§ २०. एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ एत्थ विहासियव्वाओ त्ति सुत्तत्थसमुच्चयो। कधमेदाओ गाहाओ चरित्तमोहक्खवणाए पडिबद्धाओ एत्थ परूवेदुं सक्किज्जंति त्ति णासंकणिज्जं, अंतदीवयभावेण तत्थ एदासिमुवएसादो। तदो दंसणमोहोवसामणाए तक्खवणाए चरित्तमोहोवसामणा-खवणासु च साहरणभावेणेदासिं परूवणा चुण्णिसुत्त-णिबद्धा ण विरुज्झदि त्ति सिद्धं। एदासिं च विहासाए कीरमाणाए दंसणमोहउव-सामगभंगो किंचि विसेसाणुविद्धो अणुगंतव्वो। तं जहा—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २१. पढमगाहाए पुव्वद्धम्मि ताव णत्थि परूवणाणाणत्तं परिणामो विसुद्धो पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो आगदो त्ति एवंविहाए परूवणाए उहयत्थ समाणत्तदंसणादो। पच्छद्धे जोगे त्ति विहासा अण्णदर-

---

कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके कौन सी लेश्या और वेद होता है ॥ १ ॥ पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन हैं, वर्तमानमें किन कर्मांशोंको बाँधता है कितने कर्म उदयावलिमें प्रवेश करते हैं और यह किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ॥ २ ॥ दर्शनमोहकी क्षपणाके सन्मुख होनेपर पूर्व ही बन्ध और उदयरूपसे कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं, आगे चलकर अन्तरको कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका क्षपण करता है ॥ ३ ॥ क्षपणा करनेवाला वही जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका तथा किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके शेष रहे उनके किस स्थानको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

§ २०. इन चार सूत्रगाथाओंका यहाँ पर व्याख्यान करना चाहिए यह सूत्रार्थ समुच्चय है।

शंका—ये सूत्रगाथाएँ चरित्रमोहकी क्षपणा अनुयोगद्वारसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं उनका यहाँ कथन करना कैसे शक्य है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अन्तदीपकरूपसे वहाँ इनका कथन किया है, अतः दर्शनमोहकी उपशामना, दर्शनमोहकी क्षपणा, चारित्रमोहकी उपशामना और चारित्रमोहकी क्षपणा इन चारों अनुयोगद्वारोंमें साधारणरूपसे चूर्णिसूत्र विषयक इन चार गाथाओंकी प्ररूपणा विरोधको प्राप्त नहीं होती यह सिद्ध हुआ और इनका व्याख्यान करने पर वह दर्शनमोहकी उपशामना अनुयोगद्वारमें किये गये व्याख्यानके समान है। तो भी जो थोड़ी सी विशेषता है उसका अनुगम करते हैं। यथा—

§ २१. प्रथम गाथाके पूर्वार्धमें तो प्ररूपणा भेद है नहीं, क्योंकि परिणाम विशुद्ध होता है। अन्तर्मुहूर्त पहलेसे ही विशुद्ध परिणाम अनन्तगुणी विशुद्धिसे उत्तरोत्तर विशुद्ध होता हुआ आया है। इस प्रकार ऐसी एकरूप प्ररूपणा दर्शनमोहकी उपशामना और क्षपणा इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें समानरूपसे देखी जाती है। प्रथम सूत्र गाथाके उत्तरार्धमें आये हुए योग इस पदकी विभाषा—अन्यतर मनोयोग, अन्यतर वचनयोग या औदारिक काययोग

मणजोगो वा अण्णदरवचिजोगो वा ओरालियकायजोगो वा । णत्थि अण्णकायजोग-संभवो । कसाए त्ति विहासाए णत्थि णाणत्तं । किं कारणं ? अण्णदरो कसाओ, सो च णियमा हायमाणगो ण वड्ढमाणगो त्ति एदेण भेदाभावादो । उवजोगे त्ति विहासा । एत्थ वि णत्थि णाणत्तं । णियमा सागारोवजोगो इच्चेदीए परूवणाए उहयत्थ साहारणभावेणावट्ठाणादो । अथवा अण्णेण उवदेसेण सुदणाणेण वा मदिणाणेण वा अचक्खुदंसणेण वा चक्खुदंसणेण वा उवजुत्तो त्ति वत्तव्वं । लेस्सा त्ति विहासा । एत्थ वि णाणत्तं णत्थि । तेउ-पम्म-सुक्काणं णियमा वड्ढमाणलेस्सा त्ति एदेण भेदाणुवलद्धीदो । वेदो व को भवे त्ति विहासा । एत्थ वि णत्थि णाणत्त-संभवो, अण्णदरो वेदो त्ति एदेण विसेसाणुवलंभादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २२. संपहि बिदियगाहाए विहासा वुच्चदे । तं जहा—काणि वा पुव्वबद्धाणि त्ति विहासा । एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्मं अणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च

होता है । अन्य काययोग सम्भव नहीं है । कषाय इस पदकी विभाषाकी अपेक्षा नानात्व अर्थात् भेद नहीं है, क्योंकि अन्यतर कषाय होती है और वह नियमसे हीयमान होती है, वर्द्धमान नहीं इस प्रकार इस अपेक्षासे दोनों जगह भेदका अभाव है । उपयोग इस पदकी विभाषा । इस विषयमें भी नानात्व अर्थात् भेद नहीं है, क्योंकि नियमसे साकार उपयोग होता है-इस प्रकार इस प्ररूपणाका दोनों स्थलोंपर समानरूपसे अवस्थान पाया जाता है । अथवा अन्य उपदेशके अनुसार श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अचक्षुदर्शन या चक्षुदर्शनरूप उपयोगसे उपयुक्त होता है यह कहना चाहिए । लेश्या इस पदकी विभाषा । इसमें भी नानात्व नहीं है, क्योंकि तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे नियमसे वर्द्धमान लेश्या होती है इस प्रकार इस कथनकी अपेक्षा दोनों स्थलोंमें भेद नहीं पाया जाता है । वेद कौन होता है इस पदकी विभाषा । इसमें भी नानात्व सम्भव नहीं है, क्योंकि अन्यतर वेद होता है इस प्रकार इस कथनकी अपेक्षा दोनों स्थलोंमें विशेषता नहीं पाई जाती है ।

विशेषार्थ—यहाँ चूर्णिसूत्रमें जिन चार गाथाओंका निर्देश किया गया है उनमेंसे प्रथम गाथाके अनुसार दर्शनमोहके उपशामकके परिणाम आदिका जैसा व्याख्यान दर्शनमोहके उपशामक जीवको लक्ष्य कर किया है वह सब यहाँ किंचित् भेदके साथ जान लेना चाहिए । भेद इतना ही है कि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ मनुष्यगतिमें ही होता है, अन्य गतियोंमें नहीं, इसलिए यहाँ काययोगके भेदोंमेंसे एक औदारिककाययोग ही स्वीकार किया गया है । यहाँ उपयोगकी चर्चा करते हुए मतान्तरका उल्लेख कर जो यह बतलाया है कि ऐसा जीव श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, चक्षुदर्शन या अचक्षुदर्शन इनमेंसे किसी एक उपयोगमें उपयुक्त होता है सो इसका यह आशय प्रतीत होता है कि अन्य किसी आचार्यका यह मत रहा है कि ऐसे जीवके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें उपयोग परिवर्तन भी हो सकता है और उपयोगपरिवर्तनके कालमें मतिज्ञान, चक्षुदर्शन या अचक्षुदर्शन भी हो सकता है ।

§ २२. अब दूसरी गाथाकी विभाषाका कथन करते हैं । यथा—'पूर्वबद्धकर्म कौन हैं' इसकी विभाषा । यहाँ प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका

मग्गिदव्वं । तत्थ पयडिसंतकम्ममग्गणाए उवसामगभंगो । णवरि अणंताणुबंधि-चउक्कसंतकम्मं णत्थि त्ति वत्तव्वं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णियमा संतकम्मिओ । आउअस्स णियमा मणुस्साउअं भुंजमाणं होदूण परभवियमणुस्साउएण सह सेसाणि तिण्णि वि संतकम्मभावेण भयणिज्जाणि, पुव्वबद्धाउगं पडुच्च तदविरोहादो । णामस्स उवसामगभंगो चेव । णवरि तित्थयराहारदुगं सिया अत्थि । वुत्तपयडीणं ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्ममग्गणाए उवसामगभंगादो णत्थि णाणत्तं । णवरि उवसामगस्स ट्ठिदिसंतकम्मादो एदस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणहीणं तस्सेवाणुभागसंतकम्मादो एदस्साणुभागसंतकम्ममणंतगुणहीणमिदि वत्तव्वं । एवं संतकम्ममग्गणा समत्ता ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २३. 'के वा अंसे णिबंधदि' त्ति विहासा । एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो

अनुसन्धान कर लेना चाहिए। उनमेंसे प्रकृतिसत्कर्मका अनुसन्धान करनेपर उसका भंग उपशामकके समान है। इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी सत्ता नहीं है ऐसा कहना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नियमसे है। आयुकर्मकी अपेक्षा मनुष्यायु नियमसे भुज्यमान होकर परभवसम्बन्धी मनुष्यायुके साथ शेष तीन आयुएँ भी सत्कर्मरूपसे भजनीय हैं, क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणाके पूर्व जिन्होंने उक्त आयुओंका बन्ध किया है उनकी अपेक्षा उनकी सत्ता स्वीकार करनेमें विरोध नहीं आता। नामकर्मका भंग उपशामकके समान ही है। इतनी विशेषता है कि तीर्थंकर और आहारकद्विककी सत्ता कदाचित् है। इस प्रकार यहाँ जिन प्रकृतियोंकी सत्ता कही है उनकी अपेक्षा स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका अनुसन्धान करनेपर उपशामकके भंगसे यहाँ कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि उपशामकके स्थितिसत्कर्मसे इसका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन होता है। उसीके अनुभागसत्कर्मसे इसका अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार सत्कर्ममार्गणा समाप्त हुई।

विशेषार्थ—जिस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है वही दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी क्षपणा कर सकता है, इसलिए इसके अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी सत्ताका निषेधकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताके नियमसे होनेका विधान किया है। सभी सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध नहीं करते और ऐसे वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव भी क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकते हैं जिन्हें अप्रमत्तसंयत गुणस्थानकी कभी भी प्राप्ति नहीं हुई है या जिन्होंने अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारकद्विकका बन्ध कर बादमें मिथ्यादृष्टि होकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण काल द्वारा उनकी उद्वेलना कर पुनः यथागम वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया है ऐसे जीव भी क्षायिकसम्यक्त्वको प्राप्त कर सकते हैं या जो अप्रमत्तसंयत होकर भी आहारकद्विकका बन्ध नहीं करते ऐसे वेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवोंके तीर्थंकर और आहारकद्विककी सत्ता विकल्पसे कही है। आहारक-बन्धन और आहारकसंघात आहारकशरीरके अविनाभावी होनेसे उनका ग्रहण हो ही जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ २३. 'वर्तमानमें किन कर्मांशोंको बाँधता है' इसकी विभाषा। यहाँ पर प्रकृतिबन्ध,

अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो। तत्थ ताव पयडिबंधस्स मग्गणं कस्सामो। तं जहा—पंचणाणावरण-छदंसणावरण-सादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगंछ-देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-अंगोवंग-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ४-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिणणामाणि तित्थयरं सिया० उच्चागोद-पंचंतराइयाणि त्ति एदाओ पयडीओ बंधइ, अवसेसाओ ण बंधइ। एदमसंजदसम्मादिट्ठिं पडुच्च वुत्तं। एवं संजदासंजदस्स वि वत्तव्वं। णवरि अपच्चक्खाणचउक्कं ण बंधइ। एवं पमत्तसंजदस्स। णवरि पच्चक्खाणचउक्कबंधो णत्थि। एवं चेव अप्पमत्तसंजदस्स वि। णवरि णामपयडीसु आहारदुगं सिया बंधइ त्ति वत्तव्वं। एसो पयडिबंधणिद्देसो। एदासिं चेव पयडीणं पयडिबंधे णिद्दिट्ठाणमंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिं संतादो हेट्ठा संखेज्जगुणहीणं बंधइ। एसो ट्ठिदिबंधणिद्देसो। तासिं चेव पयडीणमप्पसत्थाणं बिट्ठाणिओ अणंतगुणहीणो अणुभागबंधो। पसत्थाणं च चउट्ठाणिओ अणंतगुणो अणुभागबंधो। पदेसबंधो पुण तासिं चेव पयडीणमजहण्णाणुक्कस्सो। णवरि णिद्दा-पयला-अट्ठकसाय-हस्स-रइ-भय-दुगुंछा-देवगइचउक्क-आहारदुग-समचउरससंठाण-पसत्थविहायगदि-सुभग-सुस्सरादेज्ज-तित्थयरणामाणं सिया उक्कस्सो। एवं बंधमग्गणा समत्ता।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका अनुसन्धान करना चाहिए। उसमें सर्वप्रथम प्रकृतिबन्धका अनुसन्धान करेंगे। यथा—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, स्यात् तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका बन्ध करता है, अवशेष प्रकृतियोंका बन्ध नहीं करता। यह असंयतसम्यग्दृष्टिकी अपेक्षा कहा है। इसी प्रकार संयतासंयतके भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह अप्रत्याख्यानचतुष्कका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार प्रमत्तसंयतके भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह प्रत्याख्यानचतुष्कका बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतके भी कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि यह नामकर्मकी प्रकृतियोंमेंसे आहारकद्विकका स्यात् बन्ध करता है ऐसा कहना चाहिए। यह प्रकृतिबन्धका निर्देश है। प्रकृतिबन्धमें निर्दिष्ट की गई इन्हीं प्रकृतियोंकी सत्कर्मरूप स्थितिसे नीचे संख्यातगुणी हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका बन्ध करता है। यह स्थितिबन्धका निर्देश है। उन्हीं बन्धप्रकृतियोंमेंसे अप्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्तगुणा हीन द्विस्थानीय अनुभागबन्ध होता है। और प्रशस्त प्रकृतियोंका अनन्तगुणा चतुःस्थानीय अनुभागबन्ध होता है। तथा उन्हीं प्रकृतियोंका अजघन्यानुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। इतनी विशेषता है कि निद्रा, प्रचला, आठ कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगतिचतुष्क, आहारकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्त

§ २४. 'कदि आवलियं पविसंति' त्ति विहासाए उवसामगभंगो। 'कदिण्हं वा पवेसगो' त्ति विहासा मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो। उत्तरपयडीणं च पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सम्मत्त-मणुस्साउ-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ४-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं णियमा पवेसगो। सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो। चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरस्स पवेसगो। भय-दुगुंछाणं सिया पवेसगो। छण्हं संठाणाणं छण्हं संघडणाणमण्णदरस्स पवेसगो। दो-विहायगइ-सुभगदूभग-सुस्सरदुस्सर-आदेज्जअणादेज्ज-जसगित्तिअजसगित्तीणमण्णदरस्स पवेसगो। णवरि संजदासंजद-संजदेसु सुभगादेज्जजसकित्तीणं चेव पवेसगो।

§ २५. संपहि तदियगाहाए किंचि विसेसपरूवणं कस्सामो। तं जहा—'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा। तत्थ पयडिबंधे जाओ पयडीओ

विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और तीर्थंकर इन प्रकृतियोंका स्यात् उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है। इस प्रकार बन्धमार्गणा समाप्त हुई।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेके सन्मुख हुआ जीव नियमसे कर्म-भूमिज संज्ञी पर्याप्त मनुष्य होता है, इसलिए एक तो इसके मनुष्यगतिके साथ मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर और औदारिक आंगोपांगका बन्ध नहीं होता। दूसरे यह विशुद्धि युक्त परिणामवाला होता है, इसलिए इसके असातावेदनीय अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्तिका बन्ध नहीं होता। इस अवस्थामें आयुबन्धके योग्य परिणाम नहीं होते, इसलिए मनुष्यायु और देवायुका भी बन्ध नहीं होता। इस प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टिके बन्ध योग्य ७७ प्रकृतियोंमेंसे १२ प्रकृतियोंके कम हो जानेपर यहाँ कुल ६५ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

§ २४. 'कितनी प्रकृतियाँ उदयावलिमें प्रवेश करती हैं' इसकी विभाषाका भंग उपशामकके समान है। 'कितनी प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है' इसकी विभाषा। मूल प्रकृतियोंका सबका प्रवेशक होता है। उत्तर प्रकृतियोंमें पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सम्यक्त्व, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनका नियमसे प्रवेशक होता है। साता और असातावेदनीय इनमेंसे अन्यतरका प्रवेशक होता है। चार कषाय, तीन, वेद और दो युगल प्रत्येक इनमेंसे अन्यतरका प्रवेशक होता है। भय और जुगुप्साका स्यात् प्रवेशक होता है। छह संस्थान और छह संहनन प्रत्येक इनमेंसे अन्यतरका प्रवेशक होता है। दो विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इनमेंसे अन्यतर एक-एकका प्रवेशक होता है। इतनी विशेषता है कि संयतासंयत और संयतोंमें सुभग, आदेय और यशःकीर्तिका ही प्रवेशक होता है।

§ २५. अब तीसरी सूत्रगाथाका कुछ विशेष कथन करेंगे। यथा—'उक्त जीवके बन्ध

उदिट्ठाओ तत्तो अण्णासिं पयडीणं बंधो पुव्वमेव वोच्छिण्णो त्ति वत्तव्वं । तहा जासिं पयडीणं पवेसगो ताओ मोत्तूण सेसाणं पयडीणमुदयो वोच्छिण्णो त्ति वत्तव्वं ट्ठिदि-अणुभागपदेसाणं पि बंधोदयवोच्छेदविचारो[1] एदेणेव गयत्थो त्ति ण पुणो परूविज्जदे । 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के खवगो कहिं' त्ति विहासा । एत्थ अंतरकरणं णत्थि । खवगो च मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-सम्मत्ताणं पुरदो होहिदि ।

§ २६. 'किं ठिदियाणि कम्माणि अणुभागेसु केसु वा' एदिस्से चउत्थीए गाहाए अत्थविहासा उवसामगभंगेण कायव्वा । एवमेदासिं[2] चउण्हं गाहाणमधापवत्तचरिमसमए विहासं कादूण तदो पयदपरूवणा अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि आढवेयव्वा त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण अपुव्वकरणपढमसमए आढवेयव्वो ।

और उदयकी अपेक्षा कौन-कौन कर्मांश क्षीण होते हैं' इसकी विभाषा। यहाँ प्रकृतिबन्धमें जिन प्रकृतियोंका निर्देश किया है उनके सिवाय अन्य प्रकृतियोंका बन्ध पहले ही व्युच्छिन्न हो जाता है ऐसा कहना चाहिए। तथा जिन प्रकृतियोंका प्रवेशक है उनके सिवाय शेष प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति हो जाती है ऐसा कहना चाहिए। स्थिति, अनुभाग और प्रदेश विषयक भी बन्ध और उदयव्युच्छित्तिका विचार उक्त कथनसे ही गतार्थ है, इसलिए इनका पुनः कथन नहीं करते हैं। उक्त जीव 'अन्तर कहाँपर करता है और कहाँ किन-किन कर्मोंका क्षपक होता है' इसकी विभाषा। यहाँ दर्शनमोहकी क्षपणामें अन्तरकरण नहीं होता तथा मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका आगे क्षपक होगा।

विशेषार्थ—दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव वेदकसम्यग्दृष्टि होता है। इसके क्षायिक सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम समयके पूर्व तक वेदकसम्यक्त्व बना रहता है और क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षय होनेपर होती है, इसलिए दर्शनमोहकी क्षपणामें अन्तरकरणका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

§ २६. उक्त जीव 'किस स्थितिवाले कर्मोंका और किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके किस स्थानको प्राप्त करता है।' इस चौथी गाथाकी अर्थविभाषा उपशामकके समान करनी चाहिए। इस प्रकार इन चार गाथाओंकी अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें विभाषा अर्थात् विशेष व्याख्यान करके तदनन्तर प्रकृत प्ररूपणाको अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर आरम्भ करनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिये उत्तर सूत्रका अवतार करते हैं—

* इन चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रकृत प्ररूपणाका आरम्भ करना चाहिए।

---

१. ता०प्रतौ बंधोदयविचारो इति पाठः। २. ता०प्रतौ एवमेदेसिं इति पाठः।

§ २७. एवमेदाओ अणंतरणिद्दिट्ठाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासिय्ण तदो अपुव्वकरणपढमसमए पयदपरूवणापबंधो ट्ठिदि-अणुभागघादादिलक्खणो आढवेयव्वो त्ति सुत्तत्थसंगहो। अधापवत्तकरणे चेव ट्ठिदि-अणुभागघादादिलक्खणो पयदपरूवणापबंधो किण्णाढविज्जदि त्ति णासंकणिज्जं, अधापवत्तपरिणामाणं ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादणसत्तीए संभवाभावादो। एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* अधापवत्तकरणे ताव णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा।

§ २८. गयत्थमेदं सुत्तं।

* णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि, सुहाणं कम्मंसाणमणंतगुणवड्ढिबंधो, असुहाणं कम्माणमणंतगुणहाणिबंधो, बंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हायदि।

§ २९. एतदुक्तं भवति—पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए वड्ढमाणो अधापवत्तकरणो सुभाणं कम्माणं सादादीणमणंतगुणवड्ढीए अणुभागबंधं कुणइ। असुभाणं

§ २७. इस प्रकार अनन्तर पूर्व कही गईं इन चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करके तदनन्तर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिघात और अनुभागघात-आदि लक्षणवाले प्रकृत प्ररूपणाप्रबन्धका आरम्भ करना चाहिए यह सूत्रार्थका संग्रह है।

शंका—अधःप्रवृत्तकरणमें ही स्थितिघात और अनुभागघात आदि लक्षणवाले प्रकृत प्ररूपणाप्रबन्धका क्यों नहीं आरम्भ किया जाता ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरण परिणामोंमें स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातरूप शक्तिका अभाव है।

अब इसी अर्थके स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणी और गुणसंक्रम नहीं है।

§ २८. यह सूत्र गतार्थ है।

* इतनी विशेषता है कि वह प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। शुभ कर्मांशोंका (अनुभागकी अपेक्षा) अनन्तगुण वृद्धिको लिये हुए बन्ध होता है, अशुभ कर्मोंका (अनुभागकी अपेक्षा) अनन्तगुणी हानिको लिये हुए बन्ध होता है तथा अन्तर्मुहूर्त काल तक होनेवाले एक-एकस्थितिबन्धके पूर्ण (समाप्त) होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भाग कम स्थितिबन्ध करता है।

§ २९. उक्त कथनका यह तात्पर्य है—प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ अधःप्रवृत्तकरणमें स्थित जीव सातावेदनीय आदि शुभ कर्मोंका अनन्तगुणी वृद्धि-

पंचकम्माणं पंचणाणावरणादीणमणंतगुणहाणीए अणुभागबंधमोवट्टदि । अण्णं च ट्ठिदिबंधे अंतोमुहुत्तकालपडिबद्धे पुण्णे अण्णं ट्ठिदिबंधमाढवेमाणो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हाइदूण बंधइ, विसोहिपरिणामस्स ठिदि-बंधवुड्ढिविरुद्धसहावत्तादो त्ति ।

§ २९. एवमेत्तिएण पबंधेण अधापवत्तकरणविसयं फलविसेसमुवसंदरिसिय संपहि तव्विसयपरूवणमुवसंहारेमाणो इदमाह—

*** एसा अधापवत्तकरणे परूवणा ।**

§ ३०. एसा अणंतरणिद्दिट्ठा परूवणा अधापवत्तकरणविसये परूविदा त्ति भणिदं होइ । एवमेदमुवसंहरिय संपहि अपुव्वकरणविसयं परूवणापबंधमाढवेमाणो इदमाह—

*** अपुव्वकरणस्स पढमसमए दोण्हं जीवाणं ठिदिसंतकम्मादो ठिदिसंतकम्मं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा । ट्ठिदिखंडयादो ति ट्ठिदिखंडयं दोण्हं जीवाणं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

को लिये हुए अनुभागबन्ध करता है । पाँच ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मोंका अनन्तगुणी हानिरूपसे अनुभागबन्धका अपवर्तन करता है । तथा अन्य अन्तर्मुहूर्त कालसम्बन्धी स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्धका आरम्भ करता हुआ पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको घटाकर बाँधता है, क्योंकि विशुद्धिरूप परिणाम स्थितिबन्धकी वृद्धिके विरुद्ध स्वभाववाला होता है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें यद्यपि स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणिरचना और गुणसंक्रमस्वरूप कार्य विशेष नहीं होते तथापि वहाँ परिणामोंमें प्रत्येक समय अनन्तगुणी विशुद्धि होनेसे सातादि शुभ कर्मोंका प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिस्वरूप और ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मोंका प्रति समय अनन्तगुणी हानिस्वरूप अनुभागबन्ध करता है । तथा अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण प्रथम अन्तर्मुहूर्तमें प्रतिसमय जितना स्थितिबन्ध करता है, दूसरे अन्तर्मुहूर्तमें उसकी अपेक्षा पल्योपमका संख्यातवाँ भागकम स्थितिबन्ध करता है । इस प्रकार यह क्रिया अधःप्रवृत्तकरणमें बराबर चालू रहती है ।

§ २९. इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा अधःप्रवृत्तकरणविषयक फलविशेषको दिखलाकर अब तद्विषयक प्ररूपणाका उपसंहार करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

*** यह अधःप्रवृत्तकरणविषयक प्ररूपणा है ।**

§ ३०. यह अनन्तर कही गई प्ररूपणा अधःप्रवृत्तकरणविषयक कही गई है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इसका उपसंहार कर अब अपूर्वकरणविषयक प्ररूपणाप्रबन्धका आरम्भ करते हुए यह सूत्र कहते हैं—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें दो जीवोंमें से किसी एकके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म तुल्य भी होता है, विशेष अधिक भी होता है और संख्यातगुणा भी होता है । इसी प्रकार दो जीवोंमेंसे किसी एकके स्थितिकाण्डकसे दूसरे जीवका**

§ ३१. तं जहा—दो जीवा कदासेसपरिकरा होदूण जुगवं दंसणमोहक्खवणमाढविय अधापवत्तकरणद्धं बोलेयूणापुव्वकरणपढमसमए वट्टमाणा इह णिरुद्धा कायव्वा। तेसिमेवं णिरुद्धाणं दोण्हं जीवाणं मज्झे अण्णदरस्स ठिदिसंतकम्मादो इदरस्स ठिदिसंतकम्मं सरिसं पि होदूण लब्भइ, विसरिसं पि। विसरिसभावे च संखेज्जासंखेज्जभागवड्ढीए विसेसाहियं पि होदूण लब्भइ, संखेज्जगुणाहियं च। एवं ट्ठिदिखंडयस्स वि वत्तव्वं, ट्ठिदिसंतकम्माणुसारेणेव तव्विसयाणं ट्ठिदिखंडयाणं पि पवुत्तीए णाइयत्तादो। ट्ठिदिसंतकम्मे सरिसे संजादे तव्विसयाणि ठिदिखंडयाणि वि सरिसाणि चेव भवंति। विसेसाहियठिदिसंतकम्मविसये विसेसाहियाणि चेव हवंति। संखेज्जगुणे ट्ठिदिसंतकम्मे संखेज्जगुणाणि चेव होंति त्ति भावत्थो।

§ ३२. कथं ताव दोण्हं ठिदिसंतकम्माणं सरिसत्तमिदि चे ? वुच्चदे—दो जीवा जुगवमेव पढमसम्मत्तं घेत्तूण पुणो समकालमणंताणुबंधिणो विसंजोएदूण दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदा अपुव्वकरणपढमसमये जुगवमेव दिट्ठा, तेसिं दोण्हं पि ट्ठिदिसंतकम्मण्णोण्णेण सरिसं, ट्ठिदिखंडयाणि वि सरिसाणि चेव भवंति, तत्थ विसरिसत्ते कारणाणुवलंभादो। संपहि विसेसाहियत्तस्स कारणं वुच्चदे। तं जहा—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थितिकाण्डक तुल्य भी होता है, विशेष अधिक भी होता है और संख्यातगुणा भी होता है।

§ ३१. यथा—जिन्होंने पूरी तैयारी कर ली है ऐसे दो जीव एक साथ दर्शनमोहकी क्षपणाका आरम्भ कर अधःप्रवृत्तकरणके कालको बिताकर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें वर्तमानरूपसे यहाँ विवक्षित करने चाहिए। इस प्रकार विवक्षित किये गये उन दोनों जीवोंमेंसे किसी एकके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म सदृश होकर भी प्राप्त होता है तथा विसदृश होकर भी प्राप्त होता है। विसदृश होनेपर संख्यात भागवृद्धिरूपसे या असंख्यात भागवृद्धिरूपसे विशेष अधिक होकर भी प्राप्त होता है तथा संख्यातगुणा अधिक होकर भी प्राप्त होता है। इसी प्रकार स्थितिकाण्डकके विषयमें भी कथन करना चाहिए, क्योंकि स्थितिसत्कर्मके अनुसार ही तद्विषयक स्थितिकाण्डकोंकी भी प्रवृत्ति होना न्यायप्राप्त है। स्थिति सत्कर्मके सदृश होनेपर तद्विषयक स्थितिकाण्डक भी सदृश ही होते हैं। विशेष अधिक स्थितिसत्कर्मके होनेपर स्थितिकाण्डक भी विशेष अधिक ही होते हैं। तथा संख्यातगुणे स्थितिसत्कर्मके होनेपर स्थितकाण्डक भी संख्यातगुणे ही होते हैं यह उक्त कथनका भावार्थ है।

§ ३२. **शंका**—दो स्थितिसत्कर्मोंका सदृशपना कैसे बन सकता है ?

समाधान—कहते हैं, एक साथ ही प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण कर पुनः एक समय ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकर दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये उद्यत हुए दो जीव अपूर्वकरणके प्रथम समयमें दिखाई दिये, उन दोनोंका स्थितिसत्कर्म परस्पर सदृश होता है। तथा स्थितिकाण्डक भी सदृश ही होते हैं, क्योंकि उनके विसदृश होनेका कारण नहीं पाया जाता।

दोसु णिरुद्धजीवेसु एगो बेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो। अण्णेगो बेछावट्ठिमपरिभमिय दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो। एवमब्भुट्ठिदाणमपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिसंतकम्माणि विसरिसाणि होंति ट्ठिदिखंडयाणि च, भमिदबेछावट्ठिसागरोवमस्स ट्ठिदिसंतकम्मादो इयरस्स ट्ठिदिसंतकम्मस्स बेछावट्ठिसागरोवममेत्तणिसेएहिं समहियत्तदंसणादो। एसा उक्कस्सपक्खेण विसेसाहियभावपरूवणा कदा। अण्णहा पुण समयुत्तरादिकमेण सव्ववियप्पा बेछावट्ठिपज्जंता लब्भंति त्ति वत्तव्वं। एवं ट्ठिदिखंडयस्स वि तदणुसारेण विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं।

§ ३३. अधवा दोण्हं जीवाणमेगो उवसमसेढिं चढिय हेट्ठा ओसरिय्रूणंतोमुहुत्तमच्छिदो। पुणो अण्णेगो पच्छा उवसमसेढिं चढिय हेट्ठा ओदिण्णो। एवमोदरिय दो वि समकालमेव दंसणमोहक्खणमाढविय अपुव्वकरणपढमसमये समवट्ठिदा। एवमवट्ठिदाणं पुव्विल्लस्स ट्ठिदिसंतकम्मादो पच्छिल्लस्स ट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं भवदि। किं कारणं? पुव्विल्लट्ठिदिसंतकम्ममधट्ठिदीए अंतोमुहुत्तकालं गलिदं। पच्छिल्लस्स पुण ण गलिदमिदि। एवं ट्ठिदिखंडयस्स वि ट्ठिदिसंतकम्मस्सेव विसेसाहियभावो जोजेयव्वो।

अब विशेष अधिकपनेके कारणका कथन करते हैं। यथा—दो विवक्षित जीवोंमेंसे एक जीव दो छयासठ सागरोपम काल तक परिभ्रमण कर दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ तथा दूसरा एक दो छयासठ सागरोपम काल तक परिभ्रमण किये बिना दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ। इस प्रकार उद्यत हुए उन दोनों जीवोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्कर्म विसदृश होते हैं और स्थितिकाण्डक भी विसदृश होते हैं, क्योंकि दो छयासठ सागरोपम काल तक भ्रमण करनेवाले जीवके स्थितिसत्कर्मसे दूसरे जीवका स्थितिसत्कर्म दो छयासठ सागरोपमकालके समय प्रमाण निषेकोंकी अपेक्षा विशेष अधिक देखा जाता है। यह उत्कृष्ट पक्षकी अपेक्षा विशेषाधिकपनेकी प्ररूपणा की है। अन्यथा एक समय अधिक आदिसे लेकर दो छयासठ सागरोपम कालके जितने समय होते हैं उतने सब विकल्प प्राप्त होते हैं ऐसा यहाँ कहना चाहिए। इसी प्रकार तदनुसार स्थितिकाण्डकका भी विशेष अधिकपना जान लेना चाहिए।

§ ३३. अथवा दो जीवोंमेंसे एक जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर तथा नीचे उतरकर अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहरा रहा। पुनः अन्य एक जीव बादमें उपशमश्रेणिपर चढ़कर नीचे उतरा। इसप्रकार उतरकर ये दोनों जीव एक कालमें ही दर्शनमोहकी क्षपणाका आरम्भ कर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अवस्थित हुए। इस प्रकार अवस्थित हुए इन दोनोंमेंसे पहले जीवके स्थितिसत्कर्मसे पिछले जीवका स्थितिसत्कर्म विशेष अधिक होता है, क्योंकि पहले जीवके स्थितिसत्कर्मकी अधःस्थिति अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अधिक गल गई है। इसी प्रकार एक जीवके स्थितिकाण्डकसे दूसरे जीवके स्थितिकाण्डककी भी उसी प्रकार योजना कर लेनी चाहिये।

विशेषार्थ—दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जो दो जीव एक साथ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रवेश करते हैं उन दोनोंके परस्पर स्थितिसत्कर्म समान या असमान कैसे होते हैं

---

१. ता०प्रतौ एगो बेछावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो। एवमब्भुट्ठिदाण- इति पाठः।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री § ३४. संपहि संखेज्जगुणस्स ट्ठिदिसंतकम्मस्स ठिदिखंडयस्स च संभवविसयप्पदंसणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

तं जहा ।

§ ३५. सरिसट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं ट्ठिदिसंतकम्मं च सुगममिदि तमुल्लंघियूण संखेज्जगुणट्ठिदिसंतकम्मट्ठिदिखंडयविसयमेवेदं पुच्छासुत्तमुवइट्ठं दट्ठव्वं ।

दोण्हं जीवाणमेक्को कसाए उवसामेयूण खीणदंसणमोहणीयो जादो । एक्को कसाए अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो । जो अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

इस तथ्यका यहाँ विचार करते हुए सदृशपनेका और विसदृश होकर भी विशेषाधिकपनेका सयुक्तिक विचार किया गया है । सदृशपनेका विचार करते हुए जो कुछ बतलाया है उसका आशय यह है कि ऐसे दो जीव जो जिन्होंने एक साथ प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्तकर अनन्तर एक साथ ही अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है । समझो, पुनः वे ही दोनों जीव एक साथ दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर क्रमसे एक साथ ही अपूर्वकरणमें प्रवेश करते हैं तो उन दोनोंके स्थितिसत्कर्म सदृश ही होते हैं । विसदृशपनेका स्पष्टीकरण करते हुए जो कुछ बतलाया है उसका एक प्रकार तो यह है कि ऐसे दो जीव जो जिन्होंने दर्शनमोहकी क्षपणासे पूर्व अन्य सब कार्य तो कालभेदसे किये हैं, किन्तु दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेमें यदि समय भेद नहीं हुआ तो उनके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें एक साथ प्रवेश करनेपर भी स्थितिसत्कर्ममें असमानता बन जाती है । इसे स्पष्ट करते हुए जयधवलामें बतलाया है कि एक जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर उतरा तथा ठहरा रहा । पुनः दूसरा जीव अन्तर्मुहूर्त बाद उपशमश्रेणिपर चढ़कर उतरा । इसके बाद इन दोनोंने दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भकर एक साथ अपूर्वकरणमें प्रवेश किया तो उनके स्थितिसत्कर्ममें नियमसे विसदृशता होगी । इन दोनों जीवोंमें समान क्रिया करनेमें जितने कालका बीचमें अन्तर हुआ, पहले जीवका स्थितिसत्कर्म दूसरे जीवकी अपेक्षा उतना ही अधिक होगा । यह एक प्रकार है । दूसरा प्रकार दो छ्यासठ सागरोपम काल तक एक जीवके परिभ्रमण करने और दूसरे जीवके परिभ्रमण न करनेकी अपेक्षा बतलाया गया है । इस प्रकार नाना जीवोंके स्थितिकर्ममें विसदृशता बन जानेसे दर्शनमोहके क्षपकोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें भी विसदृशता बन जाती है, भले ही उन्होंने एक साथ अपूर्वकरणमें प्रवेश किया हो ।

§ ३४. अब संख्यातगुणा स्थितिसत्कर्म और स्थितिकाण्डक सम्भव है इसका विषयको दिखलानेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* वह जैसे ।

§ ३५. सदृश स्थितिसत्कर्म और विशेष अधिक स्थितिसत्कर्म सुगम हैं, इसलिए उनका उल्लंघनकर संख्यातगुणे स्थितिसत्कर्म और स्थितिकाण्डक विषयक ही यह पृच्छासूत्र कहा गया जानना चाहिए ।

*** दो जीवोंमेंसे एक जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर और कषायोंका उपशमनकर दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ । दूसरा जीव कषायोंका उपशम किये बिना**

§ ३६. एत्थ खीणदंसणमोहणीयभाविणो अपुव्वकरणस्सेव खीणदंसणमोहववएसो त्ति कादूण सुत्तत्थपरूवणा एवमणुगंतव्वा। तं जहा—दोण्हं जीवाणं मज्झे एक्को उवसमसेढिं चढिय अपुव्वाणियट्टिकरणेहिं ट्ठिदीए संखेज्जे भागे घादेदूण संखेज्जदि-भागं परिसेसिय तदो कमेण कसाये उवसामेयूण हेट्ठा परिवडिय अंतोमुहुत्तेण विसोहिं पूरेदूण दंसणमोहक्खवणं पट्ठविय खीणदंसणमोहणीयभाविओ अपुव्वकरणो जादो। अण्णेगो कसाए अणुवसामेयूण दंसणमोहक्खवणमाढविय खीणदंसणमोहभाविओ अपुव्वकरणो जादो। एवमेदेसिमपुव्वकरणपढमसमए वट्टमाणाणं मज्झे जो कसाए अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहपज्जायाहिमुहो जादो तस्स ट्ठिदिसंतकम्ममियरस्स ट्ठिदिसंतकम्मं पेक्खियूण संखेज्जगुणं होइ। किं कारणं? उवसमसेढीए अपुव्वकरणादि-परिणामेहिं पुव्वमपत्तघादत्तादो। एवं ट्ठिदिखंडयस्स वि संखेज्जगुणत्तं वत्तव्वं। एवमेदं परूविय संपहि एत्थुद्देसे अण्णं पि विचारं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

जो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसाए उवसामेदि जो वा दंसणमोहणीयमक्खवेदूण कसाए उवसामेइ तेसिं दोण्हं पि जीवाण

दर्शनमोहकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ। इनमेंसे जो जीव कषायोंका उपशम किये बिना क्षीण दर्शनमोहनीय हुआ है उसका स्थितिसत्कर्म प्रथम जीवकी अपेक्षा संख्यात-गुणा अधिक होता है।

§ ३६. यहाँपर जिसका भविष्यमें दर्शनमोहनीय क्षीण होगा ऐसे अपूर्वकरण जीवकी ही 'क्षीणदर्शनमोह' संज्ञा है ऐसा समझकर सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा इस प्रकार जाननी चाहिए। यथा—दो जीवोंमेंसे एक जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करण परिणामोंके द्वारा स्थितिके संख्यात बहुभागका घात कर और संख्यातवें भागको शेष रखकर अनन्तर क्रमसे कषायोंका उपशमकर तथा नीचे उतरकर अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा विशुद्धि को पूरकर तथा दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भकर भविष्यमें जिसका दर्शनमोहनीय क्षीण होगा ऐसा अपूर्वकरण परिणामवाला हो गया। तथा अन्य एक जीव कषायोंका उपशम किये बिना दर्शनमोहकी क्षपणाका आरम्भकर जिसका अन्तर्मुहूर्तमें दर्शनमोहनीयका क्षय होगा ऐसा अपूर्वकरण परिणामवाला हो गया। इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विद्यमान इन दोनोंमेंसे जो कषायोंका उपशम किये बिना दर्शनमोहके क्षयसे उत्पन्न हुई पर्यायके अभि-मुख हुआ है उसका स्थितिसत्कर्म दूसरेके स्थितिसत्कर्मको देखते हुए संख्यातगुणा पाया जाता है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें अपूर्वकरण आदि परिणामोंके द्वारा पूर्वमें उसकी स्थितिका घात नहीं हुआ है। इसी प्रकार उसके स्थितिकाण्डक भी संख्यातगुणा कहना चाहिए। इस प्रकार इसका कथनकर इस स्थलपर अन्य तथ्यका भी विचार करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जो जीव पहले दर्शनमोहनीयका क्षय करके बादमें कषायोंका उपशम करता है अथवा जो जीव दर्शनमोहनीयका क्षय किये बिना कषायोंका उपशम करता है उन**

कसायेसु उवसंतेसु तुल्लकाले समधिच्छिदे तुल्लं ठिदिसंतकम्मं।

§ ३७. एदेसिं दोण्हमणंतरणिरुद्धजीवाणं कसाएसु उवसंतेसु तुल्ले च विस्समणकाले अधट्ठिदिगालणवावारेण समइक्कंते संते सरिसं चेव ट्ठिदिसंतकम्मं होइ, ण विसरिसमिदि वुत्तं होइ। किं कारणं? जो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेमाणो जीवो सो जइ वि अप्पणो ठिदिसंतकम्मस्स संखेज्जे भागे हणइ तो वि सो तेण घादिज्जमाणो ठिदिविसेसो चरित्तमोहोवसामगेण घादिज्जमाणट्ठिदिविसेसस्स अंतो चेव णिवददि तत्तो बहिब्भूदस्स तस्साणुवलंभादो। खविददंसणमोहणीओ कसाये उवसामेमाणो सेसोवसामगेण घादिदावसेसट्ठिदिसंतकम्मादो हेट्ठदो पेल्लियूण किण्ण घादेदि त्ति चे? ण, तत्तो हेट्ठा तस्स घादणसत्तीए असंभवादो। कुदो एवं णव्वदे? एदम्हादो चेव सुत्तादो। तदो दोण्हं पि अप्पप्पणो विधाणेणागंतूण कसायोवसामणाए अब्भुट्ठिदाणमणियट्टिपढमट्ठिदिखंडये णिवदिदे तदो प्पहुडि सव्वत्थेव ट्ठिदिसंतकम्मं सरिसं चेव होइ त्ति सिद्धं।

दोनों ही जीवोंके कषायोंके उपशान्त होकर समान काल व्यतीत होनेपर समान स्थितिसत्कर्म होता है।

§ ३७. अनन्तर विवक्षित हुए इन दोनों जीवोंके कषायोंके उपशान्त होनेपर और अधःस्थितिगालनरूप व्यापारके द्वारा समान विश्रामकालके व्यतीत होनेपर स्थितिसत्कर्म समान ही होता है, विसदृश नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि जो पहले दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाला जीव है वह यद्यपि अपने स्थितिसत्कर्मके संख्यातबहुभागका घात करता है तो भी उसके द्वारा घाता जानेवाला वह स्थितिविशेष चारित्रमोहनीयके उपशामक द्वारा घाते जानेवाले स्थितिविशेषके भीतर ही पतित होता है, उससे अधिक वह नहीं पाया जाता।

शंका—जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसा जीव कषायोंका उपशम करता हुआ दूसरे उपशामकके द्वारा घात करनेसे शेष रहे स्थितिसत्कर्मसे नीचे अपकर्षणकर क्यों नहीं घातता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उससे नीचे उसके घात करनेकी शक्तिका पाया जाना असम्भव है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

इसलिये अपनी-अपनी विधिसे आकर कषायोंकी उपशमना करनेके लिये उद्यत हुए दोनों ही जीवोंके अनिवृत्तिकरणके प्रथम स्थितिकाण्डकके पतित होनेपर वहाँसे लेकर सर्वत्र ही स्थितिसत्कर्म सदृश ही होता है यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—यहाँ यह बतलाया है कि चाहे दर्शनमोहनीयका क्षयकर कषायोंका उप-

§ ३८. संपहि एगो जीवो कसाये उवसामेयूण पच्छा दंसणमोहणीयस्स खवगो जादो। अण्णेगो पुव्वमेव दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसायोवसामणाए वावदो। एदेसिं दोण्हं जीवाणं णिट्ठिदकिरियाणं समाणसमये वट्टमाणाणं ट्ठिदि-संतकम्माणि किं सरिसाणि होंति, आहो विसरिसाणि त्ति एवंविहासंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तर-सुत्तमाह—

* जो पुव्वं कसाये उवसामेयूण पच्छा दंसणमोहणीयं खवेइ, अण्णो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाए उवसामेइ एदेसिं दोण्हं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पि खीणदंसणमोहणीयाणं खवणाकरणेसु उवसमकरणेसु च णिट्ठिदेसु तुल्ले काले विदिक्कंते जेण पच्छा दंसणमोहणीयं खविदं तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। जेण पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाया उवसामिदा तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ ३९. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—दोण्हमेदेसिं जीवाणं खीण-दंसणमोहणीयाणं खवणाकरणेसु उवसामणाकरणेसु च अधापवत्तभेदभिण्णेसु जहा-णिद्धारिदेण कमेण णिट्ठिदेसु तुल्ले च विस्समणकाले विदिक्कंते जेण पच्छा दंसण-

---

शम करनेवाला जीव हो, चाहे दर्शनमोहनीयका क्षय किये विना कषायोंका उपशम करनेवाला जीव हो। इन दोनोंके अनिवृत्तिकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डकका पतन होनेपर जो स्थिति शेष रहती है वह समान ही होती है। प्रथम जीवके दूसरे जीवकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डकके पतनके बाद और कम स्थिति नहीं हो सकती। उक्त शंका—समाधानका भी यही तात्पर्य है।

§ ३८. अब एक जीव कषायोंका उपशम करके बादमें दर्शनमोहनीयका क्षपक हुआ। तथा अन्य एक जीव पहले ही दर्शनमोहनीयका क्षय करके बादमें कषायोंकी उपशामनामें व्यापृत हुआ। अपनी क्रियाको समाप्तकर समान समयमें वर्तमान इन दोनों जीवोंके स्थिति-सत्कर्म क्या सदृश होते हैं या विसदृश होते हैं ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* जो पहले कषायोंको उपशमाकर बादमें दर्शनमोहनीयका क्षय करता है और अन्य जीव पहले दर्शनमोहनीयका क्षय कर बाद में कषायोंको उपशमाता है, दर्शन-मोहनीयका क्षय करनेवाले इन दोनों ही जीवोंके क्षपणाकरण और उपशमनाकरणके समाप्त होकर तुल्यकालके व्यतीत होनेपर जिसने बादमें दर्शनमोहनीयका क्षय किया है उसका स्थितिसत्कर्म थोड़ा होता है। जिसने पहले दर्शनमोहनीयका क्षय कर बादमें कषायोंको उपशमाया है उसका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा होता है।

§ ३९. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा—जिन्होंने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसे इन दोनों जीवोंके अधःप्रवृत्तभेदसे भेदको प्राप्त हुए क्षपणाकरणों और उपशामनाकरणों-के यथानिर्धारित क्रमसे सम्पन्न होनेपर तथा समान विश्रामकालके व्यतीत हो जानेपर जिसने

मोहणीयं खविदं तस्स ट्ठिदिसंतकम्ममियरट्ठिदिसंतकम्मादो थोवयरं होइ। किं कारणं ? कसायोवसामणापरिणामेहिं पत्तघादस्स तस्स पुणो वि दंसणमोहक्खवणपरिणामेहिं घाददंसणादो। जेण पुण पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसाया उवसामिदा तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं पुव्विल्लादो संखेज्जगुणं होदि। किं कारणं ? दंसणमोह-क्खवणाणिबंधणट्ठिदिघादजणिदविसेसस्स पुणरुत्तभावेण तत्थाणुवलंभादो। तं पि कुदो ? कसायोवसामगेण घादिज्जमाणट्ठिदिविसए चेव तस्स पवुत्तिदंसणादो। णेदमसिद्धं, अक्खविददंसणमोहणीयस्सियरस्स च कसायोवसामणाए वावदस्स घादिदावसेसट्ठिदि-संतकम्माणं सरिसभावब्भुवगमेण सिद्धत्तादो। एदं सव्वं पसंगागदं विचारिदं,

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दंसणमोहक्खवगापुव्वकरणपढमसमये सव्वस्सेदस्सत्थविचारस्स संभवाणुवलंभादो। एत्थ पुण पयदोवजोगियमेत्तियं चेव—कसाये उवसामेयूण पच्छा खीणदंसणमोहभाविणो अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठिदिखंडयं च अणुवसामिदकसायस्स खीण-दंसणमोहभाविणो अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मादो ट्ठिदिखंडयादो च संखेज्जगुणहीणमिदि। संपहि अपुव्वकरणपढमसमयादो आढविय ट्ठिदिखंडयादि-परूवणं परिवाडीए कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

बादमें दर्शनमोहनीयका क्षय किया है उसका स्थितिसत्कर्म दूसरेके स्थितिसत्कर्मसे बहुत थोड़ा होता है, क्योंकि कषायोंको उपशमानेवाले परिणामोंसे घातको प्राप्त हुई स्थितिका फिर भी दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले परिणामोंके द्वारा घात देखा जाता है। परन्तु जिसने पहले दर्शनमोहनीयका क्षयकर बादमें कषायोंको उपशमाया है उसका स्थितिसत्कर्म पूर्वमें कहे गये उक्त जीवके स्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणा होता है, क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणाके निमित्तसे होनेवाले स्थितिघातसे उत्पन्न हुआ विशेष पुनरुक्तरूपसे वहाँ नहीं पाया जाता।

शंका—वह भी कैसे ?

समाधान—कषायोंको उपशमानेवालेके द्वारा घाती जानेवाली स्थितिमें ही उसकी प्रवृत्ति देखी जाती है। यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि जो जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणा किये बिना कषायोंके उपशमानेमें व्यापृत होता है और जो जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकर कषायोंके उपशमानेमें व्यापृत होता है उन दोनोंका घात करनेसे शेष बचा स्थिति सत्कर्म सदृशरूपसे स्वीकार किया गया है, इससे उक्त कथन सिद्ध है।

प्रसंग प्राप्त इस सबका विचार किया, क्योंकि दर्शनमोहके क्षपकके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें इस सब अर्थके विचारकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु यहाँपर प्रकृतमें उपयोगी इतना ही है कि कषायोंको उपशमाकर बादमें दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त स्थिति सत्कर्म और स्थितिकाण्डक जिसने कषायोंको नहीं उपशमाया है ऐसे दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त स्थितिसत्कर्म और स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणा हीन होता है। अब अपूर्वकरणके प्रथम समयसे आरम्भकर स्थितिकाण्डक आदिका कथन परिपाटीक्रमसे करते हुए आगेके सूत्र प्रबन्धको कहते हैं—

※ अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णगेण कम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडगं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तं ।

§ ४०. जो जीवो जहण्णट्ठिदिसंतकम्मेणागंतूण दंसणमोहक्खवणाए पट्ठवगो जादो तस्सापुव्वकरणपढमसमए वट्टमाणस्स आउअवज्जाणं कम्माणं जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं होइ। तं पुण किंपमाणमिदि आसंकाए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो त्ति तप्पमाणणिद्देसो कदो। एदेण पलिदोवमस्सासंखेज्जभागादिवियप्पाणं पडिसेहो कओ दट्ठव्वो। एदं च जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं जहण्णट्ठिदिसंतकम्मपडिबद्धं कस्स होदि त्ति पुच्छिदे जेण कसाया पुव्वमुवसामिदा तस्से त्ति भणामो, तदण्णत्थ पयदविसयट्ठिदिसंतकम्मस्स सव्वजहण्णत्ताणुवलंभादो। उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं पुण जेण कसाया पुव्वमणुवसामिदा तस्स दट्ठव्वं, पुव्विल्लादो एदस्स ट्ठिदिसंतकम्मस्स संखेज्जगुणत्तसिद्धीए अणंतरमेव समत्थियत्तादो तस्सेवुक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं होइ। तस्स च पमाणं सागरोवमपुधत्तमिदि णिच्छेयव्वं ।

※ अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ उपस्थित हुए जीवका स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

---

§ ४०. जो जीव जघन्य स्थिति सत्कर्मके साथ आकर दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रस्थापक हुआ है, अपूर्वकरणके प्रथम समयमें विद्यमान उसके आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिकाण्डक होता है। परन्तु कितने प्रमाणवाला होता है ऐसी आशंका होनेपर वह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है इस प्रकार उसके प्रमाणका निर्देश किया। इस वचनके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण आदि विकल्पोंका प्रतिषेध किया गया जानना चाहिए। जघन्य स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाला यह जघन्य स्थितिकाण्डक किसके होता है ऐसी पृच्छा होनेपर जिसने पहले कषायोंको उपशमाया है उसके होता है ऐसा हम कहते हैं, क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य जीवके प्रकृतमें विवक्षित स्थितिसत्कर्म सबसे जघन्य नहीं उपलब्ध होता। परन्तु उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म जिसने पहले कषायोंको उपशमाया नहीं है उसके जानना चाहिए, क्योंकि पूर्वमें कहे गये उक्त जीवकी अपेक्षा इसका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा होता है इसका समर्थन अनन्तर पूर्व ही कर आये हैं। उसीके उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक होता है। और वह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँपर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकाण्डक किसके होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक किसके होता है और उनका प्रमाण कितना है इन सब बातोंका खुलासा करते हुए बतलाया है कि जो जीव उपशमश्रेणिसे उतरकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है उसके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिसत्कर्म होनेसे जघन्य स्थितिकाण्डक होता है, जिसका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है। तथा जो जीव कषायोंको उपशमाये बिना दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है उसके अपूर्वकरणके प्रथम

§ ४१. संपहि तत्थेव ट्ठिदिबंधोसरणस्स पमाणविसेसावहारणट्ठमिदमाह—

*** ट्ठिदिबंधादो जाओ ओसरिदाओ ट्ठिदीओ ताओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।**

§ ४२. अधापवत्तकरणचरिमसमयभाविणो तप्पाओग्गंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधादो जाओ ट्ठिदीओ एण्हिमोसारिदाओ तासिं पमाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेवेत्ति णिच्छेयव्वं । संपहि तत्थेवाणुभागखंडयपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

*** अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडयपमाणमणुभागफद्दयाणमणंता भागा आगाइदा ।**

§ ४३. पुव्वमोवट्ठिदाणमणुभागफद्दयाणमणंता भागा आउगवज्जाणं अप्पसत्थाणं कम्माणं अणुभागखंडयमागाइदा । पसत्थाणं कम्माणमाउअस्स च विसोहीए अणुभागखंडयघादाभावादो । एत्थाणुभागखंडयमाहप्पजाणावणट्ठमप्पाबहुअं पुव्वं व कायव्वं । संपहि एत्थेवाउगवज्जाणं सव्वकम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो वि पारद्धो त्ति पदुप्पायणट्ठमिदमाह[1]—

समयमें पूर्वके स्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म होनेसे सागरोपम पृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक होता है ।

§ ४१. अब यहींपर स्थितिबन्धापसरणके प्रमाणविशेषका अवधारण करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** पिछले स्थितिबन्धसे यहाँपर जिन स्थितियोंका अपसरण किया है वे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।**

§ ४२. अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें होनेवाले तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिबन्धसे जिन प्रकृतियोंका यहाँपर अपसरण किया है उनका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही है ऐसा निश्चय करना चाहिए । अब यहींपर अनुभागकाण्डकके प्रमाणका निश्चय करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकाण्डकका प्रमाण अनुभागस्पर्द्धकोंका अनन्त बहुभाग ग्रहण किया ।**

§ ४३. पहले अपवर्तित किये गये अनुभाग स्पर्धकोंमेंसे अनन्त बहुभागप्रमाण स्पर्धक आयुकर्मके अतिरिक्त अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागकाण्डकके लिए ग्रहण किये, क्योंकि प्रशस्त कर्मोंका और आयुकर्मका अनुभागकाण्डकघात नहीं होता । यहाँपर अनुभागकाण्डकके माहात्म्यको जाननेके लिए अल्पबहुत्व पहलेके समान करना चाहिए । अब यहींपर आयुकर्मके अतिरिक्त सब कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप भी प्रारम्भ किया इस बातके कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०प्रतौ एत्थाणुभागखंडयमाहप्पजाणावणट्ठमिदमाह इति पाठः ।

*** गुणसेढी उदयावलियबाहिरा ।**

§ ४४. अपुव्वकरणपढमसमए चेव गुणसेढी आढत्ता । सा पुण एत्थ उदयावलियबाहिरा दट्ठव्वा, उदयादिगुणसेढिणिक्खेवस्स एदम्मि विसये संभवाभावादो । तिस्से पुण आयामो एत्थतणापुव्वाणियट्टिकरणद्धादितो विसेसाहियमेत्तो होइ । एत्थेव मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं गुणसंकमो वि पारद्धो त्ति वक्खाणेयव्वं । सुत्ते तहा परूवणा किण्ण कया ? ण, वक्खाणादो चेव तहाविहविसेससिद्धी होदि त्ति सुत्ते तदपरूवणादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** उदयावलिके बाहर गुणश्रेणिकी रचना की ।**

§ ४४. अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ही गुणश्रेणिकी रचना की । किन्तु उसे यहाँपर उदयावलिके बाहर जानना चाहिए, क्योंकि यहाँपर उदयादि गुणश्रेणिका निक्षेप सम्भव नहीं है । परन्तु उसका आयाम यहाँके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक प्रमाण है । तथा यहींपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका गुणसंक्रम भी प्रारम्भ किया ऐसा व्याख्यान करना चाहिए ।

शंका—सूत्रमें उस प्रकारकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानसे ही उस प्रकारके विशेषकी सिद्धि होती है, अतः सूत्रमें उस प्रकारकी प्ररूपणा नहीं की ।

विशेषार्थ—यहाँ अधःप्रवृत्तकरणसे अपूर्वकरणमें उसके प्रथम समयसे लेकर जिन विशेष कार्योंका प्रारम्भ हो जाता है उनका उल्लेख करते हुए बतलाया है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयसे स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात, गुणश्रेणिरचना और गुणसंक्रम ये चार विशेष कार्य प्रारम्भ हो जाते हैं । काण्डक एक पर्व (पोर) या हिस्सेका नाम है । आयुकर्मको छोड़कर शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके कर्मोंकी क्रमसे उपरितन एक-एक काण्डक-प्रमाण स्थितिका फालिक्रमसे एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें घातकर अभाव करना स्थितिकाण्डकघात कहलाता है । जैसे लकड़ीके किसी कुन्देके करवतके द्वारा चीरकर अनेक फलक बना लिये जाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक काण्डकप्रमाण स्थितिके तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण फालि (फलक) बनाकर एक-एक समय द्वारा एक-एक फालिका अभाव करना यह एक स्थितिकाण्डकघात कहलाता है । अपनी-अपनी सत्त्वस्थितिके अनुसार यहाँपर जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है । इसी प्रकार अनुभागकाण्डकघात समझना चाहिए । इतनी विशेषता है कि अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्त कर्मोंका ही होता है, प्रशस्त कर्मोंका नहीं, क्योंकि वहाँ प्राप्त विशुद्धिके कारण आयुकर्मके साथ प्रशस्त कर्मोंके अनुभागका घात नहीं होता । तथा अप्रशस्त कर्मोंका जितना अनुभाग सत्तामें होता है उसके अनन्त बहुभाग प्रमाण अनुभागका प्रथम अनुभागकाण्डक होकर उसका भी फालिक्रमसे अभाव होता है । इसी प्रकार द्वितीयादि अनुभागकाण्डकोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए । विवक्षित कालप्रमाण निषेकोंमें उपरितन स्थितियोंके द्रव्यको अपकर्षण करके गुणित क्रमसे देना गुणश्रेणिनिक्षेप है । यहाँ उदयादि गुणश्रेणि रचना न होकर उदयावलिके बाहर उपरितन प्रथम स्थितिसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण निषेकोंमें उसकी रचना होती है । प्रकृतमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका जितना काल है उससे उक्त अन्तर्मुहूर्त कुछ बड़ा है । प्रत्येक समयमें तत्प्रायोग्य काल तक विवक्षित कर्मपरमाणुओंका

§ ४५. एवमपुव्वकरणपढमसमए समगमाढत्ताणं ट्ठिदि-अणुभागखंडय-तब्बंधोसरणाणं गुणसेढिणिक्खेवस्स च बिदियादिसमएसु कधं पवुत्ती, किमण्णारिसी आहो तारिसी चेवे त्ति एदस्स णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** बिदिसमए तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो, गुणसेढी अण्णा।**

§ ४६. बिदियसमए ताव ट्ठिदि-अणुभागखंडय[1]-ट्ठिदिबंधोसरणेसु णत्थि णाणत्तं, पढमसमयमाढत्ताणं चेव तेसिमंतोमुहुत्तकालमवट्ठिदभावेण पवुत्तिदंसणादो। गुणसेढी पुण अण्णारिसी होइ। किं कारणं? पढमसमयोकड्डिददव्वादो असंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डियूण उदयावलियबाहिरे गलिदसेसायामेण तण्णिक्खेवं करेदि त्ति। तम्हा गुणसेढिणिक्खेवे चेव थोवयरो विसेसो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गुणितक्रमसे अन्य सजातीय प्रकृतियोंमें संक्रमित होना गुणसंक्रम कहलाता है। यहाँ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका गुणसंक्रम प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर ये चार कार्यविशेष प्रारम्भ हो जाते हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

§ ४५. इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयमें एक साथ आरम्भ किये गये स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक, स्थितिबन्धापसरण, अनुभागबन्धापसरण और गुणश्रेणिनिक्षेपकी द्वितीयादि समयोंमें किस प्रकार प्रवृत्ति होती है, क्या अन्य प्रकारकी होती है या उसी प्रकारकी होती है इस प्रकार इसके निर्णयका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ है—

*** दूसरे समयमें वही स्थितिकाण्डक है, वही अनुभागकाण्डक है, वही स्थितिबन्ध है, किन्तु गुणश्रेणि अन्य होती है।**

§ ४६. दूसरे समयमें भी स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धापसरणमें भेद नहीं है, क्योंकि प्रथम समयमें आरम्भ किये गये उन्हींकी अन्तर्मुहूर्त काल तक अवस्थित रूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु गुणश्रेणि अन्य प्रकारकी होती है, क्योंकि प्रथम समयमें जितने द्रव्यका अपकर्षण हुआ है उससे असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षणकर उदयावलिके बाहर गलित शेष आयामरूपसे उसका निक्षेप करता है। इसलिए गुणश्रेणिनिक्षेपमें ही थोड़ी विशेषता है।

विशेषार्थ—यह तो पहले ही बतला आये हैं कि गुणश्रेणि आयाम अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक कालप्रमाण है। यतः यह गलितावशेष गुणश्रेणि है, अतः दूसरे समय उसके आयाममें एक समयकी कमी हो जाती है। इसी प्रकार आगे भी उसके आयाममें एक-एक समयकी कमी तब तक जानना चाहिए जब तक उसकी रचना होती रहती है। साथ ही प्रथम समयमें गुणश्रेणि आयाममें जितने द्रव्यका निक्षेप होता है उससे असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप उसमें दूसरे समयमें होता है। इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप गुणश्रेणि रचनाके अन्तिम समय तक जानना चाहिए।

---

१. ता० प्रतौ ताव अणुभागखंडय- इति पाठः।

*** एवमंतोमुहुत्तं जाव अणुभागखंडयं पुण्णं।**

§ ४७. एवमेदीए विदियसमयपरूवणाए अणूणाहियाए णेदव्वं जाव अंतोमुहुत्तमुवरिं गंतूण पढमाणुभागखंडयं णिट्ठिदमिदि[1]। तम्मि णिट्ठिदे किंचि णाणत्तमत्थि। तं जहा—तं चेव ट्ठिदिखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो, सा चेव पोराणिया उदयावलियबाहिरे गलिदसेसा गुणसेढी। अणुभागखंडयं पुण अण्णमाढविज्जइ, पढमाणुभागखंडयुक्कीरणद्धाए तत्थ परिसमत्तीदो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। पढमट्ठिदिखंडगद्धा पुण णाज्ज वि समप्पदि, तिस्से संखेज्जदिभागमेत्तस्सेव गदत्तादो।

*** एवमणुभागखंडयसहस्सेसु पुण्णेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयं ट्ठिदिबंधमणुभागखंडयं च पट्ठवेइ।**

§ ४८. एवमेदीए परूवणाए संखेज्जसहस्समेत्तेसु अणुभागखंडएसु पुण्णेसु ताधे पढमट्ठिदिखंडयं पढमो ट्ठिदिबंधो तदित्थमणुभागखंडयं च जुगवं परिसमत्ताणि। तक्काले चेव अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णो ट्ठिदिबंधो अण्णं च अणुभागखंडयमाढवेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थणिच्छओ। संपहि पढमट्ठिदिखंडयायामादो विदियादिट्ठिदिखंड-

---

*** इस प्रकार एक अनुभागकाण्डकके पूर्ण अर्थात् व्यतीत होनेके अन्तर्मुहूर्त काल तक जानना चाहिए।**

§ ४७. इसप्रकार दूसरे समयकी न्यूनाधिकतासे रहित इस प्ररूपणाको अन्तर्मुहूर्त काल ऊपर जाकर प्रथम अनुभागकाण्डकके समाप्त होनेतक ले जाना चाहिए। उसके समाप्त होनेपर कुछ भेद है। यथा—वही स्थितिकाण्डक है, वही स्थितिबन्ध है, वही पुरानी उदयावलिके बाहर गलितावशेष गुणश्रेणि है। परन्तु यहाँसे अन्य अनुभागकाण्डकका आरम्भ करता है, क्योंकि प्रथम अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल वहाँ समाप्त हो जाता है यह इस सूत्रका भावार्थ है। परन्तु प्रथम स्थितिकाण्डक काल अभी भी समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि अभी उसका संख्यातवाँ भाग ही व्यतीत हुआ है।

*** इसप्रकार हजारों अनुभागकाण्डकोंके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिकाण्डक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकाण्डकको आरम्भ करता है।**

§ ४८. इसप्रकार इस प्ररूपणाके अनुसार संख्यात हजार अनुभागकाण्डकोंके समाप्त होनेपर उस समय प्रथम स्थितिकाण्डक, प्रथम स्थितिबन्ध और उस कालमें प्रवृत्त अनुभागकाण्डक एक साथ समाप्त होते हैं। तथा उसी समय अन्य स्थितिकाण्डक, अन्य स्थितिबन्ध और अन्य अनुभागकाण्डकको आरम्भ करता है इसप्रकार यह यहाँपर इस सूत्रके अर्थका निश्चय है। अब प्रथम स्थितिकाण्डकके आयामसे दूसरे स्थितिकाण्डकका आयाम सदृश

---

१. ता०प्रतौ णिट्ठिदमिदं इति पाठः।

गाथामो सरिसो विसरिसो वा त्ति आसंकिय तत्तो तस्स विसेसहीणत्तसाहणट्ठ-मप्पाबहुअपबंधमाह—

*** पढमं ट्ठिदिखंडयं बहुअं, विदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं, तदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं।**

§ ४९. एवमेदेसिं ट्ठिदिखंडयाणमणंतराणंतरं पेक्खियूण विसेसहीणभावेण पवुत्ती होइ। एत्थ विसेसहीणभागहारो संखेज्जरूवमेत्तो त्ति घेत्तव्वो। एवं विसेसहाणिकमेण गच्छमाणेसु ट्ठिदिखंडएसु अपुव्वकरणद्धाए केत्तियं पि अद्धाणं गंतूण पढमट्ठिदि-खंडयादो संखेज्जगुणहीणं पि ट्ठिदिखंडयमत्थि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अंतो अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जगुणहीणं पि अत्थि।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ५०. एत्थ अंतो अपुव्वकरणद्धाए त्ति वुत्ते अपुव्वकरणचरिमसमयमपावेयूण हेट्ठा चेय तक्कालब्भंतरे पढमट्ठिदिखंडयादो संखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिखंडयमुवलब्भइ त्ति घेत्तव्वं, अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जाणं ट्ठिदिखंडयगुणहाणीणमुवलंभादो। एवमेदेण विहाणेण संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिबंधसमाणकालपारंभपज्जवसाणेसु पादेक्कमणुभाग-

---

होता है या विसदृश होता है ऐसी आशंका करके उससे उसकी विशेषहीनताकी सिद्धि करनेके लिये अल्पबहुत्वप्रबन्धको कहते हैं—

*** प्रथम स्थितिकाण्डक बहुत है, उससे दूसरा स्थितिकाण्डक विशेष हीन है, उससे तीसरा स्थितिकाण्डक विशेष हीन है।**

§ ४९. इसप्रकार इन स्थितिकाण्डकोंकी अनन्तरपूर्व अनन्तरपूर्व स्थितिकाण्डकको देखते हुए विशेष हीनरूपसे प्रवृत्ति होती है। यहाँपर विशेष हानि लानेके लिये भागहार संख्यात अंक प्रमाण ग्रहण करना चाहिए। इसप्रकार उत्तरोत्तर विशेष हानिके क्रमसे स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणके कितने ही भागको बिताकर प्रथम स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणा हीन भी स्थितिकाण्डक होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** इसप्रकार प्रथम स्थितिकाण्डकसे अपूर्वकरण कालके भीतर संख्यातगुणा हीन भी स्थितिकाण्डक होता है।**

§ ५०. यहाँपर 'अपूर्वकरणकालके भीतर' ऐसा कहनेपर अपूर्वकरणके अन्तिम समयको न प्राप्तकर पहले ही उसके कालके भीतर प्रथम स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणाहीन स्थितिकाण्डक उपलब्ध होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अपूर्वकरणके कालमें संख्यात स्थितिकाण्डक गुणहानियाँ उपलब्ध होती हैं। इसप्रकार इस विधानसे जिनका प्रारम्भ और समाप्ति स्थितिबन्धके कालके समान है और जिनमेंसे प्रत्येक हजारों अनुभागकाण्डकोंका

खंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु तदो अपुव्वकरणद्धाचरिमसमयमेसो पावदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

※ एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं पत्तो ।

§ ५१. गयत्थमेदं सुत्तं ।

※ तत्थ अणुभागखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च समगं समत्तो ।

§ ५२. गयत्थमेदं पि सुत्तं ।

§ ५३. एवमपुव्वकरणे ट्ठिदिखंडयादिपरूवणं समाणिय संपहि तत्थेव ट्ठिदि-

---

अविनाभावी है ऐसे हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर तदनन्तर अपूर्वकरणकालके अन्तिम समयको यह जीव प्राप्त करता है इस बातके कथनके लिये आगेके सूत्रका अवतार है—

※ इस क्रमसे अनेक हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणके कालके अन्तिम समयको प्राप्त होता है ।

§ ५१. यह सूत्र गतार्थ है ।

※ वहाँ अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल, स्थितिकाण्डकका उत्कीरण काल और स्थितिबन्धकाल एक साथ समाप्त होते हैं ।

§ ५२. यह सूत्र भी गतार्थ है ।

विशेषार्थ—यहाँ उक्त सब कथनका तात्पर्य यह है कि अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकाण्डकका जितना आयाम है, उससे दूसरेका विशेषहीन है, दूसरेसे तीसरेका विशेषहीन है । यह क्रम अपूर्वकरणके अन्तिम स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक जानना चाहिए । किन्तु इसप्रकार प्रथम स्थितिकाण्डकके आयामकी अपेक्षा आगेके स्थितिकाण्डकोंके आयामको देखा जाय तो अपूर्वकरणके कालके भीतर ही मध्यके स्थितिकाण्डकका आयाम प्रथम स्थितिकाण्डकके आयामसे संख्यातगुणा हीन हो जाता है और इसप्रकार अपूर्वकरणके समस्त कालके भीतर संख्यात स्थितिकाण्डक गुणहानियाँ प्राप्त हो जाती हैं । यह तो एक विशेषता हुई । दूसरी विशेषता यह है कि यहाँ सर्वत्र प्रत्येक स्थितिकाण्डकका काल और स्थितिबन्धका काल समान होता है । इसका तात्पर्य यह है कि अपूर्वकरणमें जितने स्थितिकाण्डकघात होते हैं, उतने ही स्थितिबन्धापसरण भी होते हैं, क्योंकि दोनोंका काल समान है । तीसरी विशेषता यह है कि एक-एक स्थितिकाण्डकघातके कालमें हजारों अनुभागकाण्डकघात होते हैं । चौथी विशेषता यह है कि अपूर्वकरणके कालके समाप्त होनेके साथ वहाँ प्राप्त अनुभाग काण्डक उत्कीरणकाल, स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल ये तीनों एक साथ समाप्त होते हैं ।

§ ५३. इसप्रकार अपूर्वकरणमें स्थितिकाण्डक आदिकी प्ररूपणा समाप्त करके अब

संतकम्मगयविसेसपरूवणट्ठमिदमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** चरिमसमयअपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं ।**

§ ५४. कुदो ? संखेज्जसहस्सेहिं ट्ठिदिखंडएहिं घादिदावसेसपमाणत्तादो ।

*** पढमसमय-अपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**

§ ५५. कुदो ? अपुव्वकरणपरिणामेहिं अपत्तघादत्तादो । णवरि णाणावरणादीण-मपुव्वकरणचरिमसमए ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडिमेत्तं चेव होइ, दंसण-मोहणीयस्स पुण विसेसघादवसेण सागरोवमलक्खपुधत्तमेत्तमंतोकोडाकोडीए होइ त्ति घेत्तव्वं । ट्ठिदिबंधो वि णाणावरणादिकम्मविसयो एदेणेवप्पाबहुअविहिणा अपुव्व-करणपढमसमयभाविओ होदि त्ति पदुप्पायणफलमुत्तरसुत्तं—

*** ट्ठिदिबंधो वि पढमसमयअपुव्वकरणे बहुगो चरिमसमयअपुव्व-करणे संखेज्जगुणहीणो ।**

§ ५६. ट्ठिदिबंधोसरणवसेण तेसिं तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो । एव-मपुव्वकरणपरूवणा समत्ता ।

*** पढमसमयअणियट्टिकरणपविट्ठस्स अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणु-भागखंडयमपुव्वो ट्ठिदिबंधो, तहा चेव गुणसेढी ।**

वहींपर स्थितिसत्कर्मगत विशेषताका कथन करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें स्थितिसत्कर्म थोड़ा है ।**

§ ५४. क्योंकि संख्यात हजारों स्थितिकाण्डकोंका घात होकर उक्तप्रमाण स्थिति-सत्त्व शेष रहा है ।

*** उससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ ५५. क्योंकि अपूर्वकरणरूप परिणामोंके द्वारा अभी उसका घात नहीं हुआ है । इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिसत्कर्म अन्तः-कोड़ाकोड़ीप्रमाण ही है, परन्तु विशेष घातके कारण दर्शनमोहनीय कर्मका अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ज्ञानावरणादि कर्मविषयक स्थितिबन्ध भी इसी अल्पबहुत्व विधिके अनुसार होता है इस विषयका कथन करना उत्तर सूत्रका प्रयोजन है—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्ध भी बहुत होता है तथा अपूर्व-करणके अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन होता है ।**

§ ५६. क्योंकि स्थितिबन्धापसरण होनेके कारण स्थितिबन्धके उक्त प्रकारसे सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती । इस प्रकार अपूर्वकरण-प्ररूपणा समाप्त हुई ।

*** अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके अपूर्व स्थितिकाण्डक होता**

§ ५७. एत्तो पहुडि अणियट्टिकरणविसया परूवणा दट्ठव्वा। तत्थ ताव पढमसमयअणियट्टिकरणस्स अपुव्वकरणचरिमट्ठिदिखंडयादो विसेसहीणमण्णं ट्ठिदिखंडयं होइ। तं पुण जहण्णेण ट्ठिदिसंतकम्मेण उवट्ठिदस्स जहण्णं होइ। उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स उक्कस्सं। जहण्णादो उक्कस्सं संखेज्जभागुत्तरं होइ। विदियादिट्ठिदिखंडयाणि पुण सव्वेसिं जीवाणं सरिसाणि चेव, तत्थ विसरिसत्ते कारणाणुवलद्धीदो। एदं दंसणमोहणीयं पडुच्च परूविदं, सेसाणं कम्माणं जाणिय वत्तव्वं। तत्थेवाणियट्टिकरणपढमसमए अण्णमणुभागखंडयं, चरिमसमयापुव्वकरणेण घादिदसेसाणुभागसंतकम्मस्साणंता भागपमाणमागाइदं। ट्ठिदिबंधो वि अपुव्वो, अणंतरहेट्ठिमादो पलिदोवमस्स संखेज्जभागेण परिहीणो तत्थेवाढत्तो। गुणसेढी पुण तहा चेव गलिदसेसायामेण उदयावलियबाहिरे णिक्खित्ता असंखेज्जगुणा च। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं गुणसंकमो वि तहा चेव पयट्टदि त्ति वत्तव्वं, सुत्तणिद्देसाभावे वि तस्स अत्थावत्तिगम्मस्स वक्खाणे विरोहाभावादो।

है, अपूर्व अनुभागकाण्डक होता है, अपूर्व स्थितिबन्ध होता है तथा गुणश्रेणि पूर्वोक्त प्रकारकी ही होती है।

§ ५७. यहाँसे आगे अनिवृत्तिकरणविषयक प्ररूपणा जाननी चाहिए। उसमें अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अपूर्वकरणके अन्तिम स्थितिकाण्डकसे विशेष हीन अन्य स्थितिकाण्डक होता है। किन्तु वह जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ उपस्थित हुए जीवके जघन्य होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मके साथ उपस्थित हुए जीवके उत्कृष्ट होता है। तथा जघन्यसे उत्कृष्ट संख्यातवाँ भाग अधिक होता है। परन्तु द्वितीयादि स्थितिकाण्डक सभी जीवोंके सदृश होते हैं, क्योंकि वहाँ उनके विसदृश होनेका कारण नहीं पाया जाता। यह दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा कहा है, शेष कर्मोंका जानकर कहना चाहिए। वहीं अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्य अनुभागकाण्डक होता है, क्योंकि अपूर्वकरण परिणामके द्वारा अन्तिम समयमें घात करनेसे शेष रहे अनुभागसत्कर्मका अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभाग अनुभागकाण्डकरूपसे ग्रहण किया। स्थितिबन्ध भी अपूर्व होता है, क्योंकि अनन्तर अधस्तन स्थितिबन्धसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन स्थितिबन्ध वहाँपर ग्रहण किया। परन्तु गुणश्रेणि पहलेके समान ही गलित शेष आयामवाली उदयावलिके बाहर निक्षिप्त की, जो कि पिछले समयकी अपेक्षा असंख्यातगुणे परिमाणको लिए हुए निक्षिप्त की। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका गुणसंक्रम भी उसी प्रकार प्रवृत्त रहता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए, सूत्रमें इसका निर्देश नहीं होनेपर भी अर्थापत्तिगम्य उसका व्याख्यान करनेमें विरोधका अभाव है।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें जो स्थितिकाण्डक आदि प्रवृत्त थे वे वहीं समाप्त हो जाते हैं और अनिवृत्तिकरणमें नया स्थितिकाण्डक, नया अनुभागकाण्डक और नया स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। मात्र गुणश्रेणिका क्रम पहलेके समान ही चालू रहता है। जैसे पहले अपूर्वकरणमें गलित शेष आयामरूपसे उदयावलिके बाहर गुणश्रेणिका द्रव्य निक्षिप्त होता था वैसे अब भी निक्षिप्त होता है और जैसे पहले पिछले समयसे अगले समयमें

मार्गदर्शक - आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** अणियट्टिकरणस्स पढमसमये दंसणमोहणीयमपसत्थमुवसामणाए अणुवसंतं, सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुवसंताणि च ।**

§ ५८. एदेण सुत्तेण अणियट्टिकरणपविट्ठपढमसमए चेव मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पसत्थोवसामणाकरणस्स हेट्ठा सव्वत्थेव अप्पडिहयपसरस्स विणासो परूविदो । का अप्पसत्थउवसामणा णाम ? कम्मपरमाणूणं बज्झंतरंगकारणवसेण केत्तियाणं पि उदीरणावसेण उदयाणागमपइण्णा अप्पसत्थउवसामणा त्ति भण्णदे । एवंविहा पइण्णा इदाणिं विणट्ठा, सव्वासिं ठिदीणं सव्वे चेव परमाणू ओकड्डिदूणुदीरेदुं सक्कणिज्जा संजादा त्ति भावत्थो । ण केवलमप्पसत्थोवसामणा चेव थक्का, किंतु णिधत्त-णिकाचिदकरणाणि वि दंसणमोहतियस्स णट्ठाणि त्ति वत्तव्वं, तेसिं पि अप्पसत्थोवसामणाभेदत्तादो । सेसकम्माणि अप्पसत्थोवसामणाए उवसंताणि च अणुवसंताणि च दट्ठव्वाणि, तेसिमेत्थ पुव्वपइण्णापरिच्चागेणेवावट्ठाणादो ।

गुणश्रेणिमें असंख्यातगुणे परमाणुओंका निक्षेप होता था, वही क्रम यहाँ भी चालू रहता है। तथा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका गुणसंक्रम भी पहलेके समान ही होता रहता है।

*** अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयकर्म अप्रशस्त उपशामनारूपसे अनुपशान्त हो जाता है, शेष कर्म उपशान्त और अनुपशान्त दोनों प्रकारके रहते हैं।**

§ ५८. मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जो अप्रशस्त उपशामनाकरण पहले सर्वत्र ही अप्रतिहत प्रसारवाला था उसका इस सूत्र द्वारा अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होनेके प्रथम समयमें ही विनाश कहा गया है।

शंका—अप्रशस्तोपशामना किसे कहते हैं ?

समाधान—कितने ही कर्म परमाणुओंका बहिरंग-अन्तरंग कारणवश उदीरणा द्वारा उदयमें अनागमनरूप प्रतिज्ञाको अप्रशस्तोपशामना कहते हैं।

इस प्रकारकी प्रतिज्ञा इस समय नष्ट हो गई, क्योंकि सभी स्थितियोंके सभी परमाणु अपकर्षण द्वारा उदीरणा करनेके लिए समर्थ हो गये हैं यह उक्त कथनका भावार्थ है। उक्त तीनों प्रकृतियोंकी केवल अप्रशस्त उपशामना ही विच्छिन्न नहीं हुई, किन्तु दर्शनमोहत्रिकके निधत्तिकरण और निकाचितकरण भी नष्ट हो गये ऐसा यहाँ कहना चाहिए, क्योंकि वे भी अप्रशस्त उपशामनाके भेद हैं। शेष कर्मोंकी अप्रशस्त उपशामना उपशान्त और अनुपशान्त दोनों प्रकारकी जाननी चाहिए, क्योंकि उनका यहाँपर पूर्व प्रतिज्ञाके त्याग बिना ही अवस्थान बना रहता है।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते समय अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके पूर्वतक सर्वत्र मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कितने ही परमाणुओंके यथास्थान यथासम्भव अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचितकरण चालू रहते हैं। इसका यह तात्पर्य है कि उक्त करणमें प्रवेश करनेके पूर्वतक सर्वत्र दर्शनमोहनीयत्रिकके कुछ ऐसे भी परमाणु होते हैं जो उदीरणा रूपसे उदयके अयोग्य होते हैं, कुछ ऐसे भी परमाणु

*** अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडीए[1]। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडाकोडीए।**

§ ५९. एदेण सुत्तेणाणियट्टिकरणपढमसमए सव्वेसिं कम्माणमाउगवज्जाणं ट्ठिदिसंतकम्मपरूवणावहारणं कीरदे। तत्थ ताव दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तमंतो कोडीए होदूण ट्ठिदं, तस्स विसेसघादवसेण तहाभावोववत्तीदो। सेसाणं सव्वकम्माणं णाणावरणादीणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए संजादं, तेसिमेत्थ विसेसघादाभावादो।

*** तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं समगं।**

होते हैं जो उदीरणारूपसे उदयके अयोग्य और संक्रमके अयोग्य होते हैं और कुछ ऐसे भी परमाणु होते हैं जो इन दोनोंके साथ उपकर्षण और अपकर्षणके भी अयोग्य होते हैं। किन्तु क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें ही ये तीनों करण नष्ट हो जाते हैं। यहाँ सूत्रमें केवल अप्रशस्त उपशामना करणके नष्ट होनेका निर्देश किया है और टीकामें इसके साथ निधत्तिकरण और निकाचितकरणके नष्ट होनेका भी निर्देश किया है। प्रश्न यह है कि चूर्णिसूत्रमें ही उक्त तीनों करणोंके नष्ट होनेका निर्देश क्यों नहीं किया ? इसका जो समाधान किया गया है उसका आशय यह है कि निधत्ति और निकाचितकरणका अप्रशस्त उपशामनाके भेद स्वीकार करनेसे उनका भी ग्रहण हो जाता है, क्योंकि व्यापक दृष्टिसे विचार करनेपर उक्त दोनों करणोंका भी अप्रशस्त उपशामनामें ही अन्तर्भाव हो जाता है।

*** अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म एक कोटिके भीतर शतसहस्रपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होता है और शेष कर्मोंका स्थितिसत्कर्म कोड़ाकोड़ीके भीतर कोटिशतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण होता है।**

§ ५९. इस सूत्र द्वारा अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें आयुकर्मके अतिरिक्त सब कर्मोंके स्थितिसत्कर्मका निश्चय किया गया है। उनमेंसे दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म तो एक कोटिके भीतर शतसहस्रपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होकर स्थित होता है, क्योंकि विशेष घात वश उसकी उस प्रकारकी व्यवस्था बन जाती है। परन्तु शेष ज्ञानावरणादि सब कर्मोंका स्थितिसत्कर्म कोड़ाकोड़ीके भीतर कोटिशतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण हो जाता है, क्योंकि उनके यहाँ विशेष घातका अभाव है।

विशेषार्थ—तात्पर्य यह है कि दर्शनमोह क्षपक अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म लक्षपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होता है और आयुकर्मके अतिरिक्त शेष कर्मोंका स्थितिसत्कर्म कोटिपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होता है।

*** उसके बाद हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात**

---

१. ताडपत्रप्रतौ संशोधने 'कोडाकोडीए' इति पाठः समायातः।

§ ६०. तदो पढमट्ठिदिखंडयादो विसेसहीणसरूवेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहूहिं ठिदिसंतकम्ममोवट्टेमाणस्स अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु संखेज्जदिभागे च सेसे तम्मि उद्देसे दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्सपुधत्तादो कमेण परिहाइदूण असण्णिट्ठिदिबंधेण संपुण्णसागरोवमसहस्समेत्तेण समगं जादमिदि एसो सुत्तत्थसमुच्चओ। सेसकम्माणं ठिदिबंधो ठिदिसंतकम्मं च अणियट्टिकरणद्धाए सव्वत्थेव अंतोकोडाकोडीए चेव वट्टदि त्ति घेत्तव्वं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं।**

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण तीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं।**

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण बीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं।**

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण एइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं।**

§ ६१. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि। णवरि सव्वत्थ ट्ठिदिखंडयपुधत्तणिद्देसस्स वइपुल्लवाचित्तेण वक्खाणं कायव्वं, ट्ठिदिखंडयपुधत्तबहुत्तेण विणा णिरुद्धचउरिंदियादि-

---

बहुभाग व्यतीत होनेपर दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म असंज्ञी पञ्चेन्द्रियके स्थितिबन्धके समान हो जाता है।

§ ६०. तत्पश्चात् प्रथम स्थितिकाण्डकसे लेकर विशेष हीनरूपसे बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके द्वारा स्थितिसत्कर्मका अपवर्तन करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर और संख्यातवाँ भाग शेष रहनेपर उस जगह दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म लक्षपृथक्त्वप्रमाण सागरोपमसे क्रमशः घटकर पूरा एक हजार सागरोपमप्रमाण असंज्ञीके स्थितिबन्धके समान हो जाता है यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है। शेष कर्मोंका स्थिति बन्ध और स्थितिसत्कर्म अनिवृत्तिकरणके कालमें सर्वत्र ही अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण ही रहता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** उसके बाद स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके सम्पन्न होनेपर चतुरिन्द्रिय जीवोंके बन्धके समान दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म हो जाता है।**

*** उसके बाद स्थितिकाण्डक पृथक्त्वके सम्पन्न होनेपर त्रीन्द्रिय जीवोंके बन्धके समान दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म हो जाता है।**

*** उसके बाद स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके सम्पन्न होनेपर द्वीन्द्रियके जीवोंके बन्धके समान दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म हो जाता है।**

*** उसके बाद स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके सम्पन्न होनेपर एकेन्द्रिय जीवोंके समान दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म हो जाता है।**

§ ६१. ये सूत्र सुगम हैं। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके निर्देशका विपुलतावाचीरूपसे व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि बहुत स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके बिना

ट्ठिदिबंधेहिं सरिससंतकम्माणुप्पत्तीदो। एत्थ हेट्ठिमोवरिमट्ठिदिबंधाणमण्णोण्णेण विसेसं कादूण ट्ठिदिखंडयपुधत्ताणं बहुत्तसंखाविसेसिदाणमियत्तावहारणं दरिसेयव्वं। संपहि एसो वि ट्ठिदिसंतकम्मस्स ओवट्टणाकमो सुत्ताणुसारेणाणुमग्गिज्जदे।

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिदोवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीय-ट्ठिदिसंतकम्मं।**

§ ६२. सुगममेदं सुत्तं।

*** जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ठिदिखंडयं। पलिदोवमे ओलुत्ते[1] तदो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विवक्षित चतुरिन्द्रिय आदि जीवोंके स्थितिबन्धोंके समान सत्कर्म नहीं हो सकता। यहाँपर नीचे और ऊपरके स्थितिबन्धोंका परस्पर अन्तर निकालकर बहुत संख्याविशिष्ट स्थिति-काण्डकपृथक्त्वोंकी इयत्ताका परिमाण दिखलाना चाहिए। अब इससे आगे भी स्थितिसत्कर्म अपवर्तनाक्रमसे सूत्रके अनुसार जान लेना चाहिए।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयके तीनों भेदोंका स्थितिसत्कर्म स्थितिकाण्डकघातोंके द्वारा उत्तरोत्तर किस प्रकार घटता जाता है यह यहाँ पर सूत्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है। पहले अपूर्वकरणके प्रथम समयमें वह अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमप्रमाण था। फिर हजारों स्थितिकाण्डकघात होकर अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें वह लक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण रह गया। उसके बाद भी उक्त विधिसे वह घटता हुआ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके स्थिति-बन्धके समान एक हजार सागरोपमप्रमाण रह गया। पुनः उक्त विधिसे घटता हुआ क्रमसे चतुरिन्द्रिय जीवोंके सौ सागरोपमप्रमाण, त्रीन्द्रिय जीवोंके पचास सागरोपमप्रमाण, द्वीन्द्रिय जीवोंके पच्चीस सागरोपमप्रमाण और एकेन्द्रियजीवोंके एक सागरोपमप्रमाण रह जाता है। यहाँ सर्वत्र स्थितिकाण्डकोंका प्रमाण (संख्या) सर्वत्र पूर्वके और बादके इस प्रकार दो स्थितिबन्धोंके बीचके अन्तरको निकालकर उसके अनुसार जान लेना चाहिए। उदाहरणार्थ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धोंमें नौ सौ सागरोपमोंका अन्तर है, अतः एक हजार सागरोपमसे सौ सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्वके होनेमें जितने स्थिति-काण्डकोंकी संख्या होगी आगे वह सौ सागरोपमप्रमाण स्थिति सत्त्वसे त्रीन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान पचास सागरोपमप्रमाण स्थितिसत्त्वके होनेमें स्थितिकाण्डकोंकी संख्या कम होगी। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।

*** इसके बाद स्थितिकाण्डकपृथक्त्वके द्वारा दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म पल्योपमप्रमाण स्थितिवाला हो जाता है।**

§ ६२. यह सूत्र सुगम है।

*** जबतक पल्योपमसे अधिक स्थितिसत्कर्म रहता है तबतक पल्योपमके**

---

१. ता०प्रतौ ओसुलुत्ते इति पाठः।

§ ६३. पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो पुव्वं सव्वत्थेवापुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तो चेव ट्ठिदिखंडयायामो होइ। एण्हिं पुण पलिदोवमे ओलुत्ते[1] पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे अवसिट्ठे ट्ठिदिखंडयपमाणं तस्स संखेज्जा भागा-यामं होइ। कुदो एवं चे? सहावदो चेव तत्थ तहाभावेण ट्ठिदिखंडयघादपवुत्तीए सुत्तबलेण सुणिच्छिदत्तादो। एत्तो उवरिं पि सव्वत्थेव सेसस्स संखेज्जे भागे घेत्तूण ट्ठिदिखंडयं णिव्वत्तेदि जाव णिप्पच्छिमो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो परिसिट्ठो त्ति। संपहि एदस्सेवात्थस्स विसेसपरूवणट्ठमिदमाह—

*** तदो सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा।**

§ ६४. गयत्थमेदं सुत्तं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तदो सेसस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा।**

§ ६५. एवं पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मप्पहुडि सेस-सेसस्स संखेज्जे भागे घेत्तूण

संख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक स्थितिकाण्डक होता है। तथा पल्योपमप्रमाण स्थिति-सत्त्वके अवशिष्ट रहने पर आगे स्थितिकाण्डकके लिए पल्योपमके संख्यात बहुभागको ग्रहण किया।

§ ६३. पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म रहनेसे पूर्व सर्वत्र ही अपूर्वकरणके प्रथम समय-से लेकर स्थितिकाण्डकका आयाम पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। परन्तु यहाँपर 'पलिदोवमे ओलुत्ते' अर्थात् दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म पल्योपमप्रमाण अवशिष्ट रहने पर उसका आयाम पल्योपमके संख्यात बहुभागप्रमाण होता है।

शंका—ऐसा किस कारणसे होता है?

समाधान—इस सूत्रके बलसे निश्चित होता है कि वहाँपर उस प्रकारसे स्थिति-काण्डकघातकी प्रवृत्ति स्वभावसे ही होती है। तथा इसके आगे भी पल्योपमका अन्तिम संख्यातवाँ भाग शेष रहने तक सर्वत्र ही जो स्थिति सत्कर्म शेष रहे उसके संख्यात बहुभाग-को ग्रहण कर स्थितिकाण्डक बनता है। अब इसी अर्थकी विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** उसके बाद जो स्थितिसत्कर्म शेष रहे उसके संख्यात बहुभागको स्थितिकाण्डकके लिये ग्रहण किया।**

§ ६४. यह सूत्र गतार्थ है।

*** इस प्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर तथा पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहनेपर दूरापकृष्टि होती है। उसके बाद शेष स्थितिसत्कर्मके असंख्यात बहुभागको स्थितिकाण्डकके लिए ग्रहण किया।**

§ ६५ इस प्रकार पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर उत्तरोत्तर शेष रहनेवाले

---

१. ता०प्रतौ ओलुलुत्ते इति पाठः।

ट्ठिदिखंडयघादं कुणमाणस्स संखेज्जसहस्समेत्तेसु ठिदिखंडएसु गदेसु तदो हेट्ठा दूरयरमोइण्णस्स दूरावकिट्ठिसण्णिदं सव्वपच्छिमं पलिदोवमस्स संखेज्जभागपमाणं ट्ठिदिसंतकम्ममवसिट्ठं होइ। पुणो तत्तो प्पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे आगाएंतो ट्ठिदिखंडयघादमाढवेइ, तदवत्थाए जीवस्स तहा घादणसत्तीए बज्झंतरंगकारणसण्णिहाणवसेण समुप्पण्णत्तादो। का दूरावकिट्ठी णाम? वुच्चदे—जत्तो ट्ठिदिसंतकम्मावसेसादो संखेज्जे भागे घेत्तूण ठिदिखंडए घादिज्जमाणे घादिदसेसं णियमा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणं होदूण चिट्ठदि तं सव्वपच्छिमं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणं ट्ठिदिसंतकम्मं दूरावकिट्ठि त्ति भण्णदे। किं कारणमेदस्स ट्ठिदिविसेसस्स दूरावकिट्ठिसण्णा जादा त्ति चे? पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो सुट्ठु दूरयरमोसारिय सव्वजहण्णपलिदोवमसंखेज्जभागसरूवेणावट्ठाणादो। पल्योपमस्थितिकर्मणोऽधस्ताद्दूरतरमपकृष्टत्वादतिकृशत्वाच्च दूरापकृष्टिरेषा स्थितिरित्युक्तं भवति। अथवा दूरतरमपकृष्यतेऽस्याः स्थितिकांडकमिति दूरापकृष्टिः। इतः प्रभृत्यसंख्येयान् भागान् गृहीत्वा स्थितिकांडकघातमाचरतीत्यतो दूरापकृष्टिरिति यावत्। किमेसा दूरावकिट्ठी एगवियप्पा

स्थितिसत्कर्मके संख्यात बहुभागको ग्रहण कर स्थितिकाण्डकघात करनेवाले जीवके संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके जानेपर उससे नीचे बहुत दूर गये हुए जीवके दूरापकृष्टि संज्ञावाला सबसे अन्तिम पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष रहता है। पुनः उससे आगे शेषके असंख्यात बहुभागको ग्रहण करता हुआ स्थितिकाण्डकघात करता है, क्योंकि उस अवस्थामें जीवके बाह्य और आभ्यन्तर कारणोंका सन्निधान होनेसे उस प्रकारके घात करनेकी शक्ति पाई जाती है।

शंका—दूरापकृष्टि किसे कहते हैं?

समाधान—कहते हैं—[जिस अवशिष्ट सत्कर्ममेंसे संख्यात बहुभागको ग्रहण कर स्थितिकाण्डकका घात करने पर घात करनेसे शेष बचा स्थितिसत्कर्म नियमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर अवशिष्ट रहता है उस सबसे अन्तिम पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मको दूरापकृष्टि कहते हैं।]

शंका—इस स्थितिविशेषकी दूरापकृष्टि संज्ञा किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे अत्यन्त दूर उतर कर सबसे जघन्य पल्योपमके संख्यातवें भागरूपसे इसका अवस्थान है। पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे नीचे अत्यन्त दूर तक अपकर्षित की गई होनेसे और अत्यन्त कृश-अल्प होनेसे यह स्थिति दूरापकृष्टि है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा इसका स्थितिकाण्डक अत्यन्त दूरतक अपकर्षित किया जाता है, इसलिये इसका नाम दूरापकृष्टि है। यहाँसे लेकर असंख्यात बहुभागोंको ग्रहण कर स्थितिकाण्डकघात किया जाता है, अतः यह दूरापकृष्टि कहलाती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

आहो अणेयवियप्पा त्ति। के वि भणंति एयवियप्पा एसा, णिव्वियप्पपलिदोवमस्स संखेज्जदिभागविप्पडिबद्धत्तादो। सो च णिव्वियप्पो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो पलिदोवमं जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडिय तत्थ रूवाहियएयखंडमेत्तो। एत्तो एक्कस्स
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
वि ट्ठिदिविसेसस्स परिहाणीए पलिदोवमासंखेज्जभागवियप्पुप्पत्तीओ त्ति। वयं तु भणामो अणेयवियप्पा एसा त्ति। किं कारणं? पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तट्ठिदिसंतुप्पत्तिणिबंधणाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागट्ठिदिवियप्पाणमसंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्ताणमुवलंभादो। तं जहा—उक्कस्ससंखेज्जं विरलेयूण पलिदोवमं समखंडं करिय दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि पावेंति। तत्थेयरूवधरिदपमाणं सव्वजहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो त्ति भण्णदे। संपहि एदस्सब्भंतरे जइ एगरूवं परिहायदि तो वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव। दोसु रूवेसु परिहीणेसु वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव। एवमेगुत्तरवड्ढीए रूवेसु परिहीयमाणेसु जदि सुट्ठु बहुगं परिहायदि तो एदमेगरूवधरिदं पुणो जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडेयूणेयखंडमेत्तं जाव ण परिहीणं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तमेदस्स ण फिट्टदि। संपुण्णेगखंडपरिहीणे विणा[1] जहण्णपरित्तासंखेज्जेण

शंका—क्या यह दूरापकृष्टि एक विकल्पवाली है या अनेक विकल्पवाली है?

समाधान—कितने ही आचार्य कहते हैं कि वह एक विकल्पवाली है, क्योंकि वह पल्योपमके निर्विकल्प अर्थात् सबसे जघन्य प्रमाणरूप संख्यातवें भागसे प्रतिबद्ध है। और वह निर्विकल्प पल्योपमका संख्यातवाँ भाग, पल्योपमको जघन्य परीतासंख्यातसे भाजितकर वहाँ जो एक अधिक एक भाग प्राप्त हो, तत्प्रमाण है। क्योंकि इसमेंसे एक भी स्थितिविशेषकी हानि होनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। किन्तु हम कहते हैं कि वह अनेक विकल्पवाली है, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मकी उत्पत्तिके कारणभूत पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिके विकल्प पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण उपलब्ध होते हैं। यथा—उत्कृष्ट संख्यातका विरलनकर विरलन अंकोंके प्रत्येक एकके प्रति पल्योपमके समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर विरलनके एक-एक अंकके प्रति पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्राप्त होते हैं। वहाँ विरलनके एक अंकके प्रति प्राप्त राशिका प्रमाण पल्योपमका सबसे जघन्य संख्यातवाँ भाग कहा जाता है। अब इसमेंसे यदि एक अंककी हानि होती है तो भी पल्योपमका संख्यातवाँ भाग ही शेष रहता है। दो अंकोंकी हानि होनेपर भी पल्योपमका संख्यातवाँ भाग ही शेष रहता है। इसप्रकार एक-एक अंकको बढ़ाकर अंकोंके कम होनेपर यदि बहुत-बहुत अंकोंकी हानि होती है तो विरलनके एक अंकके प्रति प्राप्त इस द्रव्यको पुनः जघन्य परीतासंख्यातसे भाजितकर जो एक भाग प्राप्त हो उतना जब तक हीन नहीं होता तब तक इसका पल्योपमका संख्यातवाँ भागपना नहीं फिटता, क्योंकि सम्पूर्ण एक भागके हीन हुए बिना पल्योपममें जघन्य परीतासंख्यातका भाग

१. ता० प्रतौ [वि णा] इति पाठः।

खंडिदपलिदोवममेत्तट्ठिदिसंतवियप्पाणुप्पत्तीदो । तम्हा दूरावकिट्टी असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तवियप्पसहिदा त्ति सिद्धं । णिदरिसणमेत्तं चेदं परूविदं । एदीए दिसाए अण्णे वि दूरावकिट्टिवियप्पा समुप्पाएयव्वा, जहण्णपरित्तासंखेज्जस्स अद्ध-चउब्भागादिरूवेहिं मि पलिदोवमे खंडिदे दूरावकिट्टिवियप्पुप्पत्तीए पडिसेहाभावादो । एदेसु वियप्पेसु जिणदिट्ठभावण्णदरवियप्पपडिबद्धा दूरावकिट्टी एयवियप्पा इह गहेयव्वा, अणियट्टिकरणपरिणामेहिं घादिदावसिट्ठाए तिस्से अणेयवियप्पत्तविरोहादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण स्थितिसत्कर्मरूप विकल्पकी उत्पत्ति नहीं होती है, इसलिए दूरापकृष्टि पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण विकल्पवाली है यह सिद्ध हुआ । यह उदाहरणमात्र कहा है । इसी दिशासे अन्य भी दूरापकृष्टिरूप विकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिए, क्योंकि जघन्य परीतासंख्यातके अर्धभाग और चतुर्थभाग आदिके द्वारा भी पल्योपमके भाजित करनेपर दूरापकृष्टिरूप विकल्पोंकी उत्पत्तिका निषेध नहीं है । इन भेदोंमेंसे जिनेन्द्रदेवने उसे जिसरूपमें जाना हो ऐसी किसी अन्यतर भेदसे सम्बन्धित एक भेदवाली दूरापकृष्टि यहाँपर ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके द्वारा घात करनेसे अवशिष्ट रही उसके अनेक भेदवाली होनेका विरोध है ।

विशेषार्थ—जब स्थिति काण्डकघात होते-होते सत्कर्मस्थिति पल्योपमप्रमाण शेष रह जाती है तब स्थितिकाण्डकका जो प्रमाण पहले था वह बदलकर अवशिष्ट स्थितिसत्कर्मका संख्यात बहुभाग हो जाता है । और इसप्रकार उत्तरोत्तर उक्त विधिसे स्थितिकाण्डक घात होते होते जब सबसे जघन्य पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति शेष रह जाती है तब वह दूरापकृष्टि इस नामसे पुकारी जाती है । यह घटते-घटते अति अल्प रह गई है, इसलिए इसे दूरापकृष्टि कहते हैं । अथवा शेष रही इस स्थितिसे आगे उत्तरोत्तर अवशिष्ट स्थितिके असंख्यात बहुभाग असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिको ग्रहणकर स्थितिकाण्डकघात होता है, इसलिए इसे दूरापकृष्टि कहते हैं । अब प्रश्न यह है कि यह दूरापकृष्टि एक विकल्पवाली है या बहुत विकल्पवाली है । इस विषयमें दूसरे आचार्योंके अभिप्रायसे तो टीकाकारने उसे एक भेदवाली बतलाया है । उनका कहना है कि पल्योपममें जघन्य परीतासंख्यातका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उसमें एक अंकके मिलानेपर जो संख्या प्राप्त हो, दूरापकृष्टिका प्रमाण उतना ही है, क्योंकि इसमें एक भी अंककी हानि होनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मसम्बन्धी भेदकी उत्पत्ति होती है । किन्तु टीकाकार स्वयं उस दूरापकृष्टिको अनेक भेदवाली स्वीकार करते हैं । उन्होंने इसका स्पष्टीकरण करते हुए जो कुछ बतलाया है उसका तात्पर्य यह है कि पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्ममें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर जो स्थितिविकल्प प्राप्त हो वहाँसे लेकर एक-एक स्थितिविकल्प कम करता जाय और इसप्रकार पल्योपममें जघन्यपरीतासंख्यातका भाग देनेपर जो स्थिति-सत्कर्मविकल्प प्राप्त हो उससे पूर्वतक कम करे । इसप्रकार मध्यमें जितने स्थितिसत्कर्मविकल्प प्राप्त हुए वे सब पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होनेसे दूरापकृष्टि उतने विकल्पवाली सिद्ध होती है । टीकाकारने यहाँ दूरापकृष्टिको जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण कहा है वह इसी कारणसे कहा है ।

§ ६६. संपहि एवंविहदूरावकिट्टिसण्णिदट्ठिदिसंतकम्मे सेसे एत्तो प्पहुडि सेसस्स असंखेज्जे भागे ट्ठिदिखंडयसरूवेणागाएदि त्ति एदमत्थविसेसं जाणाविय एत्तो एदीए परूवणाए असंखेज्जगुणहीणट्ठिदिखंडएसु बहुएसु णिवदमाणेसु केत्तियं अद्धाणमुवरि गंतूण तत्थुद्देसे विसेसंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागिगेसु बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा ।**

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ६७. दूरावकिट्टीदो हेट्ठा संखेज्जसहस्समेत्ताणि असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणि ओसरिदूण मिच्छत्तचरिमट्ठिदिखंडयं च संखेज्जसहस्सट्ठिदिखंडएहिं[1] ण

उदाहरण पल्योपमका प्रमाण		उत्कृष्ट संख्यात	जघन्य परीतासंख्यात		
२००००		४	५		
२००००÷४=५०००	पल्योपमका	संख्यातवाँ भाग,	प्रथम	भेदरूप	दूरापकृष्टि
५००० – १ = ४९९९	,,	,,	दूसरे	,,	,,
४९९९ – १ = ४९९८	,,	,,	तीसरे	,,	,,

इसप्रकार उत्तरोत्तर एक-एक स्थितिसत्कर्म विकल्प कम करता हुआ—

२०००० ÷ ५ = ४०००० पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्म विकल्पके प्राप्त होनेके पूर्व ४००१ स्थितिसत्कर्म विकल्पके प्राप्त होने तक कम करे। यहाँ ५००० प्रमाण प्रथम स्थितिसत्कर्म विकल्पसे लेकर ४००१ प्रमाण अन्तिम स्थितिसत्कर्मविकल्प तक ये १००० स्थितिसत्कर्मविकल्प पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होनेसे दूरापकृष्टिके भेद भी उतने ही प्राप्त होते हैं ऐसा टीकाकारका अभिप्राय है।

इनमेंसे कोई एक विकल्परूप दूरापकृष्टि अनिवृत्तिकरणमें ली गई है। वह कौनसी ली गई है ? इनका समाधान करते हुए उन्होंने बतलाया है कि इनमेंसे जिस भेदरूप जिनेन्द्रदेवने देखी है वह ली गई है। शेष कथन सुगम है।

§ ६६. अब इस प्रकारके दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिसत्कर्मके शेष रहनेपर यहाँसे लेकर शेषके असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिसत्कर्मको स्थितिकाण्डकरूपसे ग्रहण करता है। इसप्रकार इस अर्थविशेषका ज्ञान करा कर आगे इस प्ररूपणाके अनुसार बहुतसे असंख्यात गुणहीन स्थितिकाण्डकोंके पतित होनेपर कितना ही अध्वान ऊपर जाकर उस स्थानपर विशेष अन्तर सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाणवाले बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर वहाँसे लेकर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।**

§ ६७. दूरापकृष्टिसे नीचे संख्यात हजार असंख्यात गुणहानिवाले स्थितिकाण्डकोंका अपसरण कर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके द्वारा मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको

---

१. ता० प्रतौ खंडए हिं (एहिं) इति पाठः ।

पावदि त्ति एदम्मि अंतराले सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा पारद्धा त्ति सुत्तत्थणिच्छओ। एत्तो पुव्वं व सव्वत्थेव असंखेज्जलोगपडिभागेण सव्वकम्माण-मुदीरणा। एण्हिं पुण सम्मत्तस्स पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागपडिभागेणुदीरणा पयट्टा त्ति जं वुत्तं होइ। ओकड्डिदसयलदव्वस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडि-भागियं दव्वमुदयावलियबाहिरे गुणसेढीए णिक्खिवदि। गुणसेढिदव्वस्स वि असंखेज्ज-भागमेत्तं दव्वमसंखेज्जसमयपबद्धपमाणपडिबद्धमेण्हिमुदीरेदि त्ति एदेण सुत्तेण जाणाविदं। एत्तो प्पहुडि सव्वत्थेव उदीरणाकमो एसो चेव सम्मत्तस्स दट्ठव्वो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तदो बहुसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तस्स आवलियबाहिरं सव्व-भागाइदं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो सेसो।**

§ ६८. एवमसंखेज्जसमयपबद्धे उदीरेमाणस्स पुणो वि संखेज्जसहस्समेत्तेसु

है इस अन्तरालमें सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ होती है यह इस सूत्रके अर्थका निश्चय है। यहाँसे पहले सर्वत्र ही असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार सब कर्मोंकी उदीरणा होती रही। परन्तु यहाँपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रतिभागके अनुसार सम्यक्त्वकी उदीरणा प्रवृत्त हुई यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अपकर्षित होनेवाले सकल द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने द्रव्यको उदयावलिके बाहर गुणश्रेणिमें निक्षिप्त करता है। गुणश्रेणिके भी असंख्यातवें भाग-मात्र द्रव्यको, जो कि असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है, इस समय उदीरित करता है इसप्रकार इस बातका इस सूत्र द्वारा ज्ञान कराया गया है। इससे आगे सर्वत्र ही सम्यक्त्वकी उदीरणा-का क्रम यही जानना चाहिए।

विशेषार्थ—दूरापकृष्टिके बाद कितने स्थितिकाण्डकोंके घाते जानेपर मिथ्यात्वका कितना स्थितिसत्कर्म शेष रहते हुए सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रारम्भ होती है इस तथ्यको यहाँपर स्पष्ट किया गया है। यहाँसे पूर्व सब कर्मोंकी उदीरणा असंख्यात लोकके प्रतिभागके अनुसार होती थी। किन्तु यहाँसे सम्यक्त्वकी उदीरणाका क्रम बदल जाता है। अब यहाँसे आगे सम्यक्त्वके द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतने द्रव्यकी उदीरणा होने लगी है। इसी बातको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि समस्त द्रव्यमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध आये उतने द्रव्यको उदयावलिके बाहर निक्षिप्त करता है तथा गुणश्रेणिके द्रव्यका असंख्यातवाँ भाग जो कि असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होता है उसे उदीरित करता है। आगे सर्वत्र उदीरणाका यही क्रम चलता रहता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

*** तदनन्तर बहुत स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वके उदयावलिसे बाहरके सब द्रव्यको ग्रहण किया। उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य शेष रखा, शेष सब द्रव्य घात करनेके लिये ग्रहण किया।**

§ ६८. इसप्रकार असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा करनेवाले जीवके फिर भी जो

असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडएसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु तदो मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतेण उदयावलियबाहिरं सव्वमेव मिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्ममागाइदं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पुण हेट्ठा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं मोत्तूण सेसा असंखेज्जा भागा आगाइदाणि त्ति भणिदं होइ? एत्तियमेत्तकालं तिण्हं कम्माणं सरिसमेव ट्ठिदिखंडयघादं कुणमाणो एत्थुद्देसे किमट्ठमेवं विसरिसभावेण ट्ठिदिखंडयमागाएदि त्ति णासंकणिज्जं, पुव्वमेव विणस्संतस्स मिच्छत्तकम्मस्स एत्थुद्देसे विसेसघादसंभवं पडि विरोहाभावादो। एवं मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयमागाएदूणंतोमुहुत्तेण णिट्ठवेमाणो मिच्छत्तचरिमफालिं किं सम्मामिच्छत्तस्सुवरि संछुहदि आहो सम्मत्तस्से त्ति पुच्छिदे णियमा सम्मामिच्छत्तस्सुवरि संछुहदि त्ति णिच्छओ कायव्वो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रत्येक स्थितिकाण्डक हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है ऐसे संख्यात हजार असंख्यात गुणहानिस्वरूप स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अनन्तर मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करते हुए इस जीवने मिथ्यात्वके उदयावलिके बाहरके समस्त ही स्थितिसत्कर्मको ग्रहण किया। परन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके, नीचे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण, द्रव्यको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यको ग्रहण किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—इतने काल तक तीनों कर्मोंके सदृश ही स्थितिकाण्डकघात करनेवाला जीव इस स्थान पर इस प्रकार विसदृशरूपसे स्थितिकाण्डकघातको किसलिये ग्रहण करता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन तीनों कर्मोंमें सबसे पहले ही विनाशको प्राप्त होनेवाले मिथ्यात्वकर्मका इस स्थान पर विशेष घात सम्भव है इसमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण कर अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा उसका घात करता हुआ मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको क्या सम्यग्मिथ्यात्वके ऊपर प्रक्षिप्त करता है या सम्यक्त्वके ऊपर ऐसी पृच्छा होनेपर नियमसे सम्यग्मिथ्यात्वके ऊपर प्रक्षिप्त करता है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

विशेषार्थ—जिस समय यह जीव मिथ्यात्व कर्मकी क्षपणाके लिये मिथ्यात्वके उदयावलि बाह्य समस्त द्रव्यको अन्तिम काण्डकके रूपमें ग्रहण करता है उस समय वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यको घात करनेके लिये ग्रहण करता है। इस पर यह शंका उठाई गई है कि यहाँसे पूर्व तीनों कर्मोंके सदृश ही स्थितिकाण्डकघात होते रहे, यहाँ इस विषमताका क्या कारण है? इसका यहाँ जो समाधान किया गया है उसका आशय यह है कि मिथ्यात्व कर्मका सबसे पहले घात होता है, इसलिए यहाँपर उसका शेष दो कर्मोंकी अपेक्षा विशेष घात होनेमें कोई विरोध नहीं है।

*** तदो ट्ठिदिखंडए णिट्ठायमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सओ पदेससंकमो। ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सगं पदेससंतकम्मं।**

§ ६९. तम्हि मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए कमेण णिट्ठविज्जमाणे णिट्ठिदे तक्काले चेव मिच्छत्तस्स जहण्णगो ट्ठिदिसंकमो होइ। एत्तो अण्णस्स मिच्छत्तट्ठिदिसंकमस्स जहण्णस्साणुवलंभादो। ताधे चेव मिच्छत्तस्स उक्कस्सगो पदेससंकमो, मिच्छत्तदव्वस्स सव्वस्सेव सव्वसंकमेण संकममाणस्स तहाभावोववत्तीदो। णवरि जइ एसो गुणिदकम्मंसियणेरइयपच्छायदो समयाविरोहेण सव्वलहुमागंतूण दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो तो उक्कस्सओ मिच्छत्तस्स पदेससंकमो होइ। अण्णहा पुण अजहण्णाणुक्कस्सओ पदेससंकमो त्ति वत्तव्वं। सुत्ते पुण गुणिदकम्मंसियविवक्खाए उक्कस्सओ पदेससंकमो णिद्दिट्ठो त्ति ण किं चि विरुद्धं। ताधे चेव सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्ममुववजायदे, मिच्छत्तदव्वस्स सव्वस्सेव किंचूणदिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धपमाणस्स तस्सरूवेण परिणदत्तादो। तदो मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंकमसहगदुक्कस्सपदेससंकमपडिग्गहवसेण सम्मामिच्छत्तस्सुक्कस्सपदेससंतकम्मं तक्कालपडिबद्धमुप्पज्जदि त्ति सिद्धं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** इस प्रकार मिथ्यात्वके समाप्त होनेवाले अन्तिम स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है तथा उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है।**

§ ६९. वहाँपर मिथ्यात्वके क्रमसे समाप्त होने योग्य अन्तिम स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर उसी समय मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है, क्योंकि मिथ्यात्वका इससे जघन्य अन्य स्थितिसंक्रम नहीं पाया जाता। तथा उसी समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है, क्योंकि मिथ्यात्वके समस्त द्रव्यका सर्वसंक्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमकी व्यवस्था बन जाती है। इतनी विशेषता है कि गुणितकर्मांशिक नारक भवसे पीछे आकर मनुष्य पर्यायको ग्रहण करनेवाला यह जीव आगममें बतलाई हुई विधिके अनुसार अति शीघ्र आकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत हुआ, तब उसके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है। अन्यथा अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है ऐसा कहना चाहिए। यद्यपि सूत्रमें गुणितकर्मांशिककी विवक्षासे उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमका निर्देश किया है तो भी कुछ विरुद्ध नहीं है। तथा उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म उत्पन्न होता है, क्योंकि मिथ्यात्वका कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण समस्त द्रव्य उस रूपसे परिणम जाता है। इसलिए मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके साथ प्राप्त हुए उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमके प्रतिग्रहवश उसी कालसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है यह सिद्ध हुआ।

§ ७०. एत्तो दुसमयूणावलियमेत्तकालं[1] गंतूण मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं होदि त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

*** तदो आवलियाए दुसमयूणाए गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं[2] ।**

§ ७१. दुसमयूणावलियमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीओ कमेण गालिय जाधे एयट्ठिदी दुसमयमेत्तकालावट्ठाणा परिसिट्ठा ताधे मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं होइ, एत्तो अण्णस्स सव्वजहण्णमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मस्साणुवलंभादो । से काले किण्ण लब्भदे ? ण, तत्थ णिल्लेविज्जमाणस्स मिच्छत्तस्स पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्माणं णिस्संतभावुवलंभादो ।

विशेषार्थ—जिस समय दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाला यह जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका सर्वसंक्रमके द्वारा पतन करता है उस समय मिथ्यात्वका सबसे जघन्य स्थितिसंक्रम होता है, क्योंकि अनिवृत्तिरूप परिणामोंके द्वारा दूरापकृष्टिरूपसे घातित करनेके बाद शेष बची हुई स्थितिके जघन्य होनेमें विरोधका अभाव है। इससे अल्प स्थितिसंक्रम अन्यत्र सम्भव नहीं है। यदि यह गुणितकर्मांशिक होनेके साथ अति शीघ्र नारक भवसे आकर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता है तो इसके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है, क्योंकि इस समय मिथ्यात्वके डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण समस्त द्रव्यका सर्वसंक्रम देखा जाता है और यतः इस अन्तिमफालिका पतन सम्यग्मिथ्यात्वमें होता है, अतः उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है। इसप्रकार इन तीन विशेषताओंका उल्लेख इस सूत्रमें किया गया है। शेष कथन सुगम है।

§ ७०. अब इससे आगे दो समय कम एक आवलिमात्र काल जाकर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है इसका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** तदनन्तर दो समय कम एक आवलिप्रमाण कालके व्यतीत होनेपर मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है।**

§ ७१. मिथ्यात्वकी दो समय कम एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको क्रमसे गलाकर जिस समय दो समयमात्र कालवाली एक स्थिति शेष रहती है उस समय मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म होता है, क्योंकि मिथ्यात्वका इससे अन्य सबसे जघन्य स्थितिसत्कर्म नहीं उपलब्ध होता है।

शंका—तदनन्तर समयमें क्यों नहीं प्राप्त होता ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिस समय मिथ्यात्वकी दो समय स्थिति शेष रहती है उस समय वह स्तिबुकसंक्रमके द्वारा सजातीय प्रकृतिमें संक्रमित हो जाती है, इसलिए तद-

---

१. ता०प्रतौ –मेत्तं कालं इति पाठः । २. ता०प्रतौ जहण्णट्ठिदिसंतकम्मं इति पाठः ।

*** मिच्छत्ते पढमसमयसंकते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जा भागा आगाइदा ।**

§ ७२. मिच्छत्ते सव्वसंकमेण संकंते तप्पढमसमए चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमण्णं ठिदिखंडयमागाएंतेण घादिदसेसट्ठिदिसंतकम्मस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा त्ति वुत्तं होइ । एवमेदेण कमेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिखंडयघादं कुणमाणो तप्पाओग्गसंखेज्जसहस्समेत्तेहिं ट्ठिदिखंडएहिं सम्मामिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं पावेइ । तमागाएंतो उदयावलियबाहिरं सव्वमागाएदि त्ति पदुप्पायणफलमुत्तरसुत्तं––

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एवं संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडएहिं गदेहिं सम्मामिच्छत्तमावलियबाहिरं सव्वमागाइदं ।**

§ ७३. गयत्थमेदं सुत्तं । ताधे पुण सम्मत्तस्स उव्वराविज्जमाणट्ठिदिविसेसपमाणावहारणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो––

नन्तर समयमें मिथ्यात्वसम्बन्धी प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्म निःसत्त्वपनेको प्राप्त हो जाते हैं ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व प्रकृतिका मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही उदय पाया जाता है और उसका क्षय चौथेसे लेकर चार गुणस्थानोंमें होता है, अतः जो प्रकृतियाँ परोदयसे क्षयको प्राप्त होती हैं, उदय कालके एक समय पूर्व प्रत्येक समयमें स्तिवुकसंक्रमके द्वारा उन प्रकृतियोंका उदयमें आनेवाली सजातीय प्रकृतियोंमें संक्रम होता रहता है । यही कारण है कि अन्तमें मिथ्यात्वका दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रहता है जिसका उसी समय सम्यक्त्वप्रकृतिमें स्तिवुक संक्रम द्वारा संक्रम हो जानेके कारण अगले समयमें उसका सर्वथा अभाव रहता है ।

*** मिथ्यात्वके संक्रम होनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात बहुभागको ग्रहण किया ।**

§ ७२. सर्वसंक्रमके द्वारा मिथ्यात्वके संक्रान्त होनेपर उसके प्रथम समयमें ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्य स्थितिकाण्डकको ग्रहण करनेवाले जीवने घात करनेसे शेष बचे स्थितिसत्कर्मके असंख्यात बहुभागको ग्रहण किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसप्रकार इस क्रमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिकाण्डकघात करता हुआ तत्प्रायोग्य संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके बाद सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है और उसे ग्रहण करता हुआ उदयावलिके बाहरके समस्त द्रव्यको ग्रहण करता है इस बातके कथनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इसप्रकार संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर सम्यग्मिथ्यात्वके उदयावलिके बाहर स्थित समस्त द्रव्यको ग्रहण किया ।**

§ ७३. यह सूत्र गतार्थ है । परन्तु उस समय सम्यक्त्वके शेष रहे स्थितिविशेषके

* ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा । के वि भणंति—संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदाणि त्ति । पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठवस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि, सेसाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति ।

§ ७४. ताधे तदवत्थाए सम्मत्तस्स आगाइदसेसट्ठिदिसंतकम्मपमाणपदुप्पायणे दोण्णि उवएसा, पुव्वाइरियाणमेत्थाहिप्पायभेददंसणादो । तत्थ एको पवाइज्जंतो अण्णो च अपवाइज्जंतो । दोण्हमेदेसिमत्थो पुव्वं व वत्तव्वो । एत्थापवाइज्जमाणमुवएसमवलंबमाणा के वि आइरिया भणंति—संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि सम्मत्तस्स तक्काले ट्ठिदाणि, सेसाओ सव्वाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति । एदस्स संपदायस्स अपवाइज्जमाणत्तं कत्तो णव्वदे ? एदम्हादो चेव चुण्णिसुत्तादो । पवाइज्जंतेण पुण उवएसेण सव्वाइरियसम्मदेण अज्जमंखु-णागहत्थिमहावाचयमुहकमलविणिग्गएण सम्मत्तस्स अट्ठवस्साणि सेसाणि, सेसासेसट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति घेत्तव्वं । ण चेदस्स पवाइज्जमाणत्तमसिद्धं, एदम्हादो चेव जइवसहोवएसादो तस्स तहाभावणिच्छयादो । एदेसिं दोण्हमुवएसाणं थप्पभावावलंबणेण वक्खाणं कायव्वं, अण्णदरपरिग्गहे

प्रमाणका अवधारण करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* उस समय सम्यक्त्वप्रकृतिके सम्बन्धमें दो उपदेश उपलब्ध होते हैं—कितने ही आचार्य कहते हैं कि संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थिति शेष रहती है। किन्तु प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण स्थिति शेष रहती है, शेष सब स्थितियाँ ग्रहण की जा चुकी हैं। अर्थात् स्थितिकाण्डकरूपसे घातको प्राप्त हो चुकी हैं।

§ ७४. 'ताधे' अर्थात् उस अवस्थामें सम्यक्त्वके ग्रहण करनेसे शेष स्थितिसत्कर्मके प्रमाणके कथन करनेमें दो उपदेश उपलब्ध होते हैं, क्योंकि पूर्वाचार्योंका इस विषयमें अभिप्रायभेद देखा जाता है। उनमेंसे एक उपदेश प्रवाह्यमान है और दूसरा उपदेश अप्रवाह्यमान है। इन दोनोंका अर्थ पहलेके समान कहना चाहिए। यहाँपर अप्रवाह्यमान उपदेशका अवलम्बन करनेवाले कितने ही आचार्य कहते हैं कि उस समय सम्यक्त्व प्रकृतिकी संख्यात हजार वर्ष स्थिति शेष रहती है, शेष सब स्थितियाँ काण्डकघातरूपसे ग्रहण की जा चुकी हैं।

शंका—इस सम्प्रदायका अप्रवाह्यमानपना किस कारणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी चूर्णिसूत्रसे जाना जाता है।

किन्तु सर्व आचार्य सम्मत ऐसे आर्यमंक्षु और नागहस्ति महावाचकोंके मुख कमलोंसे निकले हुए प्रवाह्यमान उपदेशके अनुसार सम्यक्त्वकी आठ वर्ष स्थिति शेष रहती है, शेष समस्त स्थितियोंका काण्डकघात हो गया है ऐसा जानना चाहिए। और इसका प्रवाह्यमानपना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि इसी यतिवृषभके उपदेशसे उसके प्रवाह्यमानपनेका निश्चय

संपहियकाले विसिट्ठोवएसाभावादो । एवं ताव सम्मामिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयग्गहणकाले सम्मत्तस्स आगाइदसेसट्ठिदीए पमाणणिण्णयमुवएसभेदमस्सियूण पदुप्पाइय संपहि सम्मामिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए सम्मत्तस्सुवरि सव्वसंकमेण संकममाणे जो अत्थविसेसो तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एदम्मि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे जहण्णगो सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंकमो, उक्कस्सओ पदेससंकमो, सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं ।**

§ ७५. एदम्मि सम्मामिच्छत्तचरिमट्ठिदिखंडए चरिमफालिसरूवेण सम्मत्तस्सुवरि सव्वसंकमेण संकमियूण णिट्ठिदे तक्काले सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो होइ । अणियट्टिपरिणामेहिं दूरावकिट्ठिसरूवेण घादिदावसेसस्स जहण्णभावे विरोहाभावादो । पदेससंकमो पुण ताधे समामिच्छत्तस्स उक्कस्सो होइ, गुणिदकम्मंसियविवक्खाए तदविरोहादो । ताधे चेव सम्मत्तस्स उक्कस्सयं पदेससंतकम्मं होइ, सम्मामिच्छत्तुक्कस्ससंकमपडिग्गहवसेण तदुवलद्धीदो । एत्तो दुसमयूणावलियाए गलिदाए[1] सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्ममेयट्ठिदी दुसमयकालमेत्तं होइ त्ति अणुत्तं

होता है। (अब इन दोनों उपदेशोंको संग्रह योग्य समझकर व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान कालमें किसका परिग्रह किया जाय इसप्रकारका विशिष्ट उपदेश नहीं पाया जाता।) इसप्रकार सर्वप्रथम सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकके ग्रहणके समय सम्यक्त्व काण्डकघातरूपसे जितनी स्थिति ग्रहण की जा चुकी है उनसे अतिरिक्त शेष स्थितिके प्रमाणके निर्णयका उपदेशभेदके आश्रयसे कथनकर अब सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकके सम्यक्त्वके ऊपर सर्वसंक्रमद्वारा संक्रमित होनेपर जो अर्थ विशेष प्राप्त होता है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** सम्यग्मिथ्यात्वके इस स्थितिकाण्डकके घाते जानेपर उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम और उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होता है तथा सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है ।**

§ ७५. सम्यग्मिथ्यात्वके इस अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम फालिरूपसे सम्यक्त्वके ऊपर सर्वसंक्रम द्वारा संक्रमित कर सम्पन्न होनेपर उसी समय सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है, क्योंकि अनिवृत्तिरूप परिणामोंके द्वारा दूरापकृष्टिरूपसे घातित करनेके बाद शेष बची स्थितिके जघन्य होनेमें विरोधका अभाव है। परन्तु उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका प्रदेशसंक्रम उत्कृष्ट होता है, क्योंकि गुणितकर्मांशिक जीवकी विवक्षामें उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रम होनेमें विरोधका अभाव है। तथा उसी समय सम्यक्त्वका उत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्म होता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट प्रदेशसंक्रमका प्रतिग्रह होनेसे उसकी उपलब्धि होती है। इसके बाद दो समय कम उदयावलिके गलित होनेपर सम्यग्मिथ्यात्वका

---

1 ता०प्रतौ गालिदाए इति पाठः ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
हि जाणिज्जदे, मिच्छत्तपरूवणाए चेव गयत्थत्तादो।

*** अट्ठवस्सउवदेसेण परूविज्जिहिदि।**

§ ७६. पुव्वुत्ताणं दोण्हमुवएसाणं मज्झे अट्ठवस्सोवएसमेव पहाणभावेणावलंबिय एत्तो उवरिमपरूवणं वत्तइस्सामो त्ति भणिदं होदि। कुदो एदं चे? [1] पवाइज्जमाणत्तेण तस्सेव पहाणभावोवलंभादो। तम्हा अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मं घेत्तूण तव्विसयं ट्ठिदिखंडयादिपरूवणं विसेसियूण परूवेमाणो पबंधविच्छेदभएण आदीदो प्पहुडि पुव्वुत्तट्ठिदिखंडपबंधेणाणुसंधाणं कुणमाणो इदमाह—

*** तं जहा।**

§ ७७. सुगममेदमुवरिमपरूवणापबंधावयारविसयं पुच्छावक्कं।

*** अपुव्वकरणस्स पढमसमए पलिदोवमस्स संखेज्जभागिगं ट्ठिदिखंडयं ताव जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं। पलिदोवमे ओलुत्ते पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। तम्हि गदे सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। एवं**

जघन्य स्थितिसत्कर्म दो समय कालप्रमाण एक स्थितिरूप होता है यह बिना कहे ही जाना जाता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे ही उसका ज्ञान हो जाता है।

*** अब आठ वर्षके उपदेशके अनुसार प्ररूपणा करेंगे।**

§ ७६. पूर्वोक्त दो उपदेशोंमेंसे सम्यक्त्वके आठ वर्षप्रमाण स्थितिका निरूपण करनेवाले उपदेशका ही प्रधानरूपसे अवलम्बनकर आगे आगेकी प्ररूपणाको बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—इसीको क्यों बतलावेंगे ?

समाधान—क्योंकि प्रवाह्यमानपनेके कारण उसीकी प्रधानता पाई जाती है। इसलिये आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मको ग्रहणकर तद्विषयक स्थितिकाण्डक आदिकी प्ररूपणाको विशेषरूपसे कथन करते हुए प्रबन्ध-विच्छेदके भयवश प्रारम्भसे लेकर पूर्वोक्त स्थितिकाण्डकसम्बन्धी प्रबन्धके द्वारा अनुसन्धान करते हुए यह कहते हैं—

*** वह जैसे।**

§ ७७. उपरिम प्ररूपणासम्बन्धी प्रबन्धके अवतारको विषय करनेवाला यह पृच्छावाक्य सुगम है।

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डक प्रारम्भ होता है। पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक उक्त**

---

१. ता०प्रतौ एवं चे इति पाठः।

संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि। तदो दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागे संतकम्मे सेसे। तदो ट्ठिदिखंडयं सेसस्स असंखेज्जा भागा। एवं ताव सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव मिच्छत्तं खविदं त्ति। सम्मामिच्छत्तं पि खवेंतस्स सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव सम्मामिच्छत्तं पि खविज्जमाणं खविदं, संछुब्भमाणं संछुद्धं। ताधे चेव सम्मत्तस्स संतकम्ममट्ठवस्सट्ठिदिगं जादं।

§ ७८. सुगममेदं पुव्वुत्तत्थोवसंहारसुत्तं। णवरि एत्थ 'सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं खविदमिदि' वुत्ते तस्स ट्ठिदि-अणुभागा घादिज्जमाणा णिरवसेसं घादिदा त्ति अत्थो घेत्तव्वो। संछुब्भमाणयं संछुद्धं इदि वुत्ते परपयडिसंकमेण संछुब्भमाणं सम्मामिच्छत्तपदेसग्गं सव्वसंकमेणुदयावलियवज्जं सव्वमेव सम्मत्तस्सुवरि संछुद्धमिदि अपुणरुत्तभावेण अत्थो वक्खाणेयव्वो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्रमाणवाले ही स्थितिकाण्डक चालू रहते हैं। पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके अवशिष्ट रहने पर पल्योपमके संख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिसत्कर्म घातके लिये ग्रहण किया। उसके व्यतीत होनेपर शेष रही स्थितिसत्कर्मका संख्यात बहुभाग घातके लिये ग्रहण किया। इसप्रकार संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत हुए। इसके बाद पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहनेपर दूरापकृष्टि संज्ञावाली स्थिति प्राप्त हुई। पुनः वहाँसे स्थितिकाण्डकका प्रमाण शेष रहे स्थितिसत्कर्मके असंख्यात बहुभागप्रमाण प्राप्त हुआ। इसप्रकार मिथ्यात्वके क्षय होने तक उत्तरोत्तर शेष रहे स्थितिसत्कर्मके असंख्यात बहुभागप्रमाण स्थितिकाण्डक प्राप्त हुआ। सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय करते हुए उत्तरोत्तर जो स्थितिसत्कर्म शेष रहा उसके असंख्यात बहुभागका स्थितिकाण्डकरूपसे घातके लिए तब तक ग्रहण किया जब जाकर क्षयको प्राप्त होनेवाले सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय कर दिया और संक्रमित होनेवाले उसका संक्रमण कर दिया। तभी सम्यक्त्वका स्थितिसत्कर्म आठ वर्षप्रमाण हो गया।

§ ७८. पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करनेवाला यह सूत्र सुगम है। इतनी विशेषता है कि इस सूत्रमें 'सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं खविदं' ऐसा कहनेपर सम्यग्मिथ्यात्वके घाते जानेवाले स्थिति और अनुभाग पूरी तरहसे घातित किये गये ऐसा अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिए। 'संछुब्भमाणयं संछुद्धं' ऐसा कहनेपर परप्रकृतिसंक्रमरूपसे संक्रमित होनेवाले सम्यग्मिथ्यात्वके प्रदेशपुंजको सर्वसंक्रमके द्वारा उदयावलिके सिवाय समग्र ही सम्यक्त्वके ऊपर संक्रमित किया इसप्रकार अपुनरुक्तरूपसे अर्थका व्याख्यान करना चाहिए।

* ताधे चेव दंसणमोहणीयक्खवगो त्ति भण्णइ।

§ ७९. एवं भणंतस्स सुत्तयारस्सायमहिप्पायो—पुव्वं पि मिच्छत्तक्खवणपारंभपढमसमयप्पहुडि सव्वत्थेव दंसणमोहक्खवगववएसो ण विरुद्धो, किंतु एत्तो प्पहुडि णिच्छएणेव दंसणमोहक्खवगववएसो एदस्स दट्ठव्वो, भरेण सम्मत्तक्खवणाए पयट्टत्तादो त्ति। अथवा मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं खवणावत्थाए दंसणमोहक्खवयववएसो अविप्पडिवत्तिसिद्धो त्ति ण तत्थ संदेहो, तेसिं सम्मत्तसण्णिदजीवगुणपडिबंधीणं दंसणमोहववएससिद्धीए मंदबुद्धीणं पि विसंवादाभावादो। किंतु ण सम्मत्तकम्मं दंसणमोहणीयं, सम्मत्तगुणसहचरिदोदयत्तादो। तम्हा ण एदं खवेमाणो दंसणमोहक्खवगो त्ति एवंविहाए विप्पडिवत्तीए पच्चवचिट्ठमाणस्स तहाविहविप्पडिवत्तिणिरायरणदुवारेण तक्खवणावत्थाए वि दंसणमोहक्खवगववएससमत्थणट्ठमेदं भणिदमिदि गहेयव्वं। कथं पुण सम्मत्तपरिणामाविरोहेण एदस्स दंसणमोहववएसो त्ति चे ? ण, संपुण्णणिम्मलणिच्चलपरमावगाढलक्खणखइयसम्मत्तपडिबंधित्तेण तस्स तव्ववएसो-

---

विशेषार्थ—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणमें सम्यक्त्वके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक जिन कार्यविशेषोंका पहले निर्देश कर आये हैं उन्हीं कार्यविशेषोंका इस उपसंहार सूत्र द्वारा निर्देश किया गया है। अन्य विशेषताओंके साथ पूरे अर्थका विशेष स्पष्टीकरण पहले ही कर आये हैं।

* इसी समय वह दर्शनमोहनीय-क्षपक कहलाता है।

§ ७९. इसप्रकार कहनेवाले सूत्रकारका यह अभिप्राय है—पहले भी मिथ्यात्वकी क्षपणाका प्रारम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर सर्वत्र ही दर्शनमोहक्षपक संज्ञा विरुद्ध नहीं है। किन्तु यहाँसे लेकर निश्चयसे ही इसके दर्शनमोहक्षपक संज्ञा जाननी चाहिए, क्योंकि यहाँसे लेकर वेगसे सम्यक्त्वकी क्षपणाके लिये प्रवृत्त हुआ है। अथवा मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणावस्थाके समय दर्शनमोहक्षपक संज्ञा बिना विवादके सिद्ध है, इसलिये उसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि वे सम्यक्त्व संज्ञावाले जीवगुणकी प्रतिबन्धक हैं, इसलिए उनकी दर्शनमोह संज्ञा सिद्ध होनेसे मन्दबुद्धिजनोंको भी उसमें विसंवाद नहीं है। किन्तु सम्यक्त्वकर्म दर्शनमोहनीय नहीं है, क्योंकि वेदकसम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व गुणके साथ उसका उदय होता है। इसलिये इसका क्षय करनेवाला जीव दर्शनमोहका क्षपक नहीं है इसप्रकारकी शंकासे ग्रसित जीवकी उसप्रकारकी शंकाके निराकरण द्वारा उसकी क्षपणावस्थामें दर्शनमोहक्षपक संज्ञाके समर्थनके लिये यह कहा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

शंका—सम्यक्त्व परिणामके साथ विरोध नहीं होनेसे इसकी दर्शनमोह संज्ञा कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पूरी तरहसे निर्मल और निश्चल परमावगाढ लक्षणवाले

ववीए । एदेण 'मिच्छत्तवेदणीए कम्मे०' इच्चेदिस्से गाहाए अणुसरिदो दट्ठव्वो ।
आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ८०. एवमेत्थुद्देसे दंसणमोहक्खवयववएसमेदस्स दढीकरिय संपहि अट्ठवस्सट्ठिदिसंतप्पहुडि सम्मत्तं खवेमाणस्स तदवत्थाए कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ—

*** एत्तो पाए अंतोमुहुत्तिय ट्ठिदिखंडयं ।**

§ ८१. अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मावसेसप्पहुडि एत्तो उवरि सव्वत्थ ट्ठिदिखंडयमागाएंतो अंतोमुहुत्तपमाणमागाएदि, पलिदोवमासंखेज्जभागादिवियप्पाणमेदम्मि विसये

क्षायिकसम्यक्त्वके प्रतिबन्धकपनेकी अपेक्षा इसकी उक्त संज्ञा बन जाती है ।

इस कथन द्वारा 'मिच्छत्तवेदणीए कम्मे०' इत्यादिरूपसे इस गाथाके अर्थका अनुसरण किया गया है ऐसा जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयके दो प्रकृतियाँ मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके क्षय होनेके बाद जब यह जीव सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय करनेका प्रारम्भ करता है तब यहाँ इसे दर्शनमोहक्षपक कहा गया है । इसीपर यह प्रश्न उठा है कि यह जीव दर्शनमोहनीयका क्षय तो पहलेसे ही करता आ रहा है ऐसी अवस्थामें यहाँसे लेकर इसे दर्शनमोहनीयका क्षपक क्यों कहा ? इस प्रश्नका जो समाधान किया गया है उसका आशय यह है कि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ तो जीवके सम्यक्त्व गुणकी प्रतिबन्धक हैं ही, इसलिए जब यह जीव इन दोनों प्रकृतियोंका क्षय करनेमें प्रवृत्त रहता है तब तो बिना कहे ही इसकी दर्शनमोहक्षपक संज्ञा है । इसमें कोई विवाद नहीं । किन्तु सम्यक्त्वप्रकृति सम्यक्त्व गुणकी घातक नहीं है, क्योंकि वेदक सम्यग्दृष्टिके उसका उदय रहते हुए भी सम्यक्त्व पाया जाता है, इसलिये सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षय करनेवाले जीवको दर्शनमोहक्षपक कहना योग्य नहीं है ऐसी जिसके चित्तमें शंका है उसकी उस शंकाका परिहार करनेके लिये यहाँ सम्यक्त्वप्रकृतिकी क्षपणा करनेवाले जीवको दर्शनमोहक्षपक कहा है, क्योंकि अतिनिर्मल और निश्चल परमावगाढलक्षण क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति सम्यक्त्व प्रकृतिका क्षय होनेपर ही होती है ।

§ ८०. इसप्रकार इस स्थलपर इस जीवकी दर्शनमोहक्षपक इस संज्ञाको दृढ़ करके अब आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर सम्यक्त्वका क्षय करनेवाले जीवके उस अवस्थामें किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

*** इससे आगे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिकाण्डक होता है ।**

§ ८१. शेष रहे आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर इससे आगे सर्वत्र घातके लिये स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है, क्योंकि

---

१ ता०प्रतौ कीरमाणाए इति पाठः ।

संभवाणुवलंभादो त्ति भणिदं होदि। एवं पुव्विल्लट्ठिदिखंडएहिंतो एत्थतण[1]ट्ठिदिखंडयस्स विलक्खणभावं पदुप्पाइय संपहि पुव्विल्लगुणसेढिणिक्खेवादो वि संपहियगुणसेढिणिक्खेवस्स विलक्खणभावं पदुप्पाएमाणो पुव्विल्लस्सेव दाव अपुव्वकरणादिगुणसेढिणिक्खेवस्स सरूवाणुवादं कुणइ—

* अपुव्वकरणस्स पढमसमयादो पाए जाव चरिमं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागट्ठिदिखंडयं त्ति एदम्हि काले जं पदेसग्गमोकड्डमाणो सव्वरहस्साए आवलियबाहिरट्ठिदीए पदेसग्गं देदि तं थोवं। समयुत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं। एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेसहीणं। सेसासु वि ट्ठिदीसु विसेसहीणं चेव, णत्थि गुणगारपरावत्ती।

§ ८२. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे। तं जहा—अपुव्वकरणपढमसमयादो आढत्त जाव सम्मामिच्छत्तचरिमट्ठिदिखंडयदुचरिमफालि त्ति ताव एदम्मि अंतराले पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गमोकड्डियूण गुणसेढिविण्णासं करेमाणो अपुव्व-

इस स्थलपर पल्योपमके असंख्यातवें भाग आदि विकल्प सम्भव नहीं हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसप्रकार पहलेके स्थितिकाण्डकोंसे इस स्थलके स्थितिकाण्डककी विलक्षणताका कथन कर अब पहलेके गुणश्रेणिनिक्षेपसे भी साम्प्रतिक गुणश्रेणिनिक्षेपकी विलक्षणताका कथन करते हुए सर्वप्रथम पहलेके ही अपूर्वकरण आदिके गुणश्रेणिनिक्षेपके स्वरूपका अनुवाद करते हैं—

* अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक इस कालमें जिस प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण करता हुआ सबसे ह्रस्व उदयावलि-बाह्य स्थितिमें जिस प्रदेशपुञ्जको देता है वह स्तोक है। इससे एक समय अधिक स्थितिमें जिस प्रदेशपुञ्जको देता है वह उससे असंख्यातगुणा है। इसप्रकार गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें असंख्यातगुणा प्रदेशपुञ्ज देता है। तदनन्तर गुणश्रेणिशीर्षसे ऊपरकी अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे आगेकी स्थितिमें विशेष हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। आगे भी शेष सब स्थितियोंमें विशेष हीन विशेष हीन ही प्रदेशपुञ्ज देता है, गुणकार परिवर्तन नहीं है।

§ ८२. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डककी द्विचरम फालिके प्राप्त होनेतक इस अन्तरालमें प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे श्रेणिरूपसे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण कर गुणश्रेणिकी रचना करता हुआ

१ ता०प्रतौ तत्थतण-इति पाठः।

करणपढमसमये ताव सव्वरहस्साए उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए जं पदेसग्गं णिक्खिवदि तं थोवं होइ। होंतं पि असंखेज्जसमयपबद्धपमाणमिदि घेत्तव्वं, सव्वजहण्णे वि गुणसेढिगोवुच्छपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्ताणं पंचिंदियसमयपबद्धाणमुवलंभादो। एत्तो

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समयुत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं णिसिंचदि तमसंखेज्जगुणं। को गुणगारो? तप्पाओग्गो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एवं जाव गुणसेढिसीसयं पावेइ ताव असंखेज्जगुणं चेव देदि। तदो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं देदि। किं कारणं? तक्कालोकड्डिदसयलदव्वं तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तभागहारेण खंडिदेयखंडमसंखेज्जभागूणं गुणसेढिसीसये णिक्खिविय पुणो सेसबहुभागे दिवड्ढगुणहाणीहिं खंडिदेयखंडमणंतरोवरिमाए ट्ठिदीए णिक्खिवदि त्ति एदेण कारणेण तत्थ दिज्जमाणं पदेसग्गमेयसमयपबद्धासंखेज्जदिभागपमाणं होदूणासंखेज्जगुणहीणं जादं। तदो विसेसहीणं देदि। केत्तियमेत्तेण? दोगुणहाणिपडिभागिएण गोवुच्छविसेसेण। एवमुवरिमासु वि ट्ठिदीसु वि विसेसहीणं चेव देदि जाव अप्पप्पणो ओकड्डिदट्ठिदिमइच्छावणावलियमेत्तणापत्तो त्ति। एसा दिज्जमाणपरूवणा। एवं चेव दिस्समाणस्स वि परूवणा कायव्वा, विसेसाभावादो। एवं चेव विदियादिसमएसु वि कायव्वं जाव पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तचरिमट्ठिदिखंडयं

सर्वप्रथम अपूर्वकरणके प्रथम समयमें उदयावलि बाह्य सबसे ह्रस्व अनन्तर स्थितिमें जिस प्रदेशपुञ्जको निक्षिप्त करता है वह स्तोक होता है। स्तोक होता हुआ भी असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सबसे जघन्य होने पर भी गुणश्रेणिगोपुच्छमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण पञ्चेन्द्रियसम्बन्धी समयप्रबद्ध पाये जाते हैं। इससे एक समय आगेकी स्थितिमें जिस प्रदेशपुञ्जको निक्षिप्त करता है वह उससे असंख्यातगुणा होता है। गुणकार क्या है? तत्प्रायोग्य पल्योपमका असंख्यातवाँ भागप्रमाण गुणकार है। इस प्रकार गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें असंख्यातगुणा देता है। तदनन्तर गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन प्रदेशपुञ्ज देता है, क्योंकि उस समय अपकर्षित समस्त द्रव्यको तत्प्रायोग्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण भागहारसे भाजित कर जो एक भाग लब्ध आवे असंख्यातवाँ भाग कम उसे गुणश्रेणिशीर्षमें निक्षिप्त कर पुनः शेष बहुभागको डेढ़ गुणहानिसे भाजित कर जो एक भाग लब्ध आवे उसे अनन्तर उपरिम स्थितिमें निक्षिप्त करता है इसप्रकार इस कारणसे वहाँ दिया जानेवाला प्रदेशपुञ्ज एक समयप्रबद्धका असंख्यातवें भागप्रमाण होकर असंख्यातगुणा हीन हो गया। तदनन्तर उपरिम स्थितिमें विशेष हीन देता है। कितना विशेषहीन देता है? दो गुणहानियोंके प्रतिभागसे प्राप्त गोपुच्छविशेषसे हीन देता है। इसप्रकार उपरिम स्थितियोंमें भी, अपनी-अपनी अपकर्षित स्थितिकी अतिस्थापनावलिके प्राप्त होनेके पूर्वतक, विशेषहीन-विशेषहीन देता है। यह दीयमान प्रदेशपुञ्जकी प्ररूपणा है। दृश्यमान प्रदेशपुञ्जकी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डकके

चरिमसमयमणुक्किण्णं ति, उदयावलियबाहिरे गलिदसेसगुणसेढिणिक्खेवं पडि सव्वत्थ भेदाणुवलंभादो। एदं च सव्वमत्थविसेसं मणम्मि कादूण 'णत्थि गुणगारपरावत्ती' इदि वुत्तं। एदम्मि णिरुद्धकाले दिज्जमाणस्स दिस्समाणस्स वा पदेसग्गस्स अणंतर-परूविदो चेव गुणगारकमो, णत्थि तत्थ अण्णारिसेण कमेण गुणगारपवुत्ति त्ति जं वुत्तं होइ। गुणगारो णाम किरियाभेदो। सो णत्थि त्ति वा जाणावणट्ठं 'णत्थि गुणगारपरावत्ती' इदि सुत्ते णिद्दिट्ठं।

§ ८३. एवं ताव हेट्ठिमद्धाणे गुणसेढिणिक्खेवादिविसओ किरियाभेदो णत्थि त्ति पदुप्पाइय संपहि एत्तो प्पहुडि ट्ठिदि-अणुभागखंडएसु गुणसेढिणिक्खेवे च किरियाभेदो अत्थि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** जाधे अट्ठवस्सट्ठिदिगं संतकम्मं सम्मत्तस्स ताधे पाए सम्मत्तस्स अणुभागस्स अणुसमय-ओवट्टणा। एसो ताव एक्को किरियापरिवत्तो।**

अन्तिम समयके अनुत्कीर्ण होने तक द्वितीयादि समयोंमें भी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि उदयावलिके बाहर गलित शेष गुणश्रेणिनिक्षेपके प्रति सर्वत्र भेद नहीं उपलब्ध होता। इस सब अर्थविशेषको मनमें करके 'णत्थि गुणगारपरावत्ती' यह वचन कहा है। इस विवक्षित कालमें दीयमान और दृश्यमान प्रदेशपुञ्जका अनन्तर कहा गया ही गुणकारक्रम है, वहाँ अन्य प्रकारसे गुणकारकी प्रवृत्ति नहीं होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। गुणकार क्रियाभेदको कहते हैं। वह नहीं है, अथवा इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'णत्थि गुणगारपरावत्ती' यह वचन सूत्रमें कहा है।

विशेषार्थ—यहाँ अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणमें सम्यग्मिथ्यात्व-के अन्तिम स्थितिकाण्डककी द्विचरमफालिका जिस समय पतन होता है उस समय तक प्रत्येक समयमें गुणश्रेणि और उससे यथासम्भव उपरिम स्थितियोंमें अपकर्षित द्रव्यका किस प्रकार निक्षेप होता है इस तथ्यका स्पष्टरूपसे खुलासा किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है। यहाँ यह तथ्य ध्यानमें रखना चाहिए कि उपरितन जिस स्थितिमेंसे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण विवक्षित हो उस स्थितिसे नीचे अतिस्थापनावलिको छोड़कर उदया-वलिसे उपरितन प्रथम स्थितिसे लेकर अतिस्थापनावलिसे पूर्वतक अन्य सब स्थितियोंमें उसका यथायोग्य निक्षेप होता है।

§ ८३. इस प्रकार सर्व प्रथम नीचेके अध्वानमें गुणश्रेणिनिक्षेपादिविषयक क्रियाभेद नहीं है इसका कथन कर अब इससे आगे स्थितिकाण्डकों, अनुभागकाण्डकों और गुणश्रेणि-निक्षेपमें क्रियाभेद है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** जिस समय सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म होता है उस समयसे लेकर सम्यक्त्वके अनुभागका प्रत्येक समयमें अपवर्तन होता है। सर्वप्रथम यह एक क्रियापरावर्तन है।**

§ ८४. जं सम्मत्ताणुभागस्स पुव्वं विट्ठाणियसरूवस्स एण्हिमेगट्ठाणियसरूवेणाणुसमयोवट्टणा पारद्धा त्ति ।[1] पुव्वमंतोमुहुत्तेण कालेणाणुभागखंडयं णिव्वत्तेदि । इदाणिं पुण खंडयघादमुवसंहरियूण समए समए सम्मत्तस्स अणुभागमणंतगुणहाणीए ओवट्टेदि त्ति वुत्तं होइ । तं पुण अणुसमयोवट्टणमेवमणुगंतव्वं—अणंतरहेट्ठिमसमयाणुभागसंतकम्मादो संपहियसमयअणुभागसंतकम्ममुदयावलियबाहिरमणंतगुणहीणं एण्हिमुदयावलियबाहिराणुभागसंतकम्मादो उदयावलियब्भंतरमणुप्पविसमाणमणंतगुणहीणं तत्तो वि उदयसमयं पविसमाणमणंतगुणहीणं । एवं समये समये जाव समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहो त्ति । तत्तो परमावलियमेत्तकालमुदयं पविसमाणाणुभागस्स अणुसमयोवट्टणा त्ति ।

* अंतोमुहुत्तिगं चरिमट्ठिदिखंडयं ।

§ ८४. पहले जो सम्यक्त्वका अनुभाग द्विस्थानीयस्वरूप रहा है उसकी अब एक स्थानीय रूपसे प्रतिसमय अपवर्तना प्रारम्भ हुई। पहले अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा अनुभागकाण्डकको रचना करता था अब पूर्वके काण्डकघातका उपसंहारकर प्रत्येक समयमें सम्यक्त्वके अनुभागकी अनन्तगुणी हानिरूपसे अपवर्तना करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। पुनः प्रत्येक समयमें होनेवाली अपवर्तनाको इसप्रकार जानना चाहिए—अनन्तर पूर्व समयके अनुभागसत्कर्मसे वर्तमान समयमें अनुभागसत्कर्म उदयावलिसे बाहर अनन्तगुणा हीन है। उदयावलिके बाहर स्थित इस अनुभागसत्कर्मसे उदयावलिके भीतर अनुप्रविशमान अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन है। इसप्रकार दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके एक समय अधिक एक आवलिपूर्व तक प्रत्येक समयमें इसीप्रकार जानना चाहिए। उसके बाद एक आवलिप्रमाण कालतक उदयमें प्रविशमान अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना पाई जाती है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वप्रकृतिका स्थितिसत्कर्म आठ वर्षप्रमाण रह जानेपर क्या-क्या क्रियाविशेष होते हैं इस तथ्यका स्पष्टीकरण करते हुए सर्वप्रथम अनुभाग-सम्बन्धी क्रियाविशेषका निर्देश करते हुए बतलाया है कि इससे पूर्व सम्यक्त्वसम्बन्धी एक-एक अनुभागकाण्डकका अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त कालमें घात करता था। अब प्रत्येक समयमें सम्यक्त्वके अनुभागका अनन्तगुणी हानिरूपसे अपवर्तन करता है। उसमें भी पहले जो द्विस्थानीय अनुभाग था उसका प्रत्येक समयमें एक स्थानीयरूपसे अपवर्तन करने लगता है। उसी तथ्यको यहाँ स्पष्टरूपसे समझाते हुए बतलाया है कि अनन्तर पूर्व समयमें जो अनुभागसत्कर्म था उससे वर्तमान समयमें उदयावलिके बाहर स्थित अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है। तथा इस उदयावलिके बाहर स्थित अनुभागसत्कर्मसे उदयावलिमें अनुप्रविशमान अनुभागसत्कर्म अनन्तगुणा हीन होता है। इसप्रकार इस क्रमको दर्शनमोहनीयके क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने तक जानना चाहिए। उसके बाद आवलिमात्र काल तक उदयमें प्रविशमान अनुभागकी अनुसमय अपवर्तना है।

* अन्तर्मुहूर्तस्थितिवाला अन्तिम स्थितिकाण्डक होता है।

---

१. ता०प्रतौ 'जं सम्मत्ताणुभागं' इत्यतः 'पारद्धा त्ति' इति यावत् सूत्रांशरूपेण निर्दिष्टम् ।

§ ८५. पुव्वं पलिदोवमासंखेज्जदिभागिगं ट्ठिदिखंडयं दूरावकिट्टीदो पहुडि जाव एदूरं ताव जादं । एण्हिं पुण संखेज्जावलियायाममंतोमुहुत्तियं ट्ठिदिखंडयपमाणं जायदि त्ति एसो विदियो किरियापरियत्तो ।

*** ताधे पाए ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु उदये थोवं पदेसग्गं दिज्जदे । से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं । तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं देदि । तदो विसेसहीणं ।**

§ ८६. एत्थ ताव सम्मामिच्छत्तस्स चरिमफालीए सह सम्मत्तस्स अपच्छिमं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागिगं ट्ठिदिखंडयमोवट्टियूण अट्ठवस्समेत्तं सम्मत्तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं ट्ठवेमाणस्स गुणगारपरावत्तिं वत्तइस्सामो । तं जहा—तक्कालभाविसगचरिमफालिदव्वेण सह सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं घेत्तूण अट्ठवस्समेत्तसम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि णिसिंचमाणो उदये थोवं पदेसग्गं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ८५. दूरापकृष्टि प्रमाण स्थितिसे लेकर इतने दूर अर्थात् आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्ड कहोता आया। अब यहाँसे लेकर वह स्थितिकाण्डक संख्यात आवलि आयामवाला अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो जाता है इसप्रकार यह दूसरा क्रियापरावर्तन है ।

विशेषार्थ—जब सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष रहता है वहाँसे लेकर एक-एक स्थितिकाण्डकका आयाम पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण न होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है यह इस सूत्रका आशय है । इसे अन्तिम स्थितिकाण्डक कहनेका आशय यह है कि आगे प्रत्येक स्थितिकाण्डकका आयाम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही रहता है, इससे कम नहीं होता और वह प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त भी संख्यात आवलिप्रमाण होता है। इसे यह दूसरा कियापरिवर्तन कहा, क्योंकि सम्यक्त्वका आठवर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म शेष रहनेपर वहाँसे लेकर स्थितिकाण्डकका प्रमाण बदल जाता है ।

*** उस समयसे लेकर अपवर्तन होनेवाली स्थितियोंमेंसे उदयमें अल्प प्रदेशपुञ्जको देता है । उससे अनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है । इसप्रकार गुणश्रेणिशीर्ष तककी प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है । उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें भी असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है । उससे आगे विशेष हीन देता है ।**

§ ८६. यहाँपर सर्व प्रथम सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके साथ पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डकका अपवर्तन कर आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मको धरनेवाले सम्यक्त्वके गुणकारपरावर्तनको बतलाते हैं । यथा—उस समय होनेवाली अपनी अन्तिम फालिके द्रव्यके साथ सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको ग्रहण कर सम्यक्त्वके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके ऊपर सिंचन करता हुआ उदयमें स्तोक प्रदेशपुंजको

एवं जाव गुणसेढिसीसयं पुव्विल्लं ताव असंखेज्जगुणं देदि। तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं चेव देदि। किं कारणं? सम्मामिच्छत्तचरिमफालिदव्वं किंचूण-दिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धमेत्तमोकड्डणभागहारादो असंखेज्जगुणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडेदूण तत्थेयखंडमेत्तमेव दव्वं गुणसेढीए णिक्खिविय पुणो सेसबहुभागदव्वमंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहिं खंडियेयखंडस्स णिरुद्धगोपुच्छायारेण णिक्खेव-दंसणादो। तम्हा एत्तो पहुडि सम्मत्तस्स उदयादिअवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवो होइ त्ति घेत्तव्वो।

§८७. एवं गुणसेढिसीसयादो अणंतरोवरिमाए वि एक्किस्से ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं पदेसग्गं णिक्खिविदूण तदो उवरि सव्वत्थ अणंतरोवणिधाए विसेसहीणं चेव देदि जाव अट्ठवस्साणं चरिमणिसेओ त्ति। णवरि [illegible]णमुवरि एण्हिं

देता है। उससे उपरितन समयसम्बन्धी स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है। इस प्रकार पहलेके गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक प्रत्येक स्थितिमें उत्तरोत्तर असंख्यातगुणे प्रदेश-पुंजको देता है। उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको ही देता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी अन्तिम फालिके कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण द्रव्यको अपकर्षण भागहारसे असंख्यातगुणे पल्योपमके असंख्यातवें भागके द्वारा खण्डित कर उसमेंसे एक भागमात्र द्रव्यको गुणश्रेणिमें निक्षिप्त कर पुनः शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षके द्वारा भाजित कर प्राप्त एक भागका विवक्षित गोपुच्छाकारसे निक्षेप देखा जाता है। इसलिये यहाँसे लेकर सम्यक्त्वका उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि-निक्षेप होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—जिस समय दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है उसके पूर्व जो उदयावलि बाह्य गलित शेष गुणश्रेणि-रचना होती रही वह अब उदयादि अवस्थितरूपसे होने लगती है। इसका आशय यह है कि पहले उदयावलिको छोड़ कर तदनन्तर समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपरितन स्थितिमें गुणश्रेणिके द्रव्यका निक्षेप होता था। वह भी उत्तरोत्तर अधःस्थितिके एक-एक समयके गलनेपर जितना गुणश्रेणिका काल शेष रहता था उतनेमें ही होता था। इसलिए इसके पूर्व तक इसकी उदयावलि बाह्य गलित शेष गुणश्रेणि संज्ञा थी। किन्तु यहाँसे लेकर गुणश्रेणिके द्रव्यका निक्षेप उदय समयसे लेकर होने लगता है और अधःस्थितिके एक-एक समयके गलनेपर ऊपर गुणश्रेणिके कालमें एक-एक समयकी वृद्धि होती जाती है, इसलिये इसकी उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि संज्ञा है। जिस समय सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थिति-सत्कर्म शेष रहता है उस समयसे गुणश्रेणिका यह क्रम चालू हो जाता है। इसी तथ्यको यहाँ स्पष्ट करके बतलाया गया है।

§ ८७. इस प्रकार गुणश्रेणिशीर्षसे अनन्तर उपरिम एक स्थितिमें भी असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका निक्षेपकर उससे ऊपर सर्वत्र अनन्तर उपनिधाके अनुसार आठ वर्षप्रमाण स्थितिके अन्तिम निषेकके प्राप्त होने तक विशेष हीन ही देता है। इतनी विशेषता है कि आठ

दिज्जमाणदव्वं ठिदिं पडि पुव्वावट्ठिददव्वादो असंखेज्जगुणं चेव होइ, चरिमफालिदव्वपाहम्मादो त्ति घेत्तव्वं। एवं दिण्णे उदयादो पहुडि जाव गुणसेढिसीसयं ताव दीसमाणदव्वमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिसित्तं । तदो उवरि सव्वत्थ अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि एयगोवुच्छायारेणावट्ठिदे। दिज्जमाणमिदि भणिदे सव्वत्थ तक्कालमोकड्डियूण णिसिंचमाणदव्वं घेत्तव्वं। दीसमाणमिदि भणिदे चिराणसंतकम्मेण सह सव्वदव्वसमूहो घेत्तव्वो। एसो दिज्जमाण-दीसमाणाणमत्थो सव्वत्थ जोजेयव्वो। एवं सम्मामिच्छत्तचरिमफालिपदणावत्थाए दिज्जमाण-दिस्समाणपरूवणा कया[1]।

§ ८८. पुणो से काले सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्तमेत्तायामेण ट्ठिदिखंडयं घेत्तूण गुणसेढिं करेमाणस्स गुणगारपरावत्तिं वत्तइस्सामो। तं जहा—ताधे पाए अंतोमुहुत्तट्ठिदिखंडयघादेणोवट्टिज्जमाणासु सम्मत्तट्ठिदीसु जं पदेसग्गं तं ओकड्डणभागहारपडिभागेण घेत्तूण उदयादिगुणसेढिणिक्खेवं करेमाणो उदये थोवं पदेसग्गं देदि। से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवमणेण कमेणासंखेज्जगुणं[2] णिसिंचमाणो गच्छइ जाव

वर्षप्रमाण सब गोपुच्छोंके ऊपर इस समय दिया जानेवाला द्रव्य प्रत्येक स्थितिके प्रति पूर्वके अवस्थित द्रव्यसे अन्तिम फालिके द्रव्यके माहात्म्यवश असंख्यातगुणा ही होता है ऐसा यहाँ ग्रहण कर लेना चाहिए। इस प्रकार देनेपर उदय समयसे लेकर गुणश्रेणिशीर्ष तक दृश्यमान द्रव्य असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे अवस्थित होता है। उससे ऊपर सर्वत्र आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके ऊपर एक गोपुच्छाकाररूपसे अवस्थित होता है। दीयमान ऐसा कहनेपर सर्वत्र तत्काल अपकर्षितकर सिंचित किये जानेवाले द्रव्यको ग्रहण करना चाहिए। तथा दृश्यमान ऐसा कहनेपर चिरकालीन सत्कर्मके साथ सब द्रव्यसमूहको ग्रहण करना चाहिए। दीयमान और दृश्यमान पदोंके इस अर्थकी सर्वत्र योजना करनी चाहिए। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतनकी अवस्थामें दीयमान और दृश्यमान द्रव्यकी प्ररूपणा की।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका और सम्यक्त्वके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होकर जब सम्यक्त्वकी आठ वर्षप्रमाण सत्त्वस्थिति शेष रहती है उस समय उक्त स्थितिके प्रत्येक निषेकमें तत्काल दीयमान और दृश्यमान द्रव्यका क्या प्रमाण रहता है यह यहाँ स्पष्ट किया गया है। यहाँ दीयमान और दृश्यमान पदका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है।

§ ८८. पुनः तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वके अन्तर्मुहूर्त आयामसे युक्त स्थितिकाण्डकको ग्रहण कर गुणश्रेणि करनेवालेके गुणकारपरिवर्तनको बतलाते हैं। यथा—उस समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिकाण्डकघातके द्वारा अपवर्तित होनेवाली सम्यक्त्वकी स्थितियोंमें जो प्रदेशपुंज होता है, अपकर्षणभागहारके प्रतिभागके हिसाबसे उसे ग्रहणकर उदयादि गुणश्रेणिमें उसका निक्षेप करता हुआ उदयमें स्तोक प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे अनन्तर समयमें असंख्यातगुणा देता है। इसप्रकार इस क्रमसे गुणश्रेणिशीर्षके अधस्तन समयके

---

१. ता०प्रतौ कायव्वा इति पाठः। २. ता०प्रतौ कमेण संखेज्जगुणं इति पाठः।

हेट्ठिमसमयगुणसेढिसीसयं पत्तो त्ति। पुणो एदम्हादो उवरिमाणंतराए वि एक्किस्से ट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं णिसिंचदि। किं कारणं? अवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवे कयपइण्णत्तादो। एण्हिमोकड्डिददव्वस्स बहुभागे अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहिं खंडिय तत्थेय-खंडमेत्तदव्वं विसेसाहियं कादूण संपहियगुणसेढिसीसये णिक्खिवदि त्ति वुत्तं होइ। एत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिसिंचदि जाव चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलिय-मेत्तेण अपत्तो त्ति। एवमट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मियस्स पढमसमए दिज्जमाणस्स परूवणा कया।

§ ८९. संपहि तत्थेव दिस्समाणदव्वं कधमवचिट्ठदि त्ति एदस्स णिण्णयं वत्तइस्सामो। तं जहा—पुव्विल्लगुणसेढिसीसयादो संपहियगुणसेढिसीसयमसंखेज्जगुणं ण होइ। किं कारणमिदि? भण्णदे[1]—संपहि ओकड्डियूण गल्हिदसव्वदव्वं पि मिलियूण

प्राप्त होने तक असंख्यात गुणितक्रमसे सिंचन करता है। पुनः इससे उपरिम अनन्तर एक स्थितिमें भी असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका सिंचन करता है, क्योंकि यहाँ अवस्थित गुणश्रेणि निक्षेपकी प्रतिज्ञा की गई है। इस समय अपकर्षित हुए द्रव्यके बहुभागको अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्षोंके द्वारा भाजित कर वहाँ जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त हो, विशेष अधिक करके उसे इस समयके गुणश्रेणिशीर्षमें निक्षिप्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे ऊपर सर्वत्र अतिस्थापनावलिमात्रसे अन्तिम स्थितिको नहीं प्राप्त होनेतक विशेषहीन-विशेषहीन द्रव्यका सिंचन करता है। इसप्रकार आठ वर्षके स्थितिसत्कर्मवाले जीवके प्रथम समयमें दीयमान द्रव्यकी प्ररूपणा की।

विशेषार्थ—यहाँ जिस समय यह जीव सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मको अपकर्षणकर आठ वर्षप्रमाण करता है उसके अनन्तर समयमें अपकर्षित द्रव्यका गुणश्रेणिमें और उससे ऊपरकी स्थितियोंमें निक्षेप किस प्रकारसे होता है इस बातको स्पष्ट करके बतलाया गया है। इस विषयमें पहली बात तो यह है कि सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म रहनेके पूर्व स्थितिकाण्डक पल्योपमका असंख्यातवें भागप्रमाण था। किन्तु अब उसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है। दूसरी बात यह है कि सम्यक्त्वका आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म रहनेके समयसे लेकर उदयावलि बाह्य गलित शेष गुणश्रेणि न होकर उदयादि अवस्थित गुणश्रेणि चालू हो गई है, इसलिए प्रत्येक समयमें जहाँ एक समय प्रमाण अधःस्थितिका गलन होता है वहाँ ऊपर गुणश्रेणिमें एक समयका और योग होकर नया गुणश्रेणिशीर्ष स्थापित हो जाता है और इसप्रकार गुणश्रेणिके अधःस्तन समयसे लेकर ऊपर प्रत्येक समयमें उत्तरोत्तर जो असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप होता है उसी क्रमसे वह द्रव्य इस तत्काल स्थापित नवीन गुणश्रेणिशीर्षको भी मिलता है। शेष सब कथन स्पष्ट ही है।

§ ८९. अब वहीं पर दृश्यमान द्रव्य किस प्रकार अवस्थित रहता है इसका निर्णय करेंगे। यथा—पहलेके गुणश्रेणिशीर्षसे इस समयका गुणश्रेणिशीर्ष असंख्यातगुणा नहीं होता है।

---

१. ता०प्रतौ -गुणं होइ। किं कारणमिदि भणिदे इति पाठः।

अट्ठवस्सेगट्ठिदिदव्वं पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागेण खंडेदूणेगखंडमेत्तं चेव होदि, अट्ठवस्समेत्तणिसेगाणमोकड्डणभागहारपडिभागियत्तादो। पुणो तस्स वि असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव हेट्ठा गुणसेढिम्हि णिसिंचदि। सेसअसंखेज्जे भागे संपहियगुणसेढिसीसयप्पहुडि उवरिमगोवुच्छेसु समयाविरोहेण णिसिंचदि त्ति। एदेण कारणेणासंखेज्जगुणं ण जादं, किंतु विसेसाहियमेव दीसमाणदव्वं होइ त्ति णिच्छेयव्वं। होंतं पि असंखेज्जभागुत्तरं चेव, णत्थि अण्णो वियप्पो।

§ ९०. संपहि एदस्सेवासंखेज्जभागाहियत्तस्स फुडीकरणट्ठमेसा परूवणा कीरदे। तं जहा—हेट्ठिमसमयगुणसेढिसीसयदव्वमिच्छामो त्ति दिवड्ढगुणहाणिगुणिदमेगं समयपबद्धं ठविय तस्स अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्समेत्तो भागहारो ठवेयव्वो। एवं ठविदे पुव्विल्लसमयगुणसेढिसीसयदव्वमागच्छइ। संपहियगुणसेढिसीसयदव्वे इच्छिज्जमाणे एदं चेव दव्वमेयगोवुच्छविसेसहीणं ठविय पुणो एण्हिमोकड्डिददव्वस्स बहुभागे अट्ठवस्सेहिं अंतोमुहुत्तूणेहिं खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेणेदं दव्वमब्भहियं कादव्वं। एदं च अहियदव्वं पुव्विल्लगुणसेढिसीसयम्मि समहियगोवुच्छविसेसादो तत्थेव एण्हिं पदिदासंखेज्जसमय-

---

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—कहते हैं—इस समय अपकर्षितकर ग्रहण किया गया समस्त द्रव्य भी मिलकर आठ वर्षसम्बन्धी एक स्थितिके द्रव्यको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजितकर जो एक भाग लब्ध आवे उतना होता है, क्योंकि आठ वर्षप्रमाण निषेकोंमें अपकर्षण भागहारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे तत्प्रमाण है। पुनः उसके भी असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको ही नीचे गुणश्रेणिमें सिंचित करता है। शेष असंख्यात बहुभागको इस समयके गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम गोपुच्छाओंमें आगममें प्ररूपित विधिके अनुसार सिंचित करता है। इस कारणसे पहलेके गुणश्रेणिशीर्षसे इस समयका गुणश्रेणिशीर्ष असंख्यातगुणा नहीं हुआ, किन्तु दृश्यमान द्रव्य विशेषाधिक ही है ऐसा निश्चय करना चाहिए। विशेषाधिक होता हुआ भी असंख्यातवाँ भाग ही अधिक है, अन्य विकल्प नहीं है।

§ ९०. अब इसी असंख्यातवें भाग अधिकको स्पष्ट करनेके लिये यह प्ररूपणा करते हैं। यथा—अधस्तन समयके गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य लाना चाहते हैं, इसलिये डेढ़ गुणहानिगुणित एक समयप्रबद्धको स्थापितकर उसका अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण भागहार स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार स्थापित करनेपर पिछले समयके गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य आता है। इस समयके गुणश्रेणिशीर्षके द्रव्यके लानेकी इच्छा होनेपर एक गोपुच्छविशेषसे हीन इसी द्रव्यको स्थापितकर इस समय अपकर्षित द्रव्यके बहुभागको अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षोंके द्वारा भाजितकर वहाँ प्राप्त एक भागमात्र द्रव्यसे इसे अधिक करना चाहिए। और यह अधिक द्रव्य, पिछले गुणश्रेणिशीर्षमें जो गोपुच्छविशेष अधिक है उससे तथा उसीमें अर्थात् पिछले गुणश्रेणिशीर्षमें इस समय प्राप्त हुआ जो असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण गुण-

---

१. ता०प्रतौ हेट्ठिमगुणसेढि- इति पाठः।

पबद्धमेत्तगुणसेढिदव्वादो च असंखेज्जगुणं, तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवाणमेत्थ गुणगारभावेण समुवलंभादो। तत्थतणसव्वदव्वं पेक्खियूण पुण असंखेज्जगुणहीणं, तम्मि सादिरेगओकड्डुक्कड्डणभागहारेण खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो। तदो एत्तियमेत्तमहियदव्वमवणिय पुध ट्ठवेयूण तत्थ हेट्ठिमगुणसेढिसीसयम्मि समहियदव्वे एयगोवुच्छविसेसाहियतक्कालपदिदासंखेज्जसमयपबद्धमेत्ते अवणिदे अवणिदसेसमेत्तेण पुव्विल्लगुणसेढिसीसयादो संपहियगुणसेढिसीसयदव्वमहियं होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो। एवमुवरि वि समयं पडि असंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डियूण उदयादि-अवट्ठिदगुणसेढिणिक्खेवं कुणमाणस्स एसा चेव दिज्जमाण-दिस्समाणपरूवणा णिरवसेसमणुगंतव्वा। णवरि अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मियस्स पढमट्ठिदिखंडयप्पहुडि जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयं[1] ति ताव एदेसिं संखेज्जसहस्समेत्ताणं ट्ठिदिखंडयाणं चरिमफालीयासु णिवदमाणियासु भेदो अत्थि, तत्थुद्देसे गुणसेढिसीसयम्मि णिवदमाणदव्वस्स पुव्विल्लतत्थतणसंचयगोवुच्छं पेक्खियूण संखेज्जदिभागब्भहियत्तदंसणादो। तस्सोवट्टणामुहेण णिण्णयं वत्तइस्सामो। तं जहा—पुव्विल्लसंचयं तत्थतणमिच्छामो त्ति दिवड्ढगुणहाणिगुणिदमेगं समयपबद्धं ठविय पुणो एदस्स भागहारो अट्ठवस्सायामो अंतोमुहुत्तूणो ठवेयव्वो। संपहियपढमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए पदमाणाए खंडयदव्वमिच्छामो त्ति

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

श्रेणिसम्बन्धी द्रव्य है उससे असंख्यातगुणा है, क्योंकि पल्योपमके तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण अंक यहाँपर गुणकाररूपसे पाये जाते हैं। परन्तु वहाँके समस्त द्रव्यको देखते हुए वह असंख्यातगुणा हीन है, क्योंकि साधिक अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारके द्वारा उसके खण्डित करनेपर वहाँ जो एक भाग प्राप्त हो वह तत्प्रमाण है, इसलिये इतनेमात्र अधिक द्रव्यको निकालकर और पृथक् रखकर वहाँ अधस्तन गुणश्रेणिशीर्षके एक गोपुच्छ विशेषसे अधिक तत्काल प्राप्त असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण समधिक द्रव्यके निकाल देनेपर निकालनेके बाद जितना शेष रहे उतना पहलेके गुणश्रेणिशीर्षसे वर्तमान गुणश्रेणि शीर्षसम्बन्धी द्रव्य अधिक होता है ऐसा निश्चय करना चाहिए। इस प्रकार आगे भी प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षण कर उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिमें निक्षेप करनेवालेकी दीयमान और दृश्यमान द्रव्यकी पूरी प्ररूपणा इसी प्रकार करनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके प्रथम स्थितिकाण्डकसे लेकर द्विचरम स्थितिकाण्डक तक पतित होनेवाली इन संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंकी अन्तिम फालियोंमें भेद है, क्योंकि उनके पतनके समय गुणश्रेणिशीर्षमें पतित होनेवाला द्रव्य वहाँ सम्बन्धी पूर्वके संचयरूप गोपुच्छको देखते हुए संख्यातवाँ भाग अधिक देखा जाता है। अब उसका अपवर्तनद्वारा निर्णय करके बतलाते हैं। यथा—वहाँ सम्बन्धी पूर्वके संचयको लाना चाहते हैं, इसलिये डेढ़ गुणहानिगुणित एक समयप्रबद्धको स्थापितकर पुनः अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्षप्रमाण इसका भागहार स्थापित करना चाहिए। अब प्रथम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होवे

१. ता०प्रतौ दुचरिमखंडयं इति पाठः।

दिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धस्स अंतोमुहुत्तोवट्टिदअट्ठवस्साथामो भागहारत्तेण ठवेयव्वो। एवं ठविदे पढमट्ठिदिखंडयचरिमफालिदव्वमागच्छइ। पुणो एदस्सासंखेज्जदिभागमेत्तमेव हेट्ठा गुणसेढीए णिक्खिविय सेसबहुभागे अवट्ठिदगुणसेढिसीसयप्पहुडि अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेसु गोपुच्छायारेण णिसिंचदि त्ति अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्सेहिं एदम्मि खंडयदव्वे ओवट्टिदे णिरुद्धसमयम्मि अवट्ठिदगुणसेढिसीसयम्मि णिवदमाणदव्वं पुव्विल्लतत्थतणसंचयस्स समणंतरगुणसेढिहेट्ठिमसीसयस्स च संखेज्जदिभागमेत्तमागच्छदि। तदो सिद्धं तदवत्थाए दुचरिमगुणसेढिसीसयादो चरिमगुणसेढिसीसयदव्वं संखेज्जभागुत्तरं होदूण दीसइ त्ति। एवमुवरि वि सव्वत्थ णेयव्वं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालि त्ति, रूवूणट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धामेत्तकालमसंखेज्जभागुत्तरं खंडयचरिमसमए च संखेज्जभागुत्तरं गुणसेढिसीसयम्मि दीसमाणदव्वं होइ त्ति एदेण भेदाणुवलंभादो। संपहि दुचरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालिपज्जंतो चेव एसो परूवणापबंधो। उवरि चरिमट्ठिदिखंडए आगाइदे पुध परूवणा होदि त्ति जाणावेमाणो उत्तरं सुत्तावयवमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एवं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयं त्ति।**

§ ९१. एवमेसा अणंतरपरूविदा गुणगारपरावत्ती ताव णेदव्वा जाव दुचरिम-

---

समय काण्डक द्रव्यको लाना चाहते हैं, इसलिये डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धके अन्तर्मुहूर्तसे भाजित आठ वर्षप्रमाण आयामको भागहाररूपसे स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार स्थापित करनेपर प्रथम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका द्रव्य आता है। पुनः इसके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको ही नीचे गुणश्रेणिमें निक्षिप्तकर शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको अवस्थित गुणश्रेणिशीर्षसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षोंमें गोपुच्छाकाररूपसे सींचता है, इसलिये अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्षोंके द्वारा इस काण्डकद्रव्यके भाजित करनेपर विवक्षित समयके अवस्थित गुणश्रेणिशीर्षमें पतित होनेवाला द्रव्य वहाँ सम्बन्धी पूर्वके संचयके समनन्तर अधस्तन गुणश्रेणिशीर्षके संख्यातवाँ भाग आता है। इसलिये सिद्ध हुआ कि उस अवस्थामें द्विचरम गुणश्रेणिशीर्षसे अन्तिम गुणश्रेणिशीर्षका द्रव्य संख्यातवाँ भाग अधिक होकर दिखाई देता है। इसी प्रकार ऊपर भी सर्वत्र द्विचरम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए, क्योंकि एक कम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालप्रमाण कालतक असंख्यातवाँ भाग अधिक और काण्डकके अन्तिम समयमें संख्यातवाँ भाग अधिक गुणश्रेणिशीर्षमें दृश्यमान द्रव्य होता है इस प्रकार इस कथनके साथ पूर्वोक्त कथनका कोई भेद नहीं पाया जाता है। इस प्रकार द्विचरम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिपर्यन्त ही यह प्ररूपणाप्रबन्ध है। अब ऊपरके अन्तिम स्थितिकाण्डकके ग्रहण करनेपर भिन्न प्ररूपणा होती है इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके सूत्रावयवको कहते हैं—

*** इस प्रकार यह क्रम द्विचरम स्थितिकाण्डक तक जानना चाहिए।**

§ ९१. इसप्रकार यह अनन्तर कहा गया गुणकारपरावर्तन द्विचरमस्थितिकाण्डकके

ट्ठिदिखंडयचरिमसमओ त्ति । तत्तो पुण चरिमट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स अण्णारिसी परूवणा होदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । एत्तिएण पबंधेण हेट्ठिमपरूवण-मुवसंहरिय संपहि चरिमट्ठिदिखंडयविसयं परूवणं कुणमाणो तत्थ ताव चरिमट्ठिदि-खंडयमाहप्पजाणावणट्ठमुवरिमप्पाबहुअपबंधमाह—

*** सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदीओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदीओ थोवाओ ।** सागर जी महाराज

§ ९२. एदेण सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं गेण्हमाणो उदयावलियबाहिरं सव्वमेव णो गेण्हइ, किंतु अंतोमुहुत्तमेत्तीओ ट्ठिदीओ कदकरणिज्जकालावच्छिण्ण-पमाणाओ हेट्ठा मोत्तूण पुणो उवरिमासेसट्ठिदीओ गेण्हदि त्ति जाणाविदं । एदाओ च ट्ठिदीओ उव्वराविज्जमाणाओ थोवाओ, उवरिमपदाणमेत्तो बहुत्तोवलंभादो ।

*** दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।**

§ ९३. दोण्हं पि अंतोमुहुत्तपमाणत्ते संते वि पुव्विल्लादो एदस्स संखेज्जगुणत्त-मेदम्हादो चेव सुत्तादो णिच्छेयव्वं ।

*** चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।**

अन्तिम समय तक ले जाना चाहिए। परन्तु उससे ऊपर अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान जीवके अन्य प्रकारकी प्ररूपणा होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है। इसप्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा अधस्तन प्ररूपणाका उपसंहार कर अब अन्तिम स्थितिकाण्डकविषयक प्ररूपणाको करते हुए वहाँ सर्वप्रथम अन्तिम स्थितिकाण्डकके माहात्म्यका ज्ञान करानेके लिये आगेके अल्पबहुत्वप्रबन्धको कहते हैं—

*** सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर सम्यक्त्वकी जो स्थितियाँ शेष रहती हैं वे स्थितियाँ सबसे स्तोक हैं ।**

§ ९२. सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ उदयावलि बाह्य सबको ही ग्रहण नहीं करता है, किन्तु कृतकृत्यके कालप्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र स्थितियोंको नीचे छोड़कर पुनः उपरिम समस्त स्थितियोंको ग्रहण करता है इस बातका इस सूत्रद्वारा ज्ञान कराया गया है। ये छोड़ी जा रहीं स्थितियाँ सबसे थोड़ी हैं, क्योंकि उपरिम पद इससे बहुतरूपसे पाये जाते हैं।

*** उनसे द्विचरम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।**

§ ९३. इन दोनोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होनेपर भी पिछलेसे यह संख्यातगुणा है इस बातका इसी सूत्रसे निश्चय करना चाहिए।

*** उससे अन्तिम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।**

§ ९४. एदं पि अंतोमुहुत्तपमाणं चेव होदूण दुचरिमट्ठिदिखंडयायामादो संखेज्जगुणमिदि घेत्तव्वं। पुव्वमट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मप्पहुडि विसेसहीणकमेणंतोमुहुत्तियट्ठिदिखंडयाणि घादेदूण एण्हिं दुचरिमट्ठिदिखंडयादो संखेज्जगुणायामेण चरिमट्ठिदिखंडयमागाएदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो। एवमेदेणप्पाबहुएण चरिमट्ठिदिखंडयपमाणविसयं णिण्णयमुप्पाइय संपहि सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो एदेण विहिणा गेण्हदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो गुणसेढीए संखेज्जे भागे आगाएदि, अण्णाओ च उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ९५. एतदुक्तं भवति—सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो गुणसेढिअद्धाणस्स एण्हिमुवलब्भमाणस्स संखेज्जदिभागं चरिमट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धासहियकदकरणिज्जद्धामेत्तं मोत्तूण पुणो सेससंखेज्जे भागे आगाएदि त्ति। ण केवलमेदाओ चेव, किंतु अण्णाओ वि उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तपमाणाओ आगाएदि त्ति। एदेण चरिमट्ठिदिखंडयपमाणं पुधमेव णिदरिसदं दट्ठव्वं। तदो अवट्ठिदगुणसेढिसीसयादो उवरिमसव्वगोवुच्छाओ पुणो अवट्ठिदसरूवेण कदसयलगुणसेढिसीसयद्धाणं च सव्वमागाएदूण पुणो पढमसमयअपुव्वकरणेण अपुव्वा-

§ ९४. यह भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है, तो भी द्विचरम स्थितिकाण्डकके आयामसे संख्यातगुणा है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। पहले आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर विशेषहीनके क्रमसे अन्तर्मुहूर्त आयामवाले स्थितिकाण्डकोंका घात कर यहाँ द्विचरम स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणे आयामरूपसे अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है यह इस सूत्रका भावार्थ है। इस प्रकार इस अल्पबहुत्वके द्वारा अन्तिम स्थितिकाण्डकका प्रमाण विषयक निर्णय करके अब सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ इस विधिसे ग्रहण करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** चरम स्थितिकाण्डकको घातके लिये ग्रहण करता हुआ गुणश्रेणिके (उपरिम) संख्यात बहुभागको ग्रहण करता है और उपरिम अन्य संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहण करता है।**

§ ९५. उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकको घातके लिये ग्रहण करता हुआ इस समय उपलब्ध होनेवाले गुणश्रेणिआयामके संख्यातवें भागको और अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालसहित कृतकरणीय कालको छोड़कर पुनः शेष संख्यात बहुभागको ग्रहण करता है। केवल इतनी ही स्थितियों को नहीं ग्रहण करता है, किन्तु इनसे संख्यातगुणी उपरिम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्य स्थितियोंको भी ग्रहण करता है। इस सूत्र द्वारा अन्तिम स्थितिकाण्डकका प्रमाण पृथक् दिखलाया गया जानना चाहिए। इसलिए अवस्थित गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम सब गोपुच्छायें और अवस्थितस्वरूपसे किया गया समस्त गुणश्रेणिशीर्षस्थान इन सबको ग्रहणकर तथा अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर

णियट्टिकरणद्धाहिंतो विसेसाहियभावेण णिसित्तपोराणगुणसेढिसीसयस्स वि उवरिमे भागे अंतोमुहुत्तमेत्तट्ठिदीओ घेत्तूण चरिमट्ठिदिखंडयमागाएदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो। अवट्ठिदगुणसेढिअद्धाणे वि केत्तियं पि उव्वरिय सेससंखेज्जे भागे आगाएदि त्ति वक्खाणिज्जमाणे को दोसो त्ति चे? ण, कदकरणिज्जगोवुच्छाणं पलिदोवमासंखेज्जभागगुणगारोवएसेण सुत्तसिद्धेण तहाब्भुवगमस्स बाहियत्तादो। गलिदसेसगुणसेढिसीसयादो प्पहुडि हेट्ठिमभागं सव्वमेव कदकरणिज्जद्धासरूवेण ठवेदि त्ति किण्ण वक्खाणिज्जदे? ण, तहाविहपुव्वाइरियसंपदायविसेसाभावादो।

§ ९६. एवं चरिमट्ठिदिखंडयमाढविय अंतोमुहुत्तकालेण णिल्लेवेमाणस्स तक्कालब्भंतरे गुणसेढिणिक्खेवगयविसेसं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए पढमसमयमागाइदे ओवट्टिज्जमाणासु**

अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिकरूपसे रचित पुराने गुणश्रेणिशीर्षके उपरिम भागमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंको ग्रहण कर अन्तिम स्थितिकाण्डकको घातके लिये ग्रहण करता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

शंका—अवस्थित गुणश्रेणि-अध्वानमें भी कितने ही भागको छोड़कर शेष संख्यात बहुभागको ग्रहण करता है ऐसा व्याख्यान करनेमें क्या दोष है?

समाधान—नहीं, क्योंकि कृतकरणीयकी गोपुच्छाओंका उक्त प्रकारसे स्वीकार पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप सूत्रसिद्ध गुणकारके उपदेशसे बाह्य है।

शंका—गलित शेष गुणश्रेणिशीर्षसे लेकर अधस्तन समस्त भागको कृतकरणीयके कालरूपसे स्थापित करता है ऐसा व्याख्यान क्यों नहीं किया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकारका व्याख्यान करनेवाले पूर्वाचार्यसम्प्रदाय विशेषका अभाव है।

विशेषार्थ—यहाँ सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकका प्रमाण कितना है यह स्पष्ट करके बतलाया गया है कि पुराने गुणश्रेणिशीर्षकी उपरिम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंसे लेकर शेष सब उपरिम स्थितिको घातके लिए अन्तिम स्थितिकाण्डकरूपसे ग्रहण करता है यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

§ ९६. इस प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डकका आरम्भ कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालद्वारा निर्लेपन करनेवाले जीवके उस कालके भीतर गुणश्रेणिनिक्षेपगत विशेषताका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकके प्रथम समयमें घातके लिए ग्रहण करने**

ट्ठिदीसु जं पदेसग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं । से काले असंखेज्जगुणं ताव-जाव[1] ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए चरिमसमय-अपत्तो[2] त्ति ।

§ ९७. एत्थ 'ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु' त्ति वुत्ते जाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिखंडयसरूवेण अच्छिदाओ तासिं गहणं कायव्वं । अथवा सव्वासिमेव सम्मत्तस्स उदयावलियबाहिरट्ठिदीणं गहणं कायव्वं । तदो तासु ट्ठिदीसु जं पदेसग्गं तमोकड्डियूण गुणसेढिणिक्खेवं कुणमाणो उदए थोवं पदेसग्गं देदि । कुदो ? उदयादिगुणसेढिपइण्णाए अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मप्पहुडि पयट्टमाणाए पडिघादाभावादो । तदणंतरोवरिमट्ठिदीए असंखेज्जगुणं पदेसग्गं दिज्जदि । को गुणगारो ? तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवाणि । एवं ताव असंखेज्जगुणं जाव ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए चरिमसमय-अपत्तो[3] त्ति । एत्थ 'ट्ठिदिखंडयस्स जहण्णिया ट्ठिदि' त्ति भणिदे ट्ठिदिखंडयस्स आदिट्ठिदी घेत्तव्वा । तिस्से उद्देसं 'चरिमसमय-अपत्तो' त्ति वुत्ते तदणंतरहेट्ठिमणिसेयट्ठिदिं पज्जत्तं कादूण असंखेज्जगुणसेढीए पदेसविण्णासं करेदि त्ति घेत्तव्वं । अहवा ट्ठिदिखंडयजहण्णट्ठिदीए चरिमसमयमपत्तो त्ति वुत्ते

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पर अपवर्तन की जानेवाली स्थितियोंमेंसे जो प्रदेशपुञ्ज उदयमें दिया जाता है वह अल्प है । अनन्तर समयमें अर्थात् तदनन्तर उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है । इसप्रकार तब तक देता है जब तक कि जघन्य स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता ।

§ ९७. इस सूत्रमें 'ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु' ऐसा कहने पर जो स्थितियां स्थितिकाण्डकरूपसे अवस्थित हैं उनका ग्रहण करना चाहिए । अथवा सम्यक्त्वकी उदयावलि बाह्य सभी स्थितियोंका ग्रहण करना चाहिए । अतः उन स्थितियोंमें जो प्रदेशपुञ्ज है उसका अपकर्षण कर गुणश्रेणिमें निक्षेप करता हुआ उदयमें अल्प प्रदेशपुञ्जको देता है, क्योंकि आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर उदयादि गुणश्रेणिकी प्रतिज्ञाके प्रवृत्तमान होनेमें कोई रुकावट नहीं पाई जाती । पुन तदनन्तर उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है । गुणकार क्या है ? तत्प्रायोग्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अंक गुणकार है । इस प्रकार तब तक असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है जब तक स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थितिका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता । यहाँ सूत्रमें 'स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थिति' ऐसा कहने पर स्थितिकाण्डककी आदि अर्थात् प्रथम स्थिति ग्रहण करनी चाहिए । उसके उद्देशसे 'चरिमसमय-अपत्तो' ऐसा कहने पर तदनन्तर अधस्तन निषेकस्थिति तक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे प्रदेशविन्यास करता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । अथवा 'ट्ठिदिखंडयजहण्ण-

---

१. ता०प्रतौ ताव असंखेज्जगुणं जाव इति पाठः । २. ता०प्रतौ चरिमसमयमपत्तो इति पाठः ।
३. ता०प्रतौ म (म) पत्तो इति पाठः ।

सा चेव ट्ठिदिखंडयजहण्णट्ठिदी अप्पणो चरिमसमयत्तेण घेत्तव्वा। किं कारणं? तदवट्ठाणकालस्स तत्थ पज्जवसाणदंसणादो। वट्टमाणसमयउदयट्ठिदी णिरुद्धट्ठिदि-
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
खंडयजहण्णट्ठिदीए पढमसमयो होइ। उदयादो विदियट्ठिदी तिस्से चेव विदियसमयो होइ। एवं गंतूण सो चेव ट्ठिदिखंडयजहण्णट्ठिदी अप्पणो अवट्ठाणकालस्स चरिमसमयो त्ति भण्णदे। तं जाव ण पत्तो ताव हेट्ठा सव्वत्थ असंखेज्जगुणकमेण पदेसविण्णासं कुणदि त्ति एसो एत्थ भावत्थो। संपहि एसा चेव ट्ठिदिखंडयपढमट्ठिदीदो अणंतरहेट्ठिमा ट्ठिदी गुणसेढिसीसयं होइ त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** सा चेव ट्ठिदी गुणसेढिसीसयं जादं।**

§ ९८. तक्कालोकड्डिदसयलदव्वस्स असंखेज्जे भागे घेत्तूण संपहि णिरुद्धट्ठिदिं पज्जवसाणं कादूण गुणसेढिणिक्खेवं करेदि त्ति एसा चेव ट्ठिदी गुणसेढिसीसयभावेण णिद्दिट्ठा। एत्तो हेट्ठा सव्वत्थ ओकड्डिददव्वस्स असंखेज्जभागमेव गुणसेढीए णिक्खिवदि, सेसबहुभागे उवरिमगोवुच्छासु समयाविरोहेण णिसिंचदि। एत्तो पाए ओकड्डिददव्वस्स असंखेज्जे भागे गुणसेढीए णिक्खिविय सेसमसंखेज्जभागमुवरिमट्ठिदीसु समयाविरोहेण णिसिंचदि त्ति घेत्तव्वं। अदो चेव एत्तो उवरिमाणंतरट्ठिदिखंडयादिट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं पदेसग्गं णिसिंचदि त्ति पदुप्पायणफलमुत्तरसुत्तं—

ट्ठिदीए चरिमसमयमपत्तो' ऐसा कहने पर वही स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थिति अपने अन्तिम समयरूपसे ग्रहण की जानी चाहिए, क्योंकि उसके अवस्थानकालका वहाँ अन्त देखा जाता है। वर्तमान समयमें प्राप्त उदयस्थिति विवक्षित स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थितिका प्रथम समय है। उदयसे दूसरी स्थिति उसीका दूसरा समय है। इस प्रकार जाकर स्थितिकाण्डककी वही जघन्य स्थिति अपने अवस्थानकालका अन्तिम समय कहलाती है। उसे जब तक प्राप्त नहीं किया तब तक नीचे सर्वत्र असंख्यात गुणितक्रमसे प्रदेशविन्यास करता है यह यह भावार्थ है। अब स्थितिकाण्डककी प्रथम स्थितिसे यही अनन्तर अधस्तन स्थिति गुणश्रेणिशीर्ष होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** वही स्थिति गुणश्रेणिशीर्ष हो गई है।**

§ ९८. तत्काल अपकर्षित किये गये समस्त द्रव्यके असंख्यात बहुभागको ग्रहणकर तत्काल विवक्षित स्थितिको अन्तिम करके गुणश्रेणिमें निक्षेप करता है, इसलिये यही स्थिति गुणश्रेणिशीर्षरूपसे निर्दिष्ट की गई है। इससे नीचे सर्वत्र अपकर्षित किये गये द्रव्यके असंख्यातवें भागको ही गुणश्रेणिमें निक्षिप्त करता है तथा शेष बहुभागको उपरिम गोपुच्छाओंमें समयके अविरोधपूर्वक सिंचित करता है। किन्तु यहाँसे लेकर अपकर्षित किये गये द्रव्यके असंख्यात बहुभागको गुणश्रेणिमें निक्षिप्त करके शेष असंख्यातवें भागको उपरिम स्थितियोंमें समयके अविरोधपूर्वक निक्षिप्त करता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसीलिये इससे उपरिम अनन्तर स्थितिकाण्डककी आदि स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको सिंचित करता है इस बातके प्रतिपादनके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

ता०प्रतौ देदि इति पाठः।

*** जमिदाणिं गुणसेढिसीसयं तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्ज-गुणहीणं। तदो विसेसहीणं जाव पोराणगुणसेढिसीसयं ताव। तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं। सेसासु वि विसेसहीणं।**

§ ९९. एतदुक्तं भवति—ओकड्डिददव्वस्स असंखेज्जे भागे ट्ठिदिखंडयादो हेट्ठा गुणसेढिआयारेण णिक्खिविय तदो जमिदाणिं गुणसेढिसीसयं ट्ठिदिखंडय-मार्गदर्शकजहण्णट्ठिदीदो अणंतरहेट्ठिमसत्तो अणंतरोवरिमाए ट्ठिदिखंडयादिट्ठिदीए असंखेज्ज-गुणहीणं पदेसग्गं देदि। किं कारणं? ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदिखंडयब्भंतरट्ठिदीसु बहुअस्स पदेसग्गस्स विण्णासविरोहादो। तं कधं? गुणसेढिं कादूणुव्वरिविद-असंखेज्जदिभागादो पुणो वि असंखेज्जभागं पुध ट्ठविय तत्थतणबहुभागे ट्ठिदिखंडय-ब्भंतरम्मि पइट्ठगुणसेढिअद्धाणेणंतोमुहुत्तपमाणेण खंडिगुणेयखंडं विसेसाहियं कादूण ट्ठिदिखंडयादिट्ठिदीए णिसिंचदि। तदो विसेसहीणं कादूण णिक्खिवदि जाव पोराण-गुणसेढिसीसयं पाविय एत्थतणबहुभागदव्वं पज्जवसिदं। तदो पुध ट्ठविदमसंखेज्जभाग-मुवरिमसयलद्धाणेण हेट्ठिमद्धाणादो संखेज्जगुणेण खंडिदेयखंडं विसेसाहियं कादूण

*** जो इस समय गुणश्रेणिशीर्ष है उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। इसके बाद प्राचीन गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर प्रत्येक स्थितिमें विशेष हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे उपरिम स्थितिमें विशेष हीन देता है। इसी प्रकार शेष समस्त स्थितियोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन देता है।**

§ ९९. उक्त कथनका यह तात्पर्य है—अपकर्षित किये गये द्रव्यके असंख्यात बहुभागको स्थितिकाण्डकसे नीचे गुणश्रेणिके आकारसे निक्षिप्तकर जो इस समय स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थितिसे अनन्तर अधस्तन गुणश्रेणिशीर्ष है उससे स्थितिकाण्डककी अनन्तर उपरिम आदि स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है, क्योंकि स्थितिकाण्डककी अपवर्तित होनेवाली भीतरी स्थितियोंमें बहुत प्रदेशपुञ्जके विन्यासका विरोध है।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—क्योंकि गुणश्रेणि करके शेष बचे असंख्यातवें भागमेंसे फिर भी असंख्यातवें भागको पृथक् रखकर वहाँ प्राप्त बहुभागको स्थितिकाण्डकके भीतर प्राप्त हुए अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणि-अध्वानसे भाजितकर वहाँ प्राप्त एक खण्डको विशेष-अधिककर स्थितिकाण्डककी आदि स्थितिमें सींचता है। उसके बाद प्राचीन गुणश्रेणिशीर्षको प्राप्तकर यहाँके बहुभागप्रमाण द्रव्यका अन्त होने तक उत्तरोत्तर विशेष हीन द्रव्यका निक्षेप करता है। उसके बाद पृथक् रखे हुए असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको अधस्तन आयामसे संख्यातगुणे उपरिम

तदित्थगोवुच्छाए णिसिंचिय तत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणकमेण एयगोवुच्छा-सेढीए णिक्खिवदि जाव ट्ठिदिखंडयचरिमसमयमइच्छावणावलियमेत्तेणापत्तो[1] त्ति ।

§ १००. एवमेत्थ दिज्जमाणदव्वस्स तिण्णि सेढीओ जादाओ । दीसमाणं पुण जाव संपहियगुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणाए सेढीए दीसइ । तत्तो उवरिमाणंतराए एक्किस्से ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं होदूण तत्तो परं जाव गलिदसेसपोराणगुणसेढि-सीसयमुल्लंघिय पढमवारमवट्ठिदसरूवेण कदगुणसेढिसीसयं ति ताव असंखेज्जगुण-सेढीए चेव दीसमाणं होइ । तत्तो प्पहुडि जाव चरिमअवट्ठिदगुणसेढिसीसयं ताव विसेसाहियं चेव [illegible] ? ट्ठिदिखंडयजहण्णट्ठिदीए असंखेज्ज-गुणहीणं दादूण पुणो उवरि विसेसहीणं कादूण संपहि दिण्णदव्वस्स पुव्विल्ल-संचयगोवुच्छेहिंतो असंखेज्जगुणहीणत्तेण दीसमाणं पडि पहाणत्ताभावादो । तदो पुव्विल्लसंचयाणुसारेणेव तत्थ दीसमाणं होदि त्ति गहेयव्वं । तत्तो उवरिम सव्वत्थ गोवुच्छासेढीए विसेसहीणमेव दीसमाणं होदि त्ति घेत्तव्वं, तत्थ पयारंतरासंभवादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** विदियसमए जमुक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि ।**

समस्त आयामसे भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो उसे विशेष अधिक करके वहाँकी गोपुच्छामें सिंचितकर उससे ऊपर सर्वत्र स्थितिकाण्डकका अन्तिम समय अतिस्थापनावलि-मात्रसे नहीं प्राप्त हो वहाँ तक विशेष हीनक्रमसे एक गोपुच्छाश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है ।

§ १००. इस प्रकार यहाँ पर दीयमान द्रव्यकी तीन श्रेणियाँ हो गई हैं । परन्तु दृश्यमान द्रव्य तो वर्तमान गुणश्रेणिके शीर्षके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे दिखलाई देता है । उससे उपरिम अनन्तर एक स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन होकर उससे आगे गलित शेष प्राचीन गुणश्रेणिशीर्षको उल्लंघन कर प्रथम बार अवस्थितरूपसे किये गये गुणश्रेणि शीर्षके प्राप्त होने तक विशेष अधिक ही होता है ।

शंका—इसका कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि स्थितिकाण्डककी जघन्य स्थितिमें असंख्यातगुणा हीन देकर पुनः ऊपर विशेष हीन करके इस समय दिया गया द्रव्य पूर्वमें संचयरूप गोपुच्छासे असंख्यातगुणा हीन है, इसलिये उसकी दृश्यमान द्रव्यके प्रति प्रधानताका अभाव है । इसलिये पिछले संचयके अनुसार ही वहाँपर दृश्यमान द्रव्य होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

उससे ऊपर सर्वत्र गोपुच्छाश्रेणिमें विशेष हीन ही दृश्यमान द्रव्य होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वहाँ दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है ।

*** दूसरे समयमें जो प्रदेशपुञ्ज उत्कीरित किया जाता है उसे भी इसी क्रमसे**

---

१. ता०प्रती मेत्तेण पत्तो इति पाठः ।

एवं ताव, जाव ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाए दुचरिमसमयो त्ति।

§ १०१. सुगममेदं, एत्थुद्देसे सव्वत्थ पढमसमयपरूवणाए णाणत्तेण विणा पयट्टाए परिप्फुडमुवलंभादो। णवरि समयं पडि असंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डियूण जहावुत्तेण विण्णासेण णिक्खिवदि त्ति वत्तव्वं। गलिदसेसायामो च एण्हिं उदयादिगुणसेढिणिक्खेवो त्ति घेत्तव्वं। संपहि चरिमट्ठिदिखंडयस्स चरिमफालीए पदमाणाए जो अत्थविसेसो तं सुत्ताणुसारेण वत्तइस्सामो। तं जहा—

*** ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमए ओकड्डमाणो उदए पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं।**

§ १०२. एत्थोकड्डिज्जमाणदव्वपमाणं चरिमफालिपाहम्मेण किंचूणदिवड्ढगुणहाणिगुणिदसमयपबद्धपमाणमिदि घेत्तव्वं, गुणसेढीए सव्वदव्वस्स चरिमफालिदव्वं पेक्खियूण असंखेज्जगुणहीणत्तदंसणादो। एदं घेत्तूण कदकरणिज्जद्धामेत्तहेट्ठिमणिसेगेसु पदेसविण्णासं कुणमाणो उदये थोवं पदेसग्गं देदि, असंखेज्जसमयपबद्धपमाणत्ते वि तस्स उवरिमणिसेगेसु णिसिंचमाणदव्वावेक्खाए थोवभावाविरोहादो। से काले असंखेज्जगुणं देदि। को गुणगारो? तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तरूवाणि।

देता है। इस प्रकार स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालके द्विचरम समय तक जानना चाहिए।

§ १०१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इस स्थलपर सर्वत्र नानात्व अर्थात् भेदके बिना प्रवृत्त प्रथम समयकी प्ररूपणा स्पष्ट उपलब्ध होती है। इतनी विशेषता है कि प्रति समय असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षणकर यथोक्त विन्यासके अनुसार निक्षेप करता है ऐसा कहना चाहिए। और गलित शेष आयाम इस समय उदयादि गुणश्रेणिनिक्षेप है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। अब अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन होनेपर जो अर्थविशेष है उसे सूत्रके अनुसार बतलाते हैं। यथा—

*** स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें अपकर्षण करता हुआ उदयमें अल्प प्रदेशपुञ्जको देता है। तदनन्तर कालमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है। इस प्रकार गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है।**

§ १०२. यहाँपर अपकर्षित होनेवाले द्रव्यका प्रमाण अन्तिम फालिके माहात्म्यवश कुछ कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि गुणश्रेणिका समस्त द्रव्य अन्तिम फालिके द्रव्यको देखते हुए असंख्यातगुणा हीन देखा जाता है। इसको ग्रहणकर कृतकृत्यसम्यक्त्वके कालप्रमाण अधस्तन निषेकोंमें प्रदेशविन्यास करता हुआ उदयमें अल्प प्रदेशपुञ्जको देता है, क्योंकि यद्यपि वह असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण है तो भी उसके उपरिम निषेकोंमें सिंचित होनेवाले द्रव्यकी अपेक्षा अल्प होनेमें विरोधका अभाव है। तदनन्तर समयकी उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणा देता है। गुणकार क्या है? तत्प्रायोग्य

एवं जाव दुचरिमणिसेगो त्ति । णवरि हेट्ठिमाणंतरणिसेगगुणगारादो उवरिमाणंतरणिसेगगुणगारो असंखेज्जगुणवड्ढीए सव्वत्थ णेयव्वो । कुदो एदं णव्वदे ? पुव्वाइरियवक्खाणादो । तदो दुचरिमणिसेगादो गुणसेढिसीसए असंखेज्जगुणं पदेसग्गं देदि । संपहि को एत्थ गुणगारो त्ति आसंकाए तण्णिण्णयकरणट्ठं सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** गुणगारो वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवम [पढम] वग्गमूलाणि ।**

§ १०२. दुचरिमाए ट्ठिदीए णिसित्तपदेसग्गं पेक्खियूण चरिमाए गुणसेढिअग्गट्ठिदीए णिसिंचमाणदव्वस्स जो गुणगारो सो पलिदोवमपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागो वा अण्णो वा ण होदि, किंतु असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलपमाणो त्ति एदेण जाणाविदं । किं कारणमेम्महंतो गुणगारो एत्थ जादो त्ति णासंकणिज्जं हेट्ठा णिसित्तासेसदव्वस्स चरिमफालिदव्वमसंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलेहिं खंडिदेयखंडपमाणत्तब्भुवगमादो । एदेण हेट्ठिमासेसगुणगाराणं तप्पाओग्गपलिदोवमा-

---

पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अंक गुणकार हैं। इस प्रकार द्विचरम निषेकके प्राप्त होने तक जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अधस्तन अनन्तर निषेकके गुणकारसे उपरिम अनन्तर निषेकका गुणकार सर्वत्र असंख्यातगुणी वृद्धिरूपसे ले जाना चाहिए।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—पूर्वाचार्योंके व्याख्यानसे जाना जाता है।

इसके बाद द्विचरमनिषेकसे गुणश्रेणिशीर्षमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है। अब यहाँ पर गुणकार क्या है ऐसी आशंका होने पर उसका निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** द्विचरम स्थितिके प्रदेशपुञ्जसे अन्तिम स्थितिके प्रदेशपुञ्जका गुणकार पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।**

§ १०२. द्विचरम स्थितिमें जो प्रदेशपुञ्ज निक्षिप्त होता है उसे देखते हुए गुणश्रेणिकी अन्तिम अग्र स्थितिमें निक्षिप्त होनेवाले द्रव्यका जो गुणकार है वह न तो पल्योपमके प्रथम वर्गमूलका असंख्यातवाँ भाग है और न अन्य ही है, किन्तु पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है यह इससे जनाया गया है।

शंका—यहाँ पर इतना बड़ा गुणकार किस कारणसे हो गया है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि नीचे निक्षिप्त किया गया द्रव्य अन्तिम फालिके द्रव्यको पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलोंसे भाजितकर जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण स्वीकार किया गया है। इस कथन द्वारा अधस्तन समस्त गुण-

संखेज्जभागपमाणत्तं सूचिदं दट्ठव्वं, तेसु असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तेसु संतेसु कम्मट्ठिदिसंचयस्स अंगुलस्सासंखेज्जभागमेत्तसमयपबद्धपमाणत्ताइप्पसंगादो। तम्हा चरिमगुणगारो चेवासंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलमेत्तो, हेट्ठिमासेसगुणगारो तप्पाओग्गपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो त्ति सिद्धं। एत्थतणो 'अवि'सद्दो हेट्ठिमगुणगाराणं पि असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलत्तं सूचेदि त्ति केसिं चि आसंका। ण सा समंजसा, जुत्तिसुत्तबाहिरत्तादो। जइ एवं, अणत्थओ एत्थतणो 'अवि'सद्दो त्ति णासंकियव्वं अणुत्तसमुच्चयट्ठस्स तस्स हेट्ठिमगुणगाराणमवट्ठिदभावणिरायरणदुवारेण अणंतरहेट्ठिमं पेक्खियूणाणंतरोवरिमगुणगारस्सासंखेज्जगुणत्तसूचयत्तेण साफल्लदंसणादो। अधवा अविसद्दणेदेण समुच्चयट्ठेण चरिमट्ठिदिखंडयपढमफालिप्पहुडि सव्वत्थेव दुचरिमसमयगुणसेढिगोवुच्छादो गुणसेढिसीसयम्मि णिसिंचमाणदव्वस्स गुणगारो असंखेज्जपलिदोवमपढमवग्गमूलपमाणो त्ति वक्खाणेयव्वो, परिप्फुडमेव तत्थ तहाभावोवलंभादो। एवं चरिमट्ठिदिखंडयपरूवणा समत्ता। एत्थेवाणियट्टिकरणस्स वि परिसमत्ती दट्ठव्वा, संकिलेसविसोहीणमेत्तो परावत्तणदंसणादो। एत्तो उवरि करणपरिणामणिबंधणाणं ट्ठिदिखंडयघादादिकज्जविसेसाणमणुवलंभादो च। अदो

कारोंको पल्योपमके तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण सूचित किया गया जानना चाहिए, क्योंकि उन गुणकारोंको पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण होनेपर कर्मस्थितिके भीतर संचित हुए द्रव्यके अंगुलके असंख्यातवें भाग समयप्रबद्धप्रमाण होनेका अतिप्रसंग प्राप्त होता है। इसलिये अन्तिम गुणकार ही पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, किन्तु अधस्तन समस्त गुणकार पल्योपमके तत्प्रायोग्य असंख्यातवें भागप्रमाण है यह सिद्ध हुआ। यहाँ सूत्रमें आया हुआ 'अपि' शब्द अधस्तन गुणकारोंके भी पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाणपनेको सूचित करता है ऐसी किन्हींकी आशंका है, किन्तु वह योग्य नहीं है, क्योंकि वह युक्ति और सूत्रबाह्य है।

शंका—यदि ऐसा है तो इस सूत्रमें आया हुआ 'अपि' शब्द निष्फल है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अनुक्तका समुच्चय करनेवाला वह अधस्तन गुणकारोंके अवस्थितभावके निराकरणद्वारा अनन्तर अधस्तन गुणकारको देखते हुए अनन्तर उपरिम गुणकारके असंख्यातगुणा होनेका सूचक है, इसलिए उसकी सफलता देखी जाती है। अथवा समुच्चयार्थक इस 'अपि' शब्दसे अन्तिम स्थितिकाण्डककी प्रथम फालिसे लेकर सर्वत्र ही द्विचरम समयकी गुणश्रेणिगोपुच्छासे गुणश्रेणिशीर्षमें दिये जानेवाले द्रव्यका गुणकार पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण होता है ऐसा व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि वहाँ उस प्रकारका गुणकार स्पष्टरूपसे पाया जाता है। इस प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डककी प्ररूपणा समाप्त हुई। यहीं पर अनिवृत्तिकरणकी भी समाप्ति जाननी चाहिए, क्योंकि इससे आगे संक्लेश और विशुद्धियोंका परावर्तन देखा जाता है और इससे आगे करणपरिणामनिमित्तक स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेष नहीं उपलब्ध

चेव एत्तो पाए णिट्ठिदकिरियस्सेदस्स कदकरणिज्जभावपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं ।

* चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे ।

§ १०४. कुदो ? कदासेसकरणिज्जत्तादो । ण च एत्तो उवरि दंसणमोह-क्खवणविसयं किंचि करणिज्जमत्थि, तहाणुवलंभादो । तम्हा चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे तदो प्पहुडि जाव सम्मत्तस्स अंतोमुहुत्तमेत्तगुणसेढिगोवुच्छाओ कमेण गालेइ ताव कदकरणिज्जववएसारिहो एसो त्ति सिद्धं । एदस्स च सगकालब्भंतरे जो संभवंतओ परूवणाविसेसो तण्णिण्णयकरणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

* ताधे मरणं पि होज्ज ।

§ १०५. [1]तदद्धाए पढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमयो त्ति जत्थ वा तत्थ वा वट्टमाणस्स भवक्खयवसेण मरणं पि सिया हवेज्ज, दंसणमोहक्खवगस्स अमरण-पइण्णाए अणियट्टिकरणचरिमसमयपज्जंतत्तादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* लेस्सापरिणामं पि परिणामेज्ज ।

§ १०६. एसो कदकरणिज्जो पुव्वं व वड्ढमाणसुहतिलेस्साणमण्णदराए लेस्साए परिणदो होदूणागदो एण्हिं लेस्संतरं पि परिणामेदुं लहदि त्ति भणिदं होदि ।

होते और इसीलिए यहाँसे आगे निष्ठितक्रियावाले इसके कृतकृत्यभावके कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* अन्तिम स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर यह जीव कृतकृत्य कहा जाता है ।

§ १०४. क्योंकि इसने समस्त करणीय कर लिया है । इससे ऊपर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाविषयक कुछ भी करणीय नहीं है, क्योंकि वैसा कुछ करणीय पाया नहीं जाता । इस-लिये अन्तिम स्थितिकाण्डकके समाप्त होनेपर वहाँसे लेकर सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणि-गोपुच्छाओंके क्रमसे गलानेके समय तक यह कृतकृत्य इस संज्ञाके योग्य है यह सिद्ध हुआ और इसके अपने कालके भीतर जो प्ररूपणाविशेष सम्भव है उसका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध—

* उस कालमें मरण भी हो सकता है ।

§ १०५. उस कालके भीतर प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय तक जहाँ कहीं विद्यमान जीवका भवके क्षयवश मरण भी स्यात् हो सकता है, क्योंकि दर्शनमोहके क्षपकके नहीं मरनेकी प्रतिज्ञा अनिवृत्तिकरणके अन्तिम समय तक ही है ।

* लेश्यापरिणामको भी परिणमा सकता है ।

§ १०६. यह कृतकृत्य जीव पहलेसे वर्तमान शुभ तीन लेश्याओंमेंसे अन्यतर लेश्यासे परिणत होकर आया है । किन्तु इस समय दूसरी लेश्याके परिणामको भी प्राप्त

---

१. ता० प्रतौ 'तदद्धाए पढमसमयप्पहुडि जाव चरिमसमओ त्ति' इत्यपि सूत्रत्वेन निर्दिष्टम् ।

कदकरणिज्जस्स पढमसमए चेव लेस्सापरावत्ती होदि त्ति ण एवमेत्थ घेत्तव्वं। किंतु लेस्सापरावत्तीए एत्थ अहिमुहो होदूण पुणो अंतोमुहुत्तेण णिरुद्धलेस्सादो लेस्संतरं परिणामेदि त्ति घेत्तव्वं। एदस्स च णिबंधणमुवरि चुण्णिसुत्तयारो सयमेव भणिहिदि। संपहि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो होदूण लेस्संतरमेसो परिणममाणो किमविसेसेण सव्वासु सुहासुहलेस्सासु परिणमइ, आहो अत्थि को विसेसो त्ति आसंकाए णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

* काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणमण्णदरो।

§ १०७. जहण्णकाउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणमण्णदराए पुव्वावट्ठिदलेस्सापरिच्चागेणंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो परिणमदि त्ति भणिदं होइ। एदेण किण्ह-णीललेस्साणमच्चंताभावो एत्थ पदुप्पाइदो दट्ठव्वो, सुट्ठु वि संकिलिट्ठस्स कदकरणिज्जस्स सगकालब्भंतरे जहण्णकाउलेस्साणइक्कमादो। संपहि एदस्स कदकरणिज्जस्स ट्ठिदिखंडयघादादिविरहियस्स सम्मत्ताणुभागमणुसमयमणंतगुणहाणीए पुव्वपओगेणोहट्टमाणस्स सगकालब्भंतरे उदीरणागयविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* उदीरणा पुण संकिलिट्ठस्सदु वा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धा असंखेज्जगुणाए सेढीए जाव समयाहिया आवलिया सेसा त्ति।

करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। कृतकृत्य सम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें ही लेश्या परिवर्तन होता है इस प्रकार यहाँ नहीं ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यहाँपर लेश्यापरिवर्तनके अभिमुख होकर पुनः अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा विवक्षित लेश्यासे दूसरी लेश्याको परिणमाता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए और इसका कारण आगे चूर्णिसूत्रकार स्वयं ही कहेंगे। अब अन्तर्मुहूर्त काल तक कृतकृत्य होकर दूसरी लेश्याको परिणमाता हुआ यह क्या अविशेष रूपसे सभी शुभाशुभ लेश्यारूप परिणमता है या कोई विशेषता है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमेंसे अन्यतर लेश्यापरिणाम होता है।

§ १०७. अन्तर्मुहूर्तकालके बाद कृतकृत्य सम्यग्दृष्टि जीव पहलेकी अवस्थित लेश्याका परित्यागकर जघन्य कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल इनमेंसे अन्यतर लेश्यारूपसे परिणमता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस वचन द्वारा कृष्ण और नीललेश्याका यहाँ अत्यन्त अभाव कहा गया जानना चाहिए, क्योंकि अत्यन्त संक्लिष्ट हुआ भी कृतकृत्य जीव अपने कालके भीतर जघन्य कापोत लेश्याका अतिक्रम नहीं करता। अब स्थितिकाण्डकघात आदिसे रहित तथा सम्यक्त्वके अनुभागका पूर्व प्रयोगवश प्रत्येक समयमें अनन्तगुणी हानिरूपसे अपवर्तन करनेवाले इस कृतकृत्य जीवके अपने कालके भीतर उदीरणागत विशेषताका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* उक्त जीव चाहे संक्लेशको प्राप्त हो चाहे विशुद्धिको प्राप्त हो तो भी उसके

§ १०८. एदस्सत्थो—जहा गुणसेढिणिक्खेवादीणं विसेसाणं कदकरणिज्ज-कालब्भंतरे असंभवो, एवमसंखेज्जसमयपबद्धाणमुदीरणाए वि तत्थासंभवो चेवे त्ति णासंकियव्वं। किं तु एसो कदकरणिज्जो सगकालब्भंतरे संकिलिट्ठस्सदु[1] वा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धमेत्ता उदीरणा पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए[2] संकिलेसविसोहिणिरवेक्खा जाव समयाहियावलियकदकरणिज्जो त्ति ताव पवत्तदि चेव, ण पुणो पडिहम्मदि त्ति। कुदो एस णियमो चे ? सहावदो पुव्वपओगादो च। एसा पुण उदीरणा असंखेज्जसमयपबद्धमेत्ता सुट्ठु वि बहुगी जादा तक्कालभाविणो उदयस्स असंखेज्जदिभागमेत्ती चेव, ण तत्तो बहुगी जायदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तर-सुत्तावयारो—

*** उदयस्स पुण असंखेज्जदिभागो उक्कस्सिया वि उदीरणा।**

§ १०९. सव्वुक्कस्सिया जा उदीरणा सा हि तक्कालभाविउदयस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तो चेव णाण्णारिसि त्ति णिच्छेयव्वा। किं कारणं ? गुणसेढिगोवुच्छमाहप्पादो।

एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने तक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे असं-ख्यात समयप्रबद्धप्रमाण उदीरणा होती है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १०८. इस सूत्रका अर्थ—कृतकृत्य जीवके कालके भीतर जिस प्रकार गुणश्रेणि निक्षेप आदि विशेष असम्भव हैं उसी प्रकार वहाँ असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा भी असम्भव है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए। किन्तु यह कृतकृत्य जीव अपने कालके भीतर संक्लेशको प्राप्त हो या विशुद्धिको प्राप्त हो तो भी संक्लेश-विशुद्धिनिरपेक्ष असंख्यात समय-प्रबद्धप्रमाण उदीरणा प्रति समय असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे कृतकृत्यके कालमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने तक प्रवृत्त होती ही है, प्रतिघातको नहीं प्राप्त होती।

शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—यह नियम स्वभावसे और पूर्वप्रयोगसे है।

परन्तु असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण यह उदीरणा अत्यन्त बहुत होकर भी उस समय होनेवाले उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, उससे अधिक नहीं होती है इस बातका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** परन्तु उत्कृष्ट उदीरणा भी उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण होती है।**

§ १०९. सबसे उत्कृष्ट जो उदीरणा है वह भी तत्काल होनेवाले उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है, अन्य प्रकारकी नहीं है ऐसा निश्चय करना चाहिए।

शंका—इसका क्या कारण है ?

---

१. ता॰प्रतौ संकिलिस्सदु इति पाठः। २. ता॰प्रतौ -मसंखेज्जाए गुणसेढीए।

एवं ताव कदकरणिज्जकालब्भंतरे संभवंतमत्थविसेसं पदुप्पाइय संपहि हेट्ठिमपरूवणाविसयं किंचि अत्थविसेसं भण्णमाणो चुण्णिसुत्तयारो इदमाह—

*** पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागियमपच्छिमं ट्ठिदिखंडयं तस्स ठिदिखंडयस्स चरिमसमये गुणगारपरावत्ती। तदो आढत्ता ताव गुणगारपरावत्ती जाव चरिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स दुचरिमसमयो त्ति। सेसेसु समएसु णत्थि गुणगारपरावत्ती।**

§ ११०. एदेण सुत्तेण अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि जाव कदकरणिज्जचरिमसमयो त्ति ताव एदम्मि हेट्ठिमद्धाणे[1] कम्हि गुणगारपरावत्ती अत्थि कम्हि वा णत्थि त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो। तं जहा—अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि जाव पलिदोवमासंखेज्जदिभागगचरिमट्ठिदिखंडयदुचरिमफालि त्ति ताव णत्थि गुणगारपरावत्ती। किं कारणं? उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदिप्पहुडि जाव गलिदसेसगुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणसेढीए पदेसविण्णासं कादूण तत्तो अणंतरोवरिमाए गोवुच्छाणमादिट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं णिसिंचिय उवरि सव्वत्थेव विसेसहीणं णिसिंचदि त्ति एदिस्से परूवणाए तत्थावट्ठिदभावेण पवुत्तिदंसणादो। तदो पलिदो-

समाधान—गुणश्रेणिगोपुच्छाका माहात्म्य इसका कारण है।

इसप्रकार सर्व प्रथम कृतकृत्यके कालके भीतर होनेवाले अर्थविशेषका कथन कर अब अधस्तन प्ररूपणाविषयक कुछ अर्थविशेषका कथन करते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

*** पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जो अन्तिम स्थितिकाण्डक है उस स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें गुणकारपरावृत्ति होती है। तथा वहाँसे लेकर अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समय तक यह गुणकारपरावृत्ति होती है। शेष समयोंमें गुणकारपरावृत्ति नहीं होती।**

§ ११०. इस सूत्र द्वारा अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर कृतकृत्य जीवके अन्तिम समय तक इस सूत्रमें किस अधस्तन स्थानमें गुणकारपरावृत्ति है अथवा कहाँ नहीं है इस अर्थ विशेषका ज्ञान कराया गया है। यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डककी द्विचरम फालि तक गुणकारपरावृत्ति नहीं है, क्योंकि उदयावलि बाह्य अनन्तर स्थितिसे लेकर गलित शेष गुणश्रेणिशीर्षतक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे प्रदेशविन्यास करके उससे अनन्तर उपरिम गोपुच्छाकी आदि स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जका निक्षेपकर ऊपर सर्वत्र ही विशेष हीन प्रदेशपुञ्जका निक्षेप करता है, इसलिए इस प्ररूपणाके अनुसार वहाँ अवस्थितरूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए पल्यो-

१. ता०प्रतौ हेट्ठिमद्धाणे इदि पाठः।

वमस्स असंखेज्जभागिगं जन्पच्छिमं ट्ठिदिखंडयं तस्स चरिमसमए गुणगारपरावत्ती जायदे। किं कारणं ? गलिदसेसगुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतराए वि ट्ठिदीए तत्थ असंखेज्जगुणपदेसणिक्खेवदंसणादो उदयादिअवट्ठिदगुणसेढीए तत्थ पारंभादो च। तदो आढत्ता गुणगारपरावत्ती जाव चरिमट्ठिदिखंडयस्स दुचरिमसमयो त्ति। किं कारणं ? अवट्ठिदगुणसेढिवसेण दुचरिमादिहेट्ठिमट्ठिदिखंडयविसये सव्वत्थेव पुव्विल्लगुणसेढिसीसयादो उवरि वि एगेगट्ठिदीए असंखेज्जगुणपदेसविण्णासस्स णिव्वाहमुवलंभादो। चरिमट्ठिदिखंडयब्भंतरे च अणवट्ठिदगुणसेढिं कुणमाणो जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणकमेण णिसिंचिय पुणो तदणंतरोवरिमट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं जाव पोराणगुणसेढिसीसयं। तत्तो पुणो वि असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणमिच्चेदेण अणवट्ठिदकमेण पदेसणिसेयदंसणादो। पुणो चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमए णत्थि गुणगारपरावत्ती, तत्थ उदयादि जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणसेढीए पदेसविण्णासं कादूण गुणगारंतरेण विणा पज्जवसाणदंसणादो। एदं च सव्वं मणम्मि कादूण सेसेसु समएसु णत्थि गुणगार-परावत्ति त्ति वुत्तं।

पमका असंख्यातवाँ भागप्रमाण जो अन्तिम स्थितिकाण्डक है उसके अन्तिम समयमें गुणकारपरावृत्ति चालू होती है, क्योंकि गलितशेष गुणश्रेणिके शीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें भी वहाँ असंख्यातगुणे प्रदेशोंका निक्षेप देखा जाता है और वहाँसे उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिका प्रारम्भ हो जाता है। वहाँसे लेकर अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समय तक गुणकारपरावृत्ति होती रहती है, क्योंकि अवस्थित गुणश्रेणिके कारण द्विचरम आदि अधस्तन स्थितिकाण्डकोंमें सर्वत्र ही पिछले गुणश्रेणिशीर्षसे भी ऊपर एक-एक स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशोंका विन्यास निर्बाधरूपसे उपलब्ध होता है। परन्तु अन्तिम स्थितिकाण्डकके भीतर अनवस्थित गुणश्रेणिको करनेवाला जीव गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक असंख्यातगुणित क्रमसे प्रदेशपुञ्जका सिंचनकर पुनः तदनन्तर उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुञ्जका सिञ्चन करता है। उसके बाद प्राचीन गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक विशेष हीन प्रदेशपुञ्जका सिंचन करता है। उससे ऊपरकी स्थितिमें भी असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुंजका सिंचन करता है। उसके बाद विशेष हीन प्रदेशपुंजका सिंचन करता है, इसप्रकार इस अनवस्थित क्रमसे प्रदेशोंका सिंचन देखा जाता है। पुनः अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें गुणकारपरावृत्ति नहीं है, क्योंकि वहाँ उदयसे लेकर गुणश्रेणिशीर्ष तक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे प्रदेशविन्यास करके गुणकार परिवर्तनके विना पर्यवसान देखा जाता है। इस सबको मनमें करके शेष समयोंमें गुणकारपरावृत्ति नहीं है यह कहा है।

विशेषार्थ—दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जीवके भी दर्शनमोह आदिकी उपशमना आदि करनेवाले जीवोंके समान अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर स्थितिकाण्डकघात आदिका प्रारम्भ होकर प्रत्येक समयमें अपकर्षित प्रदेशपुञ्जका गुणश्रेणिमें और अपनी-अपनी अतिस्थापनावलिके पूर्व तक अन्य स्थितियोंमें निक्षेप होता रहता है। उक्त जीवके यद्यपि यह क्रम कृतकृत्य होनेके पूर्वतक होता है फिर भी सर्वत्र एक समान स्थितिकाण्डक न होकर

§ १११. एवं ताव गुणगारपरावत्तिपरूवणमुहेण हेट्ठिमासेसपरूवणमुवसंहरिय संपहि कदकरणिज्जकालब्भंतरे मरण-लेस्सापरावत्तीओ पुव्वं सामण्णेणत्थि त्ति परूविदाओ पुणो विसेसियूण परूवेमाणो पबंधमुत्तरं भणइ—

* पढमसमयकदकरणिज्जो जदि मरदि देवेसु उववज्जदि णियमा ।

उनके आयाममें उत्तरोत्तर स्थितिसत्कर्मके अनुसार अल्पता आती जाती है। यथा—अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अनिवृत्तिकरणमें मिथ्यात्वका पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहने तक जो हजारों स्थितिकाण्डक होते हैं उनमेंसे प्रत्येकका आयाम पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। यहाँसे लेकर दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहने तक जो हजारों स्थितिकाण्डक होते हैं, प्रारम्भसे लेकर उत्तरोत्तर उनका आयाम शेष रहे स्थितिसत्कर्मके संख्यात बहुभागप्रमाण होता है। दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे लेकर प्रत्येक स्थितिकाण्डकका आयाम शेष रहे स्थितिसत्कर्मका असंख्यात बहुभागप्रमाण होता है। यह क्रम क्रमसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा होकर सम्यक्त्वके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहने तक चालू रहता है। यहाँसे लेकर सर्वत्र इस जीवके कृतकृत्य होनेतक प्रत्येक स्थितिकाण्डकका आयाम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। यह कहाँ प्रत्येक स्थितिकाण्डकका कितना आयाम होता है इसका विचार है। इस सम्बन्धमें यथास्थान गुणकारका निर्देश करते हुए जो गुणकारपरावर्तनका उल्लेख किया गया है उसका आशय यह है कि जबतक प्रत्येक समयमें गलितशेष गुणश्रेणिकी रचना होती रहती है तबतक तो गुणकार परिवर्तन नहीं होता। किन्तु जिस समय इसका स्थान अवस्थित गुणश्रेणि लेती है तब उस (अवस्थित गुणश्रेणि) की अन्तिम स्थितिमें गुणकार परिवर्तन होता है, क्योंकि नीचे एक स्थितिके गलनेपर ऊपर (गुणश्रेणिशीर्षके ऊपर) एक स्थितिकी वृद्धि हो जाती है। अभी तक उदयावलि बाह्य गलितशेष गुणश्रेणिकी रचना होती थी। किन्तु यहाँसे उदयादि अवस्थित गुणश्रेणिका प्रारम्भ हो जाता है। यहाँसे इतनी विशेषता और समझनी चाहिए। आगे यहाँसे लेकर अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयतक इसी कारण गुणकार परावर्तन होता रहता है, क्योंकि यहाँतक प्रत्येक समयमें उदयरूपसे एक स्थितिके गलनेपर ऊपर गुणश्रेणिशीर्षमें एक स्थितिकी वृद्धि होती रहती है। अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय गुणश्रेणिका विन्यास अनवस्थितस्वरूपसे होनेके कारण इतनी विशेषता है कि उसे रचता हुआ गुणश्रेणिशीर्षतक असंख्यातगुणित क्रमसे गुणश्रेणिकी रचना करता हुआ उसके ऊपरकी स्थितिमें असंख्यात गुणहीन प्रदेशपुंजोंकी रचना करता है। तथा उससे ऊपर प्राचीन गुणश्रेणिशीर्षतक विशेषहीन द्रव्यका निक्षेप करता हुआ उससे उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे ही प्रदेशपुञ्जका निक्षेपकर उससे ऊपर विशेषहीन द्रव्यका निक्षेप करता है। किन्तु यह व्यवस्था द्विचरम समय तक ही जाननी चाहिए। अन्तिम समयमें तो इस प्रकार गुणकार परावर्तन नहीं होता, क्योंकि उस समय गुणश्रेणिशीर्षतक असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे ही प्रदेशपुंजका विन्यास करता है।

§ १११. अब कृतकृत्य जीवके कालके भीतर मरण और लेश्यापरिवर्तन पहले होता है यह सामान्यसे कह आये हैं। किन्तु अब विशेषरूपसे कथन करते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

§ ११२. कदकरणिज्जादपढमसमए चेव जइ कालं करेइ तो णियमा देवगदीए चेव समुप्पज्जदि, णाण्णगदीसु त्ति भणिदं होदि। कुदो एस णियमो चे ? सेसगइसमुप्पत्तिणिबंधणलेस्सापरावत्तीए तत्थासंभवादो। एवं बिदियादिसमयकदकरणिज्जस्स वि देवेसु चेवुप्पादणियमो अणुगंतव्वो जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तकालचरिमसमओ त्ति। तत्तो उवरि कालं करेमाणो कदकरणिज्जो सेसगदीसु वि पुव्वाउगबंधवसेण उप्पत्तिपाओग्गो होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं——

*** जइ णेरइएसु वा तिरिक्खजोणिएसु वा मणुसेसु वा उववज्जदि, णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो।**

§ ११३. कुदो ? तत्थुप्पत्तिणिबंधणसंकिलेसादिसंबंधस्स लेस्सापरावत्तीए च तेत्तियमेत्तकालेण विणा संभवाभावादो।

*** कृतकृत्य जीव यदि प्रथम समयमें मरता है तो नियमसे देवोंमें उत्पन्न होता है।**

§ ११२. कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें ही यदि मरण करता है तो नियमसे देवगतिमें ही उत्पन्न होता है, अन्य गतियोंमें नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि वहाँपर शेष गतियोंमें उत्पत्तिका कारणभूत लेश्यापरिवर्तनका होना असम्भव है।

इसी प्रकार कृतकृत्य जीवके तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके अन्तिम समयतक द्वितीयादि समयोंमें भी देवोंमें ही उत्पत्तिका नियम जानना चाहिए। उसके बाद मरण करनेवाला कृतकृत्य जीव शेष गतियोंमें भी पहले बाँधी गई आयुके कारण उत्पत्तिके योग्य होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** यदि नारकियोंमें, तिर्यञ्चयोनियोंमें और मनुष्योंमें उत्पन्न होता है तो नियमसे कृतकृत्य होनेके अन्तर्मुहूर्तकाल बाद ही उत्पन्न होता है।**

§ ११३. क्योंकि उन गतियोंमें उत्पत्तिके कारणरूप संक्लेश और लेश्यापरावर्तनकी उतना काल गये बिना उत्पत्ति नहीं पाई जाती।

विशेषार्थ—यहाँ कृतकृत्यभावसे युक्त उक्त जीव मरकर कब किस गतिमें उत्पन्न हो इस प्रसंगसे जिन तथ्योंपर प्रकाश डाला गया है वे हृदयंगम करने लायक हैं। प्रश्न यह है कि कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें यदि मरता है तो देवोंमें ही क्यों उत्पन्न होता है ? इस प्रश्नका समाधान करते हुए देवायुके उदयका उल्लेख न कर यहाँ टीकामें बतलाया है कि उस समय मरकर यह जीव अन्य गतियोंमें उत्पन्न हो, उसके परिवर्तन होकर इस प्रकारकी लेश्या नहीं पाई जाती। इस समय उक्त जीवके देवायुका उदय नहीं

*** जइ तेउ-पम्म-सुक्के वि, अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो ।**

§ ११३. एदं भणंतस्साहिप्पाओ अधापवत्तकरणम्मि विसोहिमावूरिय तेउ-पम्म-सुक्काणमण्णदराए वड्ढमाणसुहलेस्साए दंसणमोहक्खवणं पट्ठविय पुणो जाव कदकरणिज्जो होइ ताव सा चेव पुव्वपारद्धलेस्सा वड्ढमाणा होदूण पुणो वि जाव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव पारद्धलेस्सं मोत्तूणण्णलेस्सं ण परावत्तेदि त्ति । किं कारणं ? कदकरणिज्जभावं पडिवज्जमाणस्स पुव्वपारद्धलेस्साए उक्कस्संसो भवदि । पुणो तिस्से मज्झिमंसयं गंतूणंतोमुहुत्तमच्छिय जहण्णंसये वि जाव अंतोमुहुत्तकालं ण अच्छिदो ताव अण्णलेस्सापरावत्तीए संभवाणुववत्तीदो ।

होता ऐसा नहीं है । जिसका कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें मरण होता है उसके बध्यमान एकमात्र देवायु ही सत्त्वरूप होती है और उस समय उसका नियमसे उदय हो जाता है । परन्तु इस जीवने उस समय जो मनुष्य पर्याय छोड़कर देवपर्याय ग्रहण की है मुख्यरूपसे वह अपनी अन्तरंग योग्यताके कारण ही । देवायुके उदयके कारण उस समय वह देव हुआ इस कथनको मात्र इसीलिए उपचरित स्वीकार किया गया है । इसी प्रकारका उपादान-उपादेयसम्बन्ध और निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध सर्वत्र आगममें स्वीकार किया गया है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि इस जीवके कृतकृत्य होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकालतक देवगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें उत्पन्न होने योग्य संक्लेश परिणाम और लेश्यापरिवर्तन क्यों नहीं होता ? समाधान यह है कि अन्तर्मुहूर्त कालतक उक्त जीवमें स्वयं ही ऐसी पात्रता नहीं होती कि वह कृतकृत्य होनेके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकालतक देवगतिको छोड़कर मरकर अन्य गतियोंमें जाने योग्य संक्लेश परिणामको उत्पन्न कर सके, और जब वह इस जातिका परिणाम ही उक्त कालके भीतर पैदा नहीं कर सकता तो बदलकर तदनुरूप लेश्याका होना तो और भी असम्भव है । इतने विवेचनसे दो बातोंका पता लगता है कि एक कालमें अन्तरंग और बहिरंग साधनोंका योग स्वयं होता है और जिस कार्यके वे सूचक होते हैं, उस कालमें वह कार्य भी द्रव्यके परिणमन-स्वभावके कारण स्वयं होता है । अविनाभावसम्बन्ध वश ही उनमें परस्पर कार्यकारण व्यवहार होनेका नियम है ।

*** यदि वह तेज, पद्म और शुक्ललेश्यामेंसे किसी भी लेश्यामें अवस्थित है तो कृतकृत्य होनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त कालतक उक्त लेश्यामें ही अवस्थित रहता है ।**

§ ११३. इसप्रकार कहनेवाले आचार्यका यह अभिप्राय है कि अधःप्रवृत्तकरणमें विशुद्धिको पूर कर तेज, पद्म और शुक्ल इनमेंसे किसी एक शुभ लेश्यामें दर्शनमोहकी क्षपणाका प्रारम्भ कर पुनः जब जाकर यह जीव कृतकृत्य होता है तब तक उसके पूर्वमें प्रारम्भ की गई वही लेश्या पाई जाती है तथा पुनः उसके आगे भी जब तक अन्तर्मुहूर्तकाल नहीं गया तब तक प्रारब्ध उक्त लेश्याको छोड़कर अन्य लेश्यारूप परिवर्तन नहीं करता है, क्योंकि कृतकृत्य-भावको प्राप्त होनेवाले जीवके पूर्वमें प्रारब्ध हुई लेश्याका उत्कृष्ट अंश होता है । पुनः उसके मध्यम अंशको प्राप्त कर और अन्तर्मुहूर्त कालतक उस रूप रहकर जघन्य अंशमें भी जब अन्तर्मुहूर्त कालतक नहीं रह लेता तबतक अन्य लेश्यारूप परिवर्तनका होना सम्भव नहीं है ।

§ ११४. अहवा 'तेउ-पम्म-सुक्के वि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो' एदस्स सुत्तस्सत्थमेवं भणंता वि अत्थि—जहा अधापवत्तकरणपारंभे पुव्वुत्तविहाणेण तेउ-पम्म-सुक्काणमण्णदराए लेस्साए पारद्धकिरियस्स पुणो दंसणमोहक्खवणकिरियापरिसमत्तीए कदकरणिज्जभावेण परिणममाणस्स णिच्छएण सुक्कलेस्सा चेव भवदि, विसोहीए परमकोडिमारूढस्स तदविरोहादो। पुणो तिस्से विणासेण जइ तेउपम्मलेस्साओ समयाविरोहेण परावत्तेदि तो जाव अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो ण जादो ताव ण परावत्तेदि त्ति।

§ ११५. एवमेदेण सुत्तेण कदकरणिज्जस्स लेस्सापरावत्तिकमं परूविय संपहि पयदमत्थमुवसंहरेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* एवं परिभासा समत्ता।

§ ११६. एवमेसा सुत्तपरिभासा समत्ता त्ति पयदत्थोवसंहारवक्कमेदं सुगमं।

---

§ ११४. अथवा 'तेउ-पम्म-सुक्के वि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो' इस सूत्रका कुछ आचार्य इसप्रकार भी अर्थ करते हैं कि जिस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके प्रारम्भमें पूर्वोक्त विधिसे तेज, पद्म और शुक्ललेश्यामेंसे अन्यतर लेश्याके साथ क्षपणक्रियाका प्रारम्भ करनेवाला जो जीव पुनः दर्शनमोहकी क्षपणारूप क्रियाकी समाप्ति होनेपर कृतकृत्यरूपसे परिणमन करता है उसके नियमसे शुक्ललेश्या ही होती है, क्योंकि विशुद्धिके द्वारा उत्कृष्ट कोटिको प्राप्त हुए उक्त जीवके शुक्ललेश्याके होनेमें विरोध नहीं है। पुनः उसका विनाश होनेसे आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार यदि तेज और पद्मलेश्यारूपसे परिणत होता है तो कृतकृत्य होनेके बाद जब तक अन्तर्मुहूर्तकाल नहीं जाता तब तक वह उक्त लेश्यारूपसे परिवर्तन नहीं करता।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके समय शुभ तीन लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्या होती है। प्रश्न यह है कि कृतकृत्य सम्यग्दृष्टि होनेके पूरे काल तक वही एक लेश्या बनी रहती है या वह बदल जाती है? साथ ही दूसरा प्रश्न यह भी है कि कृतकृत्य होनेके बाद लेश्याकी क्या स्थिति बनती है? इन दोनों प्रश्नोंका समाधान उक्त सूत्र द्वारा करते हुए कतिपय आचार्य उक्त सूत्रकी क्या व्याख्या करते हैं यह उसकी टीकामें बतलाया गया है। टीकाका आशय स्पष्ट होनेसे यहाँ हम उस पर विशेष प्रकाश डालनेकी आवश्यकता नहीं समझते।

§ ११५. इस प्रकार इस सूत्रद्वारा कृतकृत्य सम्यग्दृष्टिके लेश्याके परावर्तनके क्रमका कथन कर अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस प्रकार परिभाषा समाप्त हुई।

§ ११६. इस प्रकार यह सूत्र परिभाषा समाप्त हुई इस प्रकार प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह सूत्रवाक्य सुगम है।

विशेषार्थ—सूत्रमें जो अर्थ कहा गया हो या उसके द्वारा जो अर्थ सूचित होता हो उसके व्याख्यान करनेको विभाषा कहते हैं। तथा जो अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया हो,

§ ११७. एवमेदमुवसंहरिय संपहि एत्थतणाणं पदविसेसाणं पदपडिवूरणं बीजपदावलंबणेणप्पाबहुअं परूवेमाणो तव्विसयमेव ताव पइण्णावक्कमाह—

*** दंसणमोहणीयक्खवगस्स पढमसमए अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकदकरणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं ट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं जहण्णुक्कस्सियाणं आबाहाणं च जहण्णुक्कस्सियाणमण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ११८. सुगममेदं, दंसणमोहक्खवयसंबंधियाणमेदेसिं जहाणिद्दिट्ठाणं पदाणं जहण्णुक्कस्सपदविसेसिदाणमप्पाबहुअं कस्सामो त्ति पइण्णामेत्तवावदत्तादो ।

*** तं जहा ।**

§ ११९. सुगममेदं ।

प्रकरणसंगत होने पर भी जो अर्थ सूत्रद्वारा नहीं भी कहा गया हो और जो अर्थ देशामर्षक-रूपसे सूचित किया गया हो उस सबके व्याख्यान करनेको परिभाषा कहते हैं। इस प्रकार परिभाषाके इस लक्षणके अनुसार यहाँ पूर्वोक्त चूर्णिसूत्रद्वारा यह सूचित किया गया है कि दर्शनमोहकी क्षपणासम्बन्धी जो पाँच सूत्रगाथाएँ पूर्वमें निर्दिष्ट की गई हैं उनके उक्त-अनुक्त सभी प्रकारके विषयका यहाँ तक चूर्णिसूत्रों द्वारा विवेचन किया गया है। इतना अवश्य है कि इस अनुयोगद्वारसम्बन्धी पाँचवीं सूत्रगाथाकी परिभाषा स्वयं चूर्णिसूत्रकारने आगे की है।

§ ११७. इस प्रकार इसका उपसंहार करके अब बीजपदोंका अवलम्बन लेकर इस अनुयोगद्वारके पदविशेषसम्बन्धी पदोंकी पूर्ति करनेवाले अल्पबहुत्वका कथन करते हुए सर्वप्रथम तद्विषयक प्रतिज्ञावाक्यको कहते हैं—

*** दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके प्रथम समयमें अपूर्वकरणसे लेकर कृतकृत्य होनेके प्रथम समय तक इस अन्तरालमें जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागकाण्डक-उत्कीरणकाल तथा स्थितिकाण्डक उत्कीरणकालोंके; जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति-काण्डक, स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मोंके; जघन्य और उत्कृष्ट आबाधाओंके तथा अन्य पदोंके अल्पबहुत्वको बतलावेंगे ।**

§ ११८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणासे सम्बन्ध रखनेवाले जघन्य और उत्कृष्ट पदविशिष्ट यथानिर्दिष्ट इन पदोंके अल्पबहुत्वको करेंगे इस प्रकारकी प्रतिज्ञा-मात्रमें इस सूत्रका व्यापार है।

*** वह जैसे ।**

§ ११९. यह सूत्र सुगम है।

* सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा ।

§ १२०. सव्वेहिंतो थोवा सव्वत्थोवा, उवरि भणिस्समाणासेसपदेहिंतो थोवयरा त्ति वुत्तं होइ । का सा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा, कम्हि उद्देसे एसा गहेयव्वा ? दंसणमोहणीयस्स ताव अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मे चिट्ठमाणे जं पुव्वमणुभागखंडयं तस्स उक्कीरणद्धा सव्वजहण्णा गहेयव्वा णाणावरणादिसेसकम्माणं पुण पढमसमयकदकरणिज्जे जायमाणे जं पुव्विल्लमणुभागखंडयं अणियट्टिचरिमावत्थाए तदुक्कीरणद्धा सव्वजहण्णगा त्ति गहेयव्वा । तत्तो परं कदकरणिज्जकालब्भंतरे ट्ठिदिअणुभागखंडयघादादिकिरियाणमप्पवुत्तिदंसणादो । तदो सव्वुक्कस्सविसोहिणिबंधणा एसा सव्वत्थोवा त्ति सिद्धं १ ।

* उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया ।

§ १२१. किं कारणं ? सव्वकम्माणं अपुव्वकरणपढमसमयपट्ठिदाणुभागखंडयुक्कीरणद्धाए गहणादो । संखेज्जगुणा एसा किण्ण जादा त्ति णासंकणिज्जं, तहाभावसंभवासंकाए एदेणेव सुत्तेण णिसिद्धत्तादो २ ।

---

* अनुभागकाण्डकका जघन्य उत्कीरणकाल सबसे थोड़ा है ।

§ १२०. सबके स्तोकको सर्वस्तोक कहते हैं। ऊपर कहे जानेवाले समस्त पदोंसे स्तोकतर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—अनुभागकाण्डकका वह जघन्य उत्कीरणकाल कौनसा है, यह किस स्थानका लेना चाहिए ?

समाधान—सर्वप्रथम दर्शनमोहनीयके आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके रहनेपर जो पहलेका अनुभागकाण्डक है उसका उत्कीरणकाल सबसे जघन्य है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। परन्तु कृतकृत्य होनेके प्रथम समयमें ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंका जो पहलेका अनुभागकाण्डक है, अनिवृत्तिकरणकी अन्तिम अवस्थामें उसका उत्कीरणकाल सबसे जघन्य है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उससे आगे कृतकृत्यकालके भीतर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात आदि क्रियाओंकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। अतः सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिनिमित्तक यह सबसे जघन्य है यह सिद्ध हुआ १ ।

* उससे उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है ।

§ १२१. क्योंकि सभी कर्मोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त अनुभागकाण्डकसम्बन्धी उत्कीरणकालका यहाँ ग्रहण किया गया है ।

शंका—यह संख्यातगुणा क्यों नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उस प्रकारकी होनेवाली आशंकाका इसी सूत्रद्वारा निषेध कर दिया गया है २ ।

* ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ठिदिबंधगद्धा च जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।

§ १२२. कुदो ? एगट्ठिदिखंडयत्तब्बंधकालब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्ताणमणुभागखंडयाणमागमगम्माणमुवलंभादो । कत्थ पुण एदाओ जहण्णद्धाओ घेत्तव्वाओ ? सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धा तत्थेव सेसकम्माणं पि ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ठिदिबंधकालो च घेत्तव्वो ३ ।

* ताओ उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ ।

§ १२३. किं कारणं ? सव्वेसिं पि[1] कम्माणमपुव्वकरणपढमसमयविसयाणमेदासिं सव्वुक्कस्सभावेण गहणादो । एत्थ संखेज्जगुणत्तासंकाए पुव्वं व पडिसेहो कायव्वो । तदो विसेसाहियत्तमेवे त्ति सिद्धं ४ ।

* कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा ।

§ १२४. कुदो ? कदकरणिज्जकालब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्तठिदिबंधाणं संभवदंसणादो ५ ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* उससे स्थितिकाण्डकका जघन्य उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धकाल ये दोनों तुल्य होकर भी संख्यातगुणे हैं ।

§ १२२. क्योंकि एक स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकालके भीतर आगमसे जाने गये संख्यात हजार अनुभागकाण्डक उत्कीरणकाल उपलब्ध होते हैं ।

शंका—परन्तु ये दोनों जघन्य काल किस स्थानके लेने चाहिए ?

समाधान—सम्यक्त्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल तथा वहींपर शेष कर्मोंके भी स्थितिकाण्डक-उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल लेने चाहिए ३ ।

* उनसे, उत्कृष्ट ये दोनों परस्पर तुल्य होकर भी, विशेष अधिक हैं ।

§ १२३. क्योंकि सभी कर्मोंके अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी ये दोनों उत्कृष्टरूपसे ग्रहण किये गये हैं । यहाँपर संख्यातगुणे होनेकी आशंकाके होनेपर पहलेके समान निषेध करना चाहिए । इसलिये पूर्वके दोनों पदोंसे ये दोनों पद विशेष अधिक ही हैं यह सिद्ध हुआ ४ ।

* उनसे कृतकृत्य सम्यग्दृष्टिका काल संख्यातगुणा है ।

§ १२४. क्योंकि कृतकृत्य सम्यग्दृष्टिके कालके भीतर संख्यात हजारप्रमाण स्थितिबन्धोंका सम्भव देखा जाता है ५ ।

१. ता०प्रतौ पि इति पाठो नास्ति ।

* सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा।

§ १२५. एवं भणिदे मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं खविय पुणो अट्ठवस्समेत्तट्ठिदिसंतकम्मं खवेमाणस्स कालो गहेयव्वो। पुव्विल्लादो एसो संखेज्जगुणो। कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ६।

* अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा।

§ १२६. किं कारणं ? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण संखेज्जभागे सेसे सम्मत्तक्खवणद्धाए पारंभदंसणादो ७।

* अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा।

§ १२७. कुदो ? सहावदो चेवाणियट्टिकरणद्धादो अपुव्वकरणद्धाए सव्वत्थ संखेज्जगुणसरूवेणेवावट्ठाणणियमदंसणादो ८।

* गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ।

§ १२८. केत्तियमेत्तेण ? विसेसाहियअणियट्टिकरणद्धामेत्तेण। कुदो ? पढमसमयापुव्वकरणेण अपुव्वाणियट्टिकरणद्धाहिंतो विसेसाहियभावेण णिक्खित्तगुणसेढिआयामस्स विवक्खियत्तादो ९।

---

* उससे सम्यक्त्वप्रकृतिका क्षपणाकाल संख्यातगुणा है।

§ १२५. ऐसा कहनेपर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर पुनः आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्कर्मका क्षय करनेवाले जीवके कालका ग्रहण करना चाहिए। पूर्वके कालसे यह संख्यातगुणा है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ६।

* उससे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है।

§ १२६. क्योंकि अनिवृत्तिकरणके संख्यात बहुभाग जाकर संख्यातवें भागप्रमाण शेष रहनेपर सम्यक्त्वकी क्षपणाके कालका प्रारम्भ देखा जाता है ७।

* उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है।

§ १२७. क्योंकि स्वभावसे ही अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणके कालका सर्वत्र संख्यातगुणेरूपसे अवस्थान होनेका नियम देखा जाता है ८।

* उससे गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है।

§ १२८. शंका—कितनामात्र अधिक है ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालसे कुछ अधिक है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम

* सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

§ १२९. एदं पि अंतोमुहुत्तपमाणमेव होदूण पुव्विल्लादो संखेज्जगुणमिदि णिच्छेयव्वं १० ।

* तस्सेव चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

§ १३०. गयत्थमेदं सुत्तं, चरिमट्ठिदिखंडयमाहप्पस्स पुव्वमेव समत्थियत्तादो ११।

* अट्ठवस्सट्ठिदिगे संतकम्मे सेसे जं पढमं ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं ।

§ १३१. को गुणगारो ? संखेज्जा समया १२ ।

* जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

§ १३२. कदकरणिज्जपढमसमयविसयजहण्णाबाहाए णाणावरणादिकम्मपडि-पयडीए एत्थ गहणं कायव्वं । एसा पुण पुव्विल्लादो संखेज्जगुणा त्ति सुत्तसिद्धमेव गहेयव्वं १३ ।

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

समयसे लेकर अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक गुणश्रेणि-आयामका निक्षेप यहाँपर विवक्षित है ९ ।

* उससे सम्यक्त्वप्रकृतिका द्विचरम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १२९. यह भी मात्र अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होकर पिछले पदसे संख्यातगुणा है ऐसा निश्चय करना चाहिए १० ।

* उससे उसीका अन्तिम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १३०. यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि अन्तिम स्थितिकाण्डकके माहात्म्यका पहले ही समर्थन कर आये हैं ११ ।

* उससे आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहनेपर जो प्रथम स्थितिकाण्डक होता है वह संख्यातगुणा है ।

§ १३१. **शंका**—गुणकार क्या है ?

समाधान—संख्यात समय गुणकार है १२ ।

* उससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है ।

§ १३२. कृतकृत्यसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें ज्ञानावरणादि कर्मसम्बन्धी जघन्य आबाधाका यहाँपर ग्रहण करना चाहिए । यह पिछले पदसे संख्यातगुणी है, इसप्रकार सूत्रसिद्ध ही इसका ग्रहण करना चाहिए १३ ।

* उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है ।

§ १३३. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमयसंखेज्जगुणट्ठिदिबंधपडिबद्धाबाहाए गहणादो १४ ।

** पढमसमयअणुभागं अणुसमयोवट्टमाणगस्स अट्ठवस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
§ १३४. किं कारणं ? अंतोमुहुत्तादो अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जगुणत्तसिद्धीए विसंवादाणुवलंभादो १५ ।

** सम्मत्तस्स असंखेज्जवस्सियं चरिमट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं ।**

§ १३५. कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो १६ ।

** सम्मामिच्छत्तस्स चरिममसंखेज्जवस्सियं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं ।**

§ १३६. केत्तियमेत्तो विसेसो ? आवलियूणट्ठवस्समेत्तो । कारणमेत्थ सुगमं १७ ।

** मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।**

---

§ १३३. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले संख्यातगुणे स्थितिबन्धसे सम्बन्ध रखनेवाली आबाधाका ग्रहण किया है १४ ।

** उससे प्रत्येक समयमें अनुभागकी अपवर्तना करनेवाले जीवके प्रथम समयमें प्राप्त आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ १३४. क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे आठ वर्षप्रमाण स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा सिद्ध है, इसमें किसी प्रकारका विसंवाद नहीं पाया जाता है १५ ।

** उससे सम्यक्त्वप्रकृतिका असंख्यात वर्षप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।**

§ १३५. क्योंकि वह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है १६ ।

** उससे सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात वर्षप्रमाण अन्तिम स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है ।**

§ १३६. **शंका**—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक आवलिकम आठ वर्षप्रमाण है ।

यहाँ कारण सुगम है १७ ।

** उससे मिथ्यात्वका क्षय होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रथम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।**

§ १३७. किं कारणं ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तचरिमट्ठिदिखंडयादो दुचरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । एवं तिचरिम-चदुचरिमादिकमेण जाव संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडयाणि हेट्ठा[1] ओसरियूण मिच्छत्ते खविदे सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं तदित्थपढमट्ठिदिखंडयं जादमिदि तेण कारणेणासंखेज्जगुणं[2] होदि १८ ।

*** मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।**

§ १३८. मिच्छत्तसंतकम्मियविवक्खाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं[3] जं चरिमट्ठिदिखंडयं पुव्विल्लादो अणंतरहेट्ठिमं तं तत्तो असंखेज्जगुणमिदि भणिदं होदि १९ ।

*** मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं ।**

§ १३९. किं कारणं मिच्छत्तस्स उदयावलियबाहिरं सव्वमागाइदं । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पुण तक्काले हेट्ठा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तीओ ट्ठिदीओ मोत्तूण उवरिमा बहुभागा आगाइदा त्ति, तेण कारणेण हेट्ठिमसंखेज्जदिभागमेत्तं पविसियूण विसेसाहियं जादं २० ।

---

§ १३७. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकसे द्विचरम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है । इस प्रकार त्रिचरम और चतुश्चरम आदि क्रमसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक नीचे जाकर मिथ्यात्वका क्षय होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका वहाँ सम्बन्धी प्रथम स्थितिकाण्डक हुआ है, इसलिए इस कारणसे उक्त स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा होता है १८ ।

*** उससे मिथ्यात्वसत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।**

§ १३८. मिथ्यात्वसत्कर्मवाले जीवकी विवक्षामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जो अन्तिम स्थितिकाण्डक होता है वह पूर्वके स्थितिकाण्डकसे अनन्तर अधस्तनवर्ती है, इसलिए वह उससे असंख्यातगुणा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है १९ ।

*** उससे मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है ।**

§ १३९. क्योंकि मिथ्यात्वके उदयावलि बाह्य समस्त स्थितिसत्कर्मका ग्रहण किया है । परन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उस समय अधस्तन पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंको छोड़कर उपरिम बहुभागप्रमाण स्थितियोंका ग्रहण किया है, इस कारण अधस्तन असंख्यातवें भागमात्रका प्रवेश होकर मिथ्यात्वका अन्तिम स्थितिकाण्डक विशेष अधिक हो गया है २० ।

---

१. ता०प्रतौ हेट्ठदो इति पाठः । २. ता०प्रतौ कारणेण संखेज्जगुणं इति पाठः ।

३. ता०प्रतौ सम्मत्तमिच्छत्ताणं इति पाठः ।

* असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडयं मिच्छत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणं ।

§ १४०. किं कारणं ? पुव्विल्लादो संखेज्जसहस्समेत्ताणि ठिदिखंडयाणि असंखेज्जगुणक्कमेण हेट्ठा ओसरिदूण दूरावकिट्ठिसण्णिदट्ठिदीए असंखेज्जे भागे घेत्तूणेदस्स ट्ठिदिखंडयस्स पवुत्तिदंसणादो २१ ।

* संखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडयं जं तं संखेज्जगुणं ।

§ १४१. किं कारणं ? दूरावकिट्ठिमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं मोत्तूण पुणो उवरिम-संखेज्जे भागे घेत्तूणेदस्स ट्ठिदिखंडयस्स पवुत्तिदंसणादो २२ ।

* पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मादो विदियं ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

§ १४२. कुदो ? पुव्विल्लट्ठिदिखंडयादो संखेज्जसहस्साणि[1] ठिदिखंडयाणि पच्छाणुपुव्वीए संखेज्जगुणवड्ढिदाणि हेट्ठा[2] ओसरिदूण ट्ठिदिखंडयस्स सरूवत्तादो २३ ।

* जम्हि ट्ठिदिखंडए अवगदे दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तं ट्ठिदि-संतकम्मं होइ तं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

---

* उससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यात गुणहानिवाले स्थितिकाण्डकोंमेंसे प्रथम स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।

§ १४०. क्योंकि पूर्वके स्थितिकाण्डकसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक असंख्यात गुणितक्रमसे नीचे सरककर दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिके असंख्यात बहुभागको ग्रहणकर इस स्थितिकाण्डककी प्रवृत्ति देखी जाती है २१ ।

* उससे संख्यात गुणहानिवाले स्थितिकाण्डकोंमेंसे जो अन्तिम स्थिति-काण्डक है वह संख्यातगुणा है ।

§ १४१. क्योंकि दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिसत्कर्मको छोड़कर पुनः उपरिम संख्यात बहुभागको ग्रहण कर इस स्थितिकाण्डककी प्रवृत्ति देखी जाती है २२ ।

* उससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके रहते हुए दूसरा स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १४२. क्योंकि पूर्वके स्थितिकाण्डकसे पश्चादानुपूर्वीके अनुसार संख्यातगुणवृद्धिरूप संख्यात हजार स्थितिकाण्डक पीछे सरककर इस स्थितिकाण्डकका स्वरूप उपलब्ध होता है २३ ।

* उससे जिस स्थितिकाण्डकके नष्ट होनेपर दर्शनमोहनीयका पल्योपमप्रमाण

---

१. ता॰प्रतौ संखेज्जगुणसहस्समेत्ताणि इति पाठः । २. ता॰प्रतौ हेट्ठदो इति पाठः ।

§ १४३. एदं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तं चेव, किंतु पुव्विल्लादो संखेज्जगुणत्तमेदस्स सुत्तसिद्धमेव गहेयव्वं। गुणगारो च तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तो २४।

* अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १४४. किं कारणं? अपुव्वकरणपढमसमयाढत्तट्ठिदिखंडयादो विसेसहीणकमेण संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिखंडएसु तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तट्ठिदिखंडयगुणहाणिगब्भेसु गदेसु पुव्विल्लट्ठिदिखंडयस्स समुप्पण्णत्तादो। ण च तत्थ ट्ठिदिखंडयगुणहाणीणमत्थित्तमसिद्धं, पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अंतोअपुव्वकरणद्धाए संखेज्जगुणहीणं पि ट्ठिदिखंडयमत्थि त्ति पुव्वं चुण्णिसुत्ते परूविदत्तादो। तदो सिद्धमेदस्स संखेज्जगुणत्तं २५।

* पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमं ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।

§ १४५. किं कारणं? अपुव्वकरणद्धाए अणियट्टिकरणद्धाए च जाव पलिदोवममेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं ण चिट्ठइ ताव पुव्विल्लसव्वट्ठिदिखंडयाणि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तायामाणि चेव, इदं पुण ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे घेत्तूण णिव्वत्तिदमदो पुव्विल्लादो एदं संखेज्जगुणमिदि २६।

स्थितिसत्कर्म शेष रहता है वह स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है।

§ १४३. यह भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही है, किन्तु पूर्वके स्थितिकाण्डकसे इसे सूत्रसिद्ध संख्यातगुणा ही ग्रहण करना चाहिए। गुणकार तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण है २४।

* उससे अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है।

§ १४४. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ग्रहण किये गये स्थितिकाण्डकसे विशेष हीनक्रमसे तत्प्रायोग्य संख्यात अंकप्रमाण स्थितिकाण्डक-गुणहानिगर्भ संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर पूर्वका स्थितिकाण्डक उत्पन्न हुआ है। और वहाँपर स्थितिकाण्डक-गुणहानियोंका अस्तित्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि अपूर्वकरणके भीतर प्रथम स्थितिकाण्डकसे संख्यातगुणा हीन भी स्थितिकाण्डक होता है यह पहले ही चूर्णिसूत्रमें कह आये हैं, इसलिए यह संख्यातगुणा है यह सिद्ध हुआ २५।

* उससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके होनेपर उसके बाद होनेवाला प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है।

§ १४५. क्योंकि जब तक पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म नहीं प्राप्त होता तब तक अपूर्वकरणके कालमें और अनिवृत्तिकरणके कालमें प्राप्त होनेवाले पहले सभी स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण आयामवाले ही होते हैं। परन्तु यह स्थितिकाण्डक पल्यो-

* पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं ।

§ १४६. केत्तियमेत्तेण ? हेट्ठिमावसेससंखेज्जदिभागमेत्तेण २७।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सगट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो ।

§ १४७. कुदो ? सागरोपमपुधत्तपमाणत्तादो २८ ।

* दंसणमोहणीयस्स अणियट्टिपढमसमयं पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं २९ ।

§ १४८. कुदो ? सागरोवमसदसहस्सपुधत्तपमाणादो २९ ।

* दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

पमके संख्यात बहुभागको ग्रहणकर निष्पन्न हुआ है, अतः पूर्वके स्थितिकाण्डकसे यह संख्यातगुणा है २६ ।

* उससे पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म विशेष अधिक है ।

§ १४६. **शंका**—कितना अधिक है ?

समाधान—अधस्तन शेष संख्यातवाँ भाग अधिक है २७ ।

विशेषार्थ—एक पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मके शेष रहनेपर प्रथम स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यात बहुभागप्रमाण होता है । उसमें शेष एक भागके मिलानेपर पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्म प्राप्त होता है यह उक्त चूर्णिसूत्रका तात्पर्य है ।

* उससे अपूर्वकरणमें प्राप्त प्रथम उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका विशेष संख्यातगुणा है ।

§ १४७. क्योंकि वह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है २८ ।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणमें सबसे जघन्य प्रथम स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है । यही कारण है कि यहाँ इन दोनों स्थितिकाण्डकोंका अन्तर सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण बतलाया गया है ।

* उससे अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें प्रविष्ट हुए जीवके दर्शनमोहनीयका स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।

§ १४८. क्योंकि वह सागरोपम शतसहस्रपृथक्त्वप्रमाण है २९ ।

* उससे दर्शनमोहनीयके सिवाय शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

§ १४९. किं कारणं ? कदकरणिज्जपढमसमयट्ठिदिबंधस्स अंतोकोडाकोडिपमाणस्स गहणादो ३० ।

*** तेसिं चेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।**

§ १५०. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिबंधस्स गहणादो ३१ ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**

§ १५१. कुदो ? सम्माइट्ठीणमुक्कस्सट्ठिदिबंधादो वि जहण्णट्ठिदिसंतकम्मस्स चरित्तमोहक्खवणादो अण्णत्थ तहाभावेणावट्ठाणणियमदंसणादो ३२ ।

*** तेसिं चेव उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**

§ १५२. किं कारणं ? अपुव्वकरणपढमसमयविसए सव्वेसिं कम्माणमंतोकोडाकोडिमेत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मस्स अपत्तघादस्स घादिदावसेसादो पुव्विल्लजहण्णट्ठिदिसंतकम्मादो तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो ३३ ।

§ १५३. एवमेदमप्पाबहुअदंडयं समाणिय संपहि पुव्वं सरूवणिद्देसमेत्तेणेव

---

§ १४९. क्योंकि कृतकृत्यसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें होनेवाला स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण ग्रहण किया गया है ३० ।

*** उससे उन्हींका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।**

§ १५०. क्योंकि इस सूत्रद्वारा अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिबन्धका ग्रहण किया है ३१ ।

*** उससे दर्शनमोहनीयके सिवाय शेष कर्मोंका जघन्य स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ १५१. क्योंकि चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके सिवाय अन्यत्र सम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे भी जघन्य स्थितिसत्कर्मके अवस्थानका नियम सूत्रोक्तप्रकारसे देखा जाता है ३२ ।

*** उससे उन्हींका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ १५२. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें सभी कर्मोंका जो अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म होता है उसका अभी घात नहीं हुआ है, अतः घात होकर शेष बचे हुए पूर्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मसे इसके उक्त प्रकारसे सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती ३३।

§ १५३. इस प्रकार इस अल्पबहुत्वदण्डकको समाप्त करके अब पूर्वमें जिनके अर्थकी मात्र

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परिभासिदत्थाणं गाहासुत्ताणं पुणो वि अवयवत्थपरामरसमुहेण[1] किंचि विवरणं कायव्वमिदि जाणावेमाणो चुण्णिसुत्तयारो इदमाह—

* एदम्हि दंडए समत्ते सुत्तगाहाओ अणुसंवण्णेदव्वाओ ।

§ १५४. पुव्वं[2] गाहासुत्ताणि समुक्कित्तियूण तदत्थविहासणमकादूण परिभासत्थ-परूवणा चेव अप्पाबहुअदंडयपज्जवसाणा विहासिदा जादा । तदो तम्हि परिभासत्थ-परूवणाए विहासिय समत्ताए एण्हिं सुत्तगाहाओ अवयवत्थपरामरसमुहेण अणु-संवण्णेदव्वाओ अणुभासिदव्वाओ त्ति भणिदं होइ । तत्थ चउण्हमाइल्लाणं गाहाणमणु-संवण्णणं सुगममिदि तमुल्लंघियूण पंचमीए सुत्तगाहाए किंचि वित्थारत्थमुहेणाणु-संवण्णणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* 'संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा' त्ति एदिस्से गाहाए अट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च ।

§ १५५. एदीए गाहाए खीणदंसणमोहणीयाणं जीवाणं चदुगदिसंबंधेण

स्वरूपके निर्देश द्वारा ही परिभाषा की गई थी ऐसे गाथासूत्रोंका फिर भी अवयवार्थके परा-मर्शद्वारा कुछ विवरण करना चाहिए, इस बातका ज्ञान कराते हुए चूर्णिसूत्रकार इस सूत्रको कहते हैं—

* इस दण्डकके समाप्त होने पर सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करना चाहिए ।

§ १५४. पहले गाथासूत्रोंका समुत्कीर्तन करके उनके अर्थकी विभाषा न करके परि-भाषारूप अर्थकी प्ररूपणा ही अल्पबहुत्वदण्डकके अन्त तक विशेषरूपसे की । इसलिए वहाँ परिभाषारूप अर्थकी प्ररूपणाकी विभाषाके समाप्त होने पर अब सूत्रगाथाओंका अवयवार्थके परामर्शपूर्वक 'अणुसंवण्णेदव्वाओ' अर्थात् विशेष व्याख्यान करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे प्रारम्भकी चार गाथाओंका विशेष व्याख्यान सुगम है, इसलिए उसे उल्लंघन कर पाँचवीं सूत्रगाथाका कुछ विस्तारपूर्वक विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* 'संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा' इस पाँचवीं गाथाके अनुसार आठ अनुयोगद्वार हैं । यथा—सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व ।

§ १५५. इस गाथामें जिनका दर्शनमोहनीय कर्म क्षीण हो गया है ऐसे जीवोंके चारों

---

१. ता०प्रतौ अवयवपरामरसमुहेण इति पाठः । २. ता०प्रतौ पुव्व इति पाठः ।

दव्वपमाणणिद्देसो कओ। एदं च देसामासयं तेण संतपरूवणादीहिं अट्ठाणिओगद्दारेहिं ओघादेसविसेसिदेहिं खइयसम्माइट्ठीणमेत्थ परूवणा वित्थरेण कायव्वा।

गतियोंके सम्बन्धसे द्रव्यप्रमाणका निर्देश किया गया है। किन्तु यह कथन देशामर्षक है, इसलिये ओघ और आदेशके भेदसे विशेषताको प्राप्त हुए सत्प्ररूपणा आदि आठ अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंकी यहाँ विस्तारसे प्ररूपणा करनी चाहिए।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ—यहाँ पर चूर्णिसूत्रमें आठ अनुयोगद्वारोंका उल्लेख किया है, अतः उनका आलम्बन लेकर 'क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका कुछ विवेचन करते हैं। यथा—(१) सत्प्ररूपणा—सामान्यसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं। आदेशसे प्रत्येक गतिकी अपेक्षा विचार करनेपर चारों गतियोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं। सिद्ध जीव एकमात्र क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, किन्तु उनकी अपेक्षा यहाँ मीमांसा नहीं की जा रही है। (२) संख्या—सामान्यसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। आदेशसे मनुष्य गतिमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात हजार हैं और शेष गतियोंमें असंख्यात हैं। यहाँ संख्यात हजार पदसे लक्षपृथक्त्वका और असंख्यात पदसे पल्योपमके असंख्यातवें भागका ग्रहण करना चाहिए। (३) क्षेत्र—सामान्यसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका क्षेत्र स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और उपपादपदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणान्तिक, तैजस और आहारक समुद्घातकी अपेक्षा भी क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण है। आदेशसे नरकगति, तिर्यञ्चगति और देवगतिमें यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यगतिमें केवलिसमुद्घातको छोड़कर शेष सब सम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। मात्र केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा क्षेत्र ओघके समान जानना चाहिए। (४) स्पर्शन—सामान्यसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका स्वस्थानपदकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, विहारवत्स्वस्थानपद तथा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण, तैजस और आहारकसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण और सर्वलोकप्रमाण स्पर्शन है। आदेशसे नरकगति और तिर्यञ्चगतिमें सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्यगतिमें केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है तथा वहाँ सम्भव शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। देवगतिमें विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा स्पर्शन त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण है। तथा वहाँ सम्भव शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। (५) काल—एक जीवकी अपेक्षा और नाना जीवोंकी अपेक्षाके भेदसे काल दो प्रकारका है। ओघसे एक जीवकी अपेक्षा कालका विचार करने पर जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न कर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर मुक्त हो जाता है उसके संसारमें क्षायिक सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि अधिक तेतीस सागरोपम है। इसका स्पष्टीकरण

§ १५६. तदो एदेसु अणिओगद्दारेसु सवित्थरं विहासिय समत्तेसु दंसणमोहक्खवयाहियारो समप्पदि त्ति जाणावेमाणो उवसंहारवक्कमुत्तरं भणइ—

* एवं दंसणमोहक्खवणाए पंचण्हं सुत्तगाहाणमत्थविहासा समत्ता।

सुगम है। आदेशसे नरकगतिमें जघन्य काल साधिक जघन्य आयुप्रमाण और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागरोपम है। तिर्यञ्चगतिमें जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन पल्योपम है। मनुष्यगतिमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका कुछ कम एक त्रिभाग अधिक तीन पल्योपम है। देवगतिमें जघन्य काल साधिक दो पल्योपम और उत्कृष्ट काल तेतीस सागरोपम है। नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघसे और आदेशसे चारों गतियोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंका काल सर्वदा है। (६) अन्तर—एक जीवकी अपेक्षा और नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल दो प्रकार है। ओघसे एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार करने पर अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आदेशसे चारों गतियोंमें भी समझना चाहिए। (७) भागाभाग—ओघसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सब संसारी जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आदेशसे चारों गतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक गतिमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सब संसारी जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। (८) अल्पबहुत्व—क्षायिक सम्यक्त्व एक पद होनेके कारण स्वस्थानकी अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं है।

§ १५६. अतः इन अनुयोगद्वारोंके विस्तारसे व्याख्यान करके समाप्त होने पर दर्शनमोहक्षपक अधिकार समाप्त होता है इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके उपसंहार सूत्रको कहते हैं—

* इन अनुयोगद्वारोंका कथन करने पर दर्शनमोहक्षपणा इस नामका अनुयोगद्वार समाप्त होता है।

इस प्रकार दर्शनमोहक्षपणा अनुयोगद्वारमें
पाँच सूत्रगाथाओंकी अर्थविभाषा समाप्त हुई।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारश्रोवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

संजमासंजमे त्ति अणियोगद्दारं

बारसमो अत्थाहियारो

उवणेउ मंगलं वो भवियजणा जिणवरस्स कमकमलजुअं ।
झस-कुलिस-कलस-सत्थिय-ससंक-संख-कुसादिलक्खणभरियं ॥ १ ॥

*** देसविरदे त्ति अणियोगद्दारे एया सुत्तगाहा ।**

§ १. देसविरदे त्ति जमणिओगद्दारं कसायपाहुडस्स पण्णारसण्हमत्थाहियाराणं

जो मछली, वज्र, कलश, स्वस्तिक, चन्द्रमा, शंख और कुश आदि लक्षण चिन्होंसे युक्त हैं वे जिनदेवके चरणकमलयुगल हम भव्यजनोंको मंगलके कर्ता हों ॥ १ ॥

*** देशविरति इस अनुयोगद्वारमें एक सूत्रगाथा है ।**

§ १. संयमासंयमलब्धिकी प्ररूपणाके कारण देशविरत यह संज्ञा प्राप्त करनेवाला जो

मज्झे बारसमं संजमासंजमलद्धिपरूवणादो पडिलद्धतव्ववएसं, तत्थ पडिबद्धा एक्का चेव सुत्तगाहा तमिदाणिं विहासयिस्सामो त्ति भणिदं होदि। संपहि का सा एक्का गाहा त्ति आसंकाए पुच्छावक्कमाह—

* तं जहा।

§ २. सुगममेदं पुच्छावक्कं। एवं च पुच्छाविसईकयस्स गाहासुत्तस्स सरूवणिद्देसो कीरदे—

(६२) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स।
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
वड्ढावड्ढी उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं ॥११५॥

§ ३. एसा गाहा दोसु अत्थाहियारेसु पडिबद्धा, संजमासंजमलद्धीए संजमलद्धीए च परिप्फुडमेदिस्से णिबद्धत्तदंसणादो दोसु वि एक्का गाहा त्ति संबंधगाहावयवेण तहोवइट्ठत्तादो च। एवं च संते देसविरदि त्ति अणियोगद्दारे एसा गाहा पडिबद्धा त्ति कधमेदं घडदे? दोसु पडिबद्धाए एगत्थ पडिबद्धत्तविरोहादो त्ति? सच्चमेदं, किंतु दोण्हमक्कमेण परूवणोवायाभावादो देसविरदि त्ति अणिओगद्दारे पडिबद्धभागमस्सियूण ताव परूवणं कस्सामो त्ति जाणावणट्ठमेवं भणिदं।

कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंके मध्य देशविरति नामका बारहवाँ अर्थाधिकार है, उसकी प्ररूपणामें एक ही सूत्रगाथा आई है। उसका इस समय व्याख्यान करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब वह एक गाथा कौनसी है ऐसी आशंका होने पर पृच्छावाक्यको कहते हैं—

* वह जैसे।

§ २. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषयभावको प्राप्त गाथासूत्रके स्वरूपका निर्देश करते हैं—

संयमासंयमकी लब्धि चारित्र अर्थात् सकलसंयमकी लब्धि उत्तरोत्तर वृद्धि अथवा वृद्धि-हानि और पूर्वबद्ध कर्मोंकी उपशामना प्रकृतमें जानने योग्य हैं ॥११५॥

§ ३. यह सूत्रगाथा दो अर्थाधिकारोंमें प्रतिबद्ध है, क्योंकि संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धि अर्थाधिकारोंमें यह निबद्धरूपसे देखी जाती है और दोनों ही अर्थाधिकारोंमें एक ही सूत्रगाथा सम्बन्ध गाथावयव होनेसे उस प्रकारसे उपदिष्ट की गई है।

शंका—ऐसा होने पर देशविरति इस अनुयोगद्वारमें यह गाथा प्रतिबद्ध है यह कथन कैसे बन सकता है, क्योंकि जो दो अर्थाधिकारोंमें प्रतिबद्ध है उसका एक अर्थाधिकारमें प्रतिबद्धपनेका विरोध है।

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु दोनों अर्थाधिकारोंके युगपत् प्ररूपण करनेका कोई उपाय नहीं है, इसलिये देशविरति इस अनुयोगद्वारमें जो भाग प्रतिबद्ध है उसका आश्रयकर सर्वप्रथम कथन करेंगे इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस प्रकार कहा है।

§ ४. संपहि एवमवहारिदसंबंधस्स एदस्स गाहासुत्तस्स अवयवत्थविवरणं कस्सामो। तं जहा—'लद्धी य संजमासंजमस्स' एवं भणिदे संजमासंजमलद्धी गहेयव्वा। का संजमासंजमलद्धी णाम? हिंसादिदोसाणमेयदेसविरइलक्खणाणि अणुव्वयाणि देसचारित्तघादीणमपच्चक्खाणकसायाणमुदयाभावेण पडिवज्जमाणस्स जीवस्स जो विसुद्धिपरिणामो सो संजमासंजमलद्धि त्ति भण्णदे। 'लद्धी तहा चरित्तस्स' एवं भणिदे संजमलद्धी गहेयव्वा। का संजमलद्धी णाम? पंचमहव्वय-पंचसमिदि-तिगुत्तीओ सयलसावज्जविरइलक्खणाओ पडिवज्जमाणस्स जो विसोहि-परिणामो सो संजमलद्धि त्ति विण्णायदे, खओवसमियचरित्तलद्धीए संजमलद्धि-ववएसावलंबणादो। ओवसमिय-खइयसंजमलद्धीओ एत्थ किण्ण गहिदाओ? ण, चारित्तमोहोवसामणाए तक्खवणाए च तासिं पबंधेण परूवणोवलंभादो। तदो

विशेषार्थ—शंका यह है कि जब 'लद्धी य संजमासंजमस्स' इत्यादि सूत्रगाथा दो अर्थाधिकारोंमें आई है तो फिर यहाँ एक अर्थाधिकारमें ही उसका निर्देश क्यों किया गया है? समाधान यह है कि यद्यपि उक्त गाथा दो अर्थाधिकारोंमें आई है, परन्तु दोनों अर्थाधिकारोंका एक साथ कथन नहीं किया जा सकता, अतः जिस अर्थाधिकारका गुणस्थान व्यवस्थानुसार पहले निर्देश किया गया है उसके प्रारम्भमें उक्त गाथाका उल्लेख कर दिया है, [illegible]

§ ४. अब जिसके सम्बन्धका इस प्रकार निश्चय किया है उस गाथासूत्रके अवयवार्थका विवरण करेंगे। यथा—'लद्धी य संजमासंजमस्स' ऐसा कहने पर संयमासंयमलब्धिको ग्रहण करना चाहिए।

शंका—संयमासंयमलब्धि किसे कहते हैं?

समाधान—[देशचारित्रका घात करनेवाले अप्रत्याख्यानावरण कषायोंके उदयाभावसे हिंसादि दोषोंके एकदेश विरतिलक्षण अणुव्रतोंको प्राप्त होनेवाले जीवके जो विशुद्ध परिणाम होता है उसे संयमासंयमलब्धि कहते हैं।]

'लद्धी तहा चरित्तस्स' ऐसा कहने पर संयमलब्धिका ग्रहण करना चाहिए।

शंका—संयमलब्धि किसे कहते हैं?

समाधान—[सकल सावद्यकी विरतिलक्षण पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्तियोंको प्राप्त होनेवाले जीवका जो विशुद्धिरूप परिणाम होता है उसे संयमलब्धि जाननी चाहिए, क्योंकि क्षायोपशमिक चारित्रलब्धिकी संयमलब्धि संज्ञा स्वीकार की गई है।]

शंका—यहाँ पर औपशमिक संयमलब्धि और क्षायिक संयमलब्धि इन दोनोंको क्यों ग्रहण नहीं किया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि चारित्रमोहोपशामना और चारित्रमोहक्षपणामें उनके स्वतन्त्र

---

१. ता०प्रतौ तस्य इति पाठः।

खओवसमियसंजमलद्धी एदम्मि बीजपदे णिबद्धा त्ति सुसंबद्धं। 'वड्ढावड्ढी' एवं भणिदे तासु चेव संजमासंजम-संजमलद्धीसु अलद्धपुव्वासु पडिलद्धासु तल्लाभपढम-समयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालब्भंतरे पडिसमयमणंतगुणाए सेढीए परिणामवड्ढी गहेयव्वा[1] उवरुवरि परिणामवड्ढीए वड्ढावड्ढीववएसावलंबणादो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविहिसागर जी महाराज

§ ५. 'उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं' एवं भणिदे ताओ चेव संजमासंजम-संजमलद्धीओ पडिवज्जमाणस्स पुव्वबद्धाणं कम्माणं चारित्तपडिबंधीणमणुदयलक्खणा उवसामणा घेत्तव्वा। तदो केसिं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेयभिण्णाण-मणुदयोवसामणाए देससंजमं सयलसंजमं वा एसो पडिवज्जइ त्ति एवंविहा परूवणा एदम्मि बीजपदे णिलीणा त्ति दट्ठव्वा। सा च पुव्वबद्धाणमुवसामणा चउव्विहा, पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसयत्तेण भिण्णत्तादो। तत्थ पयडिउवसामणा णाम अणंताणुबंधिचउक्क-अपच्चक्खाणावरणीयकसायाणं उदयाभावो संजमासंजमं पडिवज्ज-

---

प्रबन्धोंद्वारा उपलब्धि होती है, इसलिये क्षायोपशमिक संयमलब्धि इस बीजपदमें निबद्ध है यह कथन सुसम्बद्ध है।

'वड्ढावड्ढी' ऐसा कहने पर अलब्धपूर्व उन्हीं संयमासंयम और संयमलब्धियोंके प्राप्त होने पर उनके लाभके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके भीतर प्रत्येक समयमें होनेवाली अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे परिणामवृद्धिको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उत्तरोत्तर ऊपर-ऊपर होनेवाली परिणामवृद्धिकी 'वड्ढावड्ढी' संज्ञाका अवलम्बन लिया गया है।

विशेषार्थ—जिस प्रकार गृहीत मिथ्यात्वके त्याग करनेके बाद जिनोपदिष्ट जीवादि नौ पदार्थोंको हृदयंगम कर आत्मसन्मुख परिणामोंके होने पर परमार्थभूत सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है उसी प्रकार वेदककालके भीतर मिथ्यादृष्टि जीवके या सम्यग्दृष्टि जीवके हिंसादि पाँच पापोंका एकदेश और सर्वदेश त्यागपूर्वक तदनुरूप अन्य प्रवृत्तिके साथ प्रगाढ़-रूपसे स्वरूपरमणताके होने पर क्रमसे भावरूपसे देशसंयम और सकलसंयमकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार जब यह जीव देशसंयम और सकलसंयमको प्राप्त करता है तब उसके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रति समय विशुद्धिमें उत्तरोत्तर अनन्तगुणी वृद्धि होती रहती है। इसी तथ्यको पूर्वोक्त सूत्रगाथामें 'वड्ढावड्ढी' पदद्वारा स्पष्ट किया गया है।

§ ५. 'उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं' ऐसा कहने पर उन्हीं संयमासंयम और संयम लब्धियोंको प्राप्त होनेवाले जीवके चारित्रका प्रतिबन्ध करनेवाले पूर्वबद्ध कर्मोंकी अनुदय लक्षणस्वरूप उपशामना लेनी चाहिए। इसलिए प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशभेदसे भेदको प्राप्त हुए किन कर्मोंके अनुदयरूप उपशामना होनेसे यह जीव देशसंयम अथवा सकलसंयमको प्राप्त होता है इस प्रकारकी प्ररूपणा इस बीजपदमें लीन है यह जानना चाहिए। पूर्वबद्ध कर्मोंकी वह उपशामना चार प्रकारकी है, क्योंकि प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश उसके विषय होनेसे वह चार प्रकारकी हो जाती है। उनमेंसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अनन्तानुबन्धीचतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोंके उदयाभावरूप प्रकृति-

---

१. ता०प्रतौ गहेयव्वो इति पाठः।

माणस्स वत्तव्वो, तेसिमुदयाभावलक्खणोवसमे संते पयदलद्धीए समुप्पत्तिदंसणादो। तत्थ पच्चक्खाण-चदुसंजलण-णवणोकसायाणमुदए दिज्जमाणे संते कधमुवसमो वोत्तुं सक्किज्जइ त्ति णासंकणिज्जं, तेसिमुदयस्स सव्वघादित्ताभावेण देसोवसमस्स तत्थ वि संभवे विरोहाभावादो। पच्चक्खाणावरणीयोदयो सव्वघादी चेवे त्ति चे? ण, देससंजमविसये तस्स वावाराभावादो। संजमलद्धी पुण बारसकसायाणमणुदयोवसमेण चदुसंजलण-णवणोकसायाणं देसोवसमेण च समुप्पज्जदि त्ति वत्तव्वं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ६. तेसिं चेव पुव्वुत्ताणं पयडीणमणुदयिल्लाणं ट्ठिदिउदयाभावो ट्ठिदिउवसामणा णाम। अथवा सव्वासिं कम्माणमंतोकोडाकोडीदो उवरिमट्ठिदीणमुदयाभावो ट्ठिदिउवसामणा त्ति घेत्तव्वा। अणुभागुवसामणा णाम पुव्वुत्ताणं कसायपयडीणं विट्ठाण-तिट्ठाण-चउट्ठाणाणुभागस्स उदयाभावो, उदयिल्लाणं पि कसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयाभावो अणुभागोवसामणा त्ति घेत्तव्वं, तेसिं देसघादिविट्ठाणाणुभागोदयणियमदंसणादो। णाणावरणादिकम्माणं पि तिट्ठाण-चउट्ठाणपरिच्चागेण विट्ठाणियाणुभागपडिलंभो अणुभागोवसामणा त्ति एत्थ वत्तव्वं, विरोहाभावादो।

उपशामना कहनी चाहिए, क्योंकि उनके उदयाभावलक्षण उपशमके होने पर प्रकृत लब्धिकी उत्पत्ति देखी जाती है।

शंका—यहाँ प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, चार संज्वलन और नौ नोकषायोंको उदयमें देनेपर उपशम कहना कैसे शक्य है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनके उदयमें सर्वघातिपनेका अभाव होनेसे देशोपशमके वहाँ भी सम्भव होनेमें विरोधका अभाव है।

शंका—प्रत्याख्यानावरणीयका उदय सर्वघाति ही है?

समाधान—नहीं, क्योंकि देशसंयमके विषयमें उसका व्यापार नहीं होता।

परन्तु संयमलब्धि बारह कषायोंके अनुदयरूप उपशमसे तथा चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके देशोपशमसे उत्पन्न होती है ऐसा कहना चाहिए।

§ ६. अनुदयवाली उन्हीं पूर्वोक्त प्रकृतियोंके स्थिति-उदयका अभाव स्थिति-उपशामना है। अथवा सभी कर्मोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ीसे उपरिम स्थितियोंके उदयका अभाव स्थिति-उपशामना है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। पूर्वोक्त कषायप्रकृतियोंके द्विस्थान, त्रिस्थान और चतुःस्थान अनुभागका उदयाभाव अनुभाग-उपशामना है तथा उदयवाले कषायोंके भी सर्वघाति स्पर्धकोंका उदयाभाव अनुभाग उपशामना है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उनके देशघाति द्विस्थानीय अनुभागके उदयका नियम देखा जाता है। [ज्ञानावरणादि कर्मोंके भी त्रिस्थान और चतुःस्थान अनुभागके परित्यागसे द्विस्थानीय अनुभागकी प्राप्ति अनुभाग-उपशामना है ऐसा यहाँ कहना चाहिए, क्योंकि इसमें विरोधका अभाव है।] [अनुदय-

तासिं चेव पुव्वुत्ताणमणुदइल्लाणमपच्चक्खाणादिकसायपयडीणं पदेसुदयाभावो पदेसोवसामणा त्ति वत्तव्वं। एवंविहा पुव्वबद्धाणमुवसामणा एदम्मि बीजपदे णिबद्धा त्ति घेत्तव्वं।

रूप उन्हीं पूर्वोक्त अप्रत्याख्यानादि कषाय प्रकृतियोंके प्रदेशोंका उदयाभाव प्रदेशोपशामना है ऐसा यहाँ कहना चाहिए। इस प्रकारकी पूर्वबद्ध कर्मोंकी उपशामना इस बीजपदमें निबद्ध है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—संयमासंयमलब्धि और संयमलब्धि ये दोनों क्षायोपशमिक भाव हैं। यहाँ प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके भेदसे चार भागोंमें विभक्त किन प्रकृतियोंके अनुदयसे ये भाव प्रकट होते हैं इस तथ्यको ध्यानमें रखकर इन दोनों लब्धियोंको अपने प्रतिपक्ष कर्मोंके अनुदयमें होनेसे अनुदय-उपशामनास्वरूप कहा गया है। उनमेंसे संयमासंयमलब्धि अनन्तानुबन्धीचतुष्क और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके उदयाभावरूप उपशामनासे होती है ऐसा यहाँ बतलाया गया है। इसका आशय यह है कि जिस प्रकार सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें अनन्तानुबन्धीका उदयाभाव प्रयोजनीय है उसी प्रकार सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिमें भी उसका उदयाभाव प्रयोजनीय है। वस्तुतः अनन्तानुबन्धीचतुष्क चारित्रमोहनीयका ही एक भेद है, क्योंकि (१) बन्धकालमें दर्शनमोहनीयको जो द्रव्य मिलता है उसमेंसे एक परमाणु भी अनन्तानुबन्धीको नहीं मिलता (२) दर्शनमोहनीयके तीन भेद हैं, उनका यथास्थान जिस प्रकार परस्पर संक्रम होता है उस प्रकार उसके द्रव्यका न तो अनन्तानुबन्धीचतुष्कमें संक्रम होता है और न ही अनन्तानुबन्धीचतुष्कका दर्शनमोहनीयके किसी भी भेदमें संक्रम होता है, (३) अनन्तानुबन्धीचतुष्कका यथायोग्य चारित्रमोहनीयके अवान्तर भेदोंमें संक्रम होता है और चारित्रमोहनीयके अवान्तर भेदोंका यथायोग्य अनन्तानुबन्धीचतुष्कमें संक्रम होता है, (४) जिस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण आदिके क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार भेद हैं उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी भी क्रोधादि चार भागोंमें विभक्त है। यतः ये क्रोधादि भाव कषायपरिणाम हैं और कषायोंका अन्तर्भाव विभाव चारित्रमें ही होता है, मिथ्यात्वरूप विभावभावमें नहीं, इसलिए अनन्तानुबन्धीचतुष्कको चारित्रमोहनीयस्वरूप ही जानना चाहिए। और यही कारण है कि यहाँ अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके उदयाभावरूप उपशमके साथ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उदयाभावरूप उपशामनाको संयमासंयमकी प्राप्तिमें हेतुरूपसे स्वीकार किया गया है। इस पर यहाँ यह शंका होती है कि यदि ऐसा है तो परमागममें तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन सातके उपशम आदिसे सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका निर्देश न कर केवल दर्शनमोहनीयके उपशम आदिसे ही उसकी उत्पत्ति क्यों नहीं कही गई? समाधान यह है कि जीवके भाव दो प्रकारके हैं—स्वप्रत्यय और स्वपरप्रत्यय। उनमेंसे जितने भी सम्यग्दर्शनादि स्वभाव भाव होते हैं वे सब स्व-परप्रत्यय न होकर केवल स्वप्रत्यय ही होते हैं। इसका आशय यह है कि जब यह जीव अपने उपयोगपरिणाममें परके अवलम्बनसे मुक्त होकर मात्र स्वभावके निर्णयपूर्वक उसके सन्मुख होता है तभी स्वभावभावकी प्राप्ति होती है, अन्य प्रकारसे नहीं। इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि बुद्धिपूर्वक स्वभावभावकी प्राप्तिमें जीवका अपने उपयोग परिणामके द्वारा ज्ञान-दर्शनस्वरूप आत्मसन्मुख होना परमावश्यक है। इससे स्पष्ट है कि सम्यग्दर्शनादि स्वभावभावकी प्राप्तिके समय जीवका उपयोग अन्य अशेष विषयोंसे हटकर एकमात्र स्वभावभूत आत्मामें ही युक्त रहता है। इन सब

§ ७. अथवा 'लद्धी य संजमासंजमस्से' त्ति वुत्ते संजमासंजमलद्धी अणेयभेयभिण्णा घेत्तव्वा। तं जहा, तिविहाणि संजमासंजमलद्धिट्ठाणाणि—पडिवादट्ठाणाणि पडिवज्जमाणट्ठाणाणि अपडिवादअपडिवज्जमाणट्ठाणाणि चेदि। एवं संजमलद्धीए वि तिविहत्तं वत्तव्वं। तदो गाहापुव्वद्धे संजमासंजम-संजमलद्धिट्ठाणाणं[1] परूवणा णिबद्धा त्ति घेत्तव्वं। 'वड्ढावड्ढी' इच्चेदस्स बीजपदस्स अत्थो पुव्वं व वत्तव्वो। अहवा 'वड्ढि' त्ति वुत्ते संजमासंजमं संजमं च पडिवज्जमाणस्स एयंताणुवड्ढिपरिणामं पुव्वं व घेत्तूण तदो 'अवड्ढि'[2] त्ति एदेण ओवड्ढी[3] गहेयव्वा। का ओवड्ढी[3] णाम? संजमासंजम-संजमलद्धीहिंतो हेट्ठा पडिवदमाणयस्स संकिलेसवसेण पडिसमय-

---

सम्यग्दर्शनादि स्वभावभावोंको स्वप्रत्यय कहनेका यही कारण है। यतः सम्यग्दर्शनादिकी प्राप्तिके समय आत्माका उपयोग अपने स्वरूपमें ही युक्त रहता है अतः मानना पड़ता है कि एक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय उसके साथ अंशरूपमें सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भी प्राप्ति होती है। यतः उस समय आत्माका उपयोग अपने स्वरूपको ही वेदता है, अतः जब भी सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है तब वह स्वानुभूतिके साथ ही होती है। स्वानुभूतिको सम्यग्दर्शनका लक्षण स्वीकार करनेका भी यही कारण है और यह स्वानुभूति स्वोपयुक्त रत्नत्रय परिणाम या तत्परिणत आत्मा है, अतः ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयत्रिकके उदयाभावरूप करणोपशम आदिके साथ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भी अनुदयरूप उपशम आदि स्वीकार किया गया है। जिस चारित्रकी संज्ञा संयमासंयम और संयम है उसकी प्राप्ति भले ही मात्र अनन्तानुबन्धीके उदयाभावमें न हो, पर उक्त विवेचनसे यह स्पष्ट है कि दर्शनमोहनीयत्रिकके उपशम होनेके साथ अनन्तानुबन्धीका उदयाभाव होने पर स्वरूपरमणतारूप आत्मपरिणामकी प्राप्ति नियमसे होती है। यही कारण है कि सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय जिस प्रकार दर्शनमोहनीयत्रिकका उदयाभाव नियमसे होता है उसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भी उदयाभाव अवश्य होता है। अतः विवक्षावश अनन्तानुबन्धीचतुष्कको सम्यग्दर्शनका प्रतिबन्धक भी कहा गया है पर है वह चारित्रमोहनीयका अवान्तर भेद ही।

मार्गदर्शक- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ७. अथवा 'लद्धी य संजमासंजमस्स' ऐसा कहनेपर संयमासंयम लब्धिको अनेक प्रकारकी ग्रहण करनी चाहिए। यथा—संयमासंयमलब्धिस्थान तीन प्रकारके हैं—प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान। इसीप्रकार संयमलब्धिके भी तीन प्रकारके स्थान कहने चाहिए। इसलिए गाथाके पूर्वार्धमें संयमासंयम और संयम लब्धिस्थानोंकी प्ररूपणा निबद्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। 'वड्ढावड्ढी' इस बीजपदका अर्थ पहलेके समान कहना चाहिए। अथवा 'वड्ढी' ऐसा कहनेपर संयमासंयम और संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके एकान्तानुवृद्धिपरिणामका पहलेके समान ग्रहणकर उसके बाद 'अवड्ढि' इस पदद्वारा 'ओवड्ढी' अर्थात् उत्तरोत्तर परिणामहानि ग्रहण करनी चाहिए।

शंका—'अववृद्धि' किसे कहते हैं?

---

१. ता०प्रतौ संजमासंजमलद्धिट्ठाणाणं इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'अवट्ठि' इति पाठः।
३. ता०प्रतौ ओवड्ढि इति पाठः।

मणंतगुणहाणिपरिणामो ओवड्ढि[1] त्ति भण्णदे। तदो एदासिं दोण्हं पि परूवणा सुत्तणिबद्धा[2] त्ति सिद्धं।

§ ८. 'उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं' इदि एयस्स बीजपदस्स अणंतरपरूविदो चेव अत्थो घेत्तव्वो। अहवा पुव्वबद्धाणमुवसामणापुव्वं व भणिदूण तदो 'तहा' सद्देण जहा पढमसम्मत्तमुप्पाएमाणस्स दंसणमोहणीयोवसामणं परूविदं एवमेत्थ वि[3] उवसमसम्मत्तेण सह संजमासंजम-संजमलद्धीओ पडिवज्जमाणस्स तदुवसामणविहाणं परूवेयव्वं, तत्थ णाणत्ताभावादो त्ति एसो अत्थो संगहेयव्वो। एवमेदेसु दोसु अणिओगद्दारेसु पडिबद्धा एसा मूलगाहा। एत्थ ताव संजमासंजमलद्धिमहिकरिय विहासिज्जदि त्ति सुत्तत्थसमुच्चओ। संपहि एदिस्से गाहाए परिभासत्थं विहासिदु-कामो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

समाधान—(संयमासंयम और संयमलब्धिसे नीचे गिरनेवाले जीवके संक्लेशवश प्रति समय होनेवाले अनन्तगुणहानिरूप परिणामको अववृद्धि कहते हैं।)

इसलिए इन दोनोंकी भी प्ररूपणा सूत्रनिबद्ध है यह सिद्ध हुआ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ—मूल सूत्रगाथामें 'वड्ढावड्ढी' पाठ है। उसका एक अर्थ तो उत्तरोत्तर वृद्धि होता है। जब यह जीव संयमासंयम या संयमभावको प्राप्त होता है तब अन्तर्मुहूर्त काल तक ऐसे जीवके उत्तरोत्तर प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए परिणाम होते हैं। *इनकी एकान्तानुवृद्धि संज्ञा है। एक तो 'वड्ढावड्ढी' पदका यह अर्थ है।* दूसरे इस पदको 'वड्ढि' और 'ओवड्ढि' इसप्रकार दो पदोंका समासितरूप स्वीकार कर 'वड्ढि' पदका तो पूर्वोक्त अर्थ ही लेना चाहिए। तथा 'ओवड्ढि' पदसे ऐसे जीवोंके प्रति समय अनन्तगुणहानिरूप परिणामोंका ग्रहण करना चाहिए जो संयमासंयम और संयमलब्धिसे च्युत होनेके सन्मुख हैं।

§ ८. 'उवसामणा य तह पुव्वबद्धाणं' इसप्रकार इस बीजपदका अनन्तर कहा गया अर्थ ही लेना चाहिए। अथवा पूर्वबद्ध कर्मोंकी उपशामनाका पहलेके समान कथन करके गाथासूत्रमें आये हुए 'तहा' शब्दके द्वारा जिसप्रकार प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके दर्शनमोहनीयकी उपशामनाका कथन किया है उसीप्रकार यहाँ भी उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम और संयमलब्धिको प्राप्त होनेवाले जीवके उनके उपशमानेकी विधिका कथन करना चाहिए, क्योंकि वहाँ नानात्वका अभाव है इसप्रकार इस अर्थका संग्रह करना चाहिए। इसप्रकार इन दोनों अनुयोगद्वारोंमें प्रतिबद्ध यह मूल गाथा है। यहाँ सर्वप्रथम संयमासंयमलब्धिको अधिकृतकर विशेष व्याख्या करते हैं यह उक्त सूत्रके साथ अर्थका समुच्चय है। अब इस गाथाके परिभाषारूप अर्थकी विशेष व्याख्या करनेकी इच्छासे आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

१. ता०प्रतौ ओवट्टि इति पाठः। २. ता०प्रतौ सुत्तणिबंधा इति पाठः।
३. ता०प्रतौ विदमेत्थ वि इति पाठः।

*** एदस्स अणिओगद्दारस्स पुव्वं गमणिज्जा परिभासा ।**

§ ९. एदस्स पयदाणिओगद्दारस्स परिभासा ताव पुव्वमणुगंतव्वा त्ति भणिदं होइ । का परिभासा णाम ? सुत्तसूचिदत्थस्स सुत्तणिबद्धस्साणिबद्धस्स च परूवणा परिभासा णाम । गाहासुत्तस्स अवयवत्थपरूवणमुज्झियूण सुत्तसूचिदासेसत्थस्स वित्थरपरूवणा सुत्तपरिभासा त्ति वुत्तं होइ । तमिदाणिं वत्तइस्सामो त्ति पइण्णाय तव्विसयमेव पुच्छावक्कमाह—

*** तं जहा ।**

§ १०. सुगमं ।

*** एत्थ अधापवत्तकरणद्धा अपुव्वकरणद्धा च अत्थि, अणियट्टिकरणं णत्थि ।**

§ ११. एतदुक्तं भवति—उवसमसम्मत्तेण सह संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स तिण्हं पि करणाणं संभवो अत्थि । सो पुण एत्थ णाहिकओ, तस्स सम्मत्तुप्पत्तीए चेव अंतब्भावादो । तदो तं मोत्तूण वेदयसम्माइट्ठिस्स वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठिस्स वा संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स परूवणं वत्तइस्सामो । तत्थ दोण्णि चेव करणाणि

*** इस अनुयोगद्वारकी सर्व प्रथम परिभाषा जाननी चाहिए ।**

§ ९. इस प्रकृत अनुयोगद्वारकी सर्वप्रथम परिभाषा जाननी चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—परिभाषा किसका नाम है ?

समाधान—सूत्रके द्वारा सूचित हुए अर्थकी तथा सूत्रमें निबद्ध हुए या निबद्ध नहीं हुए अर्थकी प्ररूपणा करना परिभाषा है । गाथासूत्रके अवयवार्थकी प्ररूपणाको छोड़कर सूत्र द्वारा सूचित हुए अशेष अर्थकी विस्तारसे प्ररूपणा करना सूत्र-परिभाषा है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

उसे इस समय बतलाते हैं ऐसी प्रतिज्ञा करके तद्विषयक ही पृच्छावाक्यको कहते हैं—

*** वह जैसे ।**

§ १०. यह सूत्र सुगम है ।

*** इस अनुयोगद्वारमें अधःप्रवृत्तकरणकाल और अपूर्वकरणकाल है, अनिवृत्तिकरण नहीं है ।**

§ ११. उक्त कथनका यह तात्पर्य है—उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके तीनों ही करण सम्भव हैं । परन्तु वह यहाँ पर अधिकृत नहीं है, क्योंकि उसका सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें ही अन्तर्भाव हो जाता है । इसलिये उसे छोड़कर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टिकी अथवा वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीवकी प्ररूपणाको

अधापवत्तापुव्वसण्णिदाणि संभवंति, ण तइज्जमणियट्टिकरणमत्थि, दोहिं चेव करणेहिं एत्थ पयदत्थसिद्धीए। जत्थ कम्माणं सव्वोवसामणा णिम्मूलक्खओ वा कीरदे तत्थेवाणियट्टिकरणस्सावयारो। ण देसोवसामणासाहणिज्जे संजमासंजमपडिलंभे। तदो दोण्हमेव करणाणमेत्थ संभवो, णाणियट्टिकरणस्से त्ति।

§ १२. संपहि दोण्हमेदेसिं करणाणं जहागममणुगमं कुणमाणो तत्थ ताव अधापवत्तकरणादो हेट्ठा चेव अंतोमुहुत्तपडिबद्धाए सत्थाणविसोहीए ट्ठिदि-अणुभागाणमोवट्टणमेवं होइ त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो प्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि, सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चदुट्ठाणियं करेदि, असुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च दुट्ठाणियं करेदि।**

बतलावेंगे। वहाँ अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो ही करण होते हैं, तीसरा अनिवृत्तिकरण नहीं होता, क्योंकि दो ही करणोंसे यहाँ पर प्रकृत अर्थकी सिद्धि हो जाती है। जहाँ पर कर्मोंकी सर्वोपशामना की जाती है या निर्मूल क्षय किया जाता है वहीं पर अनिवृत्तिकरणका अवतार होता है, देशोपशामनासाध्य संयमासंयमकी प्राप्तिमें नहीं। इसलिए यहाँ पर दो ही करण सम्भव हैं, अनिवृत्तिकरण नहीं।

विशेषार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ जो जीव संयमासंयमको प्राप्त करते हैं वहाँ अवश्य अधःप्रवृत्तकरण आदि तीन करण होते हैं, किन्तु जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त करते हैं या वेदक कालके भीतर अवस्थित मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको प्राप्त करते हैं उनके अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो ही प्रकारके कारण परिणाम होते हैं। जब यह जीव दर्शनमोहनीयकी करणोपशमना, चारित्रमोहनीयकी करणपूर्वक सर्वोपशमना तथा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा करता है तब अनिवृत्तिकरण परिणाम होता है। यहाँ चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना भी ले लेनी चाहिए।

§ १२. अब इन दोनों करणोंका आगमके अनुसार अनुगम करते हुए वहाँ सर्व प्रथम अधःप्रवृत्तकरणसे पूर्व ही अन्तर्मुहूर्त काल तक होनेवाली स्वस्थान विशुद्धिके द्वारा स्थिति और अनुभागका इस प्रकार अपवर्तन होता है इस बातका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** संयमासंयमको अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा प्राप्त करेगा, इसलिये वहाँसे लेकर सब जीव आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मको अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर करते हैं, शुभ कर्मोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको चतुःस्थानीय करते हैं तथा अशुभकर्मोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको द्विस्थानीय करते हैं।**

§ १३. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे—वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठी ताव संजमासंजमं पडिवज्जमाणो पुव्वमेव अंतोमुहुत्तमत्थि त्ति सत्थाणपाओग्गाए विसोहीए पडिसमयमणंतगुणाए विसुज्झमाणो आउगवज्जाणं सव्वेसिमेव कम्माणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि । कुदो ? तक्कालभाविविसोहिपरिणामाणं तत्तो उवरिमट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्मेहि विरुद्धसहावत्तादो, तेसिं तहाभावेण विणा संजमासंजमगुणग्गहणाणुववत्तीदो च । एदं ताव एक्कं पयदविसोहिणिबंधणं फलं । अण्णं च सुहाणं कम्माणं सादादीणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चदुट्ठाणियं करेदि, तदणुभागस्स सुहपरिणामणिबंधणत्तादो । असुहाणं पुण कम्माणं पंचणाणावरणादीणं अणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च णियमा विट्ठाणियं करेदि, विसोहिपरिणामेहिंतो तेसिमणुभागस्स तत्तो उवरिमस्स घादोववत्तीदो । तदो सिद्धमंतोमुहुत्तपबद्धाए

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सत्थाणविसोहीए विसुज्झमाणो वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठी संजमासंजमाहिमुहो सव्वो सव्वेसिं कम्माणमाउगवज्जाणं ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणि अंतोकोडाकोडीए ठविय पसत्थापसत्थपयडीणमणुभागबंध-संतकम्माणि च चउट्ठाण-विट्ठाणसरूवाणि कादूण तदो संजमासंजमलद्धीए अहिमुहीभावं पडिवज्जइ, णाण्णहा त्ति । एवं वेदगसम्माइट्ठिस्स वि असंजदस्स संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स अंतोमुहुत्तपडिबद्धो विसोहिपरिणामो अणुगंतव्वो ।

---

§ १३. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—संयमासंयमको प्राप्त होनेवाला वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीव पहले ही अन्तर्मुहूर्त काल रहने पर स्वस्थानके योग्य प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा विशुद्धिको प्राप्त हुआ आयुकर्मको छोड़कर सभी कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मको अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर करता है, क्योंकि उस कालमें होनेवाले विशुद्धिरूप परिणाम उससे उपरिम स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मके विरुद्ध स्वभाववाले होते हैं और उनके उस प्रकारके हुए बिना संयमासंयमगुणकी प्राप्ति नहीं बन सकती। प्रकृत विशुद्धिके निमित्तसे होनेवाला यह एक फल है। दूसरा फल यह है कि साता आदि शुभ कर्मोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको चतुःस्थानीय करता है, क्योंकि उनका अनुभाग शुभ परिणामनिमित्तक होता है। परन्तु पाँच ज्ञानावरणादि अशुभ कर्मोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको नियमसे द्विस्थानीय करता है, क्योंकि विशुद्धिरूप परिणामोंके निमित्तसे उन कर्मोंके उससे ऊपरके अनुभागका घात हो जाता है। इसलिए सिद्ध हुआ कि अन्तर्मुहूर्त काल सम्बन्धी स्वस्थान विशुद्धिके द्वारा विशुद्ध होता हुआ संयमासंयमके अभिमुख हुआ सब वेदक प्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीव आयुकर्मको छोड़कर सभी कर्मोंके स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मको अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर स्थापित कर प्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको चतुःस्थानस्वरूप करके और अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभागबन्ध और अनुभागसत्कर्मको द्विस्थानस्वरूप करके तदनन्तर संयमासंयमलब्धिके अभिमुखपनेको प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत जीवके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक होनेवाला विशुद्धिपरिणाम जानना चाहिए।

§ १४. संपहि एदं विसोहिकालमेवंविहेण वावारविसेसेणाणुपालिय तदो हेट्ठिमविसोहिविसयं वोलीणस्स उवरिमो करणणिबंधणो विसोहिपरिणामो केरिसो होइ त्ति आसंकाए सुत्तपबंधमाह—

*** तदो अधापवत्तकरणं णाम अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि, णत्थि ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा। केवलं ट्ठिदिबंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जभागहीणेण ट्ठिदिं बंधदि। जे सुभा कम्मंसा ते अणुभागेहिं बंधदि अणंतगुणेहिं जे असुहकम्मंसा ते अणंतगुणहीणेहिं[1] बंधदि।**

§ १५. एदेसिं सुत्तपदाणमधापवत्तकरणबद्धाणमत्थो जहा दंसणमोहोवसामणाए वुत्तो तहा एत्थ वि[2] परूवेयव्वो, विसेसाभावादो। संपहि एत्थ अधापवत्तकरण-

---

विशेषार्थ—वेदकप्रायोग्य कालके भीतर जो मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमभावको युगपत् प्राप्त होता है उसके अनिवृत्तिकरण तो होता नहीं, केवल अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण परिणाम होते हैं। उसमें भी अधःप्रवृत्तकरण होनेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त काल तक स्वभाव सन्मुख हुए परिणामोंके द्वारा प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होनेवाले उक्त जीवके जो कार्यविशेष होते हैं उनको यहाँ स्पष्ट किया गया है। जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त होता है उसके भी संयमासंयमभावके सन्मुख होनेके अन्तर्मुहूर्त काल पूर्व स्वभावसन्मुख हुए परिणामोंके कारण प्रति समय उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धि होकर नियमसे उक्त कार्य विशेष होते हैं। यहाँ इतना विशेष समझना चाहिए कि जो चरणानुयोगकी विधिके अनुसार द्रव्य संयमासंयमको स्वीकार कर उसका निरतिचार पालन करता है वही जीव उक्त प्रकारकी विशुद्धिको प्राप्तकर स्वभावसन्मुख होकर भाव संयमासंयमको प्राप्त करता है। आत्माके स्वभावप्राप्तिका यही एक मार्ग है, अन्य मार्ग नहीं जो संयमासंयमी जीव, मन्द संक्लेशवश गिरकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर पुनः संयमासंयमको प्राप्त करता है उसकी यहाँ चर्चा नहीं।

§ १४. अब इस प्रकारके विशुद्धिकालको इस प्रकारके व्यापारविशेषके द्वारा पालन कर तदनन्तर अधस्तन विशुद्धिस्थानको वितानेवाले जीवके उपरिम करणनिबन्धन विशुद्धिपरिणाम किस प्रकारका होता है ऐसी आशंका होनेपर सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तकरण नामवाली अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता है। यहाँ पर न तो स्थितिकाण्डक होता है और न अनुभागकाण्डक होता है। केवल स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण हीन स्थितिको बाँधता है। जो शुभ कर्म प्रकृतियाँ हैं उन्हें उत्तरोत्तर अनन्तगुणे अनुभागोंके साथ बाँधता है और जो अशुभ कर्म हैं उन्हें प्रति समय अनन्तगुणे हीन अनुभागोंके साथ बाँधता है।**

§ १५. अधःप्रवृत्तकरणसे सम्बन्ध रखनेवाले इन सूत्रपदोंके अर्थका कथन जिसप्रकार दर्शनमोहकी उपशामना अनुयोगद्वारमें किया है उसीप्रकार यहाँ भी करना

---

१. ता॰प्रतौ अणंतगुणेहि [हीणा] इति पाठः। २. ता॰प्रतौ वि इति पाठो नास्ति।

विसोहीणमणुक्कट्ठिलक्खणाणं तिव्व-मंददाए किंचि अणुगमं कुणमाणो सुत्तकलाव-मुत्तरं भणइ—

* विसोहीए तिव्व-मंदं वत्तइस्सामो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १६. सुगममेदं पयदपरूवणाविसयं पइण्णावक्कं ।

* अधापवत्तकरणस्स जदो पहुडि विसुद्धो तस्स पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा ।

§ १७. किं कारणं ? अधापवत्तकरणपढमसमयपाओग्गाणमसंखेज्जलोगमेत्तपरिणामाणं छवड्ढीए समवट्ठिदाणं सव्वजहण्णपरिणामट्ठाणस्सेह विवक्खियत्तादो ।

* विदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा ।

§ १८. कुदो ? पढमसमयजहण्णपरिणामादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणि गंतूणेदिस्से विसोहीए समवट्ठाणदंसणादो ।

* तदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा ।

§ १९. एत्थ वि कारणमणंतरपरूविदमेव ।

* एवमंतोमुहुत्तं जहण्णिया चेव विसोही अणंतगुणेण गच्छइ ।

चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है। अब अधःप्रवृत्तकरणकी अनुकृष्टि लक्षणवाली विशुद्धियोंकी तीव्र-मन्दताका कुछ अनुगम करते हुए आगेके सूत्रकलापको कहते हैं—

* अब विशुद्धिके तीव्र-मन्दभावको बतलावेंगे ।

§ १६. प्रकृत प्ररूपणाको विषय करनेवाला यह प्रतिज्ञावाक्य सुगम है।

* अधःप्रवृत्तकरण जीव जहाँसे लेकर विशुद्ध हुआ है उसके प्रथम समयमें जघन्य विशुद्धि स्तोक है ।

§ १७. क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणके प्रथम समयके योग्य छह वृद्धिरूपसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण परिणामोंमेंसे सबसे जघन्य परिणामस्थान यहाँ पर विवक्षित है।

* उससे दूसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ १८. क्योंकि प्रथम समयके जघन्य परिणामसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान जाकर इस विशुद्धिका अवस्थान देखा जाता है।

* उससे तीसरे समयमें जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है ।

§ १९. यहाँपर भी अनन्तर पूर्वका कहा हुआ ही कारण है।

* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल तक जघन्य विशुद्धि ही प्रति समय अनन्तगुणी अनन्तगुणी बढ़ती जाती है ।

§ २०. किं कारणं ? अधापवत्तकरणद्धाए संखेज्जभागमेत्तणिव्वग्गणकंडय-ब्भंतरे जहण्णविसोहीणं चेव अणंतगुणकमेण पवुत्तीए णिव्वाहमुवलंभादो ।

*** तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा ।**

§ २१. तदो णिव्वग्गणकंडयमेत्तमुवरि गंतूण ट्ठिदजहण्णविसोहीदो एदिस्से पढमसमयुक्कस्सविसोहीए असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघिय समुप्पत्तिदंसणादो ।

*** सेसअधापवत्तकरणविसोही जहा दंसणमोहउवसामगस्स अधापवत्तकरणविसोही तहा चेव कायव्वा ।**

§ २२. संपहि एदीए अप्पणाए सूचिदत्थस्स फुडीकरणं कस्सामो । तं जहा—पढमसमये उक्कस्सियादो विसोहीदो जम्हि जहण्णिया विसोही णिट्ठिदा, तदो उवरिमसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा, बिदियसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवं णेदव्वं जाव बिदियणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयजहण्णविसोही पढमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयउक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणा जादा त्ति । तदो बिदियणिव्वग्गणकंडयपढमसमयउक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवं जहण्णुक्कस्सविसोहीओ[1] ढोएदूण णेदव्वं जाव तदियणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयजहण्णविसोही बिदियणिव्वग्गण-

§ २०. क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण निर्वर्गणाकाण्डकके भीतर जघन्य विशुद्धियोंकी ही अनन्तगुणितक्रमसे प्रवृत्ति निर्बाध पाई जाती है ।

*** उससे प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है ।**

§ २१. तदो अर्थात् निर्वर्गणाकाण्डकमात्र ऊपर जाकर वहाँ स्थित जघन्य विशुद्धिसे इस प्रथम समयसम्बन्धी उत्कृष्ट विशुद्धिकी असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर समुत्पत्ति देखी है ।

*** जिस प्रकार दर्शनमोह-उपशामकके अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियाँ होती हैं उसीप्रकार यहाँ शेष अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी विशुद्धियाँ करनी चाहिए ।**

§ २२. अब इसकी अर्पणाके द्वारा सूचित हुए अर्थका स्पष्टीकरण करेंगे । यथा—प्रथम समयमें प्राप्त उत्कृष्ट विशुद्धिसे जिस स्थानमें जघन्य विशुद्धि समाप्त हुई है उससे उपरिम समयमें प्राप्त जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी है । उससे दूसरे समयमें प्राप्त उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है । इसी प्रकार दूसरे निर्वर्गणा काण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धि प्रथम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अनन्तगुणी प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । उससे अर्थात् द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी जघन्य विशुद्धिसे द्वितीय निर्वर्गणाकाण्डकके प्रथम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धियोंको ग्रहण कर द्वितीय निर्वर्गणा-काण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे तृतीय निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी

१. ता०प्रतौ -विसोहीए इति पाठः ।

कंडयचरिमसमयउक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणा जादा त्ति । एवं णिव्वग्गणकंडयमंतोमुहुत्तं धुवं कादूण जहण्णुक्कस्सविसोहीणमेगंतरिदसरूवेणप्पाबहुअमणुगंतव्वं जाव अधापवत्तकरणचरिमसमए जहण्णविसोही अंतोमुहुत्तं हेट्ठा ओसरिदूण ट्ठिददुचरिमणिव्वग्गणकंडयचरिमसमयउक्कस्सविसोहीदो अणंतगुणा जादा त्ति । तदो उवरिमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा । एवमुक्कस्सिया विसोही णेदव्वा जाव अधापवत्तकरणचरिमसमओ त्ति । एदं अधापवत्तकरणस्स लक्खणं ।

§ २३. संपहि चरिमसमयअधापवत्तकरणे चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियव्वाओ । तं जहा—संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे १, काणि वा पुव्वबद्धाणि २, के अंसे झीयदे पुव्वं ३, किंट्ठिदियाणि कम्माणि ४ । एदासिं च विहासा सुगमा त्ति सुत्तयारेण णाढत्ता । तदो एदासिं चउण्हं सुत्तगाहाणमत्थविहासा सवित्थरमेत्थ कायव्वा । – आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २४. तदो अधापवत्तकरणे समत्ते अपुव्वकरणविसयं परूवणापबंधमाढवेमाणो इदमाह—

जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए । इस प्रकार निर्वर्गणाकाण्डकप्रमाण अन्तर्मुहूर्तको ध्रुव करके जघन्य और उत्कृष्ट विशुद्धियोंका एक निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तरालसे अल्पबहुत्व तब तक ले जाना चाहिए जब जाकर अधःप्रवृत्त करणके कालसे अन्तर्मुहूर्त नीचे उतर कर स्थित हुए द्विचरम निर्वर्गणाकाण्डकके अन्तिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धिसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें प्राप्त जघन्य विशुद्धि अनन्तगुणी हो जाती है । उससे उपरिम समयकी उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी है । इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक उत्कृष्ट विशुद्धि ले जानी चाहिए । यह अधःप्रवृत्तकरणका लक्षण है ।

विशेषार्थ—अधःप्रवृत्तकरणमें विशुद्धिकी तीव्र-मन्दता किस प्रकार होती है इसका विवेचन यहाँ किया गया है । इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण पुस्तक १२ में (पृ० २४९ से लेकर पृ० २५२ तक) कर आये हैं, इसलिये इसे वहाँसे जान लेना चाहिए ।

§ २३. अब अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करना चाहिए । यथा—संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे । १. । काणि वा पुव्वबद्धाणि । २. । के अंसे झीयदे पुव्वं । ३. । किं ट्ठिदियाणि कम्माणि । ४. । ये चार सूत्र गाथायें हैं । इनका विशेष व्याख्यान सुगम है, इसलिए सूत्रकारने इनका व्याख्यान नहीं किया । अतः इन चारों सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान विस्तारके साथ यहाँपर करना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार दर्शनमोहके उपशामकके और दर्शनमोह क्षपकके यथास्थान इन चार गाथाओंके अनुसार यथायोग्य व्याख्यान कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें उक्त चार गाथाओंके अनुसार विशेष व्याख्यान करना चाहिए ।

§ २४. इसके बाद अधःप्रवृत्तकरणके समाप्त होनेपर अपूर्वकरणविषयक प्ररूपणाप्रबन्धका आरम्भ करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

* अपुव्वकरणस्स पढमसमए ट्ठिदिखंडयं जहण्णयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं सागरोवमपुधत्तं।

§ २५. एत्थ ताव अपुव्वकरणस्स लक्खणमणुगंतव्वं जहा दंसणमोहोवसामणाए पवंचिदमिदि ण पुणो पवंचिज्जदे। णवरि तत्थतणपरिणामेहिंतो एत्थतण-परिणामाणमणंतगुणत्तं देसचारित्तलद्धिपाहम्मेणाणुगंतव्वं। तदो पढमसमयापुव्वकरणे ट्ठिदिखंडयपमाणावहारणट्ठमिदं सुत्तमोइण्णं—'तत्थ जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो', तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मेणुवट्ठिदम्मि[1] तदुवलंभादो 'उक्कस्सयं पुण सागरोवमपुधत्तमेत्तं' तप्पाओग्गट्ठिदिसंतवुड्ढिं कादूण उक्कस्सभावाविरोहेणापुव्व-करणपढमसमए वट्टमाणम्मि तदुवलंभादो।

§ २६. एवमपुव्वकरणपढमसमयविसयाणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिखंडयाणं पमाण-णिण्णयं कादूण संपहि तत्थेवाणुभागखंडयपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

---

* अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है।

§ २५. सर्व प्रथम यहाँपर अपूर्वकरणका लक्षण जान लेना चाहिए और उसका दर्शन-मोहोपशामना अनुयोगद्वारमें विस्तारसे कथन कर आये हैं, इसलिये पुनः कथन नहीं करते। इतनी विशेषता है कि देशचारित्रलब्धिकी प्रधानतासे वहाँके परिणामोंसे यहाँके परिणाम अनन्तगुणे जानने चाहिए। इसलिये अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डकके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये यह सूत्र आया है—'वहाँ जघन्य स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मके साथ उपस्थित हुए जीवके उसकी उपलब्धि होती है। परन्तु उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्व प्रमाण है, क्योंकि तत्प्रायोग्य स्थितिसत्कर्मकी वृद्धि करके उत्कृष्टभावके अविरोधके साथ अपूर्व-करणके प्रथम समयमें उपस्थित होनेपर उसकी उपलब्धि होती है।

विशेषार्थ—जीव दो प्रकारके होते हैं—एक क्षपितकर्मांशिक जीव और दूसरे गुणित-कर्मांशिक जीव। यदि क्षपितकर्मांशिक जीव अपूर्वकरणके प्रथम समयको प्राप्त हुआ है तो उसके स्थितिकाण्डक नियमसे जघन्य होगा और वह पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होगा। और यदि गुणितकर्मांशिक जीव अपूर्वकरणके प्रथम समयको प्राप्त हुआ है तो उसके स्थितिकाण्डक नियमसे उत्कृष्ट होगा और वह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होगा। मध्यमें वह अनेक प्रकारका होगा।

§ २६. इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समयसम्बन्धी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति-काण्डकोंके प्रमाणका निर्णय कर अब वहींपर अनुभागकाण्डकके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

---

१. ता०प्रती -कम्मेसुवट्ठिदम्मि इति पाठः।

* अणुभागखंडयमसुहाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा आगाइदा। सुभाणं कम्माणमणुभागघादो णत्थि।

§ २७. एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि। संपहि दंसणमोहोवसामणाए तक्खवणाए च जहा गुणसेढिणिक्खेवसंभवो तहा किमेत्थ वि संभवो आहो णत्थि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरं पडिसेहवक्कमाह—

* गुणसेढी च णत्थि।

§ २८. किं कारणं ? ण ताव सम्मत्तुप्पत्तिणिबंधणगुणसेढीए एत्थ संभवो, पढमसम्मत्तग्गहणादो अण्णत्थ तदणब्भुवगमादो। ण संजमासंजमपरिणामणिबंधणगुणसेढीए वि अत्थि संभवो, अलद्धप्पसरूवस्स संजमासंजमगुणस्स गुणसेढिणिज्जराए वावारविरोहादो। जो पुण उवसमसम्मत्तेण सह संजमासंजमं पडिवज्जइ तस्स गुणसेढिणिक्खेवो संभवइ। णवरि सो एत्थ ण विवक्खिओ। तम्हा 'गुणसेढी च णत्थि' त्ति सुणिरूविदं। संपहि एत्थेव हि बंधोसरणकमपदंसणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो।

§ २९. गयत्थमेदं सुत्तं।

---

* अनुभागकाण्डक अशुभ कर्मोंके अनुभागका अनन्त बहुभाग ग्रहण किया। शुभ कर्मोंका अनुभागघात नहीं होता।

§ २७. ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं। अब दर्शनमोहोपशामना और उसकी क्षपणामें जिस प्रकार गुणश्रेणिनिक्षेप सम्भव है उस प्रकार क्या यहाँपर भी सम्भव है या सम्भव नहीं है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिये आगेके प्रतिषेधरूप सूत्रवचनको कहते हैं--

* और गुणश्रेणि नहीं होती।

§ २८. क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी कारणरूप गुणश्रेणि तो यहाँपर सम्भव है नहीं, क्योंकि प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणसे अन्यत्र वह स्वीकार नहीं की गई है। संयमासंयम परिणामनिमित्तक गुणश्रेणि भी सम्भव नहीं है, क्योंकि स्वस्वरूप प्राप्त करनेके पूर्व संयमासंयमगुणका गुणश्रेणिनिर्जरामें व्यापार होता है इसमें विरोध है। परन्तु जो उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको प्राप्त होता है उसके गुणश्रेणिनिक्षेप सम्भव है। परन्तु वह यहाँपर विवक्षित नहीं है, इसलिए ठीक कहा है। अब यहाँपर बन्धापसरण क्रमके दिखलानेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ है--

* स्थितिबन्ध पिछले समयके स्थितिबन्धकी अपेक्षा पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन होता है।

§ २९. यह सूत्र गतार्थ है।

*** अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च अण्णो च अणुभागखंडयउक्कीरणकालो समगं समत्ता भवंति ।**

§ ३०. संखेज्जसहस्समेत्तेसु अणुभागखंडएसु गदेसु तदित्थाणुभागखंडयुक्कीरणकालो पढमट्ठिदिखंडयतब्बंधगद्धाओ च जुगवमेव परिसमत्ताओ त्ति भणिदं होदि ।

*** तदो अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जभागिगं अण्णं ट्ठिदिबंधमण्णमणुभागखंडयं च पट्ठवेइ ।**

§ ३१. अपुव्वकरणपढमसमयाढत्तट्ठिदिखंडयट्ठिदिबंधेसु अणुभागखंडयसहस्सगब्भिणेसु णिट्ठिदेसु संतेसु तदो विदियट्ठिदिखंडयट्ठिदिबंधेहि सह अण्णमणुभागखंडयं तदित्थमाढवेदि त्ति भणिदं होइ ।

*** एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि ।**

§ ३२. एवमेदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु अण्णोण्णं पेक्खिगूण विसेसहीणायामेसु अणंतराणंतरादो विसेसहीणुक्कीरणद्धापडिबद्धेसु ट्ठिदिबंधोसरणसहस्ससहगदेसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु अपुव्वकरणद्धाए पज्जवसाणमेसो पत्तो त्ति भणिदं होदि । मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** हजारों अनुभागकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर स्थितिकाण्डक-उत्कीरणकाल, स्थितिबन्धकाल और अन्य अनुभागकाण्डक उत्कीरणकाल ये तीनों एक साथ समाप्त होते हैं ।**

§ ३०. संख्यात हजार अनुभागकाण्डकोंके व्यतीत होने पर वहाँ सम्बन्धी अनुभागकाण्डक-उत्कीरणकाल तथा प्रथम स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धकाल एकसाथ ही समाप्त होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** तत्पश्चात् पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण अन्य स्थितिकाण्डकको, अन्य स्थितिबन्धको और अनुभागकाण्डकको प्रारम्भ करता है ।**

§ ३१. अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्रारम्भ किये गये हजारों अनुभागकाण्डकके अविनाभावी स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धके समाप्त होने पर तदनन्तर दूसरे स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धके साथ वहाँ सम्बन्धी अन्य अनुभागकाण्डकको आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** इस प्रकार हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होने पर अपूर्वकरणका काल समाप्त होता है ।**

§ ३२. इस प्रकार इस क्रमसे एक-दूसरेको देखते हुए विशेष हीन आयामवाले और उत्तरोत्तर विशेषहीन उत्कीरण कालसे प्रतिबद्ध तथा प्रत्येक हजारों अनुभागकाण्डकोंके अविनाभावी ऐसे हजारों स्थितिकाण्डकोंके और हजारों स्थितिबन्धापसरणोंके जाने पर यह जीव अपूर्वकरणके अन्तको प्राप्त हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ३३. संपहि एवंविहमपुव्वकरणद्धं बोलेयूण से काले सव्वविसुद्धो संजमासंजमं पडिवज्जदि त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** तदो से काले पढमसमयसंजदासंजदो जादो ।**

§ ३४. पुव्विल्लमसंजमपज्जायं छंडियूण देससंजमपज्जाएण एसो जीवो करणादि-लद्धिवसेण परिणदो त्ति भणिदं होइ । एवं संजदासंजदभावं पडिवज्जिय तप्पढमसमय-मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराजप्पहुडि पुणो वि पडिसमयमणंतगुणाए संजमासंजमविसोहीए वड्ढमाणस्स तदवत्थाए

विशेषार्थ—यहाँ प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ जो जीव संयमासंयमको ग्रहण करता है उसकी चर्चा नहीं है। वेदकसम्यग्दृष्टि या वेदक प्रायोग्य कालके भीतर स्थित जो मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त करता है उसकी चर्चा है। ऐसा जीव अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण इन दो करणोंको करके तदनन्तर नियमसे संयतासंयत हो जाता है ऐसे जीवके अपूर्वकरणमें कितने कार्य विशेष होते हैं यह यहाँ पर बतलाते हुए कहा गया है कि जैसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके समय अपूर्वकरणकालके भीतर हजारों स्थिति-काण्डकघात और हजारों स्थितिबन्ध तथा प्रत्येक स्थितिकाण्डक कालके भीतर हजारों अनु-भागकाण्डकघात होते हैं उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिए। एक-एक स्थितिकाण्डकका काल अन्तर्मुहूर्त है पर उत्तरोत्तर यह कम होता गया है। स्थितिबन्धका काल स्थितिकाण्डकके कालके ही समान है। अतः जिस समय एक स्थितिकाण्डकका घात पूरा होता है उसी समय एक स्थितिबन्धका काल भी सम्पन्न हो जाता है। यहाँ जघन्य स्थितिकाण्डकका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका प्रमाण सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण है। जो अन्तर्मुहूर्त काल तक एक समान स्थितिबन्ध होता रहता है उससे पिछले स्थितिबन्धका काल समाप्त होने पर अगला स्थितिबन्ध पल्योपमका संख्यातवाँ भाग न्यून होता है। अनुभागकाण्डकघात अप्रशस्त कर्मोंका ही होता है, प्रशस्त कर्मोंका नहीं। उसमें भी यह जीव एक अनुभागकाण्डक कालके भीतर अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागका घात कर लेता है। ऐसे हजारों अनुभागकाण्डकघात एक स्थितिकाण्डककालके भीतर सम्पन्न हो लेते हैं। नया स्थितिकाण्डकघात प्रारम्भ होनेके समय नया स्थितिबन्ध और नया अनुभाग काण्डकघात प्रारम्भ होता है। यहाँ अपूर्वकरणमें गुणश्रेणिरचना नहीं होती। जो संयमा-संयमसम्बन्धी उदयावलिबाह्य अवस्थित गुणश्रेणि रचना होती है वह संयमासंयमके प्राप्त होने पर उसके प्रथम समयसे ही प्रारम्भ होती है। इस प्रकार इतनी विशेषताओंके साथ अपूर्वकरण सम्पन्न होता है।

§ ३३. अब इस प्रकारके अपूर्वकरणसम्बन्धी कालको व्यतीत कर तदनन्तर समयमें सर्वविशुद्ध होकर संयमासंयमको प्राप्त करता है इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इसके बाद तदनन्तर समयमें वह प्रथम समयवर्ती संयतासंयत हो जाता है।**

§ ३४. पहलेकी असंयम पर्यायको छोड़कर यह जीव करण आदि लब्धियोंके कारण संयमासंयमरूप पर्यायसे परिणत होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार संयमा-संयमभावको प्राप्त कर उसके प्रथम समयसे लेकर फिर भी प्रति समय अनन्तगुणी संयमा-

कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** ताधे अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयमपुव्वं ट्ठिदिबंधं च पट्ठवेदि ।**

§ ३५. कुदो पुण करणपरिणामेसु उवसंहरिदेसु ट्ठिदिखंडयादीणमेत्थ संभवो त्ति णासंका कायव्वा, करणपरिणामाभावे वि एयंताणुवड्ढिदसंजमासंजमपरिणाम-माहप्पेण ठिदिघादादीणमेत्थ पवुत्तीए विरोहाभावादो ।

§ ३६. संजमासंजमगुणमाहप्पेण गुणसेढिणिज्जरा वि एत्थ पारद्धा त्ति पदुप्पा-यणफलमुत्तरसुत्तं—

*** असंखेज्जे समयपबद्धे[1] ओकड्डियूण गुणसेढीए उदयावलियबाहिरे रचेदि ।**

§ ३७. तं जहा—संजमासंजमगुणं पडिवण्णपढमसमए चेव उवरिमठिदिदव्व-

संयमसम्बन्धी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले जीवके उस अवस्थामें किये जानेवाले कार्योंके भेदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

*** उस समय वह अपूर्व स्थितिकाण्डक, अपूर्व अनुभागकाण्डक और अपूर्व स्थितिबन्धका प्रारम्भ करता है ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३५. **शंका**—करणपरिणामोंका उपसंहार हो जाने पर स्थितिकाण्डक आदि यहाँ पर कैसे सम्भव हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि करण परिणामोंका अभाव होने पर भी एकान्तानुवृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुए संयमासंयमके परिणामोंकी प्रधानतावश स्थितिघात आदिकी यहाँ पर प्रवृत्ति होनेमें विरोधका अभाव है ।

विशेषार्थ—उक्त विधिसे संयमासंयमको प्राप्त करनेवाले जीवके परिणाम अन्तर्मुहूर्त काल तक नियमसे उत्तरोत्तर अनन्तगुणी विशुद्धिको लिये हुए होते हैं, इसलिए इन एकान्तानु-वृद्धिरूप परिणामोंके कालके भीतर स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और स्थिति-बन्धापसरणरूप कार्यविशेष पूर्ववत् प्रथम समयसे ही प्रारम्भ होकर उक्त कालके भीतर नियमसे होते रहते हैं यह पूर्वोक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ३६. संयमासंयम गुणके माहात्म्यवश गुणश्रेणिनिर्जरा भी यहाँ पर प्रारम्भ हो जाती है इस बातका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तथा असंख्यात समयप्रबद्धोंका अपकर्षण कर उदयावलि-बाह्य गुणश्रेणिकी रचना करता है ।**

§ ३७. **यथा**—संयमासंयमगुणको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही उपरिम स्थितियोंके

१. ता०प्रतौ असंखेज्जसमयपबद्धे इति पाठः ।

मोकड्डियूण गुणसेढिणिक्खेवं कुणमाणो उदयावलियब्भंतरे असंखेज्जलोगपडिभागियं दव्वं गोवुच्छायारेण णिक्खिवियूण तदो उदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए असंखेज्जे समयपबद्धे णिसिंचदि । तत्तो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणं णिसिंचदि । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिसिंचमाणो गच्छइ जाव अंतोमुहुत्तमुवरिं गंतूण गुणसेढिसीसयं जादं ति । तदो असंखेज्जगुणहीणं । तत्तो विसेसहीणं जाव चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति । तदो एवंविहो गुणसेढिणिक्खेवो एत्थ पारद्धो त्ति सुत्तत्थणिच्छओ ।

*** से काले तं चेव ट्ठिदिखंडयं, तं चेव अणुभागखंडयं, सो चेव ट्ठिदिबंधो, गुणसेढी असंखेज्जगुणा ।**

§ ३८. ट्ठिदि-अणुभागखंडयट्ठिदिबंधेसु ताव णत्थि णाणत्तं, पढमसमयाढत्ताणमेव तेसिमंतोमुहुत्तमेत्तसगुक्कीरणकालब्भंतरे अवट्ठिदभावेण पवुत्तिदंसणादो । गुणसेढी पुण अण्णारिसी होइ, पढमसमयोकड्डिदसमयपबद्धेहिंतो असंखेज्जगुणेण समयपबद्धे ओकड्डियूण विदियसमए गुणसेढीए णिक्खेवदंसणादो । संपहि एत्थ गुणसेढिणिक्खेवो किं गलिदसेसायामो आहो अवट्ठिदो त्ति एदस्स णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तं—

*** गुणसेढिणिक्खेवो अवट्ठिदगुणसेढी तत्तिगो चेव ।**

द्रव्यका अपकर्षण कर गुणश्रेणिनिक्षेप करता हुआ उदयावलिके भीतर असंख्यात लोकका भाग देने पर जो भाग लब्ध आवे उतने द्रव्यको गोपुच्छाकारसे निक्षिप्त कर उसके बाद उदयावलिके बाहर अनन्तर स्थितिमें असंख्यात समयप्रबद्धोंका सिंचन करता है । पुनः उससे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे द्रव्यका सिंचन करता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक असंख्यात गुणित श्रेणिरूपसे सिंचन करता हुआ जाता है । तदनन्तर उपरिम स्थितिमें असंख्यातगुणे हीन द्रव्यका सिंचन करता है । इसके बाद अतिस्थापनावलिसे पूर्व अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर विशेषहीन द्रव्यका सिंचन करता है । इस तरह इस प्रकारका गुणश्रेणिनिक्षेप यहाँ पर आरम्भ किया यह सूत्रके अर्थका निश्चय है ।

*** तदनन्तर समयमें वही स्थितिकाण्डक, वही अनुभागकाण्डक और वही स्थितिबन्ध होता है । मात्र गुणश्रेणि असंख्यातगुणी होती है ।**

§ ३८. यहाँ स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धमें तो भेद नहीं है, क्योंकि प्रथम समयमें आरम्भ किये गये उन्हीं सबकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालके भीतर अवस्थितरूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है । परन्तु गुणश्रेणि अन्य प्रकारकी होती है, क्योंकि प्रथम समयमें अपकर्षित किये गये समयप्रबद्धोंसे असंख्यातगुणे समयप्रबद्धोंका अपकर्षण कर दूसरे समयमें गुणश्रेणिमें निक्षेप देखा जाता है । अब यहाँ पर गुणश्रेणिनिक्षेप क्या गलित शेष आयामवाला होता है या अवस्थित होता है इस प्रकार इस बातका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** गुणश्रेणिनिक्षेप अवस्थित गुणश्रेणि होनेसे उतना ही होता है ।**

§ ३९. जदो एत्थ अवट्ठिदगुणसेढी तदो तत्तिओ चेव गुणसेढिणिक्खेवो होइ त्ति सुत्तत्थो। पढमसमयगुणसेढिणिक्खेवादो हेट्ठा एगट्ठिदीए उदयावलियब्भंतरं पविट्ठाए पुणो उवरि अण्णेगं ट्ठिदिमब्भहियं कादूण गुणसेढिविण्णासमेसो करेदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो।

* एवं ट्ठिदिखंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो जायदे।

§ ४०. एतदुक्तं भवति—संजमासंजमग्गहणपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तचरिमसमयो त्ति ताव पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए वड्ढमाणो ट्ठिदि-अणुभागखंडयट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि कुणमाणो तदवत्थाए एयंताणुवड्ढिसंजदासंजदो त्ति भण्णदे। एण्हिं पुण तक्कालपरिसमत्तीए सत्थाणविसोहीए पदिदो अधापवत्तसंजदासंजदववएसारिहो

---

§ ३९. यतः यहाँ पर अवस्थित गुणश्रेणि है अतः उतना ही गुणश्रेणिनिक्षेप होता है यह इस सूत्रका अर्थ है। प्रथम समयके गुणश्रेणिनिक्षेपमेंसे नीचे एक स्थितिके उदयावलिके भीतर प्रविष्ट होने पर पुनः ऊपर अन्य एक स्थितिको अधिक करके यह जीव गुणश्रेणि विन्यास करता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—यहाँ संयमासंयमभावको प्राप्त हुए जीवके संयमासंयमरूप परिणामोंके साथ एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके निमित्तसे जो गुणश्रेणि रचना प्रारम्भ होती है वह एक तो उदयावलिके बाहर उपरितन समयसे प्रारम्भ होती है। दूसरे वह अवस्थितस्वरूप होती है, इसलिए प्रत्येक समयमें अधस्तन स्थितिके गलनेसे जैसे-जैसे उदयावलिसे उपरितन एक-एक स्थिति उदयावलिमें प्रवेश करती है वैसे-वैसे प्रत्येक समयके गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम प्रत्येक स्थिति गुणश्रेणिविन्यासको प्राप्त होती रहती है। जैसे अन्यत्र गुणश्रेणि आयाम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। इतना अवश्य है कि यह गुणश्रेणि-आयाम अवस्थितस्वरूप है। यद्यपि संयमासंयम गुणका माहात्म्य ही ऐसा है कि इस गुणके प्राप्त होने पर नियमसे अवस्थित गुणश्रेणिका प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु यहाँ पर एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके कालमें होनेवाला गुणश्रेणिनिक्षेप पूर्व-पूर्व समयकी अपेक्षा उत्तर-उत्तर समयमें नियमसे असंख्यातगुणित समयप्रबद्धस्वरूप होता है। यह तो पिछले समयकी अपेक्षा अगले समयकी बात हुई। एक ही समयमें अधस्तन स्थितिसे गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर उपरितन-उपरितन स्थितिमें असंख्यात गुणितक्रमसे द्रव्यका निक्षेप होता है। शेष कथन सुगम है।

* इस प्रकार बहुत स्थितिकाण्डकोंके जाने पर तत्पश्चात् यह जीव अधःप्रवृत्त संयतासंयत हो जाता है।

§ ४०. उक्त कथनका यह तात्पर्य है—संयमासंयमके ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तिम समय तक जो प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ हजारों स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और स्थितिबन्धापसरणोंको करता हुआ इस अवस्थामें एकान्तानुवृद्धि संयतासंयत कहलाता है। परन्तु अब उस कालकी समाप्ति होने

जादो त्ति अधापवत्तसंजदासंजदो त्ति वा सत्थाणसंजदासंजदो त्ति वा एयट्ठो। तदो एत्तो पाए सत्थाणपाओग्गाओ संकिलेस-विसोहीओ समयाविरोहेण परावत्तेदुमेसो लहदि त्ति घेत्तव्वं। तदो चेव एत्तो प्पहुडि ट्ठिदि-अणुभागघादाणं च पवुत्ती णत्थि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरं सुत्तमवइण्णं—

*** अधापवत्तसंजदासंजदस्स ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा णत्थि।**

§ ४१. करणविसोहिजणिदो जो पयत्तविसेसो एयंताणुवड्ढिचरिमसमए विणट्ठो। तदो एत्तो प्पहुडि ट्ठिदि-अणुभागघादा ण पवत्तंति त्ति भणिदं होदि।

§ ४२. संपहि सत्थाणसंजदासंजदस्स ट्ठिदि-अणुभागघादपडिसेहावसरे पत्तावसरमण्णं पि अत्थविसेसं पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** जदि संजमासंजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो, पुणो वि परिणाम-**

पर स्वस्थान विशुद्धिको प्राप्त कर अधःप्रवृत्त संयतासंयत संज्ञाके योग्य हो जाता है। इसे चाहे अधःप्रवृत्तसंयतासंयत कहो या स्वस्थानसंयतासंयत कहो दोनोंका अर्थ एक ही है। इसलिये यहाँसे लेकर स्वस्थानके योग्य संक्लेश और और विशुद्धिके परावर्तनको यह जीव आगमोक्त विधिसे प्राप्त करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। और इसीलिए यहाँसे लेकर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातकी प्रवृत्ति नहीं होती इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** अधःप्रवृत्तसंयतके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता।**

§ ४१. क्योंकि करणसम्बन्धी विशुद्धिके निमित्तसे हुआ प्रयत्नविशेष एकान्तानुवृद्धि विशुद्धिके अन्तिम समयमें नष्ट हो गया है, इसलिये यहाँसे लेकर स्थितिघात और अनुभागघात प्रवृत्त नहीं होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—करणजन्य विशुद्धिको निमित्तकर जो प्रयत्न विशेष होता है वह एकान्तानुवृद्धिरूप विशुद्धिके काल तक ही पाया जाता है, इसलिए स्थितिकाण्डकघात और अनुभाग काण्डकघातरूप कार्यविशेष उसी काल तक पाये जाते हैं। इसके आगे संयतासंयतके परिणाम होते हैं वे एकान्तानुवृद्धिरूप विशुद्धको लिये हुए न होकर अधःप्रवृत्तरूप ही होते हैं। अधःप्रवृत्तका अर्थ है संयतासंयतके योग्य कभी संक्लेशरूप और कभी विशुद्धिरूप परिणामोंका होना। इन परिणामोंको प्राप्त संयतासंयत जीवकी दो संज्ञाएँ हैं—अधःप्रवृत्तसंयतासंयत और स्वस्थानसंयतासंयत। इन परिणामोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है कि इनको निमित्त कर यह जीव स्थितिकाण्डकघात आदि कार्यविशेष करे। पर ऐसे जीवके गुणश्रेणिनिर्जराका निषेध नहीं है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए।

§ ४२. अब स्वस्थान संयतासंयतके स्थितिघात और अनुभागघातके प्रतिषेधके अवसर पर जिसका अवसर प्राप्त है ऐसा अन्य जो भी कार्यविशेष है उसका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** यदि वह परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमसे गिर गया और फिर भी**

पच्चएण अंतोमुहुत्तेण आणीदो संजमासंजमं पडिवज्जइ, तस्स वि णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा ।

§ ४३. जो जीवो संजदासंजदो होदूण केत्तियं पि कालमवट्ठिदो । पुणो परिणामपच्चएण असंजदो होदूण ट्ठिदि-अणुभागवड्ढिमकादूण पुणो वि सव्वलहु-मंतोमुहुत्तकालब्भंतरे चेव परिणामपच्चयवसेण संजमासंजमं पडिवज्जदि तस्स वि सत्थाणसंजदासंजदस्सेव ट्ठिदि-अणुभागघादा णत्थि, ट्ठिदि-अणुभागवड्ढीए विणा संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स तप्पाओग्गविसोहिसंबंधं मोत्तूण करणपरिणामासंभवादो । एत्थ परिणामपच्चएणे त्ति वुत्ते तिव्वविराहणाणिबंधणबज्झट्ठसण्णिहाणेण विणा अंतरंगपच्चएण तप्पाओग्गसंकिलेसाणुविद्धेण जीवादिपयत्थे अदूसिय हेट्ठिमगुणट्ठाणं गंतूण पुणो वि बज्झकारणणिरवेक्खेण तप्पाओग्गविसुद्धिसहगयं मंदसंवेग-परिणामेणेव संजमासंजममाणीदो त्ति घेत्तव्वं ।

परिणामोंके निमित्तसे अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वापिस लाया गया संयमासंयमको प्राप्त होता है तो उसके भी स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता ।

§ ४३. जो जीव संयतासंयत होकर कुछ ही काल तक रहा । पुनः परिणामोंके निमित्तसे असंयत होकर स्थिति और अनुभागमें वृद्धि न कर फिर भी अतिशीघ्र अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही परिणाम प्रत्ययवश संयमासंयमको प्राप्त होता है उसके भी स्वस्थानसंयतासंयतके समान स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता, क्योंकि स्थितिवृद्धि और अनुभागवृद्धिके बिना संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके तत्प्रायोग्य विशुद्धिके सम्बन्ध बिना करण परिणामोंका होना असम्भव है । यहाँ पर 'परिणामपच्चएण' ऐसा कहने पर जो तीव्र विराधनाका कारण है ऐसे बाह्य पदार्थका सम्पर्क हुए बिना तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामोंसे युक्त अन्तरंग कारणके द्वारा जीवादि पदार्थोंको दूषित न कर अधस्तन गुणस्थानमें जाकर फिर भी बाह्य कारणनिरपेक्ष तत्प्रायोग्य विशुद्धिके साथ मन्द संवेगरूप परिणामके द्वारा ही संयमासंयमको प्राप्त कराया गया ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो जीव अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणपूर्वक संयतासंयत हो कर तीव्र विराधनाकी कारणभूत बाह्य सामग्रीका सन्निधान हुए बिना केवल तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणामके कारण अधस्तन गुणस्थानको प्राप्त हुआ, फिर भी न तो उसकी जीवादि पदार्थोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्ति ही हुई और न ही उसे तीव्र विशुद्धिके बाह्य कारणोंका समागम ही प्राप्त हुआ, मात्र उसका अतिशीघ्र लघु अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर बिना बाह्य कारणके सहज ही ऐसा मन्दसंवेगरूप परिणाम हुआ जिससे वह पुनः संयमासंयम गुणको प्राप्त हो गया तो ऐसे जीवके भी स्वस्थान संयतासंयतके समान स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातरूप कार्यविशेष नहीं होते । यहाँ जो मन्द संवेगरूप परिणाम होनेका निर्देश किया है और उसे बाह्य कारण निरपेक्ष कहा है । इससे यह अर्थ सुतरां फलित होता है कि सभी कार्य बाह्य कारणसापेक्ष ही होते हैं ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है ।

§ ४४. संपहि सत्थाणविसोहीए पदिदस्स संजदासंजदस्स जहा ट्ठिदि-अणुभाग-मार्गदर्शक घादा [illegible] किमेवं गुणसेढिणिज्जरा वि णत्थि संभवो आहो अत्थि त्ति पुच्छिदे तण्णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

** जाव संजदासंजदो ताव गुणसेढिं समए समए करेदि ।**

§ ४५. जाव संजदासंजदो होदूण चिट्ठदि ताव समए समए असंखेज्जे समयपबद्धे ओकड्डियूण गुणसेढिणिज्जरं करेदि, ण तत्थ पडिसेहो अत्थि त्ति वुत्तं होइ। किं कारणमेवं होदि त्ति चे ? ण, संजमासंजमगुणसेढिणिबंधणाए गुणसेढिणिज्जराए जाव सो गुणो ण फिट्टदि ताव पवुत्तीए बाहाणुवलंभादो। तदो संजदासंजदगुणसेढिणिज्जराकालो जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तो, उक्कस्सेण देसूणपुव्वकोडिमेत्तो त्ति घेत्तव्वो। किं पुण एदम्मि काले गुणसेढिणिज्जरं कुणमाणो संकिलेस-विसोहिअद्धासु सव्वत्थेवाविसेसेण असंखेज्जगुणं पदेसग्गमोकड्डियूण समये समये गुणसेढिं करेदि, किमाहो संकिलेस-विसोहीसु परियत्तमाणस्स संकिलेसकाले हीयमाणो विसोहिकाले च वड्ढमाणो गुणसेढिणिक्खेवो होदि त्ति एदिस्से पुच्छाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तविण्णासो—

---

§ ४४. अब स्वस्थान विशुद्धिसे गिरे हुए संयतासंयतके जिसप्रकार स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होते, क्या इसप्रकार गुणश्रेणि[illegible]रा भी सम्भव नहीं है या सम्भव है ऐसा पूछनेपर उसका निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

** किन्तु जब तक संयतासंयत है तब तक समय-समयमें गुणश्रेणिको करता है ।**

§ ४५. जब तक संयतासंयत होकर रहता है तब तक समय-समयमें असंख्यात समयप्रबद्धोंका अपकर्षणकर गुणश्रेणिनिर्जरा करता है, वहाँ उसका निषेध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा होता है इसका क्या कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जब तक संयमासंयम गुण नष्ट नहीं होता तब तक संयमासंयम गुणश्रेणिनिमित्तक गुणश्रेणिनिर्जराकी प्रवृत्तिमें कोई बाधा नहीं उपलब्ध होती।

इसलिये संयतासंयत गुणश्रेणिनिर्जराका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। तो क्या इस कालमें गुणश्रेणिनिर्जरा करता हुआ संक्लेशके कालमें और विशुद्धिके कालमें सर्वत्र ही सामान्यरूपसे असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण कर समय-समयमें गुणश्रेणि करता है या क्या संक्लेश और विशुद्धिमें परिवर्तन करनेवाले उक्त जीवके संक्लेशकालमें घटता हुआ और विशुद्धिकालमें वृद्धिगत गुणश्रेणिनिक्षेप होता है इस प्रकार इस पृच्छाके निराकरण करनेके लिये आगेके सूत्रका विन्यास है—

*** विसुज्झंतो वि असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्जभागुत्तरं वा असंखेज्जभागुत्तरं वा करेदि संकिलिस्संतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा करेदि ।**

§ ४६. एयंताणुवड्ढिकालब्भंतरे पडिसमयमणंतगुणवड्ढिदेहिं परिणामेहिं समए समए असंखेज्जगुणदव्वमोकड्डियूण गुणसेढिणिक्खेवं करेदि, तत्थ पयारंतरासंभवादो । सत्थाणसंजदासंजदो पुण विसुज्झंतो छव्विहाए वड्ढीए वड्ढिदेहिं परिणामेहिं ओकड्डिज्जमाणदव्वस्स चउव्विहाए वड्ढीए कारणभूदेहिं जहासंभवं परिणममाणो परिणामाणुसारेणेव गुणसेढिणिक्खेवमारभेइ । संकिलिस्संतो वि एवमेव छव्विहाए हाणीए परिणामसंबंधमणुहवंतो चउव्विहाए हाणीए गुणसेढिविरचणं करेदि । गुणसेढिआयामो पुण सव्वत्थावट्ठिदो चेव होइ त्ति घेत्तव्वो ।

*** विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ भी उक्त जीव प्रति समय असंख्यातगुणे, संख्यातगुणे, संख्यात भाग अधिक या असंख्यात भाग अधिक प्रदेशपुञ्जका गुणश्रेणिमें निक्षेप करता है । तथा संक्लेशको प्राप्त हुआ उक्त जीव इसी प्रकारसे असंख्यातगुणे हीन, संख्यातगुणे हीन, संख्यात भागहीन या असंख्यात भाग हीन प्रदेशपुंजका गुणश्रेणिमें निक्षेप करता है ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ४६. एकान्तानुवृद्धि कालके भीतर प्रति समय अनन्तगुणे वृद्धिरूप परिणामोंके कारण समय-समयमें असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षणकर गुणश्रेणिनिक्षेप करता है, क्योंकि वहाँपर कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है । परन्तु स्वस्थान संयतासंयत विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ छह प्रकारकी वृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त हुए तथा अपकर्षित होनेवाले द्रव्यकी चार प्रकारकी वृद्धिके कारणभूत परिणामोंसे यथासम्भव परिणमन करता हुआ परिणामोंके अनुसार ही गुणश्रेणिनिक्षेपका आरम्भ करता है । संक्लेशको प्राप्त होता हुआ भी इसी प्रकार छह प्रकारकी हानिरूपसे परिणामोंके सम्बन्धको अनुभव करता हुआ चार प्रकारकी हानिद्वारा गुणश्रेणिरचना करता है । परन्तु गुणश्रेणि-आयाम सर्वत्र अवस्थित ही होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

विशेषार्थ—जो जीव करणपरिणामपूर्वक संयत होता है उसके अन्तर्मुहूर्तकाल तक एकान्तानुवृद्धिरूप ही विशुद्धि होती है जो प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिरूप ही होती है, अतः उसके अनुसार समय-समयमें असंख्यातगुणे द्रव्यका आकर्षणकर संयतासंयत जीव गुणश्रेणिनिक्षेप करता है । किन्तु जो स्वस्थान संयतासंयत है उसकी विशुद्धि अनन्त भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धिके भेदसे छह प्रकारकी होती है । अतः उसके जिस समय जिस प्रकारके विशुद्धिरूप परिणाम होते हैं उसके अनुसार वह जो गुणश्रेणिनिक्षेप करता है वह चार प्रकारका होता है । कोई गुणश्रेणिनिक्षेप असंख्यात गुणवृद्धिरूप होता है, कोई गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणवृद्धिरूप होता है, कोई गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यात भागहानिरूप होता है और कोई गुणश्रेणिनिक्षेप असंख्यात भागवृद्धिरूप होता है । यह तो स्वस्थान संयतासंयतके विशुद्धिकी अपेक्षा कथन हुआ । संक्लेशकी अपेक्षा विचार करनेपर वह भी अनन्त गुणहानि, असंख्यात

§ ४७. एवमेदेण सुत्तेण सत्थाणसंजदासंजदस्स गुणसेढिणिक्खेवगयविसेसं जाणाविय संपहि जो संकिलेसभारेणोट्टद्धो संजमासंजमादो णिप्पडिदो संतो ट्ठिदि-अणुभागे वड्ढाविय पुणो तप्पाओग्गेण कालेण संजमासंजमग्गहणाहिमुहो होइ तस्स केरिसी परूवणा त्ति एवंविहासंकाए णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** जदि संजमासंजमादो पडिवदिदूण आगुंजाए मिच्छत्तं गंतूण तदो संजमासंजमं पडिवज्जइ, अंतोमुहुत्तेण वा विप्पकट्ठेण वा कालेण, तस्स वि संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स एदाणि चेव करणाणि कादव्वाणि ।**

§ ४८. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा—आगुंजनमागुंजा, संक्लेशभरेणांतराघूर्णनमित्यर्थः[1] । तदो संकिलेसभरेण पेल्लिदो संतो जो संजमासंजमादो मिच्छत्तपायाले णिवदिय पुणो वि अंतोमुहुत्तेण वा विप्पकिट्ठेण वा कालेणाविणट्ठ-वेदगपाओग्गभावेण विसोहिमावूरिय संजमासंजमं पडिवज्जइ तस्स तहा संजमा-

गुणहानि, संख्यात गुणहानि, संख्यात भागहानि असंख्यात भागहानि और अनन्त भागहानिके भेद छह प्रकारका होता है । अतः उसके जिस समय जिस प्रकारका संक्लेश परिणाम होता है उसके अनुसार वह जो गुणश्रेणिनिक्षेप करता है वह भी चार प्रकारका होता है—कोई गुणश्रेणिनिक्षेप असंख्यात गुणहानिरूप होता है, कोई संख्यात गुणहानिरूप होता है, कोई संख्यात भागहानिरूप होता है और कोई असंख्यात भागहानिरूप होता है । इतना अवश्य है कि गुणश्रेणिमें जिस द्रव्यका निक्षेप होता है वह कम हो या अधिक हो, परन्तु गुणश्रेणि-आयाम सर्वत्र अवस्थितरूपसे एकसमान ही होता है ।

§ ४७. इस प्रकार इस सूत्रद्वारा स्वस्थान संयतासंयतके गुणश्रेणिनिक्षेपगत विशेषताका ज्ञान कराकर अब संक्लेशभारसे व्याप्त जो जीव संयमासंयमसे पतित होता हुआ स्थिति और अनुभागको बढ़ाकर पुनः तत्प्रायोग्य कालके द्वारा संयमासंयमके ग्रहणके सन्मुख होता है उसकी प्ररूपणा किस प्रकारकी होती है इस तरह इस प्रकारकी आशंकाके होनेपर निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार है—

*** यदि कोई जीव आगुंजावश अर्थात् संक्लेशकी बहुलतासे प्रेरित हो संयमासंयमसे च्युत होता है और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालसे या विप्रकृष्ट कालसे संयमासंयमको प्राप्त होता है तो संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले उसके भी ये ही करण करणीय होते हैं ।**

§ ४८. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—आगुञ्जा शब्दकी व्युत्पत्ति है—आगुञ्जनमागुञ्जा । संक्लेशभरसे भीतर ही भीतर उद्वेलित होना यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसलिये संक्लेशभरसे प्रेरित हुआ जो जीव संयतासंयतगुणसे मिथ्यात्वरूपी पातालमें गिरकर फिर अन्तर्मुहूर्त कालसे या जिस कालके भीतर वेदकप्रायोग्य भाव नष्ट नहीं हुआ है ऐसे विप्रकृष्ट

१. ता०प्रतौ संक्लेशभारेणाघार्णनमित्यर्थः इति पाठः ।

संजमं पडिवज्जमाणस्स एदाणि चेवाणंतरणिद्दिट्ठाणि दोण्णि करणाणि कादव्वाणि भवंति, अण्णहा आगुंजावसेण वड्ढाविदट्ठिदि-अणुभागाणं घादाणुववत्तीदो।

§ ४९. एवमेत्तिएण पबंधेण संजमासंजमलद्धीए परूवणं समाणिय संपहि पयदत्थविसयपदविसेसपडिबद्धमप्पाबहुअदंडय पदपरिपूरणबीजपदावलंबणेण परूवेमाणो तव्विसयमेव पइण्णावक्कमाह—

मार्गदर्शक:- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तदो एदिस्से परूवणाए समत्ताए संजमासंजमं पडिवज्जमाणगस्स पढमसमयअपुव्वकरणादो जाव संजदासंजदो एयंताणुवड्ढीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढदि, एदम्हि काले ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्म-ट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सयाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं अण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो।**

§ ५०. सुगममेदं पइण्णावक्कं। णवरि एत्थ चरित्ताचरित्तलद्धीए त्ति वुत्ते संजमासंजमलद्धीए चेव पज्जायणिद्देसो एसो त्ति गहियव्वो, देसचरित्तलद्धीए

कालसे विशुद्धिको पूर कर संयमासंयमको प्राप्त होता है, संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके ये अनन्तर पूर्व निर्दिष्ट किये गये दो करण करणीय होते हैं, अन्यथा आगुंजावश बढ़ाई गई स्थिति और अनुभागका घात नहीं बन सकता।

विशेषार्थ—यहाँपर जो संयतासंयत अत्यन्त संक्लेश परिणामोंके कारण संयमासंयम गुणसे च्युत होकर मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुआ है वह यदि अन्तर्मुहूर्तकालमें या वेदक प्रायोग्य कालके भीतर दीर्घ कालके बाद पुनः संयमासंयमको प्राप्त करता है तो अधः-प्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण करके ही वह इस गुणको प्राप्त कर सकता है, अन्य प्रकारसे नहीं यह स्पष्टीकरण यहाँपर किया गया है।

§ ४९. इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा संयमासंयमलब्धिका कथन समाप्त करके अब प्रकृत अर्थविषयक पदविशेषोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अल्पबहुत्वदण्डकका पदपूर्तिरूप बीजपदोंका अवलम्बन लेकर कथन करते हुए तद्विषयक ही प्रतिज्ञावाक्यको कहते हैं—

*** पश्चात् इस प्ररूपणाके समाप्त होनेपर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर एकान्तानुवृद्धिरूप विशुद्धिके निमित्तसे चरित्ताचरित्तलब्धि अर्थात् संयमासंयमलब्धिकी वृद्धि होने तक इस कालके भीतर जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध, स्थितिसत्कर्म और स्थितिकाण्डकोंका, जघन्य और उत्कृष्ट आबाधाओंका, जघन्य और उत्कृष्ट उत्कीरणकालोंका तथा अन्य पदोंका अल्पबहुत्व बतलावेंगे।**

§ ५०. यह प्रतिज्ञावाक्य सुगम है। इतनी विशेषता है कि यहाँपर चरित्ताचरित्त-लब्धि ऐसा कहनेपर संयमासंयमलब्धिका ही यह पर्यायनिर्देश है ऐसा ग्रहण करना चाहिए,

तव्ववएसपडिलंभे विरोहाभावादो ।

*** तं जहा ।**

§ ५१. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

*** सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा ।**

§ ५२. एसा एयंताणुवड्ढिकालचरिमाणुभागखंडयउक्कीरणद्धा सव्वजहण्णभावेण गहेयव्वा १ ।

*** उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया ।**

§ ५३. अपुव्वकरणपढमाणुभागखंडयविसये एसा गहेयव्वा २ ।

*** जहण्णिया ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ५४. एदाओ एयंताणुवड्ढिकालचरिमावत्थाए गहेयव्वाओ ३ ।

*** उक्कस्सियाओ विसेसाहियाओ ।**

§ ५५. कुदो ? अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयतब्बंधगद्धाणमिहावलंबियत्तादो ४ ।

क्योंकि देशचारित्रलब्धिकी उस संज्ञाके प्राप्त होनेमें विरोधका अभाव है ।

*** वह जैसे ।**

§ ५१. यह पृच्छावाक्य सुगम है ।

*** जघन्य अनुभागकाण्डकका उत्कीरण काल सबसे स्तोक है ।**

§ ५२. एकान्तानुवृद्धि कालके भीतर जो अन्तिम अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल है उसे यहाँ सबसे जघन्यरूपसे ग्रहण करना चाहिए १ ।

*** उससे उत्कृष्ट अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल विशेष अधिक है ।**

§ ५३. अपूर्वकरणके प्रथम अनुभागकाण्डकविषयक यह उत्कीरणकाल ग्रहण करना चाहिए २ ।

*** उससे जघन्य स्थितकाण्डक-उत्कीरणकाल और जघन्य स्थितिबन्धकाल ये दोनों तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं ।**

§ ५४. एकान्तानुवृद्धिकालकी अन्तिम अवस्थाके इन दोनोंको ग्रहण करना चाहिए ३ ।

*** उनसे पूर्वोक्त उत्कृष्ट काल विशेष अधिक हैं ।**

§ ५५. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकाण्डक और स्थितिबन्धके कालोंका यहाँ अवलम्बन लिया गया है ४ ।

*** पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि जं एगंताणुवड्ढीए वड्ढदि चरित्ता-चरित्तपज्जयेहिं एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो ।**

§ ५६. एसो वि एयंताणुवड्ढिकालो अंतोमुहुत्तपमाणो चेव, किंतु संखेज्ज-सहस्समेत्तट्ठिदिखंडय-तब्बंधकालगब्भिणो, तेण संखेज्जगुणो जादो ५ ।

मार्गदर्शक *** अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।**

§ ५७. को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तरूवाणि ६ । एत्थाणियट्टिकरणद्धा णत्थि त्ति ण तव्विसयमप्पाबहुअचिंतणं कयं ।

*** जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा संजमद्धा असंजमद्धा सम्मामिच्छत्तद्धा च एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्ज-गुणाओ ।**

§ ५८. कुदो एदासिं छण्हं जहण्णद्धाणं सरिसत्तमवगम्मदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो । तदो एदाओ छप्पि अद्धाओ अण्णोण्णं समाणाओ होदूण अपुव्वकरणद्धादोः संखेज्जगुणाओ त्ति घेत्तव्वं ७ ।

*** गुणसेढी संखेज्जगुणा ।**

§ ५९. एत्थ गुणसेढि त्ति सामण्णणिद्देसे वि पयरणवसेण संजमासंजम-

---

*** उनसे संयतासंयतके प्रथम समयसे लेकर एकान्तानुवृद्धिके द्वारा चारित्रा-चारित्रपर्यायरूपसे जो वृद्धि होती है वह वृद्धिकाल संख्यातगुणा है ।**

§ ५६. यह एकान्तानुवृद्धिकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है, क्योंकि इस कालमें संख्यात हजार स्थितिकाण्डककाल और स्थितिबन्धकाल होते हैं, इसलिये वह संख्यातगुणा हो जाता है ५ ।

*** उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है ।**

§ ५७. गुणकार क्या है ? तत्प्रायोग्य संख्यात अंक गुणकार है ६ । यहाँ पर अनिवृत्ति-करणकाल नहीं है, इसलिए तद्विषयक अल्पबहुत्वका विचार नहीं किया ।

*** उससे जघन्य संयमासंयमकाल, सम्यक्त्वकाल, मिथ्यात्वकाल, संयमकाल, असंयमकाल और सम्यग्मिथ्यात्वकाल ये छह काल परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं ।**

§ ५८. **शंका**—इन छहोंके जघन्य कालका सदृशपना कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है । इसलिए ये छहों काल परस्पर सदृश होकर अपूर्वकरणके कालसे संख्यातगुणे हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए ७ ।

*** उनसे गुणश्रेणि संख्यातगुणी है ।**

§ ५९. यहाँ पर गुणश्रेणि ऐसा सामान्य निर्देश करने पर भी प्रकरणवश संयमासंयम

गुणसेढी चेव घेत्तव्वा। तदायामो पुव्विल्लजहण्णद्धाहिंतो संखेज्जगुणो। कुदो एदं परिच्छिण्णं ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ८।

* जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा।

§ ६०. एयंताणुवड्ढिकालचरिमसमयबंधविसए एसा घेत्तव्वा[1]। सेसं सुगमं ९।

* उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा।

§ ६१. अपुव्वकरणपढमसमयाढत्तबंधविसए तदवलंबणादो एसा वि अंतोमुहुत्तपमाणा चेव होदूण पुव्विल्लादो संखेज्जगुणा त्ति घेत्तव्वा १०।

* जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं।

§ ६२. पुव्विल्लमंतोमुहुत्तपमाणमेदं पुण एयंताणुवड्ढिचरिमसमयविसए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तं[2] जहण्णट्ठिदिखंडयं गहिदं। तदो असंखेज्जगुणं जादं ११।

* अपुव्वकरणस्स पढमं जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।

§ ६३. एदं पि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तं चेव, किंतु पुव्विल्लादो

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गुणश्रेणि ही लेनी चाहिए। उसका आयाम पूर्वके जघन्य कालसे संख्यातगुणा है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ८।

* उससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है।

§ ६०. एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समयमें होनेवाले बन्धकी यह आबाधा लेनी चाहिए। शेष कथन सुगम है ९।

* उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है।

§ ६१. अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त बन्धविषयक आबाधाका यहाँ अवलम्बन लिया है। यह भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही होकर पूर्वकी आबाधासे संख्यातगुणी है ऐसा ग्रहण करना चाहिए १०।

* उससे जघन्य स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है।

§ ६२. पूर्व सूत्रनिर्दिष्ट उत्कृष्ट आबाधा अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। किन्तु यह एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयमें होनेवाला पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्थितिकाण्डक लिया गया है, इसलिए असंख्यातगुणा हो गया है ११।

* उससे अपूर्वकरणका प्रथम जघन्य स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है।

§ ६३. यह भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही है। किन्तु पूर्व सूत्रनिर्दिष्ट स्थिति-

१. ता०प्रतौ एसा चेव घेत्तव्वा इति पाठः। २. ता०-आ-प्रत्योः असंखेज्जदिभागमेत्तं इति पाठः।

संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडयगुणहाणीओ हेट्ठा ओसरियूणापुव्वकरणपढमसमये जादं। तदो संखेज्जगुणत्तमेदस्स सिद्धं १२।

* पलिदोवमं संखेज्जगुणं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ६४. सुगमं १३।

* उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।

§ ६५. कुदो? सागरोवमपुधत्तपमाणत्तादो १४।

* जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

§ ६६. किं कारणं? एयंताणुवड्ढिचरिमसमए अंतोकोडाकोडिमेत्तजहण्णट्ठिदिबंधस्स गहणादो १५।

* उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

§ ६७. कुदो? अपुव्वकरणपढमसमयठिदिबंधस्स गहणादो १६।

* जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

§ ६८. एयंताणुवड्ढिकालचरिमसमयम्मि जहण्णट्ठिदिसंतकम्मस्स विवक्खियत्तादो १७।

काण्डकसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक गुणहानियाँ नीचे सरक कर यह अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त हुआ है, इसलिए यह संख्यातगुणा सिद्ध होता है १२।

* उससे पल्योपम संख्यातगुणा है।

§ ६४. यह सूत्र सुगम है १३।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है।

§ ६५. क्योंकि वह सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है १४।

* उससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

§ ६६. क्योंकि एकान्तानुवृद्धिके अन्तिम समयमें होनेवाले अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण जघन्य स्थितिबन्धका यहाँ पर ग्रहण किया है १५।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

§ ६७. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें होनेवाले स्थितिकाण्डकका यहाँ ग्रहण किया है १६।

* उससे जघन्य स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ ६८. क्योंकि एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समयमें होनेवाला जघन्य स्थितिसत्कर्म यहाँ पर विवक्षित है १७।

*** उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।**

§ ६९. अपुव्वकरणपढमसमयविसये घादेण विणा अंतोकोडाकोडिमेत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मस्स गहणादो १८ । एवं ताव पदपरिवूरणबीजपदावलंबणेणेदमप्पाबहुअं परूविय पुणो संजदासंजदविसयमेव परूवणंतरमाढवेइ——

*** संजदासंजदाणमट्ठ अणियोगद्दाराणि । तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च ।**

§ ७०. संजदासंजदाणं परूवणट्ठदाए एदाणि अट्ठ अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति, अण्णहा तव्विसयविसेसणिण्णयाणुप्पत्तीदो त्ति भणिदं होइ । गाहासुत्तणिबंधेण विणा कधमेदेसिमेत्थ परूवणा त्ति णासंकणिज्जं, गहासुत्तस्स सूचणामेत्तवावदस्स संजदासंजदविसयासेसपरूवणाए उवलक्खणभावेण पवुत्तिअब्भुवगमादो । एदेसिं च विहासा सुगमत्ताहिप्पाएण चुण्णिसुत्ते ण परूविदा । तदो एत्थ जीवट्ठाणभंगाणुसारेण अट्ठण्हमणिओगद्दाराणं परूवणा जाणिय कायव्वा ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** उससे उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है ।**

§ ६९. क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें घातके बिना प्राप्त अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका यहाँ ग्रहण किया है । इस प्रकार सर्वप्रथम पदपूर्तिरूप बीजपदोंके अवलम्बनसे इस अल्पबहुत्वका कथन कर पुनः संयतासंयतविषयक ही दूसरी प्ररूपणाका आरम्भ करते हैं——

*** संयतासंयतविषयक आठ अनुयोगद्वार हैं ज्ञातव्य । यथा—सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व ।**

§ ७०. संयतासंयतोंकी प्ररूपणारूप प्रयोजन होने पर ये आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं, अन्यथा तद्विषयक विशेष निर्णय नहीं हो सकता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—गाथासूत्रमें ये आठ अनुयोगद्वार निबद्ध नहीं हैं, फिर उसके बिना उनकी यहाँ प्ररूपणा कैसे की जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सूचनामात्रमें व्यापार करनेवाले गाथासूत्रकी संयतासंयतविषयक अशेष प्ररूपणामें उपलक्षणरूपसे प्रवृत्ति स्वीकार की गई है। किन्तु इनका विशेष व्याख्यान सुगम है, इस अभिप्रायसे चूर्णिसूत्रमें इसका विवेचन नहीं किया, इसलिये यहाँ पर जीवस्थानमें की गई प्ररूपणाके अनुसार आठ अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा जानकर करनी चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ संयतासंयत जीवोंसम्बन्धी उक्त आठ अनुयोगद्वारोंका अवलम्बन लेकर कथन करते हैं । यथा—सत्प्ररूपणा—ओघसे संयतासंयत जीव हैं । आदेशसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें संयतासंयत जीव हैं । संख्या—ओघसे संयतासंयत जीव पल्योपमके असंख्यातवें

§ ७१. एवमेदेसु अट्ठसु अणिओगद्दारेसु विहासिय समत्तेसु पुणो वि संजमासंजमलद्धिविसयं परूवणंतरं वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** एदेसु अणिओगद्दारेसु समत्तेसु तिव्वमंदाए सामित्तमप्पाबहुअं च कायव्वं ।**

§ ७२. अट्ठहिं अणियोगद्दारेहिं संजदासंजदाणं परूवणाए समत्ताए किमट्ठ-

---

भागप्रमाण हैं। आदेशसे तिर्यञ्चगतिमें संयतासंयत जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और मनुष्यगतिमें संयतासंयत जीव संख्यात हैं। क्षेत्र—ओघसे स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा संयतासंयत जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीप्रकार आदेशसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें भी यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र जानना चाहिए। स्पर्शन—ओघसे संयतासंयत जीवोंने स्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मारणान्तिक पदकी अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आदेशसे तिर्यञ्चगतिमें इसी प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिमें संयतासंयतोंने सम्भव सब पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। काल—एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा काल दो प्रकारका है। एक जीवकी अपेक्षा ओघसे कालका विचार करनेपर जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तपृथक्त्व कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। आदेशसे तिर्यञ्चगतिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल इसी प्रकार जानना चाहिए। मनुष्यगतिमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण ही है। मात्र उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। ओघसे और आदेशसे दोनों गतियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा काल सर्वदा है। अन्तर—ओघसे एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। इसी प्रकार आदेशसे दोनों गतियोंकी अपेक्षा यथासम्भव अन्तरकाल जानना चाहिए। नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघसे और आदेशसे दोनों गतियोंमें अन्तरकाल नहीं है। भागाभाग—ओघसे संयतासंयत एक पद है, इसलिए भागाभाग नहीं है। परस्थानकी अपेक्षा संयतासंयत जीव सब संसारी जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आदेशसे तिर्यञ्चगति और मनुष्यगतिमें इसी प्रकार जान लेना चाहिए। अल्पबहुत्व—ओघसे संयतासंयत एक पद है, इसलिए स्वस्थानकी अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं है। आदेशसे मनुष्यगतिमें संयतासंयत जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे तिर्यञ्चगतिमें संयतासंयत जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ७१. इस प्रकार इन आठ अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान समाप्त होने पर फिर भी संयमासंयमलब्धिविषयक दूसरी प्ररूपणाको बतलावेंगे इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** इन अनुयोगद्वारोंके समाप्त होने पर तीव्र-मन्दताविषयक स्वामित्व और अल्पबहुत्व करना चाहिए।**

§ ७२. **शंका**—आठ अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे संयतासंयतोंकी प्ररूपणाके समाप्त

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

भेसा अण्णा परूवणा आढविज्जदि त्ति णासंका कायव्वा, संजमासंजमलद्धीए जहण्णुक्कस्सभेयभिण्णाए सामित्तमप्पाबहुअमुहेण तिव्वमंददापरूवणट्ठमेदिस्से परूवणाए अवयारादो। तत्थ सामित्तं णाम जहण्णुक्कस्ससंजमासंजमलद्धीणं को सामिओ होदि त्ति संबंधविसेसावहारणं अप्पाबहुअमेदासिं चेव तिव्वमंददाए थोवबहुत्तपरिक्खा। एत्थ सामित्तप्पाबहुआणं जोणीभूदं परूवणाणिओगद्दारं किण्ण वुत्तं? ण, तस्साणुत्तसिद्धत्तादो। तम्हा अत्थि जहण्णिया संजमासंजमलद्धी उक्कस्सिया चेदि तासिं समुक्कित्तणं कादूण तदो सामित्तमहिकीरदे।

*** सामित्तं।**

§ ७३. सुगमं।

*** उक्कस्सिया लद्धी कस्स?**

§ ७४. सुगममेदं पि, पुच्छामेत्तवावारादो।

*** संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजमग्गाहयस्स।**

होने पर यह अन्य प्ररूपणा किसलिये आरम्भ की जाती है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट भेदसे दो प्रकारकी संयमासंयमलब्धिके स्वामित्व और अल्पबहुत्व द्वारा तीव्र-मन्दताकी प्ररूपणा करनेके लिये इस प्ररूपणाका अवतार हुआ है।

उनमेंसे जघन्य और उत्कृष्ट संयमासंयम लब्धियोंका स्वामी कौन है इसप्रकार सम्बन्ध विशेषका निश्चय करना स्वामित्व है और इन्हींकी तीव्र-मन्दताके अल्पबहुत्वकी परीक्षाका नाम अल्पबहुत्व है।

शंका—यहाँ पर स्वामित्व और अल्पबहुत्वके योनिभूत प्ररूपणानुयोगद्वारका कथन क्यों नहीं किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह अनुक्तसिद्ध है।

इसलिये जघन्य संयमासंयमलब्धि है और उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि है इस प्रकार उनका समुत्कीर्तन कर तत्पश्चात् स्वामित्वको अधिकृत करते हैं—

*** स्वामित्वका अधिकार है।**

§ ७३. यह सूत्र सुगम है।

*** उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि किसके होती है।**

§ ७४. यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि पृच्छामात्रमें इसका व्यापार है।

*** अनन्तर समयमें संयमको ग्रहण करनेवाले सर्व-विशुद्ध संयतासंयतके होती है।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ७५. जो संजदासंजदो सव्वविसुद्धो होदूण संजमाहिमुहो जादो, तस्स-चरिमसमयसंजदासंजदस्स उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी होइ त्ति सामिसंबंधो। कुदो एदिस्से उक्कस्सत्तमिदि चे? ण, संजमाहिमुहस्स[1] समयं पडि अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणस्स दुचरिमसमए उदिण्णकसायाणुभागफद्दएहिंतो अणंत-गुणहीणचरिमसमयोदिण्णफद्दयजणिदचरिमविसोहीए सव्वुक्कस्सभावं पडि विरोहा-भावादो।

*** जहण्णिया लद्धी कस्स?**

§ ७६. सुगमं।

*** तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स से काले मिच्छत्तं गाहिदि त्ति।**

§ ७७. जो संजदासंजदो कसायाणं तिव्वाणुभागोदएण संकिलिट्ठो होदूण से काले मिच्छत्तं गाहिदि त्ति अवट्ठिदो, तस्स चरिमसमयसंजदासंजदस्स जहण्णिया संजमासंजमलद्धी होइ, कसायाणं तिव्वाणुभागोदयजणिदसंकिलेसाणुविद्धाए तत्थतण-लद्धीए सव्वजहण्णभावं पडि विरोहाणुवलंभादो।

---

§ ७५. जो संयतासंयत सर्वविशुद्ध होकर संयमके अभिमुख हुआ है, अन्तिम समय-वर्ती उस संयतासंयतके उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि होती है इसप्रकार स्वामित्वविषयक सम्बन्ध है।

शंका—इस संयमासंयमलब्धिको उत्कृष्टपना कैसे है?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होनेवाले संयमके अभिमुख हुए जीवके द्विचरम समयमें उदीर्ण हुए कषायोंसम्बन्धी अनुभागस्पर्द्धकोंसे अनन्त-गुणे हीन अन्तिम समयसम्बन्धी उदीर्ण हुए स्पर्धकोंसे उत्पन्न हुई अन्तिम विशुद्धिके सर्वो-त्कृष्टपनेके प्रति विरोधका अभाव है।

*** जघन्य संयमासंयमलब्धि किसके होती है?**

§ ७६. यह सूत्र सुगम है।

*** जो अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा ऐसे तत्प्रायोग्य संक्लेश-परिणामवाले संयतासंयतके होती है।**

§ ७७. जो संयतासंयत जीव कषायोंके तीव्र अनुभागके उदयसे संक्लिष्ट होकर अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त करेगा, इसप्रकार अवस्थित है उस अन्तिम समयवर्ती संयतासंयतके जघन्य संयमासंयमलब्धि होती है, क्योंकि कषायोंके तीव्र अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुए संक्लेशसे ओतप्रोत उक्त लब्धिके सबसे जघन्यपनेके प्रति विरोध नहीं पाया जाता।

---

१. ता०प्रतौ ण [संजमा] संजमाहिमुहस्स इति पाठः।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* अप्पाबहुअं ।

§ ७८. सुगमं ।

* तं जहा ।

§ ७९. पुच्छावक्कमेदं पि सुगमं ।

* जहण्णिया संजमासंजमलद्धी थोवा ।

§ ८०. कुदो ? मिच्छत्तपडिवादाहिमुहस्स चरिमसमए तप्पाओग्गुक्कस्ससंकिलेसेण पडिलद्धजहण्णभावत्तादो ।

* उक्कस्सिया संजमासंजमलद्धी अणंतगुणा ।

§ ८१. सव्वविसुद्धस्स संजमाहिमुहस्स चरिमसमयउक्कस्सविसोहीए पडिलद्धतब्भावत्तादो । गुणगारो पुण सव्वजीवेहिंतो अणंतगुणो, पुव्विल्लजहण्णलद्धिट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघियूण एदिस्से समुप्पत्तिदंसणादो । एवं ताव जहण्णुक्कस्ससंजमासंजमलद्धीणं सामित्तप्पाबहुअमुहेण विणिण्णयं कादूण संपहि अजहण्णाणुक्कस्सतव्वियप्पाणमसंखेज्जलोगमेत्ताणं परूवणट्ठमुत्तरं सुत्तपबंधमाढवेइ—

* एत्तो संजदासंजदस्स लद्धिट्ठाणाणि वत्तइस्सामो ।

---

* अब अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ७८. यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ ७९. यह पृच्छावाक्य भी सुगम है ।

* जघन्य संयमासंयमलब्धि सबसे स्तोक है ।

§ ८०. क्योंकि मिथ्यात्वमें गिरनेके सन्मुख हुए संयतासंयतके अन्तिम समयमें तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेशके कारण यह जघन्यपनेको प्राप्त हुई है ।

* उससे उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धि अनन्तगुणी है ।

§ ८१. संयमके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध संयतासंयतके अन्तिम समयमें जो उत्कृष्ट विशुद्धि होती है उसमें उत्कृष्टपना पाया जाता है । परन्तु गुणकार अनन्तगुणा है, क्योंकि पूर्वके जघन्य लब्धिस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण छह स्थानोंको उल्लंघन कर इसकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसप्रकार सर्वप्रथम जघन्य और उत्कृष्ट संयमासंयमलब्धियोंका स्वामित्व और अल्पबहुत्व द्वारा निर्णय करके अब असंख्यात लोकप्रमाण अजघन्यानुत्कृष्ट संयमासंयमसम्बन्धी विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धका आरम्भ करते हैं—

* अब इससे आगे संयतासंयतके लब्धिस्थान बतलावेंगे ।

§ ८२. पुव्वं जहण्णुक्कस्सलद्धीणमेव सामित्तप्पाबहुअमुहेण विणिण्णओ कओ। एत्तो असंखेज्जलोयभेयभिण्णाणमजहण्णाणुक्कस्सवियप्पाणं जहण्णुक्कस्सलद्धिट्ठाणेहिं सह परूवणं कस्सामो त्ति पइण्णावक्कमेदं। ताणि च लद्धिट्ठाणाणि तिविहाणि होंति—पडिवादट्ठाणाणि पडिवज्जमाणट्ठाणाणि अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणि चेदि। तत्थ जम्हि मिच्छत्तं वा असंजमं वा गच्छदि तं पडिवादट्ठाणं णाम। जम्हि संजमासंजमं पडिवज्जदि तं पडिवज्जमाणट्ठाणमिदि भण्णदे। सेसाणि संजमासंजमलद्धिट्ठाणाणि सत्थाणावट्ठाणपाओग्गाणि उवरिमगुणट्ठाणाहिमुहाणि च अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणि त्ति णायव्वाणि। एत्थ सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि, पडिवज्जमाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। एदाणि सव्वाणि चेव घेत्तूण संजदासंजदलद्धिट्ठाणाणि होंति। तेसिं परूवणट्ठमेत्थ तिण्णि अणिओगद्दाराणि परूवणा पमाणमप्पाबहुअं च। तत्थ तिविहाणं पि लद्धिट्ठाणाणं जहण्णट्ठाणप्पहुडि जावुक्कस्सलद्धिट्ठाणे त्ति ताव पुध पुध छवड्ढिकमेण सरूवणिद्देसो परूवणा त्ति भण्णदे। सा एत्थ पुव्वमणुगंतव्वा, पमाणप्पाबहुआणं तज्जोणित्तादो।

* तं जहा।

§ ८३. पुच्छावक्कमेदं लद्धिट्ठाणपरूवणाविसयं सुगमं।

---

§ ८२. पहले जघन्य और उत्कृष्ट लब्धियोंका ही स्वामित्व और अल्पबहुत्व द्वारा निर्णय किया। अब इससे आगे असंख्यात लोकप्रमाण भेदोंसे अनेक प्रकारके अजघन्यानुत्कृष्ट संयमासंयमलब्धिसम्बन्धी विकल्पोंका जघन्य और उत्कृष्ट लब्धिस्थानोंके साथ कथन करेंगे, इसप्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है। वे लब्धिस्थान तीन प्रकारके हैं—प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान। उनमेंसे (जिस स्थानके होनेपर यह जीव मिथ्यात्वको या असंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान कहलाता है।) (जिस स्थानके होनेपर यह जीव संयमासंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपद्यमानस्थान कहलाता है।) तथा (स्वस्थानमें अवस्थानके योग्य और उपरिम गुणस्थानके अभिमुख हुए शेष संयमासंयम लब्धिस्थान अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान जानने चाहिए।) यहाँ पर प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं। उनसे प्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। उनसे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं। इन सभीको ग्रहणकर संयतासंयतसम्बन्धी लब्धिस्थान होते हैं। उनका कथन करनेके लिये यहाँ पर तीन अनुयोगद्वार हैं—प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व। उनमेंसे तीनों ही लब्धिस्थानोंसम्बन्धी जघन्य स्थानसे लेकर उत्कृष्ट लब्धिस्थान तक पृथक्-पृथक् षट्स्थानपतित छह वृद्धिक्रमसे (स्वरूपका निर्देश करना प्ररूपणा कही जाती है।) उसे यहाँ सर्वप्रथम जानना चाहिए, क्योंकि प्रमाण और अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा यह योनि है।

* वे जैसे।

§ ८३. लब्धिस्थानोंकी प्ररूपणाको विषय करनेवाला यह पृच्छावाक्य सुगम है।

* जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंताणि फद्दयाणि ।

§ ८४. एदेण सुत्तेण असंखेज्जलोगमेत्ताणं संजमासंजमलद्धिट्ठाणाणं जं जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तस्स सरूवणिद्देसो कओ त्ति दट्ठव्वो । तं कधं ? एदं जहण्णट्ठाणमणंतेहि अविभागपडिच्छेदेहिं सव्वजीवेहि अणंतगुणमेत्तेहिं णिप्फण्णं । एदे चेव अणंता अविभागपडिच्छेदा अणंताणि फद्दयाणि त्ति भण्णंते, फद्दयसद्दस्साविभागपलिच्छेदवाचित्तेण इह विवक्खियत्तादो । तदो अणंताणि फद्दयाणि एवंविहाविभागपलिच्छेदसरूवाणि घेत्तूणेदं जहण्णलद्धिट्ठाणं होदि त्ति भणिदं सुत्तयारेण । अहवा एदं जहण्णयं लद्धिट्ठाणं मिच्छत्तपडिवादाहिमुहसंजदासंजदचरिमसमए अणंताणं कसायाणुभागफद्दयाणमुदएण जणिदमिदि कज्जे कारणोवयारेण अणंताणि फद्दयाणि त्ति भण्णदे, अण्णहा तस्स सरूवणिरूवणोवायाभावादो ।

§ ८५. एवमेदस्स सव्वजहण्णलद्धिट्ठाणस्स सरूवणिरूवणं काढूण संपहि

---

* जघन्य लब्धिस्थान अनन्त स्पर्धकरूप है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ८४. इस सूत्र द्वारा असंख्यात लोकप्रमाण संयमासंयमलब्धिस्थानोंसम्बन्धी जो जघन्य लब्धिस्थान है उसके स्वरूपका निर्देश किया गया है ऐसा जानना चाहिए।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—यह जघन्य स्थान सब जीवोंसे अनन्तगुणे अनन्त अविभागप्रतिच्छेदोंसे निष्पन्न हुआ है। ये ही अनन्त अविभागप्रतिच्छेद अनन्त स्पर्धक कहे जाते हैं, क्योंकि यहाँपर स्पर्धक शब्द अविभागप्रतिच्छेदका वाची स्वीकार किया गया है। इसलिये इसप्रकारके अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप अनन्त स्पर्धकोंको ग्रहणकर यह जघन्य लब्धिस्थान होता है यह सूत्रकारने कहा है। अथवा यह जघन्य लब्धिस्थान मिथ्यात्वमें गिरनेके सन्मुख हुए संयतासंयतके अन्तिम समयमें कषायोंके अनन्त अनुभागस्पर्धकोंके उदयसे उत्पन्न हुआ है इसप्रकार कार्यमें कारणके उपचारसे अनन्त स्पर्धक ऐसा कहा गया है, अन्यथा उसके स्वरूपके निरूपणका दूसरा उपाय नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—जितने भी संयमासंयमलब्धिस्थान हैं वे सब तीन प्रकारके हैं। उनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जो मात्र संयमासंयमलब्धिसे गिरते समय ही होते हैं। इनकी प्रतिपात संयमासंयमलब्धिस्थान संज्ञा है। कुछ ऐसे हैं जो संयमासंयमको प्राप्त करते समय प्राप्त होते हैं। इनकी प्रतिपद्यमान संयमासंयमलब्धिस्थान संज्ञा है और बहुत कुछ ऐसे हैं जो या तो संयमासंयममें अवस्थितिके कालमें होते हैं या संयमासंयमसे अप्रमत्तसंयतभावको प्राप्त होनेवालेके होते हैं। इनकी अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान संयमासंयमलब्धिस्थान संज्ञा है। इन्हीं तीनों प्रकारके संयमासंयमलब्धिस्थानोंके अल्पबहुत्वका निरूपण करते हुए यहाँ पर जो सबसे जघन्य संयमासंयम लब्धिस्थान है उसके स्वरूपका निरूपण किया गया है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ८५. इसप्रकार इस सबसे जघन्य लब्धिस्थानके स्वरूपका कथनकर अब इससे

एत्तो छव्विहाए वड्ढीए सेसाणमजहण्णट्ठाणाणमसंखेज्जलोगमेत्ताणं सरूवणिद्देसं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** तदो विदियलद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं ।**

§ ८६. पुव्विल्लजहण्णलद्धिट्ठाणं सव्वजीवरासिमेत्तभागहारेण खंडिय तत्थेयखंडे तम्मि चेव पडिरासीकयम्मि पक्खित्ते विदियं लद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं होदूण समुप्पज्जदि त्ति भणिदं होदि । अथवा जहण्णलद्धिट्ठाणुप्पत्तिणिबंधणकसायुदयट्ठाणादो विदियलद्धिट्ठाणुप्पत्तिणिबंधणं कसायुदयट्ठाणमणंतेहि फद्दएहिं हीणं होइ । एदाणि च हीणफद्दयाणि सयलाणुभागट्ठाणस्स अणंतभागमेत्ताणि, सव्वजीवरासिणा जहण्णट्ठाणम्मि खंडिदे तत्थेयखंडपमाणत्तादो । एवं च अणंतेसु अणुभागफद्दएसु हीणेसु तत्तो समुप्पज्जमाणविदियलद्धिट्ठाणं पि जहण्णलद्धिट्ठाणादो अणंतेहिं फद्दएहिं अब्भहियं होदूण समुप्पज्जदि, हीणाणुभागफद्दएहिंतो समुप्पज्जमाणकज्जस्स वि उवयारेण तव्ववएसाविरोहादो । एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ जोजेयव्वो । तदो सिद्धं जहण्णलद्धिट्ठाणादो विदियं लद्धिट्ठाणमणंतरपरूविदेण पडिभागेणाणंतभागुत्तरमिदि ।

आगे छह प्रकारकी वृद्धिसे युक्त असंख्यात लोकप्रमाण शेष अजघन्य स्थानोंके स्वरूपका निर्देश करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** उससे दूसरा लब्धिस्थान अनन्तवाँ भाग अधिक है ।**

§ ८६. पिछले जघन्य लब्धिस्थानको सब जीवराशिप्रमाण भागहारसे भाजित कर वहाँ प्राप्त एक भागको प्रतिराशिकृत उसी जघन्य लब्धिस्थानमें मिलानेपर उससे अनन्तवाँ भाग अधिक होकर दूसरा लब्धिस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा जघन्य लब्धिस्थानकी उत्पत्तिका कारणभूत जो कषाय-उदयस्थान है उससे दूसरे लब्धिस्थानकी उत्पत्तिका कारणभूत कषाय-उदयस्थान अनन्त स्पर्धकोंसे हीन होता है । और ये हीन स्पर्धक समस्त अनुभागस्थानके अनन्तवें भागप्रमाण हैं, क्योंकि जघन्य स्थानको समस्त जीवराशिसे भाजित करनेपर वहाँ वे हीन स्पर्धक एक खण्डप्रमाण प्राप्त होते हैं । इसप्रकार अनन्त अनुभागस्पर्धकोंके हीन होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला दूसरा लब्धिस्थान भी जघन्य लब्धिस्थानसे अनन्त स्पर्धक अधिक होकर उत्पन्न होता है, क्योंकि हीन अनुभागस्पर्धकोंसे उत्पन्न होनेवाले कार्यकी भी उपचारसे उक्त संज्ञाके होनेमें विरोधका अभाव है । यह अर्थ आगे सर्वत्र लगा लेना चाहिए । इसलिये सिद्ध हुआ कि जघन्य लब्धिस्थानसे दूसरा लब्धिस्थान अनन्तर पूर्व कहे गये प्रतिभागके अनुसार अनन्तवाँ भाग अधिक है ।

विशेषार्थ—पहले जघन्य लब्धिस्थानको अनन्त अविभागप्रतिच्छेदस्वरूप बतला आये हैं । इन अविभागप्रतिच्छेदोंमें सर्व जीवराशिप्रमाण अनन्तका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना उस जघन्य लब्धिस्थानमें जोड़नेपर दूसरा लब्धिस्थान प्राप्त होता है । इसका आशय यह है कि सबसे जघन्य संयमासंयमलब्धिस्थानमें जितनी विशुद्धि पाई जाती है उससे इस दूसरे लब्धिस्थानमें उक्त प्रमाणमें विशुद्धि वृद्धिंगत हो जाती है ।

*** एवं छट्ठाणपदिदलद्धिट्ठाणाणि ।**

§ ८७. एवमेदेण कमेण छट्ठाणपदिदाणि लद्धिट्ठाणाणि परूवेयव्वाणि त्ति भणिदं होइ । तं जहा—जहण्णलद्धिट्ठाणादो अणंतभागवड्ढिकंडयमंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तं गंतूणासंखेज्जभागवड्ढिट्ठाणं होइ । तदो असंखेज्जभागवड्ढिकंडयं[1] गंतूण संखेज्जभागवड्ढी होइ । तदो संखेज्जभागवड्ढिकंडयं गंतूण संखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जदि इच्चादि णेयव्वं जाव पढममणंतगुणवड्ढिट्ठाणं समुप्पण्णं त्ति । ताधे कसायुदयट्ठाणमणंतगुणहीणं होइ, अणंतगुणहीणकसायुदयट्ठाणेण विणा अणंतगुणसंजमासंजमलद्धिट्ठाणाणुप्पत्तीदो । एदमेगं छट्ठाणं । एवंविहाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि पडिवादट्ठाणाणि । पडिवादट्ठाणपडिबद्धाणि उल्लंघियूण तदो पडिवज्जमाणपाओग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि पुव्विल्लेहिंतो असंखेज्जगुणट्ठाणपडिबद्धाणि । तत्तो वि असंखेज्जगुणाणि अपडिवादअपडिवज्जमाणपाओग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि णेदव्वाणि जाव से काले संजमग्गहणयस्स सव्वुक्कस्सविसोहिट्ठाणं पज्जवसाणं कादूण

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

दूसरे शब्दोंमें इसीको यों भी कहा जा सकता है कि सबसे जघन्य लब्धिस्थानमें जितने स्पर्धकोंसे युक्त कषाय-उदयस्थान पाया जाता है उनके अनन्तवें भागहीन स्पर्धकोंसे युक्त कषाय-उदयस्थान दूसरे लब्धिस्थानमें होता है, क्योंकि जैसे-जैसे संयमासंयमलब्धिस्थानकी विशुद्धिमें वृद्धि होती है वैसे-वैसे कषाय-उदयस्थानमें स्पर्धकोंकी अपेक्षा हानि होती जाती है । यहाँ यद्यपि जघन्य लब्धिस्थानसे दूसरे लब्धिस्थानमें अनुभागस्पर्धकोंकी हानि हुई है, फिर भी इस दूसरे स्थानमें प्रथम स्थानसे जो लब्धिस्थानसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद अधिक पाये जाते हैं उनमें स्पर्धकोंका आरोप करके उपचारसे जघन्य स्थानसम्बन्धी स्पर्धकोंसे द्वितीय स्थानसम्बन्धी स्पर्धक अनन्तवें भाग अधिक कहे हैं ।

*** इसप्रकार षट्स्थानपतित लब्धिस्थान होते हैं ।**

§ ८७. इसप्रकार इस क्रमसे षट्स्थानपतित लब्धिस्थानोंका कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यथा—जघन्य लब्धिस्थानसे अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अनन्तभागवृद्धिकाण्डक जाकर असंख्यातभागवृद्धिस्थान होता है । तत्पश्चात् असंख्यातभागवृद्धिकाण्डक जाकर संख्यातभागवृद्धि स्थान होता है । तत्पश्चात् संख्यातभागवृद्धिकाण्डक जाकर संख्यातगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है इत्यादि रूपसे प्रथम अनन्तगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होने तक ले जाना चाहिए । तब कषाय उदयस्थान अनन्तगुणा हीन होता है, क्योंकि अनन्तगुणहीन कषाय-उदयस्थानके बिना अनन्तगुणस्वरूप संयमासंयम लब्धिस्थानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यह एक षट्स्थान है । इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान प्रतिपातस्थान हैं । प्रतिपातस्थानोंसे सम्बद्ध लब्धिस्थानोंका उल्लंघन कर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतित प्रतिपद्यमानस्थान हैं जो कि पिछले स्थानोंसे असंख्यातगुणे स्थानस्वरूप हैं, उनसे भी असंख्यातगुणे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंके योग्य असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतितस्थान जानने चाहिए जो तदनन्तर समयमें संयमको ग्रहण करनेवाले जीवके

१. ता०प्रतौ प्रायःसर्वत्र 'कंडय स्थाने' 'खंडय' पाठ उपलभ्यते ।

पयदलद्धिट्ठाणाणि समत्ताणि त्ति । एवं परूवणा गया । संपहि एदेसिं चेव पमाणाव-हारणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* असंखेज्जा लोगा ।

§ ८८. एदाणि सव्वाणि छट्ठाणपदिदसंजमासंजमलद्धिट्ठाणाणि पडिवादादि-भेदेण तिहाविहत्ताणि असंखेज्जलोगमेत्तपमाणाणि होंति त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थ-समुच्चओ । संपहि एवं परूविदेसु असंखेज्जलोगमेत्तसंजमासंजमलद्धिट्ठाणेसु आदीदो प्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्ताणि लद्धिट्ठाणाणि एयंतपडिवादपाओग्गाणि चेव होंति, ण तत्थ संजमासंजमं पडिवज्जदि त्ति जाणावेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* जहण्णाए लद्धिट्ठाणे संजमासंजमं ण पडिवज्जदि ।

§ ८९. कुदो ? मिच्छत्ताहिमुहसव्वुक्कस्ससंकिलिट्ठसंजदासंजदचरिमसमयविसय-स्सेदस्स एयंतपडिवादपाओग्गस्स पडिवज्जमाणट्ठाणत्तेण सव्वहा संबंधाभावादो । ण केवलमेदम्मि चेव जहण्णलद्धिट्ठाणम्मि संजमासंजमं ण पडिवज्जइ, किंतु एत्तो[1] उवरि असंखेज्जलोगमेत्तलद्धिट्ठाणेसु वि संजमासंजमं ण पडिवज्जदे चेव, तेसिं पि पडिवादट्ठाणत्तं पडि विसेसाभावादो त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिस्थानको अन्त कर प्रकृत लब्धिस्थानोंके समाप्त होने तक पाये जाते हैं । इस प्रकार प्ररूपणा समाप्त हुई । अब इन्हींके प्रमाणका निश्चय करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

* जो असंख्यात लोकप्रमाण हैं ।

§ ८८. प्रतिपात आदिके भेदसे तीन प्रकारके ये सब षट्स्थानपतित संयमासंयम-लब्धिस्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं यह यहाँ सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है । अब इस प्रकार कहे गये असंख्यात लोकप्रमाण संयमासंयमलब्धिस्थानोंमें प्रारम्भसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण लब्धिस्थान एकान्तसे प्रतिपातके योग्य ही हैं, उन स्थानोंमें यह संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता इस प्रकार ज्ञान कराते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* जघन्य लब्धिस्थानमें यह जीव संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता ।

§ ८९. क्योंकि मिथ्यात्वके अभिमुख हुए सर्वोत्कृष्ट संक्लेश परिणामवाले संयतासंयत जीवके अन्तिम समयमें एकान्तसे प्रतिपातके योग्य लब्धिस्थान होता है, इसलिए इसका प्रतिपद्यमान लब्धिस्थानके साथ सर्वथा सम्बन्धका अभाव है । केवल इसी जघन्य लब्धि-स्थानमें यह जीव संयमासंयमको नहीं प्राप्त होता है ऐसा नहीं है, किन्तु इससे ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण लब्धिस्थानोंमें भी यह जीव संयमासंयमको नहीं ही प्राप्त होता, क्योंकि प्रतिपातस्थानपनेकी अपेक्षा इससे उनमें कोई भेद नहीं है इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

---

१. ता०प्रतौ तत्तो इति पाठः ।

*** तदो असंखेज्जे लोगे अइच्छिदूण जहण्णयं पडिवज्जमाणस्स पाओग्गं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ९०. तदो पुव्वुत्तजहण्णट्ठाणादो प्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तपमाणाणि एयंतपडिवादपाओग्गलद्धिट्ठाणाणि समुल्लंघियूण एत्थुद्देसे सव्वुक्कस्सपडिवादट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तमंतरिदूण तत्तो अणंतगुणवड्ढीए पडिवज्जमाणगस्स पाओग्गं जहण्णयं लद्धिट्ठाणं होइ । एत्तो हेट्ठिमासेसलद्धिट्ठाणेसु पडिवादं मोत्तूण संजमासंजमपडिवत्तीए अच्चंताभावेण पडिसिद्धत्तादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । संपहि एदस्सेव सुत्तसूचिदत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमअप्पाबहुअसाहणभूदमेत्थ किंचि अत्थपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ९१. सव्वजहण्णलद्धिट्ठाणादो पहुडि उवरि असंखेज्जलोगमेत्ताणि पडिवादट्ठाणाणि मणुसपाओग्गाणि चेव होदूण गच्छंति जाव तप्पाओग्गासंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघियूण तिरिक्खजोणियस्स जहण्णयं पडिवादट्ठाणमुप्पण्णं ति । तदो प्पहुडि तिरिक्ख-मणुस्सजोणियाणं साहारणभावेण असंखेज्जलोगमेत्तपडिवादट्ठाणेसु गच्छमाणेसु तिरिक्खस्स उक्कस्सयं पडिवादट्ठाणं तत्थुद्देसे परिहायदि । तदो पुणो वि असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणमुवरि गंतूण मणुस्सजोणियस्स उक्कस्सयं पडिवादट्ठाणमेत्थुद्देसे थक्कदि । तत्तो परमसंखेज्जलोगमेत्तमंतरं होदूण पुणो मणुससंजदा-

---

*** उससे असंख्यात लोकप्रमाण लब्धिस्थानोंको उल्लंघन कर अनन्तगुणी वृद्धिस्वरूप प्रतिपद्यमान स्थानके योग्य जघन्य लब्धिस्थान होता है ।**

§ ९०. 'तदो' अर्थात् पूर्वोक्त जघन्य स्थानसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण एकान्तसे प्रतिपातके योग्य लब्धिस्थानोंको उल्लंघन कर यहाँ सर्वोत्कृष्ट प्रतिपातस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर देकर उससे अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए प्रतिपद्यमानस्थानके योग्य जघन्य लब्धिस्थान होता है । इससे नीचेके समस्त लब्धिस्थानोंमें प्रतिपातको छोड़कर उनमें संयमासंयमकी प्राप्तिका अत्यन्ताभाव होनेसे उनमें उसकी प्राप्तिका निषेध किया है यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब इस सूत्रसे सूचित इसी अर्थका स्पष्टीकरण करनेके लिये आगेके अल्पबहुत्वके साधनभूत किंचित् अर्थकी यहाँ प्ररूपणा करेंगे । यथा—

§ ९१. सबसे जघन्य लब्धिस्थानसे लेकर ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिपातस्थान मनुष्योंके योग्य ही होकर तबतक जाते हैं जब जाकर तत्प्रायोग्य असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर तिर्यञ्चयोनि जीवका जघन्य प्रतिपातस्थान उत्पन्न हुआ है । पुनः वहाँसे लेकर तिर्यञ्चयोनि और मनुष्य दोनोंके साधारणरूपसे पाये जानेवाले असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिपातस्थानोंके जाने पर उस स्थान पर तिर्यञ्चके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थानकी व्युच्छित्ति हो जाती है । तत्पश्चात् फिर भी असंख्यात लोकप्रमाण स्थान ऊपर जाकर इस स्थानपर मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान विच्छिन्न होता है । इसके बाद असंख्यात लोक-

संजदस्स जहण्णयं पडिवज्जमाणट्ठाणं होदि। तत्तो परमसंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणं गंतूण तिरिक्खसंजदासंजदस्स जहण्णयं पडिवज्जमाणट्ठाणं होइ। तत्तो प्पहुडि दोण्हं पि साहारणभावेण असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणमुवरि गंतूण तम्मि उद्देसे तिरिक्ख-संजदासंजदस्स उक्कस्सयं पडिवज्जमाणट्ठाणं परिहायदि। तत्तो उवरि वि असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणं गंतूण मणुस्सस्स उक्कस्सयं पडिवज्जमाणं थक्कदि। तत्तो परमसंखेज्जलोगमेत्तमंतरं होदूण पुणो मणुससंजदासंजदस्स जहण्णयमप्पडिवादा-पडिवज्जमाणट्ठाणाणि होंति। तदो असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणमुवरि गंतूण तिरिक्ख-संजदासंजदस्स अपडिवादअपडिवज्जमाणजहण्णट्ठाणं होइ। तदो दोण्हं पि साहारण-भूदाणि असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणाणि उवरि गंतूण तिरिक्खसंजदासंजदस्स उक्कस्स-अपडिवादअपडिवज्जमाणट्ठाणमुल्लंघियूण तत्तो पुणो वि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उवरि गंतूण मणुससंजदासंजदस्स उक्कस्सयं अपडिवादअपडिवज्जमाणट्ठाणं समुप्प-ज्जइ। एत्थ पडिवादट्ठाणाणि तिरिक्खमणुससंजदासंजदाणं हेट्ठिमगुणट्ठाणाणि पडिवज्जमाणाणं चरिमसमए घेत्तव्वाणि। पडिवज्जमाणट्ठाणाणि तिरिक्ख-मणुस्साणं संजमासंजमग्गहणपढमसमए दट्ठव्वाणि। पुणो पढमसमयं चरिमसमयं च मोत्तूण सेसासेसमज्झिमावत्थाए पाओग्गाणि ट्ठाणाणि सत्थाणपडिबद्धाणि उवरिमगुण-ट्ठाणाहिमुहाणि च अपडिवादअपडिवज्जमाणट्ठाणाणि णाम वुच्चंति। संपहि एदेसिं तिविहाणं पि लद्धिट्ठाणाणं सुहावबोहणट्ठमेसा संदिट्ठी—

प्रमाण अन्तर होकर पुनः मनुष्य संयतासंयतका जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान होता है। तत्पश्चात् असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर तिर्यञ्च संयतासंयतका जघन्य प्रतिपद्यमान स्थान होता है। वहाँसे लेकर दोनोंके ही समानरूपसे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान ऊपर जाकर वहाँ तिर्यञ्च संयतासंयतके उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान स्थानकी व्युच्छित्ति हो जाती है। उससे ऊपर भी असंख्यात लोकप्रमाण स्थान जाकर मनुष्यका उत्कृष्ट प्रतिपद्यमानस्थान विच्छिन्न हो जाता है। तत्पश्चात् असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर होकर पुनः मनुष्य संयतासंयतके जघन्य अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान होते हैं। उसके बाद असंख्यात लोकप्रमाण स्थान ऊपर जाकर तिर्यञ्च संयतासंयतके अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान होता है। तत्पश्चात् दोनोंके ही साधारण असंख्यात लोकप्रमाण स्थान ऊपर जाकर तिर्यञ्चसंयतासंयतके उत्कृष्ट अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानको उल्लंघन कर तत्पश्चात् फिर भी असंख्यात लोक-प्रमाण षट्स्थान ऊपर जाकर मनुष्यसंयतासंयतका उत्कृष्ट अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थान उत्पन्न होता है। यहाँ पर प्रतिपातस्थान अधस्तन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाले तिर्यञ्च और मनुष्योंके अन्तिम समयके लेने चाहिए। प्रतिपद्यमानस्थान तिर्यञ्च और मनुष्योंके संयमा-संयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयके जानने चाहिए, पुनः प्रथम समय और अन्तिम समय-को छोड़कर, शेष समस्त मध्यम अवस्थाके योग्य स्वस्थानसम्बन्धी और उपरिम गुणस्थानके अभिमुख हुए स्थान अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थान कहलाते हैं। अब इन तीनों प्रकारके लब्धिस्थानोंका सुखपूर्वक ज्ञान करानेके लिये यह संदृष्टि है—

○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○ एदाणि तिरिक्ख-मणुससंजदासंजदाणं पडिवादट्ठाणाणि णादव्वाणि भवंति । अंतरं । ○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○○ एदाणि तेसिं चेव पडिवज्जमाणट्ठाणाणि त्ति गहेयव्वाणि । अंतरं । ○○ एदाणि चेव तेसिं चेव अपडिवादअपडिवज्जमाणट्ठाणाणि त्ति घेत्तव्वाणि ।

§ ९२. एत्थ पडिवादट्ठाणद्धाणं थोवं । पडिवज्जमाणट्ठाणद्धाणमसंखेज्जगुणं । अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणद्धाणमसंखेज्जगुणं । गुणगारो पुण असंखेज्जा लोगा । एवमेदीए परूवणाए जणिदसंसकाराणं सिस्साणमेण्हिमप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तपबंधो—

*** तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअं ।**

९३. एदेसिं लद्धिट्ठाणाणं तिरिक्खमणुसजाइपडिबद्धाणमण्णोण्णं पेक्खियूण विसोहीए हीणाहियभावो तिव्व-मंददा त्ति भण्णदे । तिस्से तिव्वमंददाए जाणावणट्ठमप्पाबहुअमेसो कस्सामो त्ति भणिदं होइ ।

*** सव्वमंदाणुभागं जहण्णगं संजमासंजमस्स लद्धिट्ठाणं ।**

§ ९४. सव्वेहिंतो मंदाणुभागं सव्वमंदाणुभागं सव्वजहण्णसत्तिसमण्णिदमिदि वुत्तं होइ । किं तं ? जहण्णयं संजमासंजमलद्धिट्ठाणं । कुदो ? संजदासंजदस्स सव्व-

---

संदृष्टि मूलमें दी है ।

§ ९२. यहाँ पर प्रतिपातलब्धिस्थानोंका अध्वान (आयाम) थोड़ा है । उससे प्रतिपद्यमानलब्धिस्थानोंका अध्वान असंख्यातगुणा है । उससे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानलब्धिस्थानोंका अध्वान असंख्यातगुणा है । गुणकार सर्वत्र असंख्यात लोकप्रमाण है । इस प्रकार इस प्ररूपणाद्वारा जिनके संस्कार उत्पन्न हुए हैं उन शिष्योंके लिये इस समय अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

*** अब तीव्र-मन्दताके अल्पबहुत्वका अधिकार है ।**

§ ९३. तिर्यंच और मनुष्यजातिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन लब्धिस्थानोंको परस्पर देखते हुए विशुद्धिके हीनाधिकपनेको तीव्र-मन्दता कहते हैं । उस तीव्र-मन्दताका ज्ञान करानेके लिये आगे अल्पबहुत्व करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

संयमासंयमका जघन्य लब्धिस्थान सबसे मन्द अनुभागवाला है ।

§ ९४. (सबसे मन्द अनुभागका नाम सर्वमन्दानुभाग है ।) सबसे जघन्य शक्तिसे युक्त यह है उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—वह क्या है ?

समाधान—संयमासंयमका जघन्य लब्धिस्थान, क्योंकि मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले

संकिलिट्ठस्स मिच्छत्तं गच्छमाणस्स चरिमसमये समुवलद्धसरूवत्तादो ।

*** मणुसस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव ।**

§ ९५. सुगममेदं, ओघजहण्णलद्धिट्ठाणादो मणुससंजदासंजदजहण्णपडिवादट्ठाणस्स भेदाभावमस्सियूण पयट्टत्तादो ।

*** तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ९६. कुदो ? पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणेदस्स समुप्पत्तिदंसणादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ९७. एदं तप्पाओग्गसंकिलेसेणासंजमं गच्छमाणस्स चरिमसमए घेत्तव्वं, वेदगसम्मत्ताणुविद्धमसंजमं गच्छमाणस्स होइ त्ति भावत्थो । णेदस्स पुव्विल्लादो अणंतगुणत्तमसिद्धं, तत्तो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघियूण समुप्पण्णस्सेदस्स अणंतगुणत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो ।

*** मणुससंजदासंजदस्स पडिवदमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

सबसे अधिक संक्लेश परिणामवाले संयतासंयतके अन्तिम समयमें उसकी उपलब्धि होती है ।

*** गिरनेवाले मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान उतना ही है ।**

§ ९५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि ओघ जघन्य लब्धिस्थानसे मनुष्य संयतासंयतके जघन्य प्रतिपातस्थानमें भेदपनेका आश्रय कर यह सूत्र प्रवृत्त हुआ है ।

*** उससे गिरनेवाले तिर्यंचयोनि जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ९६. क्योंकि पूर्वके लब्धिस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान ऊपर जाकर इसकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे गिरनेवाले तिर्यंचयोनि जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ९७. तत्प्रायोग्य संक्लेशसे असंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अन्तिम समय इसे ग्रहण करना चाहिये । वेदकसम्यक्त्वसे युक्त असंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके यह होता है यह उक्त कथनका भावार्थ है । पहलेके लब्धिस्थानसे इसका अनन्तगुणापना असिद्ध नहीं है, क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर उत्पन्न हुए इसकी अनन्तगुणपनेकी सिद्धि बिना किसी बाधाके पाई जाती है ।

*** उससे गिरनेवाले मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ९८. एदं पि तप्पाओग्गजहण्णसंकिलेसेण सासंजमसम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स चरिमसमये चेव लद्धप्पलाहं। णवरि जादिविसेसवसेण तिरिक्खपडिवादपाओग्गुक्कस्सविसोहीदो मणुससंजदासंजदस्स पडिवादपाओग्गुक्कस्सविसोही अणंतगुणा जादा, पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि चढिदूणेदिस्से समुप्पत्तिदंसणादो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

§ ९९. मणुसमिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गविसोहीए संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स पढमसमए एदं घेत्तव्वं। ण चेदस्स पुव्विल्लादो अणंतगुणत्तमसिद्धं, तत्तो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरिदूणेदस्स समुप्पत्तीए अणंतरमेव णिदरिसिणत्तादो।

* तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

§ १००. एदं पि मिच्छादिट्ठिस्स तप्पाओग्गविसोहीए संजमासंजमं पडिवज्जमाणस्स पढमसमये चेव लद्धप्पसरूवं। किंतु जादिविसेसदो पुव्विल्लादो एदमणंतगुणं जादं, मणुसाणं व तिरिक्खजोणियाणं सव्वजहण्णसंकिलेसविसोहीणमसंभवादो, तप्पाओग्गजहण्णाणं चेव ताणं तत्थ संभवोवएसादो।

---

§ ९८ यह भी तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेशसे असंयमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले मनुष्यके अन्तिम समयमें ही आत्मलाभ करता है। इतनी विशेषता है कि जाति विशेषके कारण तिर्यंचोंके प्रतिपातके योग्य उत्कृष्ट विशुद्धिसे मनुष्य संयतासंयतके प्रतिपातके योग्य उत्कृष्ट विशुद्धि अनन्तगुणी हो गई है, क्योंकि पूर्वके लब्धिस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान ऊपर चढ़ कर इसकी उत्पत्ति देखी जाती है।

* उससे प्रतिपद्यमान मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।

९९. तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे संयमासंयमको ग्रहण करनेवाले मनुष्य मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयका यह लब्धिस्थान लेना चाहिए। इसका यह पूर्वके लब्धिस्थानसे अनन्तगुणा होना असिद्ध नहीं है, क्योंकि उससे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंके अन्तरालसे इसकी उत्पत्ति होती है यह इससे पूर्व ही बतला आये हैं।

* उससे प्रतिपद्यमान तिर्यञ्चयोनि जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।

§ १००. यह भी तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्चके प्रथम समयमें स्वरूपलाभ करता है। किन्तु जातिविशेषके कारण पूर्वके लब्धिस्थानसे यह अनन्तगुणा हो गया है, क्योंकि जिस प्रकार मनुष्योंके सबसे जघन्य संक्लेश और विशुद्धि होती है उस प्रकार तिर्यञ्चयोनि जीवके सबसे जघन्य संक्लेश और विशुद्धिका होना असम्भव है तथा तत्प्रायोग्य जघन्योंका ही उन दोनोंके वहाँ होनेका उपदेश पाया जाता है।

*** तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।**

§ १०१. तं कस्स ? तिरिक्खासंजदसम्माइट्ठिस्स सव्वविसुद्धीए संजमासंजमं गेण्हमाणस्स पढमसमए होइ। सेसं सुगमं।

*** मणुसस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।**

§ १०२. तं कस्स ? मणुस्सासंजदसम्माइट्ठिस्स सव्वविसुद्धस्स संजमासंजमं गेण्हमाणस्स पढमसमए होदि। सुगममण्णं।

***मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।**

§ १०३. तं कस्स ? मिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स संजमासंजमं पडिवण्णस्स विदियसमए होइ। सेसं सुगमं।

***तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।**

*** उससे प्रतिपद्यमान तिर्यञ्चयोनि जीवका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।**

§ १०१. **शंका**—वह किसके होता है ?

समाधान—तिर्यञ्च असंयत सम्यग्दृष्टिके सर्व विशुद्धिसे संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें होता है। शेष कथन सुगम है।

*** उससे प्रतिपद्यमान मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।**

§ १०२. **शंका**—वह किसके होता है ?

समाधान—सर्व विशुद्ध मनुष्य असंयत सम्यग्दृष्टिके संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें होता है। अन्य कथन सुगम है।

*** उससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।**

§ १०३. **शंका**—वह किसके होता है ?

समाधान—मिथ्यात्वसे संयमासंयमको प्राप्त हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध मनुष्यके दूसरे समयमें होता है। शेष कथन सुगम है।

*** उससे अप्रतिपद्यमान-अप्रतिपतमान तिर्यञ्चयोनि जीवका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है।**

§ १०४. तं कस्स ? तिरिक्खमिच्छाइट्ठिस्स तप्पाओग्गविसुद्धीए संजमासंजमं पडिवण्णस्स विदियसमये भवदि । जादिविसेसदो च पुव्विल्लादो अणंतगुणं जादं ।

*** तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ १०५. तं कस्स ? सत्थाणे चेव सव्वविसुद्धस्स भवदि । सेसं सुगमं ।

*** मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाण-मणंतगुणं ।**

§ १०६. तं कस्स ? संजमाहिमुहसव्वविसुद्धस्स चरिमसमए होइ । एवमप्पाबहुए समत्ते लद्धिट्ठाणपरूवणा समत्ता भवदि । संपहि संजमासंजमलद्धीए ओदयियादिभावेसु कदमो भावो होइ त्ति सिस्साहिप्पायमासंकिय तण्णिण्णयकरणट्ठ-मुत्तरं सुत्तपबंधमाह—

*** संजदासंजदो अपच्चक्खाणकसाए ण वेदयदि ।**

§ १०४. शंका—वह किसके होता है ?

समाधान—तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टिके तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे संयमासंयमको प्राप्त होनेके दूसरे समयमें होता है और वह जातिविशेषके कारण पूर्वके लब्धिस्थानसे अनन्तगुणा हो गया है ।

*** उससे अप्रतिपद्यमान–अप्रतिपतमान तिर्यञ्चयोनि जीवका उत्कृष्ट लब्धि-स्थान अनन्तगुणा है ।**

§ १०५. शंका—वह किसके होता है ?

समाधान—सर्वविशुद्ध तिर्यञ्चके स्वस्थानमें ही होता है । शेष कथन सुगम है ।

*** उससे अप्रतिपद्यमान–अप्रतिपतमान मनुष्यका उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्त-गुणा है ।**

§ १०६. शंका—वह किसके होता है ?

समाधान—संयमके अभिमुख हुए सर्वविशुद्ध मनुष्यके अन्तिम समयमें होता है ।

इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर लब्धिस्थानप्ररूपणा समाप्त होती है । अब औदयिक आदि भावोंमेंसे संयमासंयमलब्धिसम्बन्धी कौनसा भाव है इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायको आशंकारूपमें स्वीकार कर उसका निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** संयतासंयत जीव अप्रत्याख्यान कषायको नहीं वेदता ।**

§ १०७. कुदो ? तत्थ तेसिमुदयसत्तीए अच्चंतपरिक्खयादो। णोदइया संजमासंजमलद्धि त्ति सिद्धं, सगावरणकम्माणमुदयक्खएणुप्पण्णाए तिस्से तव्ववएसविरोहादो।

*** पच्चक्खाणावरणीया वि संजमासंजमस्स ण किंचि आवरेंति।**

§ १०८. जे च वेदिज्जंता पच्चक्खाणावरणीयकसाया ते वि संजमासंजमस्स ण किंचि उवघादं करेंति त्ति वुत्तं होइ, सयलसंजमपडिबंधीणं तेसिं देससंजमलद्धीए वावाराणब्भुवगमादो। तदो ण तण्णिबंधणो वि एदिस्से ओदइयववएसपडिलंभो त्ति सिद्धं।

*** सेसा चदुकसाया णवणोकसायवेदणीयाणि च उदिण्णाणि देसघादिं करेंति[1] संजमासंजमं।**

§ १०९. एत्थ सेसचदुकसायग्गहणेण चदुसंजलणपयडीणं गहणं कायव्वं। अणंताणुबंधीणमिह ग्गहणं किण्ण पावदि त्ति चे ? ण, तेसिं हेट्ठा चेव विणट्ठोदयभावाणमेदम्मि विचारे अणहियारादो। तदो एत्थ विज्जमाणोदयाणि चदुकसायणवणोकसायवेदणीयाणि कम्माणि घेत्तूण संजमासंजमलद्धीए खओवसमियत्तमित्थं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १०७. क्योंकि वहाँ उनकी उदयशक्तिका अत्यन्त क्षय पाया जाता है। इसलिये संयमासंयमलब्धि औदयिक नहीं है यह सिद्ध हुआ, क्योंकि अपना आवरण करनेवाले कर्मोंके उदयक्षयसे उत्पन्न हुए उसको औदयिक संज्ञा स्वीकार करनेमें विरोध है।

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय भी संयमासंयमका कुछ आवरण नहीं करते।

§ १०८. और जो वहाँ वेदे जानेवाले प्रत्याख्यानावरणीय कषाय हैं वे भी संयमासंयमका कुछ उपघात नहीं करते यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि सकलसंयमका प्रतिबन्ध करनेवाले उनका देशसंयमलब्धिमें व्यापार नहीं स्वीकार किया गया है, इसलिए उनके निमित्तसे भी इसकी औदयिक संज्ञाकी प्राप्ति नहीं है यह सिद्ध हुआ।

शेष चार कषाय और नौ नोकषायवेदनीय उदीर्ण होकर संयमासंयमको देशघाति करते हैं।

§ १०९. यहाँपर शेष चार कषायोंके ग्रहण करनेसे चार संज्वलन प्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिए।

शंका—यहाँ अनन्तानुबन्धियोंका ग्रहण क्यों प्राप्त नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पहले ही उनके उदयका विनाश हो गया है, इसलिये इस विचारमें उनका अधिकार नहीं है।

इसलिये यहाँपर जिनका उदय विद्यमान है ऐसे चार कषाय और नौ नोकषायवेदनीय

१. ता०प्रतौ करेदि इति पाठः।

समत्थेयव्वं। तं जहा—ताणि तेरस कम्माणि देसघादिसरूवेणुदिण्णाणि संजमा-
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
संजमगुणं देसघादिं करेंति, खओवसमियं करेंति त्ति वुत्तं होदि। कुदो? देसघादि-उदयजणिदक्खओवसमलद्धीए वि कज्जे कारणोवयारवसेण देसघादिववएसकरणादो। कुदो पुण तेसिमेत्थ देसघादिउदयणियमो चे? ण, संजमासंजमगुणुप्पत्तिअण्णहाणुववत्तीए तेसिमेत्थ देसघादिउदयणियमसिद्धीदो। तदो चदुसंजलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयोदयक्खएण तेसिं चेव देसघादिफद्दयोदयेण लद्धप्पसरूवत्तादो संजमासंजमलद्धी खओवसमिया त्ति सिद्धं।

※ जइ पच्चक्खाणावरणीयं वेदेंतो सेसाणि चरित्तमोहणीयाणि ण वेदेज्ज तदो संजमासंजमलद्धी खइया होज्ज?

§ ११०. एवं भणंतस्साहिप्पायो—अपच्चक्खाणावरणीयचउक्कस्स ताव णत्थि एत्थ उदयो त्ति वत्तव्वं। पच्चक्खाणावरणीयाणि वि वेदिज्जमाणाणि संजमासंजमस्स ण किंचि उवघादमणुग्गहं वा करेंति त्ति। तदो पच्चक्खाणावरणीयचउक्कमेसो वेदेंतो सेसाणि चरित्तमोहणीयाणि चदुसंजलण-णवणोकसायसण्णिदाणि जइ किह

कर्मोंको ग्रहण कर संयमासंयमलब्धिके क्षयोपशमपनेका इसप्रकार समर्थन करना चाहिए। यथा—वे तेरह कर्म देशघातिस्वरूपसे उदीर्ण होकर संयमासंयमगुणको देशघाति करते हैं—क्षायोपशमिक करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि देशघातिस्वरूप उदयसे उत्पन्न हुई क्षयोपशमलब्धिको भी कार्यमें कारणके उपचारवश देशघाति संज्ञा की है।

शंका—परन्तु उनका यहाँ देशघाति उदय है यह नियम कैसे बनता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि संयमासंयमगुणकी अन्यथा उत्पत्ति नहीं बनती, इसलिए यहाँ उनके देशघातिरूप उदयका नियम सिद्ध होता है।

इसलिये चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके सर्वघाति स्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे और उन्हींके देशघाति स्पर्धकोंका उदय होनेसे संयमासंयमलब्धि अपने स्वरूपको प्राप्त करती है, इसलिए वह क्षायोपशमिक है यह सिद्ध हुआ।

※ यदि प्रत्याख्यानावरणीयका वेदन करता हुआ शेष चारित्रमोहनीयोंका वेदन न करे तब संयमासंयमलब्धि क्षायिक हो जाय।

§ ११०. ऐसा कहनेवाले आचार्यका अभिप्राय है कि अप्रत्याख्यानावरणीयचतुष्कका तो यहाँपर उदय नहीं है ऐसा कहना चाहिए। वेदनमें आते हुए प्रत्याख्यानावरणीय भी संयमासंयमका उपघात या अनुग्रह नहीं करते, इसलिये यह प्रत्याख्यानावरणीयचतुष्कका वेदन करता हुआ शेष चारित्रमोहसम्बन्धी चार संज्वलन और नौ नोकषायोंको यदि कुछ

---

१. ता०प्रतौ खओवसामियं इति पाठः।

वि ण वेदेज्ज तो संजमासंजमलद्धी खइया चेव होज्ज, खइयसमाणा एयवियप्पा चेव हवेज्ज चारित्तपडिबंधीणं कम्माणमेत्थ संताणं पि णिक्कारणत्तदंसणादो त्ति। ण पुणो एस संभवो, चदुसंजलण-णवणोकसायाणं देसघादिसरूवेणुदयपरिणामस्स तत्थवस्संभावित्तादो। तदो खओवसमिया चेव संजमासंजमलद्धी असंखेज्जलोयभेय-भिण्णा एत्थ पडिवज्जेयव्वा त्ति सिद्धं। एत्थ उवसंहरेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

* एक्केण वि उदिण्णेण खओवसमलद्धी भवदि।

§ १११. चदुसंजलण-णवणोकसायाणमण्णदरेण वि कम्मेणुदिण्णेण खओव-समियलद्धी चेव एसा होइ, किं पुण तेसिं सव्वेसिमेवेत्थुदयसंभवे खओवसमिया ण होज्ज? णिच्छएण खओवसमिया चेव संजमासंजमलद्धी होदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो।

लद्धी च संजमासंजमस्से त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

●

भी वेदन न करे तो संयमासंयमलब्धि क्षायिक ही हो जाय, क्षायिकभावके समान एक विकल्पवाली ही हो जाय, क्योंकि चारित्रका प्रतिबन्ध करनेवाले कर्मोंके यहाँपर रहते हुए भी ऐसी अवस्थामें उनका निष्कारणपना देखा जाता है। परन्तु यह सम्भव नहीं है, क्योंकि चार संज्वलन और नौ नोकषयोंका देशघातिरूपसे उदयपरिणाम वहाँ अवश्यंभावी है। अतएव क्षायोपशमिक ही संयमासंयमलब्धि असंख्यात लोकप्रमाण भेदवाली यहाँपर जाननी चाहिए यह सिद्ध हुआ। अब यहाँपर उपसंहार करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* अतः एकका भी उदय होनेसे क्षयोपशमलब्धि होती है।

§ १११. चार संज्वलन और नौ नोकषायोंमेंसे एक भी कर्मके उदयसे यह क्षायोपशमिक लब्धि ही है, तो क्या उन सबका यहाँ उदय सम्भव होनेपर वह क्षायोपशमिक नहीं होगी, संयमासंयमलब्धि निश्चयसे क्षायोपशमिक ही होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

विशेषार्थ—संयमासंयमलब्धि औदयिक आदि भावोंमेंसे कौनसा भाव है ऐसी आशंका होनेपर उसका समाधान करते हुए यहाँ बतलाया गया है कि अप्रत्याख्यानावरण-चतुष्ककी उदयशक्तिका यहाँपर अत्यन्त विनाश देखा जाता है, अतः इसका उदय न होनेसे तो वह औदयिक है नहीं, यद्यपि प्रत्याख्यानावरणचतुष्कका यहाँपर उदय है पर उदयस्वरूप वे संयमका घात करनेवाली प्रकृतियाँ हैं, उनके उदयसे संयमासंयमगुणका न तो घात ही होता है और न कुछ उपकार ही होता है। तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उदयव्युच्छित्ति नीचेके गुणस्थानोंमें ही हो जाती है। अतएव यहाँपर चार संज्वलन और नौ नोकषायोंके सर्वघातिस्पर्धकोंका उदयक्षय होनेसे तथा उन्हींके देशघातिस्पर्धकोंका उदय होनेसे क्षायोप-शमिक भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार संयमासंयमलब्धिनामक बारहवाँ अर्थाधिकार समाप्त हुआ।

●

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तत्थ

संजमे त्ति तेरसमं अणिओगद्दारं

—:: ❀ ::—

संजमिदसयलकरणे णमंसिउं सव्वसंजदे वोच्छं।
संजमसुद्धिणिमित्तं संजमलद्धि त्ति अणिओगं॥ १॥

*** लद्धी तहा चरित्तस्से त्ति अणिओगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं।**

§ १. लद्धी तहा चरित्तस्से त्ति गाहासुत्तावयवबीजपदे णिलीणं जमणियोगद्दारं कसायपाहुडस्स पण्णारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे तेरसमं खओवसमियसंजमलद्धीए पहाणभावेण पडिबद्धं, अदो चेव संजमलद्धिसण्णिदं तमिदाणिं वत्तइस्सामो। तत्थ पुव्वमेव ताव गमणिज्जमणुगंतव्वं सुत्तं, सुत्तेण विणा तप्परूवणाए सुत्ताणुसारीणं तत्थापवुत्तिप्पसंगादो त्ति। तं पुण सुत्तमेत्थोवजोगी कदममिचासंकाए पुच्छावक्कमाह—

जिन्होंने समस्त करणोंको संयमित कर लिया है ऐसे सर्व संयतोंको नमस्कार कर संयमकी शुद्धिके निमित्त संयमलब्धि अनुयोगद्वारको कहूँगा॥ १॥

*** चारित्रलब्धि अनुयोगद्वारमें पहले गाथासूत्र ज्ञातव्य है।**

§ १. गाथासूत्रके 'लद्धी तहा चरित्तस्स' इस अवयवरूप बीजपदमें कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंके मध्य क्षायोपशामिक संयमलब्धिमें प्रधानरूपसे प्रतिबद्ध जो तेरहवाँ अनुयोगद्वार लीन है और इसीलिए जिसकी संयमलब्धि संज्ञा है उसे इस समय बतलाते हैं। उसमें सर्वप्रथम गाथासूत्र 'गमणिज्ज' जानने योग्य है, क्योंकि सूत्रके बिना उसकी प्ररूपणा करने पर सूत्रानुसारी शिष्योंकी उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। परन्तु यहाँ पर वह कौन सा सूत्र उपयोगी है ऐसी आशंका होने पर पृच्छावाक्यको कहते हैं—

* तं जहा ।

§ २. सुगमं ।

*** जा चेव संजमासंजमे भणिदा गाहा सा चेव एत्थ वि कायव्वा ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३. जा चेव पुव्वं संजमासंजमपरूवणाए वण्णिदा गाहा 'लद्धी च संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स' इच्चादिया सा चेव एत्थ वि परूवेयव्वा । किं कारणं ? तिस्से दोसु वि एदेसु अत्थाहियारेसु पडिबद्धत्तादो । संपहि एदं गाहासुत्तमवलंबणं कादूण पयदाणिओगद्दारं परूवेमाणो तत्थ ताव अधापवत्तकरणे चदुण्हं पट्ठवणगाहाणं विहासणट्ठमिदमाह—

*** चरिमसमय-अधापवत्तकरणे चत्तारि गाहाओ ।**

§ ४. एत्थ दोण्णि करणाणि होंति । तत्थ अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए चत्तारि सुत्तगाहाओ पुव्वं विहासियव्वाओ भवंति, अण्णहा पयदत्थविसयविसेसणिण्णयाणुप्पत्तीदो त्ति भणिदं होइ ।

* तं जहा ।

§ ५. काओ ताओ गाहाओ त्ति पुच्छिदं भवदि ।

*** वह जैसे ।**

§ २. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो गाथा संयमासंयम अनुयोगद्वारमें कही गई है वही यहाँ पर प्ररूपण करने योग्य है ।**

§ ३. पहले संयमासंयमकी प्ररूपणाके समय 'लद्धी च संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स' इत्यादि जो गाथा कह आये हैं उसीकी यहाँ भी प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि वह इन दोनों ही अर्थाधिकारोंमें प्रतिबद्ध है। अब इस गाथासूत्रका अवलम्बन लेकर प्रकृत अनुयोगद्वारका कथन करते हुए वहाँ सर्वप्रथम अधःप्रवृत्तकरणमें चार प्रस्थापना गाथाओंका विशेष व्याख्यान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें चार सूत्रगाथाएँ व्याख्यान करने योग्य हैं ।**

§ ४. यहाँ पर दो करण होते हैं। उनमेंसे अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें पहले चार सूत्रगाथाएँ व्याख्यान करने योग्य हैं, अन्यथा प्रकृत अर्थविषयक विशेष निर्णय नहीं बन सकता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** वे जैसे ।**

§ ५. वे गाथाएँ कौन सी हैं यह इस सूत्र द्वारा पूछा गया है ।

* संजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे० ॥१॥ काणि वा पुव्वबद्धाणि० ॥२॥ के अंसे झीयदे पुव्वं० ॥३॥ किं ट्ठिदियाणि कम्माणि० ॥४॥

§ ६. संपहि एदासिं गाहाणं एत्थ विहासाए कीरमाणाए उवसमसम्मत्तेण सह संजमं पडिवज्जमाणमिच्छाइट्ठिस्स सम्मत्तुप्पत्तीए एदासिं विहासा कया तहा णिरवसेसमेत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो। णवरि मणुससंबंधिणीणमेव बंधोदयोदीरणपयडीणमणुगमो एत्थ कायव्वो, तदण्णत्थ संजमुप्पत्तीए संभवाभावादो। अण्णो वि विसेसो जाणिय वत्तव्वो। तदो वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठिस्स वेदगसम्माइट्ठिस्स वा संजमं पडिवज्जमाणस्स पयदगाहत्थविहासाए किंचि विसेसाणुगमं कस्सामो। तं जहा—वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठिस्स ताव पढमगाहत्थविहासाए दंसणमोहोवसामगभंगो चेव कायव्वो। णवरि जोगे त्ति विहासाए दंसणमोहक्खवणभंगो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

---

* वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके या वेदक सम्यग्दृष्टिके संयमको प्राप्त होते समय परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें विद्यमान उसके कौन सी लेश्या और वेद होता है ॥ १ ॥ पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन हैं, वर्तमानमें किन-किन कर्मोंको बाँधता है, कितने कर्म उदयावलिमें प्रवेश करते हैं और यह किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ? ॥ २ ॥ पूर्व ही बन्ध और उदयरूपसे कौनसे कर्मांश क्षीण होते हैं आगे चलकर यह जीव किसी कर्मका न तो अन्तर करता है और न किसी कर्मका उपशामक होता है ? ॥ ३ ॥ वह किस स्थितिवाले कर्मोंका तथा किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके शेष रहे उनके किस स्थानको प्राप्त होता है ? ॥ ४ ॥

§ ६. अब इन गाथाओंकी यहाँ पर विभाषा करने पर उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वकी उत्पत्ति अनुयोगद्वारमें इनकी जैसी विभाषा कर आये हैं उसी प्रकार पूरी यहाँ भी करनी चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि यहाँ पर मनुष्यसम्बन्धी ही बन्ध, उदय और उदीरणारूप प्रकृतियोंका अनुगम करना चाहिए, क्योंकि उससे अन्यत्र संयमकी उत्पत्ति संभव नहीं है। अन्य जो भी विशेष है उसका जानकर कथन करना चाहिये। इसलिये संयमको प्राप्त होनेवाले वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके और वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रकृत गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान करने पर जो कुछ विशेष है उसका अनुगम करेंगे। यथा—सर्वप्रथम वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके प्रथम गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करने पर दर्शनमोहके उपशामकके समान ही व्याख्यान करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि 'जोगे त्ति' इस पदका विशेष व्याख्यान करने पर दर्शनमोहक्षपणाके समान व्याख्यान करना चाहिये।

विशेषार्थ—जो वेदक प्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीव संयमको प्राप्त करता है उसका परिणाम विशुद्धतर होता है, औदारिक काययोग, चार मनोयोग और चार वचनयोग इनमेंसे कोई एक योग होता है, चारों कषायोंमेंसे हीयमान कोई एक कषाय होती है, साकार उपयोग

§ ७. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति विहासा। एत्थ पयडिसंतकम्मं ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागसंतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं, तम्मग्गणाए च दंसणमोहोवसामगभंगो। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि संतकम्मिओ त्ति वत्तव्वं। आउअस्स एक्का वा दो वा पयडीओ संतकम्मं, मणुसाउअस्स धुवभावेण, देवाउअस्स वि परभवियाउअबंधवसेण कहिं पि संभवदंसणादो।

§ ८. 'के वा अंसे णिबंधदि' त्ति विहासा। एत्थ पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधा मग्गियव्वा। तम्मग्गणाए च उवसामगभंगादो णत्थि णाणत्तं। णवरि मार्गदर्शक: आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज पढमदंडए णिद्दिट्ठाणं चेव पयडीणमेत्थ बंधसंभवो वत्तव्वो, सेसाणमेत्थ बंधासंभवादो।

§ ९. 'कदि आवलियं पविसंति' त्ति विहासा। मूलपयडीओ सव्वाओ

होता है तथा तेज, पद्म और शुक्ल इन तीनोंमेंसे कोई एक लेश्या होती है जो नियमसे वर्धमान होती है। वेद भी तीनोंमेंसे कोई एक होता है। यहाँ वेदसे तात्पर्य भाववेदसे है।

§ ७. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' इस पदकी विभाषा—यहाँ पर प्रकृतिसत्कर्म, स्थितिसत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मकी मार्गणा करनी चाहिये और उनकी मार्गणाका भंग दर्शनमोहके उपशामकके समान है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भी सत्कर्मवाला है ऐसा कहना चाहिये। आयुकी एक या दो प्रकृतियोंका सत्त्व है। उनमेंसे मनुष्यायुका ध्रुवरूपसे सत्त्व है, देवायुका भी परभवसम्बन्धी आयुबन्धके कारण किसीमें सम्भव देखा जाता है।

विशेषार्थ—पहले दर्शनमोहोपशामना अनुयोगद्वारमें पूर्वबद्ध कितने कर्मोंकी सत्ता होती है यहाँ बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जो वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीव संयमके अभिमुख होते हैं उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नियमसे होती है। तथा उनमेंसे किन्हींके आहारक शरीरचतुष्ककी भी सत्ता पाई जाती है।

§ ८. 'के वा अंसे णिबंधदि' इस पदकी विभाषा। यहाँपर प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धकी मार्गणा करनी चाहिए और उनकी मार्गणा उपशामकके समान है, उससे कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि प्रथम दण्डकमें निर्दिष्ट प्रकृतियोंका ही यहाँपर बन्ध सम्भव है ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि शेषका यहाँपर बन्ध सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—प्रथम दण्डककी ये प्रकृतियाँ हैं—५ ज्ञानावरण, ९ दर्शनावरण, सातावेदनीय, मिथ्यात्व, १६ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर-आंगोपांग, वर्णादिचतुष्क, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघुआदि चतुष्क, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादिचतुष्क, स्थिरादिषट्क, निर्माण, उच्चगोत्र और ५ अन्तराय। स्थितिबन्ध आदिका कथन उपशामकके समान जानना चाहिए।

§ ९. 'कदि आवलियं पविसंति' इस पदकी विभाषा। मूल प्रकृतियाँ सब प्रवेश करती

पविसंति । उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ सव्वाओ पविसंति । णवरि जइ परभवियं देवाउअमत्थि तं ण पविसदि त्ति वत्तव्वं । एत्तिओ चेव विसेसो ।

§ १०. 'कदिण्हं वा पवेसगो' त्ति विहासा । मूलपयडीणं सव्वासिं पवेसगो । उत्तरपयडीणं पि पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-मिच्छत्त-मणुस्साउ-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय० -तेजा - कम्मइयसरीर - ओरालियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ४—तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं णियमापवेसगो । सादासादाणमण्णदरस्स पवेसगो । चदुण्हं कसायाणं तिण्हं वेदाणं दोण्हं जुगलाणमण्णदरपवेसगो । भय-दुगुंछा० सिया पवेसगो । छण्णं संठाणाणं छण्णं संघडणाणमण्णदर० णियमा पवेसगो । दोविहायगदि-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसगित्ति-अजसगित्तीणमण्णदरपवेसगो । ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणं पि पवेसापवेसणं च जाणिय वत्तव्वं ।

हैं। उत्तर प्रकृतियाँ भी जो हैं वे सब प्रवेश करती हैं। इतनी विशेषता है कि यदि परभवसम्बन्धी देवायु है तो वह प्रवेश नहीं करती ऐसा कहना चाहिए। इतना ही विशेष है।

विशेषार्थ—संयमके अभिमुख हुए वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीवके आठों कर्मोंकी सत्ता होती है, इसलिये वे सब उदयावलिमें प्रवेश करती हैं। तथा उदय-अनुदयरूप जितनी उत्तर प्रकृतियोंकी सत्ता है वे सभी उदयावलिमें प्रवेश करती हैं। मात्र जिसके परभवसम्बन्धी देवायुकी सत्ता है वह उदयावलिमें प्रवेश नहीं करती, क्योंकि उसका आबाधाकाल नियमसे भुज्यमान आयुप्रमाण पाया जाता है।

§ १०. 'कदिण्हं वा पवेसगो' इस पदकी विभाषा। मूल प्रकृतियोंका सबका प्रवेशक होता है। उत्तरप्रकृतियोंमें भी पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर, औदारिकशरीरआंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनका नियमसे प्रवेशक है। साता और असाता इनमेंसे अन्यतरका प्रवेशक है। चार कषाय, तीन वेद और दो युगलोंमेंसे अन्यतरका प्रवेशक है। भय और जुगुप्साका स्यात् प्रवेशक है। छह संस्थान और छह संहनन इनमेंसे अन्यतरका नियमसे प्रवेशक है। दो विहायोगति, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, तथा यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति इनमेंसे अन्यतरका प्रवेशक है। स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके भी प्रवेश और अप्रवेशको जानकर कथन करना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ आयुकर्मके सिवाय शेष कर्मोंकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी होती है, अतः तदनुरूप स्थितियोंकी उदीरणा होती है तथा आयुकर्मकी जो भुज्यमान स्थिति शेष हो,

---

१. आ०प्रतौ चदुदंसणावरणीय-मिच्छत्तमणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा तेजा-कम्मइयसरीरस- इति पाठः। ता०प्रतावपि पाठोऽयमव्यवस्थित एव।

§ ११. 'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा। तत्थ बंध-वोच्छेदे उवसामगभंगादो णत्थि णाणत्तं। जो च थोवयरो विसेसो जाणिय वत्तव्वो। संपहि उदयवोच्छेदो वुच्चदे—पंचदंसणावरणीय-णिरय-तिरिक्ख-देवगदि-चदुजादिणामाणि वेउव्विय-आहारसरीर-तदंगोवंग-चदुआणुपुव्विणामाणि आदावुज्जोव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणि णीचागोदं च एदाणि उदएण वोच्छिण्णाणि, एदेसिमेत्थुदय-संभवाभावादो।

§ १२. 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' त्ति विहासा। तत्थ अंतरकरणमेत्थ ण संभवइ, वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठिणा एत्थाहियारादो। तदो चेव उवसामणा वि णत्थि[1]। अधवा पुव्वबद्धाणमणुदयोवसामणा जहा संजमासंजमलद्धीए

तदनुरूप स्थितियोंकी उदीरणा होती है। यह स्थिति उदीरणाका विचार है। अनुभाग-उदीरणाका विचार इस प्रकार है कि यहाँ निर्दिष्ट प्रशस्त प्रकृतियोंकी चतुःस्थानीय होती है जो बन्धस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है और अप्रशस्त प्रकृतियोंकी द्विस्थानीय होती है जो सत्त्वस्थानसे अनन्तगुणी हीन होती है। तथा इन्हीं प्रकृतियोंकी प्रदेश उदीरणा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है। प्रकृति उदीरणाका स्पष्ट निर्देश मूलमें किया ही है। इतना अवश्य है कि जिस जीवके जिस समय जिन प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है उसके उस समय उन्हीं प्रकृतियों-की स्थिति, अनुभाग और प्रदेश उदीरणा होती है।

§ ११. के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' इसकी विभाषा। उसमें बन्धव्युच्छित्तिके विषयमें उपशामकके समान भंग होनेसे कोई भेद नहीं है। और जो थोड़ा भेद है उसका जानकर कथन करना चाहिए। अब उदयव्युच्छित्तिको कहते हैं—पाँच दर्शनावरणीय, नरकगति, तिर्यञ्चगति, देवगति, चार जातिनाम, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, ये दोनों आंगोपांग, चार आनुपूर्वीनाम और नीचगोत्र ये उदयसे व्युच्छिन्न हैं, क्योंकि इनका यहाँपर उदय असम्भव है।

विशेषार्थ—यहाँ पर उक्त जीवके किन प्रकृतियोंका बन्ध और उदय नहीं होता इसका स्पष्टीकरण किया गया है। दर्शनमोहके उपशामकके जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता उनका इसके भी बन्ध नहीं होता। मात्र संयमके सन्मुख हुआ जीव नियमसे कर्म-भूमिज मनुष्य ही होता है, अतः इसके नामकर्मकी देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है, मनुष्यगतिप्रायोग्य प्रकृतियोंका नहीं इतना विशेष जानना चाहिए। यहाँ पर जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता उनका निर्देश मूलमें किया ही है।

§ १२. 'अंतरं वा कहिं किच्चा के के उवसामगो कहिं' इसकी विभाषा। इसके अनुसार यहाँ अन्तरकरण सम्भव नहीं है, क्योंकि वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिका यहाँ पर अधिकार है और इसीलिये उपशामना भी नहीं है। अथवा पूर्वबद्ध कर्मोंकी अनुदय-उपशा-

---

१. ता०प्रतौ अत्थि इति पाठः।

परूविदा, तहा एत्थ वि परूवेयव्वा, तिस्से सव्वत्थ पडिसेहाभावादो।

§ १३. 'किं ट्ठिदियाणि कम्माणि कं ठाणं पडिवज्जइ' त्ति विहासा। ठिदिघादो ताव संखेज्जे भागे घादेदूण संखेज्जदिभागं पडिवज्जदि, इच्चादि उवसामगभंगेण वत्तव्वं, विसेसाभावादो। वेदगसम्माइट्ठिस्स[1] वि असंजदस्स संजमलंभे वट्टमाणस्स पयदगाहत्थ-विहासा जाणिय कायव्वा।

§ १४. एवमेदासु गाहासु सवित्थरमेत्थ विहासिदासु तदो उत्तरं परूवणा-

---

मना जिस प्रकार संयमासंयमलब्धिमें कही है उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए, क्योंकि उसका सर्वत्र प्रतिषेध नहीं है।

विशेषार्थ—संयमलब्धि क्षायोपशमिक भाव है और इसकी प्राप्तिके पूर्व केवल अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो करण होना ही सम्भव हैं, अतः यहाँ न तो किसी कर्मका अन्तरकरण होता है और न अन्तरकरणपूर्वक होनेवाली उपशामना ही होती है। इतना अवश्य है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्क, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन बारह कर्मप्रकृतियोंके अनुदयलक्षण उपशमके होने पर संयमलब्धिकी प्राप्ति होती है, इसलिए यहाँ सर्वदा अनुदयोपशामना बनी रहती है [illegible] इस लब्धिमें यद्यपि चार संज्वलन और नौ नोकषायोंका उदय रहता है। परन्तु वह सर्वघाति न होकर देशघातिस्वरूप होता है, इसलिए उसके होनेमें कोई विरोध नहीं है। यह प्रकृति अनुदयोपशामनाका स्पष्टीकरण है। स्थिति, अनुभाग और प्रदेशानुदयोपशामनाका स्पष्टीकरण जानकर कर लेना चाहिये।

§ १३. 'किं ट्ठिदियाणि कम्माणि कं ठाणं पडिवज्जइ' इसकी विभाषा। स्थितिघात यथा—संख्यात बहुभागका घात कर संख्यातवें भागको प्राप्त होता है इत्यादिका जिस प्रकार दर्शनमोहके उपशामककी अपेक्षा कथन कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी कथन करना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। तथा यदि वेदकसम्यग्दृष्टि असंयत भी संयमको प्राप्त कर रहा है तो उसके प्रकृत गाथाके अर्थकी विभाषा जानकर करना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणपूर्वक जिस संयमकी प्राप्ति होती है उसका प्रकरण है। जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त करता है उसका यहाँ प्रकरण नहीं है। यहाँ मुख्यरूपसे वेदकप्रायोग्य कालके भीतर जो मिथ्यादृष्टि जीव अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणपूर्वक संयमको प्राप्त करता है उसका प्रकरण है, अतः ऐसे जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें आयुकर्मके अतिरिक्त अन्य सात कर्मोंका जितना स्थितिसत्त्व शेष हो उसका हजारों स्थितिकाण्डकोंके द्वारा घात होकर अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्त्व शेष रहना आगमसिद्ध ही है। मूलमें इसी तथ्यको स्पष्ट किया गया है। शेष व्याख्यान आगमसे जान लेना चाहिए।

§ १४. इस प्रकार इन गाथाओंका यहाँ पर विस्तारपूर्वक व्याख्यान कर देने पर

---

१. ताड़पत्रमूलप्रतौ वेदगसम्माइट्ठिस्स इत्यस्मिन् स्थले 'गसम्माइट्ठि' इति पाठः त्रुटितः।

पबंधमाढवेमाणो इदमाह—

*** एदाओ सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो संजमं पडिवज्जमाणस्स उवक्कमविधिविहासा ।**

§ १५. उपक्रमणमुपक्रमं प्रारंभ इत्यर्थः । उपक्रमस्य विधिरुपक्रमविधिः । उपक्रमविधेः परिभाषा उपक्रमविधिपरिभाषा । संयमग्रहणं प्रत्यभिमुखीभावमास्कंदत-स्तदारंभात्प्रभृत्थापरिसमाप्तेर्विस्तरप्ररूपणेति यावत् । सेदानीं प्रस्तूयत इति सूत्रार्थ-संग्रहः ।

*** तं जहा ।**

§ १६. सुगमं ।

*** जो संजमं पढमदाए पडिवज्जदि तस्स दुविहा अद्धा—अधापवत्त-करणद्धा च अपुव्वकरणद्धा च ।**

§ १७. एत्थाणियट्टिअद्धाए सह तिण्णि अद्धाओ कधं ण परूविदाओ ? ण, वेदगपाओग्गमिच्छाइट्ठिस्स वेदगसम्माइट्ठिस्स वा पढमदाए संजमं पडिवज्जमाण-स्साणियट्टिकरणसंभवाणुवलंभादो । अणादियमिच्छाइट्ठिम्मि उवसमसम्मत्तेण सह संजमं

तत्पश्चात् आगे प्ररूपणाप्रबन्धका आरम्भ करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

*** इन सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करनेके बाद संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके उपक्रमविधिका विशेष व्याख्यान प्रस्तुत है ।**

§ १५. उपक्रम शब्दकी व्युत्पत्ति है—उपक्रमणं उपक्रमः । उपक्रम और प्रारम्भ इन शब्दोंका अर्थ एक है । उपक्रमकी विधि उपक्रमविधि कहलाती है । उपक्रमविधिकी परिभाषा उपक्रमविधिपरिभाषा है । संयमके ग्रहणके प्रति अर्थात् संयमके सन्मुखभावको प्राप्त होनेवाले जीवके संयमग्रहणके प्रारम्भ समयसे लेकर समाप्त होने तक विस्तारसे की गई प्ररूपणा यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह इस समय प्रस्तुत है यह सूत्रार्थसमुच्चय है ।

*** वह जैसे ।**

§ १६. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो संयमको प्रथमतः प्राप्त होता है उसके अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण ये दो काल होते हैं ।**

§ १७. **शंका**—यहाँ अनिवृत्तिकरण कालके साथ तीन काल क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टिके या वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथमतः संयमको ग्रहण करते हुए अनिवृत्तिकरणका होना सम्भव नहीं है ।

पडिवज्जमाणम्मि तिण्हं करणाणं संभवो अत्थि त्ति चे ? होउ णाम, इच्छिज्ज-माणत्तादो। किंतु ण तस्सेह विवक्खा अत्थि, तप्परूवणाए दंसणमोहोवसामणाए चेव अंतब्भूदत्तादो। संपहि एदेसिं दोण्हं करणाणं लक्खणविहासा च जहा संजमासंजमलद्धीए परूविदा तहा णिरवसेसमेत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो त्ति जाणावेमाणो अप्पणासुत्तमुत्तरं भणइ— मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** अधापवत्तकरण-अपुव्वकरणाणि जहा संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स परूविदाणि तहा संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि कायव्वाणि।**

§ १८. गयत्थमेदं सुत्तं। तदो अधापवत्त-अपुव्वकरणाणं लक्खणादिपरूवणा पुव्वभंगेण णिरवसेसमेत्थ कायव्वा। तत्थ कीरमाण-कज्जभेदो च ठिदि-अणुभागखंडय-तब्बंधोसरणलक्खणो सवित्थरं परूवेयव्वो। तदो अपुव्वकरणद्धाए णिट्ठिदाए अप्पमादभावेण संजमं पडिवण्णस्स पढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तमेत्तकालमेयंताणुवड्ढीए संजमपरिणामो वड्ढदि त्ति परूवणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** तदो पढमसमयसंजमप्पहुडि अंतोमुहुत्तद्धमणंतगुणाए चरित्तलद्धीए वड्ढदि।**

शंका—अनादि मिथ्यादृष्टिके उपशमसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होते समय तीन करण होते हैं ?

समाधान—होने दो, क्योंकि उसके तीनों करणोंका होना इष्ट है। किन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है। उक्त प्ररूपणा दर्शनमोहोपशामनासम्बन्धी प्ररूपणामें ही अन्तर्भूत है।

अब इन दोनों करणोंके लक्षणोंका विशेष व्याख्यान जिस प्रकार संयमासंयमलब्धिमें कहा है उसी प्रकार उसका पूरा व्याख्यान यहाँ भी करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है इस प्रकार इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके अर्पणासूत्रको कहते हैं—

*** संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवके जिस प्रकार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणका कथन किया है उसी प्रकार संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके भी प्ररूपण करना चाहिए।**

§ १८. यह सूत्र गतार्थ है। इसलिये अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके लक्षणादिकी समस्त प्ररूपणा पहलेके समान यहाँ पर करनी चाहिए। वहाँ स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक तथा स्थितिबन्धापसरणलक्षण किये जानेवाले नाना कार्य विस्तारके साथ कहने चाहिए। तत्पश्चात् अपूर्वकरणके समाप्त होने पर अप्रमादभावसे संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालतक एकान्तानुवृद्धिसे संयमपरिणाम वृद्धिगत होता है इस बातका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तत्पश्चात् संयम ग्रहणके प्रथम समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालतक अनन्तगुणी चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है।**

§ १९. कुदो ? अलद्धपुव्वसंजमपडिलंभेण जणिदसंवेगस्स तहावड्ढीए विप्पडिसेहाभावादो । ण एसो अणंतगुणविसोहिपडिलंभो णिप्फलो, पडिसमयमसंखेज्जगुणसेढीए कम्मक्खंधाणं णिज्जरणफलत्तादो । जाव एसो एयंताणुवड्ढीए वड्ढदि ताव आउगवज्जाणं सव्वकम्माणं ट्ठिदि-अणुभागखंडयसहस्साणमंतोमुहुत्तुक्कीरणद्धापडिबद्धाणं घादुवलंभादो च ।

*** जाव चरित्तलद्धीए एगंताणुवड्ढीए वड्ढदि ताव अपुव्वकरणसण्णिदो भवदि ।**

§ २०. जाव एसो चरित्तलद्धीए अंतोमुहुत्तकालमेयंताणुवड्ढिपरिणामेहिं वड्ढदि ताव अपुव्वकरणववएसारिहो चेव होदि । किं कारणं ? अपुव्वापुव्वेहिं परिणामेहिं वड्ढमाणस्स तदवत्थाए तव्ववएससिद्धीए बाहाणुवलंभादो । असंजदचरिमसमये चेय अपुव्वकरणे णिट्ठिदे पुणो कधमेदस्स तव्ववएसो त्ति णासंकणिज्जं, अपुव्वकरणो व्व अपुव्वकरणो त्ति तव्ववएससिद्धीए विरोहाभावादो । जहा अपुव्वकरणो ठिदिघादादिकज्जविसेसमपुव्वापुव्वेहिं परिणामेहिं करेदि तहा एसो वि करेदि त्ति भावत्थो । एदम्मि काले णिट्ठिदे तदो अधापवत्तसंजदो होइ । तत्थ णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभाग-

---

§ १९. क्योंकि अलब्धपूर्व संयमके प्राप्त होनेसे उत्पन्न हुए संवेगसम्पन्न जीवके उस प्रकार वृद्धि होनेमें प्रतिषेध नहीं है और यह अनन्तगुणी विशुद्धिकी प्राप्ति निष्फल नहीं है, क्योंकि प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मस्कन्धोंकी निर्जरा होना उसका फल है । और जब तक यह जीव एकान्तानुवृद्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है तब तक आयुकर्मको छोड़कर शेष सब कर्मोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरणकालसे सम्बन्ध रखनेवाले हजारों स्थितिकाण्डकों और हजारों अनुभागकाण्डकोंका घात पाया जाता है ।

*** तथा जब तक एकान्तानुवृद्धिरूप चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है तब तक अपूर्वकरणसंज्ञावाला होता है ।**

§ २०. जब तक यह जीव एकान्तानुवृद्धिरूप परिणामोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक चारित्रलब्धिसे वृद्धिको प्राप्त होता है तब तक अपूर्वकरण संज्ञाके योग्य ही होता है, क्योंकि अपूर्व-अपूर्व परिणामोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले जीवके उस अवस्थामें उक्त संज्ञाकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं पाई जाती ।

शंका—असंयतके अन्तिम समयमें ही अपूर्वकरणके समाप्त हो जाने पर पुनः इसके यह संज्ञा कैसे बन सकती है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि अपूर्वकरणके समान यह अपूर्वकरण है, इसलिए इस संज्ञाकी सिद्धिमें कोई विरोध नहीं है । जिस प्रकार अपूर्वकरण जीव प्रति समय अपूर्व-अपूर्व परिणामोंके द्वारा स्थितिघात आदि कार्यविशेष करता है उसी प्रकार यह भी करता है यह उक्त कथनका भावार्थ है ।

घादो वा । गुणसेढी पुण जाव संजदो ताव अवट्ठिदायामा होदूण पयट्टदे । णवरि विसुज्झंतो असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्जदिभागुत्तरं वा असंखेज्जदिभागुत्तरं वा दव्वमोकड्डियूण गुणसेढिं करेदि । संकिलिस्संतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा दव्वमोकड्डियूण गुणसेढिं करेदि । अवट्ठिदपरिणामो पुण अवट्ठिदं चेव करेदि, परिणामाणुसारीए गुणसेढिणिज्जराए तव्वड्ढि-हाणिवसेणेव पवुत्तीए बाहाणुवलंभादो । एदं च सव्वमणेणावहारिय इदमाह—

*** एयंतरवड्ढीदो से काले चरित्तलद्धीए सिया वड्ढेज्ज वा हाएज्ज वा अवट्ठाएज्ज वा ।**

§ २१. सत्थाणपदिदस्स अधापवत्तसंजदस्स गुणसेढिणिज्जराविणाभाविसंजमलद्धीए विसोहि-संकिलेसवसेण वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसिद्धीए विरोहाणुवलंभादो ।

§ २२. एवमेदं परूवणं समाणिय संपहि पदपडिवूरणबीजपदावलंबणेण एत्थ अप्पाबहुअं कायव्वमिदि जाणावेमाणो उत्तरं पबंधमाह—

इस कालके समाप्त होने पर तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तसंयत होता है। वहाँ स्थितिघात और अनुभागघात नहीं है। परन्तु जब तक संयत है तब तक अवस्थित आयामवाली गुणश्रेणि होकर प्रवृत्त होती है। इतनी विशेषता है कि विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ असंख्यातगुणे, संख्यातगुणे, संख्यातवें भाग अधिक या असंख्यातवें भाग अधिक द्रव्यका अपकर्षण कर गुणश्रेणि करता है। संक्लेशको प्राप्त होता हुआ इसी प्रकार गुणहीन या विशेष हीन द्रव्यका अपकर्षण कर गुणश्रेणि करता है। तथा अवस्थित परिणामवाला जीव अवस्थित ही गुणश्रेणि करता है। परिणामोंके अनुसार होनेवाली गुणश्रेणिनिर्जराके परिणामोंकी वृद्धि-हानिवश ही प्रवृत्ति होनेमें बाधा नहीं पाई जाती। इस प्रकार इस सबको मनसे निश्चित कर इस सूत्रको कहते हैं—

*** एकान्तानुवृद्धिके पश्चात् अनन्तर कालमें चारित्रलब्धिवश कदाचित् वृद्धिको प्राप्त होता है, कदाचित् हानिको प्राप्त होता है और कदाचित् अवस्थित रहता है।**

§ २१. स्वस्थानपतित अधःप्रवृत्तसंयतके गुणश्रेणिनिर्जराकी अविनाभावी संयमलब्धि-सम्बन्धी विशुद्धि-संक्लेशवश वृद्धि, हानि और अवस्थानकी सिद्धि होनेमें विरोध नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—आशय यह है कि अप्रमादभावपूर्वक संयमकी प्राप्ति होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक संयमसम्बन्धी परिणामोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है, इसलिए उस समय होनेवाली निर्जरा उत्तरोत्तर असंख्यात गुणितक्रमसे ही होती है। किन्तु उसके बाद इस जीवके स्वस्थानपतित अधःप्रवृत्तसंयत होनेपर जिस क्रमसे संक्लेश और विशुद्धिवश संयमरूप परिणामोंमें वृद्धि, हानि और अवस्थान होता है उसी क्रमसे निर्जराका भी क्रम बदलता रहता है। विशेष निर्देश पूर्वमें किया ही है।

§ २२. इस प्रकार इस प्ररूपणाको समाप्त कर अब पदपूर्तिस्वरूप बीजपदोंका अवलम्बन लेकर यहाँ पर अल्पबहुत्व करना चाहिए इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि पढमसमय-अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव ताव अधापवत्तसंजदो त्ति एदम्हि काले इमेसिं पदाणमप्पाबहुअं कादव्वं ।**

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २३. सुगममेदं पयदप्पाबहुअपरूवणाविसयं पइण्णावक्कं ।

*** तं जहा ।**

§ २४. काणि ताणि पदाणि एदम्हि काले संभवंताणि जेसिमप्पाबहुअमिदमहिकीरदि त्ति पुच्छा कदा होइ ।

*** अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धाओ जहण्णुक्कस्सियाओ ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धाओ जहण्णुक्कस्सियाओ इच्चेवमादीणि पदाणि ।**

§ २५. एत्थादिसद्देण जहण्णुक्कस्साबाह० जहण्णुक्कस्सट्ठिदिखंडयबंधसंतादिपदाणमण्णेसिं च पयदोवजोगीणं पदाणं गहणं कायव्वं । सुगममण्णं ।

*** सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा ।**

*** सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया ।**

*** जहण्णिया ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ ।**

*** संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर अधःप्रवृत्त संयतके अन्तिम समय तक इस कालमें इन पदोंका अल्पबहुत्व करना चाहिए ।**

§ २३. प्रकृत अल्पबहुत्वकी प्ररूपणाको विषय करनेवाला यह प्रतिज्ञावाक्य सुगम है ।

*** वह जैसे ।**

§ २४. इस कालमें सम्भव होनेवाले वे पद कौन हैं जिनका अल्पबहुत्व अधिकृत है यह इस सूत्र द्वारा पृच्छा की गई है ।

*** जघन्य और उत्कृष्ट अनुभागकाण्डक-उत्कीरणकाल तथा जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक उत्कीरणकाल इत्यादि जो पद हैं उनका अल्पबहुत्व करना चाहिए ।**

§ २५. इस सूत्रमें आये हुए 'आदि' शब्दसे जघन्य और उत्कृष्ट आबाधास्थानोंका, जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकोंका, जघन्य और उत्कृष्ट बन्धपदोंका, जघन्य और उत्कृष्ट सत्कर्मपदोंका तथा प्रकृतमें उपयोगी अन्य पदोंका ग्रहण करना चाहिए। अन्य कथन सुगम है ।

*** जघन्य अनुभागकाण्डक-उत्कीरणकाल सबसे थोड़ा है ।**

*** उत्कृष्ट वही विशेष अधिक है ।**

*** उससे जघन्य स्थितिकाण्डक-उत्कीरणकाल और स्थितिबन्धकाल ये दोनों तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं ।**

* तेसिं चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया ।

* पढमसमयसंजदमादिं कादूण जं कालमेयंताणुवड्ढीए वड्ढदि एसा अद्धा संखेज्जगुणा ।

* अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा ।

* जहण्णिया संजमद्धा संखेज्जगुणा ।

* गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो ।

* जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

* उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा ।

* जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं ।

* अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं ।

* पलिदोवमं संखेज्जगुणं ।

* पढमस्स ट्ठिदिखंडयस्स विसेसो सागरोवमपुधत्तं संखेज्जगुणं ।

* जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

* उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।

---

* उनसे उन्हींके उत्कृष्ट काल विशेष अधिक हैं ।

* उनसे संयत होनेके प्रथम समयसे लेकर जिस कालमें एकान्तानुवृद्धिसे बढ़ता है वह काल संख्यातगुणा है ।

* उससे अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है ।

* उससे जघन्य संयमकाल संख्यातगुणा है ।

* उससे गुणश्रेणिनिक्षेप संख्यातगुणा है ।

* उससे जघन्य आबाधा संख्यातगुणी है ।

* उससे उत्कृष्ट आबाधा संख्यातगुणी है ।

* उससे जघन्य स्थितिकाण्डक असंख्यातगुणा है ।

* उससे अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त जघन्य स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

* उससे पल्योपम संख्यातगुणा है ।

* उससे प्रथम स्थितिकाण्डकका सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण विशेष संख्यातगुणा है ।

* उससे जघन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।

* जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

* उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

§ २६. सुगमो एसो अप्पाबहुअपबंधो त्ति णेदस्स वक्खाणं कीरदे, जाणिद-जाणावणे फलाभावादो। णवरि जहण्णपदाणि एयंताणुवड्ढिकालचरिमसमये घेत्तव्वाणि। उक्कस्सपदाणि च अपुव्वकरणपढमसमए गेण्हिदव्वाणि। एवमेदमप्पाबहुअं समाणिय संपहि एत्थेव विसेसंतरपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

* संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जो ट्ठिदिसंतकम्मेण अणवड्ढिदेण पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणगस्स णत्थि अपुव्वकरणं, णत्थि ट्ठिदिघादो, णत्थि अणुभागघादो।

§ २७. जो संजमादो परिणामपच्चएण संकिलेसबहुत्तेण विणा णिस्सरिदो संतो असंजदभावं गंतूण तत्थ ट्ठिदिसंतकम्ममवड्ढाविय पुणो वि अंतोमुहुत्तेणेव विसुद्धो होदूण संजमं पडिवज्जदि तस्स तहा संजमं पडिवज्जमाणस्स णत्थि अपुव्वकरणपरिणामो ट्ठिदि-अणुभागघादो वा, तत्थ पुव्वघादिदावसेसट्ठिदिअणुभागाणं संजमग्गहणपाओग्गभावेण तदवत्थपदंसणादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स समुच्चयट्ठो। जो पुण संकिलेसभरेण मिच्छत्ताणुविद्धमसंजदपरिणामं पडिवण्णो अंतोमुहुत्तेण

---

* उससे जघन्य स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है।

* उससे उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा है।

§ २६. यह अल्पबहुत्वप्रबन्ध सुगम है, इसलिये इसका व्याख्यान नहीं करते, क्योंकि जिसका ज्ञान कराया है उसका पुनः ज्ञान करानेमें कोई फल नहीं है। इतनी विशेषता है कि जघन्य पदोंको एकान्तानुवृद्धिकालके अन्तिम समयमें ग्रहण करना चाहिए और उत्कृष्ट पदोंको अपूर्वकरणके प्रथम समयमें ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार इस अल्पबहुत्वको समाप्त कर अब वहीं पर विशेष अन्तरका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* जो संयमसे च्युत हो असंयमको प्राप्त कर नहीं बढ़े हुए स्थितिसत्कर्मके साथ पुनः संयमको प्राप्त करता है, संयमको प्राप्त होनेवाले उस जीवके अपूर्वकरण नहीं होता, स्थितिघात नहीं होता और अनुभागघात नहीं होता।

§ २७. जो जीव बहुत संक्लेशके विना परिणामवश संयमसे च्युत हो असंयतपनेको प्राप्त कर वहाँ स्थितिसत्कर्मको न बढ़ाकर फिर भी अन्तर्मुहूर्तमें ही विशुद्ध होकर संयमको प्राप्त होता है, उस प्रकार संयमको प्राप्त हुए उसके अपूर्वकरण परिणाम नहीं होता, स्थितिकाण्डकघात नहीं होता और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता, क्योंकि वहाँ पहले घात कर शेष रहे स्थिति और अनुभाग संयम ग्रहणके प्रायोग्यरूपसे तदवस्थित देखे जाते हैं यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है। परन्तु जो संयत संक्लेशकी बहुलतावश मिथ्यात्वसहित असंयत-

विप्पकिट्ठंतरेण वा पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स वि पुव्वुत्ताणि चेव दोण्णि करणाणि, तहा चेव ट्ठिदि-अणुभागघादा च होंति। वड्ढाविद-ट्ठिदिअणुभागाणं घादेण विणा संजमग्गहणाणुववत्तीदो।

※ एत्तो चरित्तलद्धिगाणं जीवाणं अट्ठ अणिओगद्दाराणि।

§ २८. एत्तो उवरि चरित्तलद्धिमंताणं जीवाणं अट्ठहिं अणिओगद्दारेहिं परूवणा कायव्वा, अण्णहा तव्विसयविसेसाणिप्पत्तीदो त्ति भणिदं होइ। काणि ताणि अट्ठाणियोगद्दाराणि त्ति पुच्छावक्कमाह—

※ तं जहा।

§ २९. सुगमं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

※ संतपरूवणा दव्वं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च अणुगंतव्वं।

परिणामको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें या बड़े अन्तरके बाद पुनः संयमको प्राप्त होता है उसके भी पूर्वोक्त दो करण नियमसे होते हैं तथा उसी प्रकार स्थितिघात और अनुभागघात भी होते हैं, क्योंकि उक्त जीवके बढ़ाये गये स्थिति और अनुभागका घात किये बिना संयमका ग्रहण नहीं बन सकता।

विशेषार्थ—आशय यह है कि जो बहुत संक्लेश हुए बिना परिणामोंके निमित्तसे संयमभावसे च्युत होकर अतिशीघ्र अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर पुनः संयमभावको प्राप्त होते हैं उनके पूर्वोक्त दो करण और स्थिति-अनुभागकाण्डकघात हुए बिना संयमकी प्राप्ति हो जाती है। किन्तु जो बहुत संक्लेशके कारण संयमसे च्युत होते हैं वे चाहे अन्तर्मुहूर्तमें पुनः संयमको प्राप्त हों और चाहे बहुत कालका अन्तर देकर संयमको प्राप्त करें, परन्तु उनके कर्मोंकी स्थिति और अनुभागमें वृद्धि हो जानेके कारण वे पूर्वोक्त दो करणपूर्वक स्थिति-अनुभाग काण्डकघात करके ही संयमको प्राप्त होते हैं।

※ आगे चारित्रलब्धिको प्राप्त जीवोंके आठ अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।

§ २८. इससे आगे चारित्रलब्धिसम्पन्न जीवोंकी आठ अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि अन्यथा तद्विषयक विशेषका ज्ञान नहीं हो सकता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वे आठ अनुयोगद्वार कौन हैं इस प्रकार पृच्छावाक्यको कहते हैं—

※ वे जैसे।

§ २९. यह सूत्र सुगम है।

※ सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भागाभाग और अल्पबहुत्व।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३०. एदेसि च अट्ठण्हमणिओगद्दाराणं विहासा सुगमा त्ति चुण्णिसुत्तयारेण ण वित्थारिदा। तदो एत्थ मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठमेदेसिमणुगमं कस्सामो। तं जहा—

संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण य। ओघेण अत्थि संजदा सामाइय-छेदोवट्ठावण० परिहार० सुहुम० जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदा च। एवं मणुस-मणुसपज्जत्त-पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-आभिणि०-सुद०-ओहि०—चक्खु०—अचक्खु०—ओहिदंसण—सुक्कलेस्सिय-भवसिद्धिय-सम्मादिट्ठि-खइयसम्मादिट्ठि-सण्णि-आहारि त्ति। एवं मणुसिणी०। णवरि परिहारसुद्धि० णत्थि। एवमवगद०-मणपज्जव०-उवसमसम्माइट्ठि त्ति। ओरालिय-मिस्स०-कम्मइय० अत्थि जहाक्खादविसुद्धिसं०। सेसं णत्थि। एवमकसा०-केवल-णाणि-केवलदंसणि-अणाहारि त्ति। आहार-आहारमिस्स०-इत्थि-णवुंस० अत्थि सामाइय-च्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदा। पुरिसवेद० अत्थि सामाइय-छेदोव०-परिहारसुद्धिसंजद०। एवं कोह-माण-मायाकसाय०। तेउ०-पम्म०-वेदगसम्माइट्ठि त्ति ओघभंगो। णवरि सुहुम०-जहाक्खाद० णत्थि। सेसमग्गणासु णत्थि संजदा। सेसाणिओग-द्दाराणि वि एदेण बीजपदेण णादूण णेदव्वाणि। णवरि सव्वत्थ संजमाणुवादं मोत्तूण

§ ३०. इन आठ अनुयोगद्वारोंकी विभाषा सुगम है, इसलिये चूर्णिसूत्रकारने विस्तार नहीं किया। अतएव यहाँपर मन्दबुद्धि जनोंका अनुग्रह करनेके लिये इनका अनुगम करेंगे। यथा—सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे सामायिक-छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धि-संयत जीव हैं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँच मनयोगी, पाँच वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, आभिनि-बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक (मार्गणावाले) जीवोंमें जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें परिहार-विशुद्धिसंयत जीव नहीं होते। इसी प्रकार अर्थात् मनुष्यिनियोंके समान अपगतवेदी, मनःपर्ययज्ञानी और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिए। औदारिकमिश्रकायोगी और कार्मणकाययोगयोगी जीवोंमें यथाख्यातविशुद्धिसंयत जीव हैं। शेष संयत जीव नहीं हैं। इसी प्रकार अकषायी, केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और अनाहारकोंमें जानना चाहिये। आहा-रककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें सामायिक-छेदो-पस्थापनाशुद्धिसंयत जीव हैं। पुरुषवेदी जीवोंमें सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत और परिहारशुद्धिसंयत जीव हैं। इसीप्रकार क्रोध, मान और मायाकषायमें जानना चाहिये। तेज, पद्म और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातसंयत जीव नहीं हैं। शेष मार्गणाओंमें संयत जीव नहीं हैं। शेष अनुयोगद्वारोंका भी इसी बीजपदके अनुसार जानकर कथन करना

सेसतेरसमग्गणाहिं चेव अणुगमो कायव्वो, तिस्से आधेयत्तेण विवक्खियाए मग्गणासु पवेसासंभवादो ।

चाहिए। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र संयमानुवादको छोड़ शेष तेरह मार्गणाओंके द्वारा ही अनुगम करना चाहिए, क्योंकि संयम मार्गणा प्रकृतमें आधेय है इस विवक्षावश उसका प्रकृतमें आधारभूत शेष मार्गणाओंमें प्रवेश नहीं हो सकता।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ—संयममार्गणा एक मनुष्यगतिमें ही सम्भव है। उसमें भी छटे गुणस्थानसे संयममार्गणाका प्रारम्भ होता है इस तथ्यको ध्यानमें रख कर जो मार्गणाएँ छटे आदि गुणस्थानोंमें बन जाती हैं उनमें संयममार्गणाका होना सिद्ध होता है। उसमें भी संयमभावके पाँच अवान्तर भेदोंमेंसे सामायिक-छेदोपस्थापनासंयम नौवें गुणस्थान तक, परिहारविशुद्धिसंयम छटे-सातवें दो गुणस्थानोंमें, सूक्ष्मसाम्परायसंयम दसवें गुणस्थानमें और यथाख्यातचारित्र ग्यारहवेंसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक होता है। इस हिसाबसे संयममार्गणाके अवान्तर भेद किस-किस मार्गणामें सम्भव हैं इसका विचार कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी, उपशमसम्यग्दृष्टि, स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें परिहारविशुद्धिसंयम नहीं होता ऐसा सहज ही वस्तुस्वभाव है। शेष कथन सुगम है। अब रहा द्रव्यप्रमाणआदिका विचार सो सामान्यसे संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापनासंयत जीव कोटिपृथक्त्वप्रमाण हैं। परिहारशुद्धिसंयत जीव सहस्रपृथक्त्वप्रमाण हैं। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत जीव शतपृथक्त्वप्रमाण हैं और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीव लक्षपृथक्त्व प्रमाण हैं। काल—एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा काल दो प्रकारका है। एक जीवकी अपेक्षा कालका विचार करने पर संयत तथा सामायिक-छेदोपस्थापना संयत जीवका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। परिहारविशुद्धिसंयतका काल भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम एक पूर्व कोटिप्रमाण है। उपशमश्रेणिकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा इसी अपेक्षासे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है। नाना जीवोंकी अपेक्षा संयत, सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत इनका काल सर्वदा है। तथा सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अन्तरकाल—एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा यह दो प्रकारका है। उनमेंसे एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार करनेपर संयत, सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत और परिहारविशुद्धिसंयतका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। उपशमश्रेणिकी अपेक्षा सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। नाना जीवोंकी अपेक्षा संयत, सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका अन्तर काल नहीं है। सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। क्षेत्र और स्पर्शन—सामायिक-छेदोप-

§ ३१. एवमेदेसु सवित्थरमणुमग्गिय समत्तेसु तदो संजमलद्धिविसयमेव परूवणंतरमाढवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

* लद्धीए तिव्वमंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च ।

§ ३२. संजमलद्धी दुविहा—जहण्णिया उक्कस्सिया च । तत्थ जहण्णिया मंदा, कसायाणं तिव्वाणुभागोदयजणिदजहण्णलद्धीए मंदभावोवत्तीदो । उक्कस्सिया लद्धी तिव्वा, कसायाणं मंदयराणुभागोदयणिबंधणत्तादो । खीणोवसंतमोहेसु सव्वुक्कस्सचरिमलद्धीए गहणं किण्ण कीरदे ? ण, सामाइय-च्छेदोवट्ठाणियाणमुक्कस्सचरित्तलद्धीए इहाहियारवसेण गहणादो । तदो दोण्हमेदासिं लद्धीणं तिव्वमंददाए जाणावणट्ठमेत्थ परूवणापुव्वं सामित्तमप्पाबहुअं च कायव्वमिदि एदेण सुत्तेण अत्थसमप्पणा कया होइ ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र और स्पर्शन अपने-अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। संयत और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंका क्षेत्र और स्पर्शन केवलिसमुद्घातको छोड़कर सम्भव अपने-अपने पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं तथा केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, असंख्यात बहुभागप्रमाण और सर्व लोकप्रमाण है। भागाभाग—उक्त सब संयत सब जीवोंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। भागाभागका परस्पर विशेष विचार अल्पबहुत्वको जान कर साध लेना चाहिए। अल्पबहुत्व—सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत सबसे थोड़े हैं। उनसे परिहारशुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं। उनसे यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत संख्यातगुणे हैं। उनसे सामायिकछेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत ये दोनों परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणे हैं। उनसे संयत विशेष अधिक हैं। यह ओघप्ररूपणा है। आदेशसे इसी बीजपदके अनुसार विचार कर लेना चाहिए।

§ ३१. इस प्रकार इन अनुयोगद्वारोंके विस्तारके साथ विचार समाप्त होने पर तत्पश्चात् संयमलब्धिविषयक ही दूसरी प्ररूपणाका आरम्भ करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* चारित्रलब्धिकी तीव्रता और मन्दताके विषयमें स्वामित्व और अल्पबहुत्व ज्ञातव्य हैं।

§ ३२. संयमलब्धि दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे जघन्य संयमलब्धि मन्द है, क्योंकि कषायोंके तीव्र अनुभागके उदयसे उत्पन्न हुई जघन्य लब्धिका मन्दपना बन जाता है। उत्कृष्ट संयतलब्धि तीव्र है, क्योंकि वह कषायोंके मन्दतर अनुभागके उदयके निमित्तसे उत्पन्न होती है।

शंका—क्षीणमोह और उपशान्तमोह जीवोंमें सबसे उत्कृष्ट अन्तिम लब्धिका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंकी चारित्रलब्धिका यहाँ पर अधिकारवश ग्रहण किया है।

इसलिये इन दोनों लब्धियोंकी तीव्रता और मन्दताका ज्ञान करानेके लिये यहाँ पर

३३. संपहि एदेण सुत्तेण समप्पियट्ठस्स विवरणं कस्सामो। तं जहा—परूवणाए अत्थि जहण्णयं लद्धिट्ठाणमुक्कस्सयं च। सामित्तं—जहण्णलद्धिट्ठाणं कस्स? संजदस्स सव्वसंकिलिट्ठस्स से काले मिच्छत्तं गच्छमाणस्स चरिमसमये भवदि। उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणं कस्स? संजदस्स सत्थाणे चेव सव्वविसुद्धस्स भवदि। एसा आदेसुक्कस्सिया। सव्वुक्कस्सिया पुण खीणोवसंतकसायाणं जहाक्खादसंजमलद्धी होइ। अप्पाबहुअं—सव्वत्थोवं जहण्णियं लद्धिट्ठाणं। उक्कस्सयमणंतगुणं, जहण्णलद्धिट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि समुल्लंघियूणेदस्स समुप्पत्तीए। एवं ताव सामण्णेण जहण्णुक्कस्सलद्धिट्ठाणाणं सामित्तप्पाबहुअमुहेण विणिण्णयं कादूण संपहि सव्वेसिमेव संजमलद्धिट्ठाणाणं पडिवादादिभेदेण तिहाविहत्ताणं परूवणा पमाणप्पाबहुअमिदि एदेहिं तीहिं अणिओगद्दारेहिं पमाणमुल्लंघियूण परूवणं कुणमाणो उवरिमं सुत्तपबंधमाह—

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एत्तो जाणि ट्ठाणाणि ताणि तिविहाणि। तं जहा—पडिवादट्ठाणाणि उप्पादयट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि ३।**

प्ररूपणापूर्वक स्वामित्व और अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए इसप्रकार इस सूत्र द्वारा अर्थकी समर्पणा की गई है।

विशेषार्थ—यह चारित्रलब्धिनामक अर्थाधिकार है। वेदकप्रायोग्य मिथ्यादृष्टि जीव या असंयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव किस अवस्थामें किस प्रकार चारित्रलब्धिको प्राप्त करता है, इसलिए चारित्रलब्धिमें यहाँ पर प्रधानतासे सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमका ही ग्रहण होता है। यही कारण है कि प्रकृतमें तीव्रता-मन्दताका विचार इसी आधारसे किया गया है।

§ ३३. अब इस सूत्र द्वारा समर्पित अर्थका विवरण करेंगे। यथा—प्ररूपणाकी अपेक्षा विचार करनेपर जघन्य लब्धिस्थान है और उत्कृष्ट लब्धिस्थान है। स्वामित्व—जघन्य लब्धिस्थान किसके होता है? जो सर्व संक्लिष्ट संयत जीव अनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त करेगा उसके अन्तिम समयमें होता है। उत्कृष्ट लब्धिस्थान किसके होता है? स्वस्थानमें ही सर्वविशुद्ध संयतके होता है। यह आदेशसे उत्कृष्ट संयमलब्धिस्थान है। परन्तु सर्वोत्कृष्ट क्षीणकषाय और उपशान्तकषाय जीवोंके यथाख्यातसंयतलब्धिस्वरूप होती है। अल्पबहुत्व—जघन्य लब्धिस्थान सबसे स्तोक है। उससे उत्कृष्ट लब्धिस्थान अनन्तगुणा है, क्योंकि जघन्य लब्धिस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंका उल्लंघन कर इसकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सर्वप्रथम सामान्यसे जघन्य और उत्कृष्ट लब्धिस्थानोंका स्वामित्व और अल्पबहुत्वद्वारा निर्णय करके अब प्रतिपात आदिके भेदसे तीन प्रकारके सभी संयमलब्धिस्थानोंकी प्ररूपणा, प्रमाण और अल्पबहुत्व इन तीन अनुयोगद्वारोंके आलम्बनसे प्रमाणका उल्लंघन कर प्ररूपणा करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** आगे जो स्थान हैं वे तीन प्रकारके हैं यह बतलाते हैं। यथा—प्रतिपातस्थान, उत्पादकस्थान और लब्धिस्थान ३।**

§ ३४. एत्तो उवरि जाणि संजमलद्धिट्ठाणाणि ताणि वत्तइस्सामो। ताणि च पडिवादट्ठाणादिभेएण तिविहाणि होंति त्ति एदेण सुत्तेण परूवणा कया होइ। संपहि एदेसिं चेव सामण्णेण णिद्दिट्ठाणं तिविहाणं पि लद्धिट्ठाणाणं सरूवविसेसजाणावणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** पडिवादट्ठाणं णाम जहा—जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छइ तं पडिवादट्ठाणं।**

§ ३५. जम्हि ट्ठाणे ट्ठिदो संजदो संकिलेसबहुलदाए ओट्ठद्धो संतो मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा पडिवज्जदि तं पडिवादट्ठाणमिदि भण्णदे। कुत एवमिति चेत्, प्रतिपतत्यस्मादधस्तनगुणेष्विति प्रतिपातशब्दस्य व्युत्पादनात्। ताणि च मिच्छत्तासंजमसम्मत्त-संजमासंजमपडिवादविसयत्तेण तिहा विहत्ताणि पडिवादट्ठाणाणि पादेक्कमसंखेज्जलोगमेत्ताणि सग-सगजहण्णलद्धिट्ठाणादो जावुक्कस्सलद्धिट्ठाणं ति ताव छवड्ढिकमेणावट्ठिदाणि त्ति घेत्तव्वाणि। तत्थ सव्वुक्कस्ससंकिलिट्ठस्स मिच्छत्तादिसु पडिवदमाणयस्स जहण्णाणि होंति। तप्पाओग्गजहण्णसंकिलिट्ठस्स उक्कस्साणि भवंति।

---

§ ३४. इससे आगे जो संयमलब्धिस्थान हैं उन्हें बतलाते हैं। वे प्रतिपात आदिके भेदसे तीन प्रकारके हैं इस प्रकार इस सूत्रद्वारा प्ररूपणा की गई है। अब सामान्यसे निर्दिष्ट इन्हीं तीनों ही प्रकारके स्थानोंके स्वरूपविशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र-प्रबन्ध आया है—

*** प्रतिपातस्थान यथा—जिस स्थानमें स्थित संयत मिथ्यात्वको अथवा असंयमसम्यक्त्वको अथवा संयमासंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान है।**

§ ३५. जिस स्थानमें स्थित संयत जीव संक्लेशकी बहुलतावश गिरता हुआ मिथ्यात्वको अथवा असंयमसम्यक्त्वको अथवा संयमासंयमको प्राप्त होता है वह प्रतिपातस्थान कहा जाता है।

शंका—ऐसा किस कारणसे?

समाधान—जिस स्थानसे नीचेके गुणस्थानोंमें गिरता है इस प्रकार प्रतिपात शब्दकी व्युत्पत्तिके कारण इसे प्रतिपातस्थान कहा है। और वे मिथ्यात्व प्रतिपात, असंयमसम्यक्त्व प्रतिपात और संयमासंयम प्रतिपातको विषय करनेवाले होनेसे तीन प्रकारके होकर प्रत्येक जघन्य लब्धिस्थानसे लेकर उत्कृष्ट लब्धिस्थान तक षट्स्थानपतित वृद्धिक्रमसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिये। उनमेंसे मिथ्यात्व आदिमें गिरनेवाले सर्वोत्कृष्ट संक्लेशयुक्त संयतके जघन्य प्रतिपातलब्धिस्थान होते हैं। तथा तत्प्रायोग्य जघन्य संक्लेश परिणामवालेके उत्कृष्ट प्रतिपातलब्धिस्थान होते हैं।

※ उप्पादयट्ठाणं णाम जहा—जम्हि ट्ठाणे संजमं पडिवज्जइ तमुप्पादयट्ठाणं णाम ।

§ ३६. संयममुत्पादयतीत्युत्पादकः प्रतिपद्यमान इत्यर्थः । तस्य स्थानमुत्पादकस्थानं पडिवज्जमाणट्ठाणमिदि वुत्तं होइ । तं पुण मिच्छाइट्ठिस्स वा असंजदसम्माइट्ठिस्स वा संजदासंजदस्स वा संजमं गेण्हमाणस्स तप्पाओग्गविसुद्धस्स पढमसमये जहण्णयं होइ । सव्वविसुद्धस्स उक्कस्सं होइ । मज्झिमवियप्पाणि ट्ठिदाणि पुण असंखेज्जलोगमेत्ताणि उप्पादट्ठाणाणि छवड्ढीए समवट्ठिदाणि दट्ठव्वाणि ।

※ सव्वाणि चेव चरित्तट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि ।

§ ३७. एत्थ सव्वग्गहणेण पडिवाद-पडिवज्जमाण-अपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणं सव्वेसिं पादेक्कमसंखेज्जलोयमेयभिण्णाणं गहणं कायव्वं । तदो ताणि सव्वाणि घेत्तूण चरित्तलद्धिट्ठाणाणि होंति त्ति सुत्तत्थसंगहो । अथवा सव्वाणि चेव लद्धिट्ठाणाणि त्ति भणिदे उप्पादट्ठाणाणि पडिवादट्ठाणाणि च मोत्तूण सेसाणि सव्वाणि चेव संजमट्ठाणाणि अपडिवादापडिवज्जमाणविसयाणि लद्धिट्ठाणाणि त्ति अत्थो घेत्तव्वो। एवं पमाणाणुविद्धमेदेसिं ट्ठाणाणं परूवणं कादूण संपहि एदेसिं परिमाणविसयणिण्णयसमुप्पायणट्ठमप्पाबहुअं भणइ—

※ उत्पादकस्थान यथा—जिस स्थानमें संयमको प्राप्त होता है वह उत्पादकस्थान है।

§ ३६. संयमको उत्पन्न करता है, इसलिये उत्पादक संज्ञा है। उत्पादक अर्थात् प्रतिपद्यमान यह इसका तात्पर्य है। उसका स्थान उत्पादकस्थान अर्थात् प्रतिपद्यमानस्थान यह इसका भाव है। किन्तु वह, जो मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव संयमको ग्रहण करता है, तत्प्रायोग्य विशुद्ध उसके संयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें जघन्य होता है तथा सर्व विशुद्ध संयतके उत्कृष्ट होता है। मध्यम भेदरूप उत्पादकस्थान तो षट्स्थानपतित वृद्धिरूपसे अवस्थित असंख्यात लोकप्रमाण जानने चाहिए।

※ तथा सभी चारित्रस्थान लब्धिस्थान हैं।

§ ३७. यहाँ 'सर्व' पदका ग्रहण किया है सो उससे प्रत्येक असंख्यात लोकप्रमाण भेदोंसे जुदे ऐसे प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान इन सबका ग्रहण करना चाहिए। इसलिए उन सबको मिलाकर चारित्रलब्धिस्थान होते हैं यह सूत्रार्थसमुच्चय है। अथवा सभी लब्धिस्थान हैं ऐसा कहने पर उत्पादकस्थान और प्रतिपातस्थानोंको छोड़कर शेष सभी अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंको विषय करनेवाले संयमस्थान लब्धिस्थान हैं ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्रमाण सहित इन स्थानोंका कथन करके अब इनके परिमाण विषयक निर्णयको उत्पन्न करनेके लिये अल्पबहुत्वको कहते हैं—

* एदेसिं लद्धिट्ठाणाणमप्पाबहुअं ।

§ ३८. एत्थ दुविहमप्पाबहुअं लद्धिट्ठाणसंखाविसयं तिव्वमंददाविसयं च । तत्थ तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअमुवरि कस्सामो । एदेसिं लद्धिट्ठाणाणं ताव संखा-विसयमप्पाबहुअं कस्सामो त्ति एदेण सुत्तेण पइण्णा कदा होइ ।

* तं जहा ।

§ ३९. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

* सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि ।

§ ४०. हेट्ठिमगुणट्ठाणेसु पडिवदमाणस्स चरिमसमये असंखेज्जलोगमेत्ताणि लद्धि-ट्ठाणाणि घेत्तूण एदाणि सव्वत्थोवाणि त्ति भणिदं होइ ।

* उप्पादयट्ठाणाणि[1] असंखेज्जगुणाणि ।

§ ४१. उप्पादयट्ठाणाणि त्ति वा पडिवज्जमाणट्ठाणाणि त्ति वा एयट्ठो । तदो संजमं पडिवज्जमाणस्स पढमसमये समुवलद्धसव्वट्ठाणाणि घेत्तूणेदाणि पुव्विल्लेहिंतो असंखेज्जगुणाणि जादाणि । गुणगारपमाणमेत्थासंखेज्जा लोगा ।

---

* अब इन लब्धिस्थानोंका अल्पबहुत्व कहते हैं ।

§ ३८. यहाँ पर अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—लब्धिस्थानसंख्याविषयक और तीव्र-मन्दताविषयक । उनमेंसे तीव्र-मन्दताविषयक अल्पबहुत्वका आगे कथन करेंगे । सर्व प्रथम इन लब्धिस्थानोंके संख्याविषयक अल्पबहुत्वका कथन करेंगे यह इस सूत्र द्वारा प्रतिज्ञा की गई है ।

* वह जैसे ।

§ ३९. यह पृच्छावाक्य सुगम है ।

* प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं ।

§ ४०. नीचेके गुणस्थानोंमें गिरनेवाले संयतके अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाले असंख्यात लोकप्रमाण लब्धिस्थानोंको ग्रहण कर ये सबसे स्तोक हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उनसे उत्पादकस्थान असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४१. उत्पादकस्थान या प्रतिपद्यमानस्थान इन दोनोंका एक अर्थ है । अतः संयमको प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाले सब स्थानोंको ग्रहण कर ये स्थान पूर्वके स्थानोंसे असंख्यातगुणे हो जाते हैं । यहाँ पर गुणकारका प्रमाण असंख्यात लोक है । अर्थात् पूर्वमें कहे गये स्थानोंको असंख्यात लोकसे गुणित करने पर प्रतिपद्यमान स्थान उत्पन्न होते हैं ।

---

१. ता० प्रतौ उ [प्पा] दयट्ठाणाणि इति पाठः ।

* लद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि ।

§ ४२. किं कारणं ? पडिवादट्ठाणाणि उप्पादयट्ठाणाणि पुणो एत्तो असंखेज्जगुणअपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणि च विसईकरिय एदेसिं पवुत्तिदंसणादो । तदो सिद्धमेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं । गुणगारो च असंखेज्जा लोगा ।

§ ४३. अथवा एदमप्पाबहुअमेवं कायव्वं । सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि । पडिवज्जट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । अपडिवादापडिवज्जट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि । सव्वाणि लद्धिट्ठाणाणि विसेसाहियाणि । केत्तियमेत्तेण ? पडिवादपडिवज्जमाणट्ठाणमेत्तेणे त्ति ।

§ ४४. एवमेदेसिं पमाणविसयमप्पाबहुअं कादूण संपहि एदेसिं चेव तिव्वमंददाए संजमविसेसमस्सियूण थोवबहुत्तपरूवणट्ठमेत्थ ताव बालजणाणुग्गहट्ठमेसो संदिट्ठिविण्णासो ०००००००००००००००००००० । अंतरं । संजदस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णलद्धिट्ठाणं सव्वत्थोवं । तं कस्स ? सव्वसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्तं गच्छमाणस्स । तस्सेव उक्कस्स० अणंतगुणं । तं कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स मिच्छत्तं

---

* उनसे लब्धिस्थान असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४२. क्योंकि प्रतिपातस्थान, उत्पादकस्थान तथा इनसे असंख्यातगुणे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान इन सबको विषयकर इन लब्धिस्थानोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसलिए पूर्वोक्त स्थानसे ये असंख्यात गुणे हैं यह सिद्ध हुआ । गुणाकार असंख्यात लोकप्रमाण है ।

§ ४३. अथवा इस अल्पबहुत्वको इस प्रकार करना चाहिए—प्रतिपातस्थान सबसे थोड़े हैं । उनसे प्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं । उनसे अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान असंख्यातगुणे हैं । उन सबसे सभी लब्धिस्थान विशेष अधिक हैं । कितने अधिक हैं ? प्रतिपातस्थान और प्रतिपद्यमानस्थानोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं।

विशेषार्थ—यहाँ पर 'अथवा' कहकर पूर्वोक्त अल्पबहुत्वको ही प्रकारान्तरसे समझाया गया है । पूर्वमें प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान और लब्धिस्थान ऐसा विभाग करके अल्पबहुत्व बतलाया गया है । यहाँ अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थानोंकी गणना पृथक्‌से नहीं की गई है । किन्तु 'अथवा' कहकर जो अल्पबहुत्व बतलाया गया है उसमें प्रतिपातस्थान, प्रतिपद्यमानस्थान, अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमानस्थान और लब्धिस्थान ऐसा विभाग करके अल्पबहुत्व बतलाया गया है । शेष कथन अल्पबहुत्वको ध्यानमें लेनेसे ही समझमें आ जाता है ।

§ ४४. इस प्रकार इनका प्रमाणविषयक अल्पबहुत्व करके अब इन्हींकी तीव्र-मन्दताद्वारा संयमविशेषका आलम्बन कर अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये यहाँ पर सर्वप्रथम बालजनोंके अनुग्रहके लिये यह संदृष्टि विन्यास है—०००००००००००००००००००० । अन्तर । प्रतिपातमान संयतका जघन्य लब्धिस्थान सबसे स्तोक है । वह किसके होता है ? मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले सर्व संक्लिष्ट संयतके होता है । उससे उसीके उत्कृष्ट स्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट संयतके

गच्छमाणस्स चरिमसमये भवदि । ००००००००००००००००००००० । अंतरं । असंजदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जह० अणंतगुणं । तं कस्स ? सव्वसंकिलिट्ठस्स । तस्सेव उक्क० अणंतगुणं । तं कस्स । तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स चरिमसमए भवदि ।०००००००००००००००००००००० । अंतरं । संजमासंजमं गच्छमाण० जह० पडिवा० अणंतगुणं । तं कस्स ? सव्वसंकिलिट्ठ० । तस्सेव उक्क० अणंतगुणं । तं कस्स ? तप्पाओग्ग० संकिलिट्ठस्स चरिमसमए भवदि ।

§ ४८. ०००००००००००००००००००००००००००००००००००००० अंतरं । कम्मभूमि० संजमं पडिवज्ज० जह० अणंतगु० । तं कस्स भरहक्खेत्तणिवासि० मिच्छाइट्ठिस्स संजमं गेण्ह० पढमसमय० । अकम्मभूमि० पडिवज्ज० जह० अणंत-

---

अन्तिम समयमें होता है । ००००००००००००००००००००० । अन्तर । उससे असंयतसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले संयतके जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? सर्वसंक्लिष्टके होता है । उससे उसीके उत्कृष्ट स्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्टके अन्तिम समयमें होता है । ००००००००००००००००००००० । अन्तर । उससे संयमासंयमको ग्रहण करनेवाले संयतके जघन्य प्रतिपातस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? सर्वसंक्लिष्टके होता है । उससे उसीके उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? तत्प्रायोग्य संक्लिष्टके अन्तिम समयमें होता है ।

विशेषार्थ—संयम लब्धिस्थान तीन प्रकारके हैं यह पहले बतला आये हैं । उनमेंसे सबसे हीन लब्धिवाले प्रतिपात लब्धिस्थान हैं, क्योंकि संयमभावसे च्युत होनेवाले जीवोंके संक्लेशकी प्रचुरताके सद्भावसे ये स्थान प्राप्त होते हैं । वे प्रतिपातस्थान भी तीन प्रकारके हैं—गिरकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके प्रतिपातस्थान, गिरकर असंयतसम्यग्दृष्टिको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके प्रतिपातस्थान और गिरकर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके प्रतिपातस्थान । इनके जघन्य प्रतिपातस्थानसे उत्कृष्ट प्रतिपातस्थानके अल्पबहुत्वका क्रम भी इसी क्रमसे है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है । सबसे जघन्य प्रतिपातस्थान गिरकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके होता है । उत्कृष्ट प्रतिपातस्थान उन्हींके अन्तिम समयमें होता है । मध्यके उन्हींके असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिपातस्थान इन दोनोंके बीचमें होते हैं । इन सब स्थानोंको यहाँ अंक संदृष्टिमें शून्यों द्वारा दिखलाया गया है । आगे अन्तर है । जो असंख्यात लोकप्रमाण लब्धिस्थानोंके बराबर है । अन्तर समाप्त होने पर पुनः जो प्रतिपात लब्धिस्थान प्राप्त होते हैं वे गिरकर असंयत सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके होते हैं । जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक ये भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं । आगे उक्त प्रकारसे अन्तर है । अन्तर समाप्त होने पर पुनः प्रतिपात लब्धिस्थान प्राप्त होते हैं जो गिरकर संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयत जीवोंके होते हैं । इस प्रकार ये सब मध्यमें अन्तर सहित प्रतिपात संयमलब्धिस्थान जानने चाहिए ।

§ ४५. ००००००००००००००००००००००००००००००००००००००० । अन्तर । उससे संयमको प्राप्त होनेवाले कर्मभूमिज मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? जो भरतक्षेत्रका निवासी मिथ्यादृष्टि मनुष्य संयमको ग्रहण करता है उसके संयम ग्रहणके प्रथम समयमें होता है । उससे संयमको ग्रहण करनेवाले अकर्मभूमिज

गुण० । तं कस्स ? सेसपंचखंडणिवासि० मिच्छाइट्ठि० तप्पाओग्ग० विसुद्ध० संजमं गेण्हमाणस्स पढमसमय० । तस्सेव उक्क० पडिवज्ज० अणंतगुणं । तं कस्स ? संजदासंजदस्स सव्वविसुद्ध० संजमं गेण्ह० पढमसमय० । कम्मभूमि० पडिवज्जमा० उक्क० अणंतगुण० । तं कस्स ? संजदासंजद० सव्वविसुद्धस्स संजमं गेण्ह० पढमसमए होदि ।

§ ४६. ०० अंतरं । एत्थ उवरिमाणि सामाइयच्छेदो० अपडिवादा-पडिवज्ज०ट्ठाणाणि । हेट्ठिमाणि परिहारसुद्धिसंजमस्स । तत्थ परिहारसुद्धिसंजद० जह० पडिवाद० अणंतगुणं । तं कस्स ? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स सामाइयच्छेदोवट्ठावणाहि-मुहस्स चरिमसमए होदि । तस्सेव उक्क० अणंतगुणं । तं कस्स ? सव्वविसुद्धस्स परिहारसंजदस्स । सामाइयच्छेदोव० उक्क० संजद० अणंतगु० । तं कस्स ? सव्व-विसुद्ध० से काले सुहुमसांपराय० संज० गाह० । एदेसिं जह० मिच्छत्तं गच्छ० सव्वसंकिलि० चरिमसमए भवदि । तेणेत्थ ण भणिदं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ४७. ०००००००००००००००००० । अंतरं । सुहुमसांप० जह० पडिवाद० अणंतगु० । तं कस्स ? तप्पाओग्गविसुद्ध० अणियट्टि० अहिमुहस्स सुहुम० । तस्सेव

मनुष्यका जघन्य लब्धिस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? जो शेष पाँच खण्डोंका निवासी मिथ्यादृष्टि मनुष्य तत्प्रायोग्य विशुद्ध होकर संयमको ग्रहण करता है उसके संयम ग्रहणके प्रथम समयमें होता है । संयमको ग्रहण करनेवाले उसीके उत्कृष्ट अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? जो संयतासंयत सर्वविशुद्ध होकर संयमको ग्रहण करता है उसके संयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें होता है । उससे कर्मभूमिजका उत्कृष्ट प्रतिपद्यमान लब्धिस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? जो संयतासंयत सर्वविशुद्ध होकर संयम को ग्रहण करता है उसके संयम ग्रहणके प्रथम समयमें होता है ।

§ ४६. ००। अन्तर । यहाँ पर उपरिम अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थान सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयत जीवके हैं । अधस्तन स्थान परिहारशुद्धि संयत जीवके होते हैं । उनमेंसे परिहारशुद्धि संयत जीवका जघन्य प्रतिपात स्थान पूर्वके स्थानसे अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयमोंके अभिमुख हुए तत्प्रायोग्य संक्लिष्ट संयतके अन्तिम समयमें होता है । उससे उसीका उत्कृष्ट अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? सर्वविशुद्ध परिहारशुद्धिसंयतके होता है । उससे सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतका उत्कृष्ट अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? तदनन्तर समयमें सूक्ष्मसाम्परायशुद्धि संयमको ग्रहण करनेवाले सर्वविशुद्ध उक्त संयतके होता है । जो अगले समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त करेंगे ऐसे सर्वसंक्लिष्ट इनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थान होता है । इसलिये यहाँ उसका कथन नहीं किया ।

§ ४७. ०००००००००००००००००० । अन्तर । उससे सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत का जघन्य प्रतिपातस्थान अनन्तगुणा है । वह किसके होता है ? अनिवृत्तिकरणके अभिमुख हुए तत्प्रायोग्य विशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतके होता है । उससे उसीका उत्कृष्ट अनन्त-

उक्क० अणंतगु० । तं कस्स ? सव्वविसुद्ध० सुहुमखवग० चरिमसमए भवदि । वीय-मार्गदर्शक रायस्स अजहण्णमणुक्कस्सं अणंतगुणं। कसायाभावादो एयवियप्पं चेव । तं पुण उवसंत०-खीणकसाय-सजोगि-अजोगीणं घेत्तव्वं । एवमेदीए संदिट्ठीए अणिदपडिबोहाणं सिस्साणमिदाणिं तिव्वमंददाविसयमप्पाबहुअं सुत्ताणुसारेण वत्तइस्सामो । तं जहा—

* तिव्वमंददाए सव्वमंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं ।

§ ४८. कुदो ? सव्वुक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तं गच्छमाणस्स चरिमसमए एदस्स गहणादो ।

* तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

§ ४९. कुदो ? तप्पाओग्गसंकिलेसेण मिच्छत्तपडिवादाहिमुहस्स चरिमसमये पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि समुल्लंघिऊणेदस्स समुप्पत्तिदंसणादो ।

* असंजदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

§ ५०. कुदो ? पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि अंतरियूणेदस्स समुप्पण्णत्तादो । पुव्विल्लुक्कस्सट्ठाणादो कथमेदस्स जहण्णलद्धिट्ठाणस्साणंतगुणत्तसंभवो त्ति

गुणा है । वह किसके होता है ? सर्वविशुद्ध सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत क्षपकके अन्तिम समय में होता है । उससे वीतरागका अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थान अनन्तगुणा है । वह कषायके अभावके कारण एक ही प्रकारका है । परन्तु वह उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगी जिन और अयोगी जिनका ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार इस संदृष्टि द्वारा जिनको प्रतिबोध हुआ है ऐसे शिष्योंको इस समय तीव्र-मन्दताविषयक अल्पबहुत्वको सूत्रके अनुसार बतलावेंगे । यथा—

* तीव्र-मन्दताकी अपेक्षा मिथ्यात्वको प्राप्त करनेवाले संयतके जघन्य संयम-स्थान सबसे मन्द अनुभागवाला होता है ।

§ ४८. क्योंकि सबसे उत्कृष्ट संक्लेशके साथ मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले संयतके अन्तिम समयमें इसका ग्रहण किया है ।

* उससे उसीके उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।

§ ४९. क्योंकि तत्प्रायोग्य संक्लेशसे मिथ्यात्वमें गिरनेके सन्मुख हुए संयतके अन्तिम समयमें पूर्वके संयमस्थानसे असंख्यात लोक प्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर इसकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

* उससे असंयत सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले संयतके जघन्य संयमस्थान अनन्त-गुणा है ।

§ ५०. क्योंकि पूर्वके संयमस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर यह स्थान उत्पन्न हुआ है ।

णासंकणिज्जं, मिच्छत्तपडिवादविसयजहण्णसंकिलेसादो वि सम्मत्तपडिवादविसय-उक्कस्ससंकिलेसस्साणंतगुणहीणत्तमस्सियूण तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो ।

*** तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ५१. कुदो ? पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उल्लंघियूणेदस्स समुप्पत्तिदंसणादो ।

*** संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ५२. कुदो ? पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि अंतरियूणेदस्स समुप्पाददंसणादो ।

*** तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ५३. किं कारणं ? पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्ता० छट्ठाणाणि उल्लंघियूणेदस्स समुप्पत्तिदंसणादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

शंका—पूर्वके उत्कृष्ट स्थानसे इस जघन्य लब्धिस्थानका अनन्तगुणापना कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्वमें प्रतिपातविषयक जघन्य संक्लेशसे भी सम्यक्त्वमें प्रतिपातविषयक उत्कृष्ट संक्लेशके अनन्तगुणे हीनपनेको देखते हुए उसके उस प्रकार सिद्ध होनेमें विरोधका अभाव है ।

*** उससे उसीके उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ५१. क्योंकि पूर्वके जघन्य स्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघन कर इस स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले संयतके जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ५२. क्योंकि पूर्वके उत्कृष्ट स्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर इस स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे उसीके उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ५३. क्योंकि पूर्वके जघन्य स्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानोंको उल्लंघनकर इस स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे संयमको प्राप्त करनेवाले कर्मभूमिज मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ५४. कुदो ? संकिलेसणिबंधणपडिवादट्ठाणादो पुव्विल्लादो तव्विवरीदसरूवस्सेदस्स जहण्णत्ते वि अणंतगुणभावसिद्धीए णायोववण्णत्तादो। एत्थ 'कम्मभूमियस्से'त्ति वुत्ते पण्णारसकम्मभूमीसु मज्झिमखंडसमुप्पण्णमणुस्सस्स गहणं कायव्वं, कर्मभूमिषु जातः कर्मभूमिज इति तस्य तद्व्यपदेशार्हत्वात्।

*** अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं।**

§ ५५. पुव्विल्लादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूणेदस्स समुप्पत्तीए। को अकम्मभूमिओ णाम ? भरहेरावयविदेहेसु विणीदसण्णिदमज्झिमखंडं मोत्तूण सेसपंचखंडणिवासी मणुओ एत्थाकम्मभूमिओ त्ति विवक्खिओ, तेसु धम्म-कम्मपवुत्तीए[1] असंभवेण तब्भावोववत्तीदो। जइ एवं, कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टीखंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टिआदीहि सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो। अथवा तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नमातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीह विवक्षिताः। ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं, तथा जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावादिति।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

---

§ ५४. क्योंकि संक्लेशनिमित्तक पूर्वके प्रतिपातस्थानसे उससे विपरीत स्वरूपवाले इसके जघन्य होनेपर भी अनन्तगुणपनेकी सिद्धि न्याययुक्त है। यहाँपर 'कर्मभूमिजके' ऐसा कहनेपर पन्द्रह कर्मभूमियोंमेंसे मध्यम खण्डमें उत्पन्न हुए मनुष्यका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कर्मभूमियोंमें उत्पन्न हुआ कर्मभूमिज है इस प्रकार वह इस संज्ञाके योग्य है।

*** उससे संयमको प्राप्त करनेवाले अकर्मभूमिज मनुष्यका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है।**

§ ५५. क्योंकि पूर्वके संयमस्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान आगे जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति हुई है।

शंका—अकर्मभूमिज कौन कहलाता है ?

समाधान—भरत, ऐरावत और विदेहमें विनीत संज्ञावाले मध्यम खण्डको छोड़कर शेष पाँच खण्डका निवासी मनुष्य यहाँ पर अकर्मभूमिज इस रूपसे विवक्षित है, क्योंकि उनमें धर्म-कर्मकी प्रवृत्ति असम्भव होनेसे अकर्मभूमिजपनेकी उत्पत्ति बन जाती है।

शंका—यदि ऐसा है तो उनमें संयम ग्रहण कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि दिशाविजयमें प्रवृत्त हुए चक्रवर्तीके स्कन्धावार (सेना) के साथ जो मध्यम खण्डमें आये हैं तथा चक्रवर्ती आदिके साथ जिन्होंने वैवाहिक सम्बन्ध किया है ऐसे म्लेच्छराजाओंके संयमकी प्राप्तिमें विरोधका अभाव है। अथवा उनकी जो कन्याएँ चक्रवर्ती आदिके साथ विवाही गईं उनके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तान मातृपक्षकी अपेक्षा स्वयं अकर्मभूमिज है यह यहाँ पर विवक्षित है। इसलिये कुछ निषिद्ध नहीं है, क्योंकि इस प्रकारकी जातिवालोंके दीक्षाके योग्य होनेमें प्रतिषेध नहीं है।

---

१ धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः। आदिपु०

* तस्सेवुक्कस्सयं पडिवज्जमाणयस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

§ ८६. कुदो ? पुव्विल्लजहण्णट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरिमब्भु-स्सरिदूणेदस्स समुप्पत्तिदंसणादो ।

* कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

§ ८७. कुदो ? खेत्तमाहप्पेण पुव्विल्लादो एदस्स तहाभावसिद्धीए बाहाणुवलंभादो ।

* परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

§ ८८. एदं कत्थ होइ ? परिहारसुद्धिसंजदस्स तप्पाओग्गसंकिलेसेण सामाइय-छेदोवट्ठावणाहिमुहस्स चरिमसमये होइ । एदं पुण सामाइय-छेदोवट्ठावणाणमपडिवादा-पडिवज्जमाणा० जहण्णसंजमलद्धिट्ठाणप्पहुडि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि उवरि गंतूण तदित्थसंजमलद्धिट्ठाणेण सरिसं होदूण समुप्पण्णं । तदो सिद्धमेदस्स पडिवादाहिमुहत्ते सत्थाणे सव्वजहण्णत्ते वि परिहारसंजममाहप्पेण पुव्विल्लादो अणंतगुणत्तं ।

* तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।

---

* उससे संयमको प्राप्त होनेवाले उसीके उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।

§ ८६. क्योंकि पूर्वके जघन्य स्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान ऊपर जाकर इस स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

* उससे संयमको प्राप्त होनेवाले कर्मभूमिज मनुष्यका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्त गुणा है ।

§ ८७. क्योंकि क्षेत्रके माहात्म्यवश पूर्वके संयमस्थानसे इसके अनन्तगुणे सिद्ध होनेमें कोई बाधा नहीं उपलब्ध होती ।

* उससे परिहारशुद्धि संयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है ।

§ ८८. शंका—यह कहाँ पर होता है ?

समाधान—तत्प्रायोग्य संक्लेशवश सामायिक-छेदोपस्थापना संयमोंके अभिमुख हुए परिहारशुद्धिसंयतके अन्तिम समयमें होता है ।

परन्तु यह अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान सामायिक-छेदोपस्थापनासम्बन्धी जघन्य संयम-लब्धिसे लेकर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान ऊपर जाकर वहाँ प्राप्त संयमलब्धि स्थानके सदृश होकर उत्पन्न हुआ है । इस लिये इसके प्रतिपातके अभिमुख होकर स्वस्थानमें सबसे जघन्य होने पर भी परिहारशुद्धि संयमके माहात्म्यवश पूर्वके स्थानसे अनन्तगुणापना सिद्ध होता है ।

* उससे उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।

§ ५९. कुदो ? पुव्विल्लजहण्णट्ठाणादो असंखेज्जलोगमेत्तट्ठाणमुवरि गंतूण सामाइय-छेदोवट्ठावणाणमपडिवादापडिवज्जमाणट्ठाणाणमब्भंतरे समयाविरोहेणेदस्स समुप्पत्ति-दंसणादो ।

*** सामाइयच्छेदोवट्ठावणियाणमुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ६०. कुदो ? सामाइयच्छेदोवट्ठावणियाणमजहण्णाणुक्कस्सअपडिवादापडिवज्ज-माणट्ठाणेण समाणभावेण पुव्विल्लुक्कस्सट्ठाणे णिद्दिट्ठे तदो णिरंतरकमेण पुणो वि तत्तो उवरि असंखेज्जलोगमेत्ताणि छट्ठाणाणि गंतूणेदस्स अणियट्टिखवगचरिमसमये समुप्पत्तिदंसणादो ।

*** सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ६१. बादरकसायाणुविद्धुक्कस्ससंजमलद्धीदो सुहुमकसायाणुविद्धजहण्णसंजम-लद्धीए वि अणंतगुणत्तं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो । एदं पुण सुहुमसांपराइयस्स उवसामियस्स परिवदमाणयस्स चरिमसमए घेत्तव्वं जी महाराज

*** तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं ।**

§ ६२. सुहुमसांपराइयक्खवगस्स चरिमसमये सव्वुक्कस्सविसोहिणिबंधणस्सेदस्स पुव्विल्लजहण्णपरिणामादो अणंतगुणत्तसिद्धीए विरोहाभावादो ।

---

§ ५९. क्योंकि पहलेके जघन्य स्थानसे असंख्यात लोकप्रमाण स्थान ऊपर जाकर सामायिक-छेदोपस्थापनासम्बन्धी अप्रतिपात-अप्रतिपद्यमान स्थानोंके भीतर यथागम इस स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे सामायिक-छेदोपस्थापना संयतोंका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुण है ।**

§ ६०. क्योंकि सामायिक-छेदोपस्थापनाके अजघन्य-अनुत्कृष्ट अप्रतिपात-अप्रतिपद्य-मान स्थानके समान पूर्वके उत्कृष्ट स्थानका निर्देश करनेपर तत्पश्चात् निरन्तर क्रमसे फिर भी उससे ऊपर असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान जाकर इस स्थानकी अनिवृत्तिकरण क्षपकके अन्तिम समयमें उत्पत्ति देखी जाती है ।

*** उससे सूक्ष्मसाम्परायिक संयतका जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ६१. बादर कषायके रहते हुए होनेवाली उत्कृष्ट संयमलब्धिसे सूक्ष्मकषायमें होने-वाली संयमलब्धि भी अनन्तगुणी होती है, इसके सिवाय वहाँ अन्य प्रकार सम्भव नहीं है । परन्तु यह जो उपशामक गिरकर सूक्ष्मसाम्परायमें आया है उसके अन्तिम समयकी लेनी चाहिए ।

*** उससे उसीका उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ६२. सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके अन्तिम समयमें सर्वोत्कृष्ट विशुद्धिनिमित्तक इसके पहलेके जघन्य परिणामसे अनन्तगुणे सिद्ध होनेमें विरोधका अभाव है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** वीयरायस्स अजहण्णमणुक्कस्सय चरित्तलद्धिट्ठाणमणंतगुणं ।**

६३. कुदो ? खीणोवसंतकसाएसु केवलीसु च जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमलद्धीए एत्थ विवक्खियत्तादो । एसा उवसंतकसायभयवंतये जहण्णा होदु, खीणकसाय-सजोगि-अजोगीसु च उक्कस्सिया होउ, खइयलद्धिपाहम्मादो त्ति णासंकणिज्जं, खीणोवसंतकसाएसु कसायाभावेण अवट्ठिदसंजमपरिणामेसु जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमस्स भेदाणुवलंभादो ।

एवमप्पाबहुए समत्ते तदो 'लद्धी तहा चरित्तस्से'त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

*** उससे वीतरागका अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्रलब्धिस्थान अनन्तगुणा है ।**

§ ६२. क्योंकि क्षीणकषाय, उपशान्तकषाय और केवलियोंमें जघन्य और उत्कृष्ट विशेषणसे रहित यथाख्यातविहारशुद्धि संयमलब्धिकी यहाँ पर विवक्षा है ।

शंका—यह उपशान्तकषाय भगवन्तके जघन्य होओ तथा क्षीणकषाय, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिकलब्धिके माहात्म्यवश उत्कृष्ट होओ ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि क्षीणकषाय और उपशान्त-कषाय जीवोंमें कषायोंका अभाव होनेसे अवस्थित संयम परिणाम होनेपर यथाख्यातविहार-शुद्धिसंयममें भेद नहीं उपलब्ध होता ।

इस प्रकार अल्पबहुत्वके समाप्त होनेपर 'लद्धी तहा चरित्तस्स' के अनुसार संयमलब्धि अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

●

---

१. ता० प्रतौ तहेव इति पाठः—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारश्रोवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

चरित्तमोहणीय-उवसामणा णाम चोद्दसमो अत्थाहियारो

—:※:—

उवसमिदसयलदोसे उवसंतकसायवीयरायंते ।
उवसामए पणमिउं कसायउवसामणं वोच्छं ॥१॥

जिन्होंने समस्त दोषोंको उपशान्त कर लिया है ऐसे उपशान्त कषाय वीतराग पर्यन्त समस्त उपशामकों को नमस्कार कर कषाय-उपशामक नामक अनुयोगद्वारका कथन करेंगे ॥१॥

*** चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं।**

§ १. दंसणमोहणीयस्स उवसामणा खवणा च पुव्वं परूविदा, चरित्तमोहणीयस्स वि खयोवसमलद्धिलक्खणा देसोवसामणा संजमासंजम-संजम-लद्धिभेदेण दुविहा विहत्ता अणंतरमेव विहासिदा। संपहि चरित्तमोहणीयस्स सव्वोवसामणा विहाणपरूवणट्ठमेसो चोद्दसमो अत्थाहियारो चरित्तमोहोवसामणासण्णिदो समोइण्णो। एवमवहारिदसंबंधस्सेदस्स अत्थाहियारस्स परूवणाए पुव्वमेव ताव सुत्तमणुगंतव्वं, अण्णहा सुत्ताणुसारीणमेत्थाणादरप्पसंगादो, सुत्तावलंबणेण विणा पयदपरूवणाए णिव्वहणाणुववत्तीदो चेदि एसो एदस्स सुत्तस्स समुदायत्थो। एत्थ य अट्ठ गाहासुत्ताणि होंति। कुदो एदं परिच्छिज्जदे? 'अट्ठेवुवसामणद्धम्मि' इदि संबंधगाहावयवेण तहोवइट्ठत्तादो। तदो तेसिमवसरकरणट्ठं पुच्छावक्कमाह —

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तं जहा।**

§ २. सुगममेदं पुच्छावक्कं। एवं च पुच्छाविसईकयाणमट्ठण्हं गाहासुत्ताणं जहाकममेसो सरूवणिद्देसो—

*** चारित्रमोहनीय-उपशामक नामक अनुयोगद्वारमें सर्व प्रथम गाथासूत्र ज्ञातव्य है।**

§ १. दर्शनमोहनीय उपशामना और क्षपणाका पहले कथन किया तथा चारित्रमोहनीय की क्षयोपशमलब्धि लक्षणवाली संयमासंयम और संयमलब्धिके भेदसे दो प्रकारकी देशोपशामनाका भी अनन्तर पूर्व ही व्याख्यान किया। अब चारित्रमोहनीय-सर्वोपशामनाका कथन करनेके लिये चारित्रमोहोपशामना संज्ञावाला यह चौदहवाँ अर्थाधिकार अवतीर्ण हुआ है। इस प्रकार जिसके सम्बन्धका निश्चय किया है ऐसे इस अर्थाधिकारकी प्ररूपणामें पूर्व ही सर्व प्रथम गाथासूत्र जानने योग्य है, अन्यथा सूत्रानुसारी शिष्योंको इसमें आदर न होनेका प्रसंग आता है तथा गाथासूत्रोंका अवलम्बन लिये बिना प्रकृत प्ररूपणाका निर्वाह नहीं हो सकता यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। यहाँ आठ गाथासूत्र हैं।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—'अट्ठेवुवसामणद्धम्मि' इस सम्बन्ध गाथाके एक पाद द्वारा उसी प्रकारका उपदेश पाया जाता है। इसलिए ज्ञात होता है कि इस अनुयोगद्वारमें आठ ही गाथासूत्र हैं।

इसलिए उनका अवसर करनेके लिये पृच्छावाक्यको कहते हैं—

*** वह जैसे।**

§ २. यह पृच्छावाक्य सुगम है। इस प्रकार पृच्छाके विषय किये गये गाथासूत्रोंका यथाक्रम यह स्वरूप निर्देश है—

(६३) उवसामणा कदिविधा उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स ।
कं कम्मं उवसंतं अणउवसंतं च कं कम्मं ॥११६॥

§ ३. एसा पढमा गाहा उवसामणाभेदणिद्देसट्ठमुवसामिज्जमाणकम्मविसेसावहारणट्ठमुवसंताणुवसंतपयडिसरूवणिरूवणट्ठं च समागया । संपहि एदिस्से किंचि अवयवत्थपरामरसं कस्सामो । तं जहा—'उवसामणा कदिविधा' एवं भणिदे पसत्थापसत्थभेदेण दुविहा उवसामणा होदि त्ति एवंपयारो तब्भेदणिद्देसो सूचिदो । 'उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स' एदेण वि सव्वेसिं कम्माणं किमेसा उवसामणा संभवइ, आहो णत्थि त्ति पुच्छं कादूण तदो सेसकम्मपरिहारेण मोहणीयविसये चेव पयदोवसामणासंभवो त्ति एवंविहा अत्थपरूवणा सूचिदा । 'कं कम्मं उवसंतं' एदम्मि वि गाहापच्छद्धसुत्तावयवे णवंसयवेदादिपयडीणं जहाकममुवसामिज्जमाणाणं कदमम्मि अवत्थाविसेसे कं कम्ममुवसंतं होइ, कं वा अणुवसंतमिच्चेवंविहा अत्थपरूवणा पडिबद्धा । एवमेसा संखेवेण पढमगाहाए अत्थपरूवणा । एदिस्से वित्थारत्थपरूवणमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेणेव कस्सामो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(६४) कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो ।
कदिभागं वा बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥११७॥

उपशामना कितने प्रकारकी होती है ? उपशम किस-किस कर्मका होता है ? कब कौन कर्म उपशान्त रहता है और कौन कर्म अनुपशान्त रहता है ॥११६॥

§ ३. यह प्रथम गाथा उपशामनाके भेदोंका निर्देश करनेके लिये, उपशमको प्राप्त होनेवाले कर्मविशेषोंका निश्चय करनेके लिये तथा उपशान्त और अनुपशान्त प्रकृतियोंके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये आई है। अब इसके किंचित् अवयवार्थका परामर्श करेंगे। वह जैसे—'उवसामणा कदिविधा' ऐसा कहने पर प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारकी उपशामना होती है इस प्रकार उक्त प्रकारसे उसके भेदोंका निर्देश किया है। 'उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स' इस वचन द्वारा भी सभी कर्मोंकी क्या यह उपशामना सम्भव है अथवा सम्भव नहीं है ऐसी पृच्छा करके पश्चात् शेषकर्मोंके परिहारद्वारा मोहनीय कर्मके विषयमें ही प्रकृत उपशामना सम्भव है इस प्रकारकी अर्थप्ररूपणा सूचित की गई है। 'कं कम्मं कस्स उवसंतं' गाथासूत्रके इस उत्तरार्धसम्बन्धी चरणमें भी क्रमसे उपशान्त होनेवाली नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंके किस अवस्था विशेषमें कौन कर्म उपशान्त होता है अथवा कौन कर्म अनुपशान्त रहता है इस प्रकारकी अर्थप्ररूपणा प्रतिबद्ध है। इस प्रकार संक्षेपसे प्रथम गाथाकी यह अर्थप्ररूपणा है। इसके विस्ताररूप अर्थकी प्ररूपणा आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे ही करेंगे।

चारित्रमोहकर्मकी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशपुञ्जके कितने भागका प्रति समय उपशमन करता है, संक्रमण करता है और उदीरणा करता है तथा कितने भागका बन्ध करता है ॥११७॥

§ ४. एसा विदियगाहा णिरुद्धचरित्तमोहपयडीए उवसामिज्जमाणाए समयं पडि उवसामिज्जमाणपदेसग्गस्स ट्ठिदि-अणुभागाणं च पमाणावहारणट्ठं पुणो तस्संबंधेणेव बज्झमाण-वेदिज्जमाण-संकामिज्जमाणोवसामिज्जमाणट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमप्पाबहुअ-विहाणट्ठं च समोइण्णा। तं जहा—'कदि भागुवसामिज्जदि' एवं भणिदे णिरुद्ध-चरित्तमोहपयडीए ट्ठिदिमुवसामेमाणो ट्ठिदीए केवडियं भागमुवसामेदि, केत्तिये भागे संकामेदि, कदिभागे वा उदीरेदि, केत्तियं वा भागं बंधदि। एवमणुभाग-पदेसाणं पि पादेक्कं पुच्छाणुगमो कायव्वो। तदो ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसाणमेत्तिओ एत्तिओ भागो उवसामिज्जदि संकामिज्जदि उदीरिज्जदि बज्झदि वा त्ति एवंविहो अत्थणिद्देसो एदम्मि गाहासुत्ते णिबद्धो त्ति घेत्तव्वो। एदस्स विसेसणिण्णयमुवरि चुण्णिसुत्त-संबंधेण कस्सामो।

(६५) केवचिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं।
केवचिरं उवसंतं अणुवसंतं च केवचिरं ॥११८॥

§ ५. एसा तदियगाहा उवसामणकिरियाए कालपमाणावहारणट्ठमागया। तं जहा—'केवचिरमुवसामिज्जदि' णिरुद्धचरित्तमोहणीयपयडिमुवसामेमाणो केवचिरेण कालेणुवसामेइ, किमेगसमयेण आहो अंतोमुहुत्तादिकालेणे त्ति एवंविहे कालणिद्देस-

---

§ ४. यह दूसरी गाथा विवक्षित चारित्रमोहनीय प्रकृतिका उपशम करनेकी अवस्थामें प्रति समय उपशामित होनेवाले प्रदेशपुञ्जके तथा स्थिति और अनुभागके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये पुनः उसीके सम्बन्धसे ही बन्धको प्राप्त होनेवाले, वेदे जानेवाले, संक्रमित होने-वाले और उपशमको प्राप्त होनेवाले स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये अवतीर्ण हुई है। जैसे—'कदि भागुवसामिज्जदि' ऐसा कहने पर विवक्षित चारित्रमोह प्रकृतिकी स्थितिका उपशम करता हुआ स्थितिके कितने भागका उपशम करता है, कितने भागोंका संक्रम करता है, कितने भागोंकी उदीरणा करता है और कितने भागको बाँधता है। इसीप्रकार अनुभाग और प्रदेशोंसम्बन्धी पृच्छाका भी पृथक्-पृथक् अनुगम करना चाहिए। इसलिये स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंके इतने-इतने भागको उपशमाता है, संक्रमित करता है, उदीरित करता है और बाँधता है इस प्रकारका अर्थविशेष इस गाथासूत्रमें निबद्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसका विशेष निर्णय आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे।

*** चारित्रमोहनीय कर्म-प्रकृतियोंका कितने काल द्वारा उपशमन करता है, उनका संक्रमण और उदीरणा कितने काल तक होती है, कौन कर्म कितने काल तक उपशान्त रहता है और कितने काल तक अनुपशान्त रहता है ॥११८॥**

§ ५. यह तीसरी गाथा उपशामन क्रियाके कालके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आया है। यथा—'केवचिरं उवसामिज्जदि' विवक्षित चारित्रमोहनीयकी प्रकृतिको उपशमाता करता हुआ कितने काल द्वारा उपशमाता है, क्या एक समय द्वारा या अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा इस प्रकार यह पृच्छा इस तरहके कालकी अपेक्षा करती है। अतएव कहना चाहिए कि अन्तर्मुहूर्त

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मुवेक्खदे एसा पुच्छा । तदो वत्तव्वं अंतोमुहुत्तेण त्ति, अंतोमुहुत्तेण कालेण विणा णवुंसयवेदादिपयडीणमुवसामणकिरियाए अपरिसमत्तीदो । तिस्से चेव उवसामिज्जमाण-पयडीए 'संकमणमुदीरणा च केवचिरं' कालं पयट्टदि त्ति एसा वि पुच्छा कालविसेसमेव जोएदि । एदिस्से पुच्छाए णिण्णयमुवरि कस्सामो । 'केवचिरं उवसंतं एवं भणिदे णवुंसयवेदादिकम्ममुवसंतं होदूण केवचिरं कालमवचिट्ठइ, किमेगसमयमाहो अंतो-मुहुत्तादिकालं । अथवा सव्वमेव चरित्तमोहणीयं सव्वोवसामणाए उवसंतं होदूण केत्तियं कालमवचिट्ठदि त्ति एसा वि पुच्छा उवसंतावत्थाए कालविसेसमुवेक्खदे । तदो वत्तव्वं जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमिदि । 'अणुवसंतं च केवचिरं' एसा वि पुच्छा अप्पसत्थोवसामणाए अणुवसंतावत्थाए कालणिद्देसमुवेक्खदे । एदस्स णिण्णय-मुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो त्ति णेह तप्पबंचो कीरदे ।

(६६) कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं च होइ कं करणं ।
कं करणं उवसंतं[1] अणउवसंतं च कं करणं ॥११९॥

§ ६. एसा चउत्थी मूलगाहा मूलुत्तरपयडीणमप्पसत्थोवसामणादिअट्ठकरणेसु उवसामगस्स कदमम्मि अवत्थाविसेसे 'कं करणं वोच्छिज्जदि', ण वोच्छिज्जदि त्ति एवंविहस्स[2] अत्थविसेसस्स पुच्छामुहेण णिच्छयविहाणट्ठमवइण्णा, पुव्व-पच्छद्धेहि करण-

काल द्वारा उपशमाता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कालके बिना नपुंसक वेद आदि प्रकृतियोंकी उपशामनक्रिया समाप्त नहीं होती । तथा उपशमित होनेवाली उसी प्रकृतिका संक्रमण और उदीरणा कितने काल तक प्रवृत्त रहती है इस प्रकार यह पृच्छा भी काल विशेषको स्वीकार करती है । इस पृच्छाका निर्णय आगे करेंगे । 'केवचिरं उवसंतं' ऐसा कहने पर नपुंसकवेद आदि कर्म उपशान्त होकर कितने कालतक ठहरते हैं ? क्या एक समय तक या अन्तर्मुहूर्त कालतक ? अथवा समस्त चारित्रमोहनीयकर्म सर्वोपशामनाद्वारा उपशान्त होकर कितने काल तक ठहरता है ? इसलिए कहना चाहिए कि समस्त चारित्रमोहनीय कर्म जघन्यसे एक समय तक और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कालतक उपशान्त रहता है । 'अणुवसंतं' यह पृच्छा भी अप्रशस्त उपशामनाके अनुपशान्त अवस्थाके कालका निर्देशकी अपेक्षा करती है । इसका निर्णय ऊपर चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे, इसलिए उसका विस्तार यहाँ नहीं करते हैं ।

उपशामककी किस अवस्थामें कौन करण व्युच्छिन्न हो जाता है और कौन करण अव्युच्छिन्न रहता है । तथा कौन करण उपशान्त रहता है और कौन करण अनुपशान्त रहता है ॥११९॥

§ ६. यह चौथी मूलगाथा मूल और उत्तर प्रकृतियोंके अप्रशस्त उपशामना आदि आठ करणोंमेंसे उपशामकके किस अवस्थामें कौन करण व्युच्छिन्न रहता है या व्युच्छिन्न नहीं रहता है इस प्रकार इस तरहके अर्थ विशेषका पृच्छाद्वारा निर्णय करनेके लिये आई है, क्योंकि

१. ता०प्रतौ कं उवसंतं करणं इति पाठः ।
२. ता०प्रतौ कं करणं वोच्छिज्जदि त्ति एवंविहस्स इति पाठः ।

वोच्छेदावोच्छेदाणं चेव णिण्णयकरणादो। सेसासेसविसेसणिण्णयमुवरि सुत्तसंबंधमेव कस्सामो। एवमेदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ उवसामगपरूवणाए पडिबद्धाओ। उवरिम-चत्तारि गाहाओ तस्सेव पडिवादपदुप्पायणे पडिबद्धाओ। तं जहा—

(६७) पडिवादो च कदिविधो कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो।
केसिं कम्मंसाणं पडिवदिदो बंधगो होइ ॥१२०॥

§ ७. एसा सव्वा वि गाहा पुच्छासुत्तं। तत्थ 'पडिवादो च कदिविधो' त्ति एसो पढमावयवो पडिवादभेदणिद्देसमुवेक्खदे। 'कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो' एसो वि विदियावयवो सव्वोवसामणादो पडिवदमाणगो पढमं कदमम्मि कसाये पडिवददि, किमविसेसेण, आहो अत्थि को वि बादर-सुहुमादिकसायगओ विसेसो त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स पुच्छामुहेण णिण्णयकरणट्ठं पयत्तो। पडिवदमाणस्स पयडिबंधपरिवाडीए पुच्छामुहेण णिच्छयकरणट्ठं गाहापच्छद्धमोइण्णमिदि। एवमेत्थ तिण्णि पुच्छाओ पडिबद्धाओ। संपहि एवमेदीए गाहाए पुच्छिदत्थविसये जहाकमं णिण्णयविहाणट्ठमुवरिमाणं तिण्हं गाहासुत्ताणमवयारो—

(६८) दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसमक्खयादो दु।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा ॥१२१॥

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उक्त गाथासूत्रके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध द्वारा करणोंके विच्छेद और अविच्छेदका ही निर्णय किया गया है। शेष समस्त विशेषोंका निर्णय आगे सूत्रके सम्बन्धको ध्यानमें रखकर ही करेंगे। इस प्रकार ये चार सूत्रगाथाएँ उपशामकसम्बन्धी प्ररूपणामें ही प्रतिबद्ध हैं। तथा उपरिम चार गाथाएँ उसीके प्रतिपातके कथनमें प्रतिबद्ध हैं। यथा—

चारित्रमोहनीयके उपशामकका प्रतिपात कितने प्रकारका होता है, वह सर्व-प्रथम किस कषायमें प्रतिपतित होता है तथा गिरता हुआ किन कर्मप्रकृतियोंका बंधक होता है ? ॥१२०॥

§ ७. यह पूरी गाथा पृच्छासूत्र है। उसमें 'पडिवादो च कदिविधो' यह पहला चरण प्रतिपातके भेदोंकी अपेक्षा करता है। 'कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो' यह दूसरा चरण भी सर्वोपशामनासे गिरनेवाला जीव पहले किस कषायमें गिरता है, क्या विशेषताके बिना गिरता है या बादर-सूक्ष्म आदि कषायगत कोई भी विशेषता है इस प्रकार इस तरहके अर्थ विशेषका पृच्छाद्वारा निर्णय करनेके लिये प्रवृत्त हुआ है। तथा गिरनेवाले जीवके प्रकृतिबन्धके क्रमानुसार पृच्छा द्वारा निश्चय करनेके लिये गाथाका उत्तरार्ध आया है। इस प्रकार इस गाथा सूत्रमें तीन पृच्छाएँ प्रतिबद्ध हैं। अब इस प्रकार इस गाथा द्वारा पूछे गये अर्थके विषयमें यथाक्रम निर्णय करनेके लिये आगेके तीन गाथासूत्रोंका अवतार हुआ है—

भवक्षय और उपशमक्षयके भेदसे प्रतिपात नियमसे दो प्रकारका है। वह प्रतिपात भवक्षयसे बादररागमें और उपशमक्षयसे सूक्ष्मसाम्परायमें जानना चाहिए ॥१२१॥

§ ८. एदेण छट्ठगाहासुत्तेण पुव्विल्लगाहाए पुव्वद्धणिबद्धाणं दोण्हं पुच्छाणमत्थणिण्णओ कओ दट्ठव्वो, पडिवादस्स दुविहत्तपरूवणाए सुहुमबादरलोभकसायविसयपडिवादस्स च एदिस्से गाहाए पुव्व-पच्छद्धेसु पडिबद्धस्स परिप्फुडमुवलंभादो ।

(६९) उवसामणाक्खएण दु पडिवदिदो होइ सुहुमरागम्हि ।
बादररागे णियमा भवक्खया होइ परिवदिदो ॥१२२॥

§ ९. एसा वि सत्तमी गाहा उवसामणद्धाक्खएण जो पडिवादो सो णियमा सुहुमसांपराइयो होइ । भवक्खयणिबंधणो पुण पडिवादो णियमा बादरकसाये होदि त्ति पुव्विल्लगाहासुत्तणिद्दिट्ठस्सेवत्थविसेसस्स परूवणट्ठमवइण्णा । एदिस्से अवयवत्थपरूवणा सुगमा ।

(७०) उवसामणाक्खएण दु अंसे बंधदि जहाणुपुव्वीए ।
एमेव य वेदयदे जहाणुपुव्वीय कम्मंसे । (८) ॥१२३॥

§ १०. भवक्खएण परिवदिदस्स देवेसुप्पण्णपढमसमए चेव सव्वाणि करणाणि उग्घादिज्जंति, ण तत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि । जो पुण उवसामणद्धाक्खएण पडिवदिदो सो जाए आणुपुव्वीए पुव्वं चडमाणावत्थाए बंधवोच्छेदं कादूणागदो ताए चेवाणुपुव्वीए जहाकमं लोहसंजलणादिकम्मंसे बंधइ तहा चेव पच्छाणुपुव्वीए उदय-

---

§ ८. इस छटे गाथासूत्रद्वारा पिछली गाथाके पूर्वार्धमें निबद्ध दो पृच्छासम्बन्धी अर्थका निर्णय किया गया जानना चाहिए, क्योंकि प्रतिपातकी दो प्रकारकी प्ररूपणा तथा सूक्ष्म लोभकषाय और बादर लोभकषायमें प्रतिपात ये दो अर्थ इस गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें प्रतिबद्ध हैं यह स्पष्ट उपलब्ध होता है ।

उपशामनाके क्षयसे यह जीव सूक्ष्म रागमें गिरता है और भवक्षयसे नियमसे बादर रागमें गिरता है ॥१२२॥

§ ९. यह सातवीं गाथा भी उपशामनाकालके क्षयसे जो प्रतिपात होता है वह नियमसे सूक्ष्मसाम्परायमें होता है, परन्तु भवक्षयनिमित्तक जो प्रतिपात होता है वह नियमसे बादरकषायमें होता है इस पूर्व गाथासूत्रमें निर्दिष्ट अर्थविशेषके ही कथन करनेके लिये आई है । इसके अवयवार्थकी प्ररूपणा सुगम है ।

उपशामनाके क्षय होनेसे गिरनेवाला जीव यथानुपूर्वी कर्मप्रकृतियोंको बाँधता है और इसी प्रकार यथानुपूर्वी कर्मप्रकृतियोंका वेदन करता है (८) ॥१२३॥

§ १०. भवक्षयसे गिरनेवाले जीवके देवोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें युगपत् सभी करण प्रकट हो जाते हैं, इस विषयमें कुछ वक्तव्य नहीं है । परन्तु जो उपशामनाकालके क्षयसे गिरता है वह जिस आनुपूर्वीसे पहले चढ़नेकी अवस्थामें बन्धव्युच्छित्ति करके आया है उसी आनुपूर्वीसे यथाक्रम लोभसंज्वलन आदि प्रकृतियोंका बन्ध करता है तथा उसी प्रकार

वोच्छेदाणुसारेण वेदयदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स पिंडत्थो। एवमेदाओ अट्ठ चेव सुत्तगाहाओ चरित्तमोहोवसामणाए पडिबद्धाओ त्ति जाणावणट्ठमेत्थ सुत्तसमत्तीए अट्ठण्हमंकविण्णासो कओ। एवमेसा संखेवेण गाहासुत्ताणमत्थपरूवणा कया। वित्थारत्थपरूवणमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेण कस्सामो। संपहि एवं समुक्कित्तिदाणं गाहासुत्ताणमत्थविहासणं कुणमाणो तत्थ ताव तस्सेव परिकरभावेण सुत्तसूचिदपरिभासिदत्थपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जा उवक्कमपरिभासा।**

§ ११. उपक्रमणमुपक्रमः समीपीकरणं प्रारंभ इत्यनर्थान्तरम्। तस्य परिभाषा उपक्रमपरिभाषा। सा प्रथमतरमेव तावत्प्ररूपयितव्येति सूत्रार्थः।

*** तं जहा।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १२. सा उवक्कमपरिभासा केरिसी होइ त्ति पुच्छा कदा भवदि। सा च उवक्कमपरिभासा एत्थ दुविहा होइ—अणंताणुबंधिविसंजोयणा दंसणमोहोवसामणा चेदि। तत्थ ताव पुव्वमणंताणुबंधिविसंजोयणा परूवेयव्वा, अविसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कस्स

पश्चात् आनुपर्वीसे उदयव्युच्छित्तिके अनुसार वेदन करता है यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। इस प्रकार ये आठ ही सूत्रगाथाएं चारित्रमोहोपशामनामें प्रतिबद्ध हैं इसका ज्ञान करानेके लिये यहाँ पर गाथासूत्रोंकी समाप्ति होने पर आठ अंकका विन्यास किया है। इस प्रकार संक्षेपमें गाथा सूत्रोंकी यह अर्थप्ररूपणा की। विस्तारसे अर्थका कथन आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे करेंगे। अब इस प्रकार निर्दिष्ट किये गये गाथासूत्रोंके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए वहाँ सर्व प्रथम उसीके परिकररूपसे गाथासूत्रों द्वारा सूचित परिभाषारूप अर्थका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** चारित्रमोहनीयकी उपशामनाके विषयमें सर्वप्रथम उपक्रम-परिभाषा जानने योग्य है।**

§ ११. उपक्रम शब्दकी व्युत्पत्ति है—उपक्रमणं उपक्रमः। उपक्रम, समीपीकरण और प्रारम्भ इन तीनों शब्दोंका एक ही अर्थ है। उसकी परिभाषा उपक्रमपरिभाषा है। वह सर्व प्रथम ही प्ररूपण करने योग्य है यह इस सूत्रका अर्थ है।

*** वह जैसे।**

§ १२. वह उपक्रम-परिभाषा किस प्रकारकी है यह पृच्छा की गई है। वह उपक्रम-परिभाषा प्रकृतमें दो प्रकारकी है—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना और दर्शनमोहकी उपशामना। उसमें सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका कथन करना चाहिए, जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है ऐसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीवकी कषायोंकी उप-

वेदयसम्माइट्ठिस्स कसायोवसामणाणिबंधणदंसणमोहोवसामणादिकिरियासु पवुत्तीए असंभवादो। तदो तव्विसंजोयणमेव पुव्वं परूवेमाणो तदवसरकरणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** वेदयसम्माइट्ठी अणंताणुबंधी अविसंजोएदूण कसाए उवसामेदुं णो उवट्ठादि।**

§ १३. जो अट्ठावीससंतकम्मिओ वेदयसम्माइट्ठी संजदो सो जाव अणंताणुबंधिचउक्कं ण विसंजोएदि ताव कसाए उवसामेदुं णो उवक्कमदि। कुदो? तेसिमविसंजोयणाए तस्स उवसमसेढिचडणपाओग्गभावासंभवादो। तदो अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चेव पढममेसो पयट्टदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि।**

§ १४. सुगमं।

*** तदो अणंताणुबंधी विसंजोएंतस्स जाणि करणाणि ताणि सव्वाणि परूवेयव्वाणि।**

§ १५. कुदो? करणपरिमाणेहिं विणा तव्विसंजोयणाणुववत्तीदो। काणि पुण ताणि करणाणि त्ति आसंकिय पुच्छाणिद्देसमाह—

शमनाके निमित्तरूप दर्शनमोहकी उपशामनादि क्रियाओंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिये अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनाका ही सर्वप्रथम कथन करते हुए उसका अवसर करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना किये बिना कषायोंको उपशमानेके लिये प्रवृत्त नहीं होता है।**

§ १३. अट्ठाईस सत्कर्मवाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि संयत है वह जब तक अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है तब तक कषायोंको उपशमानेके लिए प्रवृत्त नहीं होता, क्योंकि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना न होनेपर उसके उपशमश्रेणिपर चढ़नेके योग्य परिणाम नहीं हो सकते। इसलिए अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजनामें ही यह सर्व प्रथम प्रवृत्त होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका प्रारम्भ करते हैं—

*** यह सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करता है।**

§ १४ यह सूत्र सुगम है।

*** इसलिए अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके जो करण होते हैं उन सबका कथन करना चाहिए।**

§ १५ क्योंकि करणपरिणामोंके बिना अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं बन सकती। वे करण कौन हैं ऐसी आशंका कर पृच्छासूत्रकानिर्देश करते हैं—

* तं जहा ।

§ १६. सुगमं ।

* अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टिकरणं च ।

§ १७. एदाणि तिण्णि वि करणाणि कादूणाणंताणुबंधिणो विसंजोएदि त्ति भणिदं होइ । एदेसिं करणाणं लक्खणं जहा दंसणमोहोवसामणाए परूविदं तहा णिरवसेसमेत्थाणुगंतव्वं, विसेसाभावादो । तदो अधापवत्तकरणविसोहीए अंतोमुहुत्तं विसुज्झमाणस्स ट्ठिदिघादादिसंभवो णत्थि, केवलमणंतगुणाए पडिसमयं विसुज्झमाणो गच्छदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* अधापवत्तकरणे णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १८. कुदो एदेसिमेत्थासंभवो चे ? ण, अधापवत्तकरणविसोहीणं सव्वत्थ ट्ठिदि-अणुभागखंडयगुणसेढिणिज्जरादीणमकारणत्तब्भुवगमादो । पुणो किमेदाहिं कीरमाणं फलमिदि चे ? ट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि असुहाणं कम्माणमणंतगुणहाणीए पडिसमयमणुभागबंधोसरणं सुहाणमणंतगुणवड्ढीए चउट्ठाणाणुभागबंधो त्ति एदं फलमेत्थ

---

* वे जैसे ।

§ १६. यह सूत्र सुगम है।

* अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ।

§ १७. इन तीनों ही करणोंको करके अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इन करणोंका लक्षण दर्शनमोहोपशामनामें जिस प्रकार कह आये हैं उस प्रकार पूरी तरह यहाँ जानना चाहिए, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है। इसलिए अधःप्रवृत्तकरणरूप विशुद्धिद्वारा अन्तर्मुहूर्त कालतक विशुद्ध होनेवाले जीवके स्थितिघात आदि सम्भव नहीं हैं, प्रति समय केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता जाता है इस बातका ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

* अधःप्रवृत्तकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात, गुणश्रेणि और गुणसंक्रम नहीं होता ।

§ १८. शंका—ये यहाँ पर असम्भव क्यों हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधःप्रवृत्तकरणरूप विशुद्धियोंको सर्वत्र स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक और गुणश्रेणिनिर्जरा आदिके कारणरूपसे नहीं स्वीकार किया गया है।

शंका—तो इनके द्वारा किया जानेवाला कार्य क्या है ?

समाधान—हजारों स्थितिबन्धापसरण, अशुभ कर्मोंका प्रति समय अनन्तगुणी हानि

दट्ठव्वं । एवमधापवत्तकरणं वोलिय तदो अपुव्वकरणं पविट्ठस्स कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* अपुव्वकरणे ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च गुणसंकमो वि ।

§ १९. एत्थ ट्ठिदिघादादीणं परूवणा जहा दंसणमोहक्खवणाए मिच्छत्तस्स परूविदा तहा चेव णिरवयवमणुगंतव्वा । णवरि एत्थतणगुणसेढी सम्मत्तुप्पत्ति-संजदासंजद-संजदगुणसेढीहिंतो पदेसग्गेणासंखेज्जगुणा होदूण तदायामादो संखेज्जगुणहीणायामा होइ । गुणसंकमो पुण अणंताणुबंधीणमेव, णाण्णेसिं कम्माणमिदि वत्तव्वं । एवं संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं ठिदिबंधोसरणसहगएहिं पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीहिं अपुव्वकरणद्धा समप्पइ । अपुव्वकरणस्स पढमसमयट्ठिदिबंधादो ट्ठिदिसंतकम्मादो च तस्सेव चरिमसमए ट्ठिदिसंत-ट्ठिदिसंकम्माणि संखेज्जगुणहीणाणि । तदो पढमसमयअणियट्टिकरणो जादो । ताधे अणंताणुबंधीणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए सागरोवमसदसहस्सपुधत्तं । सेसाणं कम्माणं अंतोकोडाकोडीए । पुणो वि अणियट्टिकरणं पविट्ठस्स वि एवं चेव ट्ठिदि-अणुभागखंडय-ट्ठिदिबंधोसरण-गुणसेढिणिज्जरा-गुणसंकमपरिणामा णिव्वामोहमणुगंतव्वा त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

रूपसे अनुभागबन्धापसरण और शुभ कर्मोंका अनन्तगुणी वृद्धिरूपसे चतुःस्थानीय अनुभागबन्ध यह यहाँ अधःप्रवृत्तकरणरूप विशुद्धियोंका फल जानना चाहिए।

इस प्रकार अधःप्रवृत्तकरणको बिताकर उसके बाद अपूर्वकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके किये जानेवाले कार्योंके भेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* अपूर्वकरणमें स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि है, गुणसंक्रम भी है ।

§ १९. दर्शनमोहकी क्षपणामें जिस प्रकार मिथ्यात्वके स्थितिघात आदिकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार पूरी प्ररूपणा यहाँ जाननी चाहिए । इतनी विशेषता है कि यहाँकी गुणश्रेणि सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, संयतासंयत और संयतसम्बन्धी गुणश्रेणियोंसे प्रदेशोंकी अपेक्षा असंख्यात गुणी है, तथा उनके आयामसे संख्यातगुणी हीन है । परन्तु गुणसंक्रम अनन्तानुबन्धियोंका ही होता है, अन्य कर्मोंका नहीं होता ऐसा कहना चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक हजारों अनुभागकाण्डकोंके अविनाभावी ऐसे स्थितिबन्धापसरणोंके साथ होनेवाले हजारों स्थितिकाण्डकों के द्वारा अपूर्वकरणके कालको समाप्त करता है। अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्म होता है उससे उसके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्म संख्यातगुणा हीन होता है । तत्पश्चात् प्रथम समयवर्ती अनिवृत्तिकरणवाला हो जाता है । तब अनन्तानुबन्धियोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होता है । शेष कर्मोंका अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर होता है। फिर भी अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए जीवके भी इसी प्रकार स्थितिकाण्डक, अनुभागकाण्डक, स्थितिबन्धापसरण, गुणश्रेणि निर्जरा और गुणसंक्रम परिणाम व्यामोहके बिना जानना चाहिए इसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** अणियट्टिकरणे वि एदाणि चेव । अंतरकरणं णत्थि ।**

§ २०. अणियट्टिकरणे वि पयट्टमाणस्स एदाणि चेवाणंतरपरूविदाणि ठिदि-
खंडयघादादीणि कज्जाणि होंति, णत्थि तत्थ को वि विसेसो । जहा पुण दंसणमोहोव-
सामणाए अणियट्टिकरणम्मि अंतरकरणमत्थि, किमेवमेत्थ वि संभवो, आहो णत्थि त्ति
आसंकाए णिराकरणट्ठमंतरकरणं णत्थि'त्ति पदुप्पाइदं । कुदो तदसंभवणिण्णयो चे ?
दंसणचरित्तमोहोवसामणाए चरित्तमोहक्खवणाए च अंतरकरणस्स संभवो णाण्णत्थे
त्ति णियमदंसणादो । संपहि अणियट्टिपरिणामेहिं ट्ठिदि-अणुभागखंडयसहस्साणि
कुणमाणो तदद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु तदो विसेसघादवसेण अणंताणुबंधीणं
ठिदिसंतकम्ममसण्णिट्ठिदिबंधेण समाणं करेदि । तदो संखेज्जेहिं ठिदिखंडयसहस्सेहिं
चउरिंदियट्ठिदिबंधसमाणं । एवं तीइंदिय-बेइंदिय-एइंदियट्ठिदिबंधेण समाणं कादूण पुणो
पलिदोवममेत्तट्ठिदिसंतकम्मं ठवेदूण तदो सेसस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिखंडयमागाएंतो
दूरावकिट्टिमेत्तमणंताणुबंधीणं ट्ठिदिसंतकम्मं कादूण तदो सेसस्स असंखेज्जे भागे घादेंतो
संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं गदेहिं उदयावलियबाहिरं सव्वमणंताणुबंधिट्ठिदि-
संतकम्मं अणियट्टिकरणचरिमसमये पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तायामचरिम-

---

*** अनिवृत्तिकरणमें भी ये ही कार्य होते हैं । अन्तरकरण नहीं होता ।**

§ २० अनिवृत्तिकरणमें प्रवर्तमान हुए जीवके भी अनन्तर पूर्व कहे गये ये ही स्थिति-
काण्डकघात आदि कार्य होते हैं, वहाँ अन्य कोई विशेषता नहीं है । परन्तु दर्शनमोहकी
उपशामनामें जिस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण होता है, उसप्रकार क्या यहाँ पर भी
सम्भव है, अथवा सम्भव नहीं है ऐसी आशंका होनेपर निराकरण करनेके लिये 'अन्तरकरण
नहीं होता यह वचन कहा है ।

शंका—यहाँ अन्तरकरण सम्भव नहीं है इसका निर्णय किस प्रमाणसे किया जाता है ?

समाधान—क्योंकि दर्शन-चारित्रमोहोपशामना और चारित्रमोहक्षपणामें अन्तरकरण
सम्भव है, अन्यत्र नहीं यह नियम देखा जाता है । इससे निर्णय होता है कि अनन्तानु-
बन्धियोंकी विसंयोजनामें अन्तरकरण सम्भव नहीं है ।

अब अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके द्वारा हजारों स्थितिकाण्डक और हजारों अनुभाग-
काण्डकोंको करता हुआ उस कालके संख्यात बहुभागके जानेपर पश्चात् विशेष घातवश
अनन्तानुबन्धियोंका स्थितिसत्कर्म असंज्ञियोंके स्थितिबन्धके समान करता है । उसके बाद
संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके होनेपर स्थितिसत्कर्म चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान
करता है । इस प्रकार त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान करके पुनः
पल्योपमप्रमाण स्थितिसत्कर्मको स्थापित कर तत्पश्चात् शेष स्थितिके संख्यात बहुभागप्रमाण
स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ अनन्तानुबन्धियोंका दूरापकृष्टिप्रमाण स्थितिसत्कर्म करके
पश्चात् शेष स्थितिके असंख्यात बहुतभागका घात करता हुआ संख्यात हजार स्थितिकाण्डकों
के जाने पर अनन्तानुबन्धियोंके उदयावलि बाह्य समस्त स्थितिसत्कर्मको अनिवृत्तिकरणके

ट्ठिदिखंडयचरिमफालिसरूवेण सेसवज्झमाणकसाय-णोकसाएसु संकामिय पयदं किरियं समाणेदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एसा ताव जो अणंताणुबंधी विसंजोएदि तस्स समासपरूवणा ।**

§ २१. सुगममेदं पयदत्थोवसंहारवक्कं । एवमणंताणुबंधिविसंजोयणमुवसंहरिय सत्थाणे पदिदो अंतोमुहुत्तं विस्समियूण किरियंतरमाढवेदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** तदो अणंताणुबंधी विसंजोइदे अंतोमुहुत्तमधापवत्तो जादो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तियादीणि ताव कम्माणि बंधदि ।**

§ २२. अणंताणुबंधिविसंजोयणकिरियासत्तिसमणंतरमेव किरियंतरं णाढवेइ । किंतु अणंताणुबंधी विसंजोइय अंतोमुहुत्तं सत्थाणसंजदो होदूण तत्थ संकिलेस-विसोहिवसेण पमत्तापमत्तगुणेसु परियत्तमाणो असाद-अरइ-सोग-अजसगित्तिआदि-पयडीओ पुव्वं करणविसोहिपाइम्मेण अबज्झमाणाओ ताव केत्तियं पि कालं बंधमाणो विस्समिदो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । एत्थादिसद्देण संकिलिस्समाणसंजद-बंधपाओग्गाणमथिर-असुहाणं गहणं कायव्वं, छण्हमेदासिं पयडीणं बंधस्स संकिले-

---

अन्तिम समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण आयामवाले अन्तिम स्थितिकाण्डक सम्बन्धी अन्तिम फालिरूपसे बध्यमान शेष कषायों और नोकषायोंमें संक्रमित कर प्रकृत क्रिया को समाप्त करता है यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

*** जो उक्त जीव सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करता है उसकी यह संक्षेपमें प्ररूपणा है ।**

§ २१. प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन सुगम है । इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनाका उपसंहार करके स्वस्थानमें आया हुआ उक्त संयत अन्तर्मुहूर्त कालतक विश्राम करके दूसरी क्रियाका आरम्भ करता है इसका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक अधःप्रवृत्तसंयत होता हुआ असातावेदनीय, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदि का बन्ध करता है ।**

§ २२. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनारूप क्रियाशक्तिके समाप्त होनेके बाद ही दूसरी क्रियाका आरम्भ नहीं करता है । किन्तु अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्त कालतक स्वस्थान संयत होकर वहाँ संक्लेश और विशुद्धिवश प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें परिवर्तन करता हुआ असातावेदनीय, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियोंको, पहले करणरूप विशुद्धिके माहात्म्यवश नहीं बाँधता रहा, किन्तु अब कितने ही काल तक बन्ध करता हुआ विश्राम करता है यह इस सूत्रका भावार्थ है । यहाँ पर सूत्रमें आये हुए 'आदि' शब्दसे संक्लेशको प्राप्त होनेवाले संयतके बन्धके योग्य अस्थिर

साणुविद्धपमादणिबंधणत्तादो। एत्थतण 'ताव'सद्दो पुणो वि किरियंतराहिमुहत्तमेदस्स जाणावेइ। तं च किरियंतरमेत्थोवजोगिदंसणमोहोवसामणमेवे त्ति तप्परूवणट्ठमुत्तरं सुत्तपबंधमाह—

*** तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयमुवसामेदि, तदो ण अंतरं।**

§ २३. पुणो वि विसोहिमावूरिय अंतोमुहुत्तेण कालेण दंसणमोहणीयं कम्मं उवसामेदि त्ति वुत्तं होइ। दंसणमोहणीयमणुवसामिय वेदगसम्मत्तेणेव उवसमसेणिमेसो किण्ण चडाविज्जदे ? ण, तहासंभवाभावादो। हंदि खइयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी वा होदूण चरित्तमोहोवसामणाए पयट्टदि, णाण्णहा त्ति। जइ एवं, दंसणमोहक्खवणाए वि एत्थ णिद्देसो कायव्वो त्ति णासंकणिज्जं, तिस्से पुव्वमेव सवित्थरं परूविदत्तादो। दंसणमोहोवसामणा वि पुव्वं परूविदा चेव, तदो णेदाणिमाढवेयव्वा त्ति चे ? ण, अणादियमिच्छाइट्ठिपडिबद्धाए तदुवसामणाए पुव्वं परूविदत्तादो। ण सा एत्थ पयदोवजोगिणी, तिस्से उवसमसेढिपाओग्गत्तासंभवादो। तदो वेदगसम्माइट्ठि-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

और अशुभ प्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि इन छह प्रकृतियोंका बन्ध संक्लेशयुक्त प्रमादनिमित्तक होता है। इस सूत्रमें आया हुआ 'ताव' शब्द इस जीवके फिर भी दूसरी क्रियाके अभिमुख होनेका ज्ञान करता है। और वह दूसरी क्रिया प्रकृतमें उपयोगी दर्शनमोह की उपशामना ही है इसलिए उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है, इसलिए इस समय अन्तर नहीं है।**

§ २३. फिर भी विशुद्धिको पूरकर अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा दर्शनमोहनीय कर्मको उपशमाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—दर्शनमोहनीयको उपशमाये बिना वेदकसम्यक्त्वसे ही उपशमश्रेणिपर इसे क्यों नहीं चढ़ाया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वैसा सम्भव नहीं है। ऐसा नियम है कि क्षायिकसम्यग्दृष्टि या उपशमसम्यग्दृष्टि होकर चारित्रमोहकी उपशामनामें प्रवृत्त होता है, अन्य प्रकारसे नहीं।

शंका—यदि ऐसा है तो दर्शनमोहकी क्षपणाका भी यहाँ पर निर्देश करना चाहिए ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसका पहले ही विस्तारके साथ कथन कर आये हैं।

शंका—दर्शनमोहकी उपशामनाका कथन भी पहले कर ही आये हैं, इसलिये यहाँ उसका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टिसे प्रतिबद्ध दर्शनमोहकी उपशामनाका पहले कथन किया है, वह यहाँ प्रकृतमें उपयोगी नहीं है, क्योंकि वह उपशमश्रेणिके योग्य नहीं है।

विसया दंसणमोहोवसामणा पुव्वं व परूविदत्तादो एण्हिं परूवेयव्वा त्ति घेत्तव्वं ।

*** तदो दंसणमोहणीयमुवसामेंतस्स जाणि करणाणि पुव्वपरूविदाणि ताणि सव्वाणि इमस्स वि परूवेयव्वाणि ।**

§ २४. पुव्वं दंसणमोहणीयमुवसामेमाणस्स अणादियमिच्छाइट्ठिस्स जाणि करणाणि अधापवत्तादिभेयभिण्णाणि परूविदाणि ताणि सव्वाणि णिरवसेसमेत्थाणुगंतव्वाणि विसेसाभावादो त्ति भणिदं होदि । एदेहिं करणेहिं कीरमाणकज्जभेदो वि तहा चेय परूवेयव्वो त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** तहा ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च अत्थि ।**

§ २५. जहा पढमसम्मत्तमुप्पाएमाणस्स ट्ठिदि-अणुभागघादो गुणसेढी च अत्थि, तहा एत्थ वि तेसिमत्थित्तमवगंतव्वं, ण तत्थ किंचि णाणत्तमत्थि त्ति भणिदं होइ । तं कथं ? अधापवत्तकरणे ताव णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी वि, केवलमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो सगद्धाए संखेज्जसहस्समेत्ताणि ट्ठिदिबंधोसरणाणि करेदि । अप्पसत्थाणं कम्माणं समयं पडि अणंतगुणहाणीए विट्ठाणियमणुभागं बंधइ । पसत्थाणं कम्माणमणंतगुणवड्ढीए चउट्ठाणियमणुभागबंधं बंधदि । एवमेदेण

इसलिये वेदकसम्यग्दृष्टिविषयक दर्शनमोहकी उपशामना पहलेके समान कही गई होनेसे इस समय कही जानी चाहिए ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

*** तदनन्तर दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवालेके जो करण पहले कह आये हैं वे सब इसके भी कहने चाहिए ।**

§ २४. दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेवाले अनादि मिथ्यादृष्टिके पहले अधःप्रवृत्तकरण आदि भेदरूप करण कह आये हैं वे सब यहाँ भी जानने चाहिए, क्योंकि उनसे इनमें कोई विशेषता नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । तथा इन करणोंद्वारा किये जानेवाले कार्यभेदका कथन भी उसी प्रकार कहना चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** उसी प्रकार स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि होती है ।**

§ २५. प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवालेके जिस प्रकार स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि होती है उसी प्रकार यहाँ पर भी उनका अस्तित्व जानना चाहिए, उनमें कुछ फरक नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—अधःप्रवृत्तकरणमें तो स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि भी नहीं है, केवल अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अपने कालमें संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरणोंको करता है । अप्रशस्त कर्मोंके प्रति समय अनन्तगुणी हानिरूपसे द्विस्थानीय अनुभागको बाँधता है तथा प्रशस्त कर्मोंके अनन्तगुणी वृद्धिरूपसे चतुःस्थानीय अनुभागको

विहाणेण सगद्धमणुपालिय[1] तदो से काले पढमसमयअपुव्वकरणो होइ। ताधे चेव ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च समगमाढत्ता। गुणसंकमो णत्थि। ट्ठिदिखंडयपमाणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अणुभागखंडयपमाणमप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागसंतकम्मस्स अणंता भागा। गुणसेढिणिक्खेवो पुण अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसाहिओ गलिदसेसायामो च। ताधे चेव ट्ठिदिबंधो अधापवत्तकरणचरिमट्ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेणूणो पबद्धो। एक्कम्मि ट्ठिदिखंडयकालब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्ताणि अणुभागखंडयाणि अंतोमुहुत्तुक्कीरणद्धापडिबद्धाणि। एवमेदीए परूवणाए सगद्धमणुपालिय तदो चरिमसमयअपुव्वकरणो जादो। ताधे अपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिसंतकम्मादो संखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिसंतकम्मं होदि त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

*** अपुव्वकरणस्स जं पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं तं चरिमसमए संखेज्जगुणहीणं।**

§ २६. एत्थ जइ वि ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो त्ति ण वुत्तो तो वि अत्थदो तस्स संखेज्जगुणहीणत्तमवगम्मदे, ट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंधोसरणवसेण बंध-संताणं तहाभावोववत्तीदो। एवमपुव्वकरणद्धमुल्लंघियूण से काले पढमसमयअणियट्टिकरणो जादो।

बाँधता है। इस प्रकार इस विधिसे अपने कालको सम्पन्न कर उसके बाद तदनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती अपूर्वकरण होता है और तभी स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणिको एक साथ आरम्भ करता है। यहाँ गुणसंक्रम नहीं है। स्थितिकाण्डकका प्रमाण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है। अनुभागकाण्डकका प्रमाण अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण है। गुणश्रेणि निक्षेप तो अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक और गलित शेष आयामवाला है। तभी स्थितिबन्ध अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयके स्थितिबन्धसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग कम बँधता है। एक स्थितिकाण्डकके कालके भीतर संख्यात हजार अनुभागकाण्डक होते हैं। जिनमेंसे प्रत्येकका उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्त है। इस प्रकार इस प्ररूपणाके साथ अपने कालको सम्पन्न करके तब अन्तिम समयवर्ती अपूर्वकरण हो जाता है। तब अपूर्वकरणके प्रथम समयके स्थितिसत्कर्मसे संख्यात गुणा हीन स्थितिसत्कर्म होता है इस बातका ज्ञान कराना है फल जिसका ऐसे आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिसत्कर्म है वह अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन हो जाता है।**

§ २६. यहाँपर यद्यपि स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन हो गया है यह नहीं कहा है तो भी वास्तवमें उसका संख्यातगुणा हीनपना जाना जाता है, क्योंकि स्थितिकाण्डकघात और स्थितिबन्धापसरणवश बन्ध और सत्त्व उस प्रकारसे बन जाते हैं। इसप्रकार अपूर्वकरणके कालको उल्लंघनकर तदनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती अनिवृत्तिकरण हो जाता है।

१ ता०प्रतौ मणुफालिय इति पाठः।

तहा चेव ट्ठिदिघादो अणुभागघादो ट्ठिदिबंधोसरणं गुणसेढिणिज्जरा च। एवं णेदव्वं जाव अणियट्टिअद्धाए चरिमसमयो त्ति। णवरि अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु तम्मि उद्देसे को वि विसेससंभवो अत्थि त्ति परूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** दंसणमोहणीयउवसामणाअणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा।**

§ २७. पुव्वमसंखेज्जलोगपडिभागेण सव्वेसिं कम्माणमुदीरणा। एत्थुद्देसे पुण सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा परिणामपाहम्मेण पवत्तदि त्ति एसो विसेसो पढमसम्मत्तुप्पत्तीए उवसामगस्स परूवणादो।

*** तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करेदि।**

§ २८. जदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा हवदि तदो अंतोमुहुत्तेण कालेण एयट्ठिदिबंध-ट्ठिदिखंडयद्धावच्छिण्णपमाणेण दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स गुणसेढिसीसएण सह उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतोमुहुत्तायामेणंतरमेसो करेदि त्ति वुत्तं होइ। एत्थ सम्मत्तस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तं ठवेयूण सेसाणमुदयावलिपमाणं मोत्तूणंतरं करेदि त्ति वत्तव्वं। अंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं बंधाभावेण विदियट्ठिदीए ण संछुहदि, सव्वमाणेदूण सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए

वहाँ उसी प्रकार स्थितिघात, अनुभागघात, स्थितिबन्धापसरण और गुणश्रेणिनिर्जरा होती है। इसप्रकार उन्हें अनिवृत्तिकरणके कालके अन्तिम समयतक ले जाना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अनिवृत्तिकरणके कालमेंसे संख्यात बहुभाग व्यतीत होनेपर उस स्थानपर जो कुछ भी विशेष सम्भव है उसका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** दर्शनमोहनीय-उपशामनासम्बन्धी अनिवृत्तिकरण कालके संख्यात बहुभाग जानेपर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।**

§ २७. पहले असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार सब कर्मोंकी उदीरणा होती रही। किन्तु इस स्थानपर परिणामोंके माहात्म्यवश सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा प्रवृत्त होती है इतना विशेष प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी अपेक्षा उपशामकके कहा है।

*** पश्चात् अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा दर्शनमोहनीयका अन्तर करता है।**

§ २८. जहाँसे लेकर सम्यक्त्वके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है वहाँसे लेकर एक स्थितिबन्ध और एक स्थितिकाण्डकघातमें गलनेवाले एक अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा दर्शनमोहनीय कर्मके गुणश्रेणिशीर्षके साथ ऊपरकी इससे संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा यह अन्तर करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँपर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापितकर तथा शेष मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकर्मकी उदयावलिको छोड़कर अन्तर करता है यह कहना चाहिए। अन्तरकी स्थितियोंमेंसे उत्कीरण किये जानेवाले प्रदेशपुञ्जको बन्धका अभाव होनेसे

णिक्खिवदि। सम्मत्तस्स विदियट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डियूण अप्पणो पढमट्ठिदीए गुणसेढिसरूवेण णिक्खिवदि। एवं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि विदियट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डियूण सम्मत्तपढमट्ठिदिम्मि गुणसेढीए णिक्खिवदि। सत्थाणे वि अधिच्छावणावलियं मोत्तूण समयाविरोहेण णिसिंचदि, अप्पणो अंतरट्ठिदीसु ण णिक्खिवदि। सम्मत्तपढमट्ठिदीए सरिसं होदूणुदयावलियबाहिरे जं ट्ठिद मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपदेसग्गं तं सम्मत्तस्सुवरि समट्ठिदीए संकामेदि, जाव अंतरदुचरिमफाली ताव एसो चेव कमो। चरिमफालीए णिवदमाणाए जहा पुव्वं मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमंतरट्ठिदिदव्वमोकड्डणासंकमेण अइच्छावणावलियं बोलाविय सत्थाणे वि देदि तहा संपहि ण संछुहदि। किंतु तेसिमंतरचरिमफालिदव्वं सम्मत्तपढमट्ठिदीए चेव गुणसेढीए णिक्खिवदि। सम्मत्तस्स चरिमफालिदव्वमण्णत्थ ण संछुहदि, अप्पणो पढमट्ठिदीए चेव संछुहदि त्ति वत्तव्वं। पढमट्ठिदीए ट्ठिदाए पढमट्ठिदिदव्वमुक्कड्डियूण विदियट्ठिदीए ण संछुहदि, बंधाभावादो सत्थाणे चेव ओकड्डदि। विदियट्ठिदिदव्वं पि ताव पढमट्ठिदीए आगच्छदि जाव आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ त्ति। तत्तो परमागाल-पडिआगालवोच्छेदो। तत्तो पाए सम्मत्तस्स गुणसेढिविण्णासो णत्थि। पडिआवलियादो चेव उदीरणा। आवलियाए समयाहियाए सेसाए सम्मत्तस्स जहण्णया ट्ठिदिउदीरणा।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त नहीं करता, किन्तु सबको लाकर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है। तथा सम्यक्त्वकी दूसरी स्थितिके प्रदेश-पुञ्जका अपकर्षितकर अपनी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। इसीप्रकार मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भी द्वितीय स्थितिके प्रदेशपुञ्जको अपकर्षितकर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। स्वस्थानमें भी अतिस्थापनावलिको छोड़कर आगममें बतलाई गई विधिके अनुसार निक्षिप्त करता है, अपनी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें निक्षिप्त नहीं करता है। उदयावलिके बाहर सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके समान होकर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जो प्रदेशपुञ्ज स्थित है उसे सम्यक्त्वके ऊपर समान स्थितिमें संक्रमित करता है। अन्तरकी द्विचरम फालितक यही क्रम चालू रहता है। चरम फालिका पतन होते समय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तर स्थितिसम्बन्धी द्रव्यको अपकर्षण संक्रमणके द्वारा अतिस्थापनावलिको छोड़कर जिस प्रकार पहले स्वस्थानमें भी देता रहा उसप्रकार इस समय नहीं देता है। किन्तु उनके अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिके द्रव्यको सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिमें ही गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। तथा सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिके द्रव्यको अन्यत्र निक्षिप्त नहीं करता है, अपनी प्रथम स्थितिमें ही निक्षिप्त करता है ऐसा कहना चाहिए। प्रथम स्थितिके रहते हुए प्रथम स्थितिके द्रव्यको उत्कर्षितकर द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त नहीं करता है, बन्धका अभाव होनेसे स्वस्थानमें ही अपकर्षण द्वारा निक्षिप्त करता है। द्वितीय स्थितिका द्रव्य भी तभीतक प्रथम स्थितिमें आता है जबतक आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती हैं। उसके बाद आगाल और प्रत्यागालका विच्छेद हो जाता है। वहाँसे लेकर सम्यक्त्वका गुणश्रेणिविन्यास नहीं होता। मात्र प्रत्यावलिमेंसे उदीरणा होती है। एक समय

तदो पढमट्ठिदीए चरिमसमये अणियट्टिकरणद्धा समप्पइ। से काले पढमसम्मत्त-मुप्पाइय सम्माइट्ठी जायदे।

§ २९. संपहि जहा पढमसम्मत्ते उप्पाइदे सम्माइट्ठिपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तमेत्तकालं मिच्छत्तस्स गुणसंकमसंभवो किमेदमेवमेत्थ वि संभवो आहो णत्थि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए झीणाए जं तं मिच्छत्तस्स पदेसग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण संकमदि जहा पढमदाए सम्मत्त-मुप्पाएंतस्स तहा एत्थ णत्थि गुणसंकमो, इमस्स विज्झादसंकमो चेव।**

§ ३०. किं पुण कारणमेत्थ गुणसंकमो णत्थि त्ति चे? सहावदो चेव, जीव-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अधिक प्रत्यावलिके शेष रहनेपर सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिकी उदीरणा होती है। पश्चात् प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें अनिवृत्तिकरणकाल समाप्त होकर तदनन्तर समयमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न कर सम्यग्दृष्टि हो जाता है।

विशेषार्थ—यहाँपर वेदकसम्यग्दृष्टि संयत उपशमश्रेणिपर आरोहणके योग्य कब होता है इस तथ्यका विचार करते हुए बतलाया है कि ऐसा जीव सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी विसंयोजना करनेके लिए अधःप्रवृत्त आदि तीन करण करता है। यहाँ अन्य सब विधि दर्शनमोहकी उपशामनाके समान है। मात्र इस जीवके अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण नहीं होता। इसप्रकार संक्षेपमें यह अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका प्रकार है। इसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक विश्राम करते हुए प्रमत्तसंयत होकर असातावेदनीय, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त कालतक बन्ध करता है। पुनः दर्शनमोहनीयका उपशम करता है। यतः यह वेदकसम्यग्दृष्टि है अतः इसके एक तो वेदक सम्यक्त्वके कालतक यथायोग्य सम्यक्त्व प्रकृतिका ही उदय-उदीरणा होती रहती है, दूसरे इसके दर्शनमोहनीयकी किसी प्रकृतिका बन्ध नहीं होता। ये दो विशेषताएँ हैं जिनको ध्यानमें रखकर यहाँ दर्शनमोहनीयका उत्कर्षण, अपकर्षण संक्रमण आदिकी प्रक्रिया समझ लेनी चाहिए। विस्तारसे इस विधिका कथन मूलमें किया ही है।

§ २९. अब प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न करने पर सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे लेकर जिस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्वका गुणसंक्रम होता है क्या इस प्रकार यहाँ पर भी वह सम्भव है या सम्भव नहीं है ऐसी आशंका होने पर निःशंक करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** सम्यक्त्वकी प्रथम स्थितिके क्षीण होने पर जो मिथ्यात्वका प्रदेशपुञ्ज है उसका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें गुणसंक्रमसे संक्रम जिस प्रकार प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके होता है उस प्रकार यहाँ पर गुणसंक्रम नहीं होता, विध्यातसंक्रम ही होता है।**

§ ३०. **शंका**—यहाँ पर गुणसंक्रम नहीं होता इसका क्या कारण है?

समाधान—स्वभावसे ही यहाँ गुणसंक्रम नहीं होता। अथवा संक्रमादिके कारणभूत

परिणामाणं संकमादिकरणणिबंधणाणं वइचित्तियादो वा। तदो इमस्स जीवस्स विज्झादसंकमो चेव समयं पडि विसेसहीणकमेण पयट्टदि त्ति घेत्तव्वं। णाणावरणादि-कम्माणमेत्तो प्पहुडि ट्ठिदि-अणुभागघादो णत्थि। गुणसेढी पुण संजमपरिणामणिबंधणा अवट्ठिदायामेण पयट्टदि त्ति घेत्तव्वं, करणपरिणामणिबंधणगलिदसेसगुणसेढीए एत्थुवरिमदंसणादो।

*** पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालमिमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि।**

§ ३१. पढमसम्मत्तमुप्पाएमाणस्स जो गुणसंकमकालो तत्तो संखेज्जगुणं कालमेसो गुणसंकमेण विणा वि पडिसमयमणंतगुणाए विसोहिवड्ढीए वड्ढदि त्ति सुत्तत्थो।

*** तेण परं हायदि वा वड्ढदि वा अवट्ठायदि वा।**

जीवपरिणामोंकी विचित्रतावश यहाँ पर गुणसंक्रम नहीं होता। इसलिए इस जीवके प्रति समय विशेष हीनक्रमसे विध्यासंक्रम ही प्रवृत्त होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। तथा यहाँसे लेकर ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता। परन्तु संयमरूप मार्गदर्शक:- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज परिणामोंके निमित्तसे अवस्थित आयामरूपसे गुणश्रेणि प्रवृत्त रहती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि करणपरिणाम निमित्तक गलितशेष गुणश्रेणिका यहाँ पर अन्त देखा जाता है।

विशेषार्थ—गुणसंक्रममें उत्तरोत्तर गुणित क्रमसे कर्मपुञ्जका संक्रम होता है। किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे लेकर गुणसंक्रम न होकर विध्यातसंक्रम होता है। इसलिए उत्तोत्तर विशेष हीन क्रमसे मिथ्यात्वके द्रव्यका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रम होता रहता है। यहाँ ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डक-घात भी नहीं होता। साथ ही करणपरिणामनिमित्तक जो गलितशेष गुणश्रेणि रचना प्रवृत्त थी वह अब नहीं होती। हाँ संयमपरिणामनिमित्तक अवस्थित गुणश्रेणि रचना निरन्तर होती रहती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवका गुणसंक्रमद्वारा जो पूरणकाल प्राप्त होता है उससे संख्यातगुणे कालतक यह उपशान्त दर्शनमोहनीय जीव विशुद्धिके द्वारा बढ़ता रहता है।**

§ ३१. प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवका जो गुणसंक्रमकाल प्राप्त होता है उससे संख्यातगुणे काल तक यह जीव गुणसंक्रमके बिना भी प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिकी वृद्धि होनेसे बढ़ता रहता है यह इस सूत्रका अर्थ है।

*** उसके बाद परिणामोंके द्वारा कभी घटता है कभी बढ़ता है और कभी अवस्थित रहता है।**

§ ३२. कुदो ? सत्थाणे पदिदस्स वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणेसु संकिलेस-विसोहिवसेण संचरणं पडि विरोहाभावादो।

*** तहा चेव ताव उवसंतदंसणमोहणिज्जो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिआदीसु बंधपरावत्तसहस्साणि कादूण।**

§ ३३. जहा अणंताणुबंधी विसंजोएदूण सत्थाणे पदिदो असादादिबंधपाओग्गो होदि एवमेसो वि उवसंतदंसणमोहणिज्जो होदूण विसोहिकालं वोलिय पमत्तापमत्तगुणेसु परावत्तमाणो असादारइ-सोग-अजसगित्तिआदीणमसुहपयडीणं बंधगो होदूण तब्बंधपरावत्तसहस्साणि कुणमाणो अंतोमुहुत्तं विस्समिय तदो उवसमसेढिपाओग्गविसोहीए अहिमुहो होदि त्ति सुत्तत्थसंगहो।

---

§ ३२. क्योंकि स्वस्थानको प्राप्त हुए जीवके संक्लेश और विशुद्धिवश परिणामोंके वृद्धि, हानि और अवस्थानमें संचरणके प्रति विरोधका अभाव है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि जब तक उक्त जीव स्वस्थान संयत बना रहता है तब तक जब विशुद्धिको प्राप्त होता है तब परिणामोंमें वृद्धि होती है, जब संक्लेशको प्राप्त होता है तब परिणामोंमें हानि होती है और जब पिछले समयके समान संक्लेश या विशुद्धि बनी रहती है तब परिणामोंमें भी अवस्थितपना बना रहता है।

*** तबसे उसीप्रकार उपशान्तदर्शन मोहनीय जीव असातावेदनीय, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदि प्रकृतियोंसम्बन्धी हजारों बन्धपरावर्तन करके।**

§ ३३. जिस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके स्वस्थानको प्राप्त हुआ उक्त जीव असातावेदनीय आदिके बन्धकेयोग्य होता है उसी प्रकार यह भी उपशान्तदर्शनमोहनीय हो विशुद्धि कालको बिताकर प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थानोंमें परावर्तन करता हुआ असातावेदनीय, अरति, शोक और अयशःकीर्ति आदि अशुभ प्रकृतियोंका बन्धक होकर उनके हजारों बन्धपरावर्तन करता हुआ अन्तर्मुहूर्त काल तक विश्राम करके तत्पश्चात् उपशमश्रेणिके योग्य विशुद्धिके अभिमुख होता है यह सूत्रार्थसंग्रह है।

विशेषार्थ—जब एकान्त विशुद्धिकी वृद्धिका काल समाप्त होकर यह जीव स्वस्थानसंयत हो जाता है तब यह जीव प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें परावर्तन करता हुआ प्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी जब संक्लेशरूप परिणाम होते हैं तब असातावेदनीय आदि अप्रशस्त प्रकृतियोंका बन्ध करने लगता है। स्वस्थान संयत इस कालके भीतर इन प्रकृतियोंका इस प्रकार हजारों बार बन्ध करता है। यह विश्राम काल है जो समुच्चयरूपसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। पुनः इस कालके व्यतीत होनेके बाद यह जीव उपशमश्रेणिके योग्य विशुद्धिको नियमसे प्राप्त करता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

*** तत्पश्चात् कषायोंको उपशमानेके लिये अधःप्रवृत्तकरणसम्बन्धी परिणामरूप परिणमता है।**

*** तदो कसाए उवसामेदुं कच्चे अधापवत्तकरणस्स परिणामं परिणमइ ।**

§ ३४. तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सवावारादो अणंतरमुवसमसेढिपाओग्ग-विसोहीए विसुज्झियूण कसायाणमुवसामणट्ठमधापवत्तकरणपरिणामं परिणमदि त्ति भणिदं होइ । कषायानुपशमयितुमुद्यतः तस्य कृत्ये तस्य कृते आद्यं करणपरिणाम-मधःप्रवृत्तसंज्ञमेष कृताशेषपरिकरकरणीय परिणमत इत्यर्थः । एदेण हेट्ठिमासेसपरूवणा कसायोवसामणाए परिकरभावेण विहासिदा । एत्तो उवरिमा पुण कसायोवसामगस्स परूवणा त्ति जाणाविदं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** जं अणंताणुबंधी विसंजोएंतेण हदं दंसणमोहणीयं च उवसामेंतेण हदं कम्मं तमुवरि हदं ।**

§ ३५. जं कम्ममणंताणुबंधिणो विसंजोएंतेण हदं, जं च दंसणमोहणीयमुवसामेंतेण हदं तं सव्वं कसायोवसामगेण घादिज्जमाणट्ठिदि-अणुभागसंतकम्मादो उवरिमं चेव हदं णो हेट्ठा त्ति भणिदं होइ । एदेण कसायोवसामगस्स घादिज्जमाणट्ठिदि-अणुभागाण-

---

§ ३४. तत्पश्चात् हजारों प्रमत्त और अप्रमत्तसम्बन्धी परावर्तनरूप व्यापारके बाद उपशमश्रेणिके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ कषायोंको उपशमानेके लिये अधःप्रवृत्त-करण परिणामरूप परिणमता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। कषायोंका उपशमानेके लिए उद्यत हुआ जीव 'तस्य कृत्ये' अर्थात् उसके लिये सबसे प्रथम जो अधःप्रवृत्त संज्ञावाला करणपरिणाम है उस रूप, यह समस्त करणीय परिकरसे सम्पन्न होकर, परिणमता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस द्वारा अधस्तन समस्त प्ररूपणाका कषायके उपशामनाके परिकररूपसे व्याख्यान किया गया। परन्तु इससे उपरिम प्ररूपणा कषायोंके उपशामक-सम्बन्धी है यह ज्ञान कराया गया है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्तिके बाद हजारों बार प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत होता है। उसके बाद सातिशय अप्रमत्तभावको प्राप्त कर उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेके लिए अधःप्रवृत्तकरणभावको प्राप्त होता है।

*** अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवने जो कर्म नष्ट किया और दर्शनमोहनीयकी उपशामना करनेवाले जीवने जो कर्म नष्ट किया वह स्थिति-अनुभागसत्कर्मकी अपेक्षा उपरिम कर्म ही नष्ट किया।**

§ ३५. अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवने जो कर्म नष्ट किया और दर्शन-मोहनीयकी उपशामना करनेवाले जीवने जो कर्म नष्ट किया वह सब कषायोंकी उपशामना करनेवाले जीवके द्वारा घाते जानेवाले स्थिति-अनुभागसत्कर्मसे जो उपरिम कर्म है वही नष्ट किया गया, अधस्तन कर्म नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस वचन द्वारा कषायोंका उपशामक जिन स्थिति-अनुभागवाले कर्मोंका घात करनेवाला है उनका अस्तित्व दिखलाकर

मत्थित्तपदंसणमुहेण उवरिमकरणपयारस्स साहलत्तं परूविदं ति दट्ठव्वं। अथवा 'उवरि' 'हदं' एवं भणिदे ताहिं दोहिं किरियाहिं घादिज्जमाणट्ठिदि-अणुभागसंतकम्म-मुवरिमं पुव्वं चेव हदं घादिदं, तदो तत्तो हेट्ठिमट्ठिदि-अणुभाग-संतकम्माणि घादिदाव-सेसरूवाणि अस्सिदूण उवरिमं पबंधमवदारयिस्सामो त्ति एसो एदस्साहिप्पायो। अथवा 'उवरि हदं' एवं भणंतस्साभिप्पायो सव्वत्थेव ट्ठिदि-अणुभागघादं कुणमाणो हेट्ठा मज्झे वा ण हणदि, किंतु उवरि चेव हणदि ट्ठिदि-अणुभागसंतकम्माणमुवरिमभागे चेव केत्तियं पि घेत्तूण ट्ठिदि-अणुभागखंडयघादमाचरदि त्ति वुत्तं होइ। अथवा अणंताणु-बंधी विसंजोइय वेदयसम्मत्तमुवसामिय कसायोवसामणाए पयट्टमाणेण दोहिं किरियाहिं मिलिदाहिं जं कम्मं हदं तमुवरि हदमिदि भणिदे दंसणमोहणीयं खविय उवसमसेढिं चढमाणो दंसणमोहक्खवणाए हेट्ठा घादिज्जमाणट्ठिदि-अणुभागेहिंतो उवरि चेव हदं। एत्तो संखेज्जगुणहीणमणंतगुणं च ट्ठिदि-अणुभागसंतकम्मं कादूण खइय-सम्माइट्ठी उवसमसेढिं चढदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। एदेण दंसणमोहणीयं खविय इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिं चढमाणपाओग्गो होदि त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो होदि, अण्णहा पुव्विल्लपरूवणाए चउवीससंतकम्मियोवसमसम्माइट्ठिस्सेव उवसमसेढिपाओग्गभावावहारणप्पसंगादो। अण्णे वुण 'तमुवरि हम्मदि' त्ति पाठंतर-मवलंबमाणा एवमेत्थसुत्तत्थसमत्थणं करेंति। तं जहा—जं कम्मं अणंताणुबंधी

उपरिम करणोंकी सफलता कही गई है ऐसा जानना चाहिए। अथवा 'उवरि हदं' ऐसा कहनेपर उन दोनों क्रियाओंके द्वारा घाते जानेवाले उपरिम स्थिति-अनुभाग सत्कर्मका पहले ही घात कर दिया है, इसलिए उनद्वारा घात करनेसे शेष बचे हुए अधस्तन स्थिति-अनुभागसत्कर्मोंका आश्रय कर आगेके प्रबन्धका अवतार करेंगे यह इस सूत्रका अभिप्राय है। अथवा 'उवरि हदं' ऐसा कहनेवाले आचार्यका अभिप्राय है कि सभी जगह स्थिति और अनुभागका घात करनेवाला जीव नीचेके या बीचके स्थितिअनुभागसत्कर्मका घात नहीं करता, किन्तु 'उवरि चेव हणदि' अर्थात् स्थिति-अनुभागसत्कर्मोंके उपरिम भागमेंसे कुछ ही को ग्रहण कर स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनकर और वेदकसम्यक्त्वको उपशमाकर कषायोंको उपशमानेके लिये प्रवृत्त हुए जीवने मिली हुई दो क्रियाओं द्वारा जिस कर्मको नष्ट किया 'तं उवरि हदं' ऐसा कहने पर दर्शनमोहका क्षयकर उपशमश्रेणि पर चढ़नेवाले दर्शनमोहके क्षपकने पूर्वमें घाते जानेवाले स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा अधिक कर्मका ही घात किया। इससे स्थितिसत्कर्म और अनुभागसत्कर्मको संख्यात गुणहानि और अनन्तगुणा करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ता है यह इस सूत्रका भावार्थ है। इस कथन द्वारा दर्शनमोहनीयका क्षय करके मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियोंके सत्कर्मवाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़नेके योग्य होता है इस अर्थविशेषका ज्ञान कराया गया है, अन्यथा पहलेकी प्ररूपणाके अनुसार चौबीस कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव ही उपशमश्रेणिके योग्य है ऐसा अवधारण करनेका प्रसंग प्राप्त होता है। परन्तु दूसरे आचार्य

विसंजोएंतेण दंसमोहणीयमुवसामेंतेण खवेंतेण वा हेट्ठा सग-सगकरणपरिणामेहिं हदं तं चेव कम्मं घादिदावसेसमुवरि त्ति हम्मदि, ण तत्तो अण्णं किंचि कम्मंतरं बंधेण अण्णहा वा समुप्पाइय कसायोवसामणो हणदि, तहा संभवाभावादो त्ति।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३६. संपहि अधापवत्तादीणं तिण्हं करणाणं जहाकममेत्थ परूवणं कुणमाणो अधापवत्तकरणविसयमेव ताव परूवणापबंधमाढवेइ 'यथोद्देशस्तथा निर्देश' इति न्यायात्।

*** इदाणिं कसाए उवसामेंतस्स जमधापवत्तकरणं तम्हि णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च। णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि।**

'वसुवरि हम्मदि' इस पाठान्तरका अवलम्बन लेकर यहाँ उक्त सूत्रके अर्थका इस प्रकार समर्थन करते हैं। यथा—अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवालेने और दर्शनमोहनीयकी उपशमना करनेवाले अथवा क्षपणा करनेवालेने अपने-अपने करणपरिणामोंके द्वारा जिस कर्मका पहले घात किया, घात करनेसे शेष बचे हुए उसी कर्मका आगे घात करता है, कषायोंका उपशम करनेवाला बन्ध द्वारा या अन्य प्रकारसे उससे कुछ दूसरे कर्मको उत्पन्न कर उसका घात नहीं करता, क्योंकि इस प्रकार सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—यहाँपर 'जं अणंताणुबंधी विसंजोयंतेण' इत्यादि रूपसे कथित उक्त सूत्रमें आये हुए 'तमुवरि हदं' पदकी अपेक्षा भेदसे अनेक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं उन सबका मुख्य सार यह है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवने और दर्शनमोहनीयकी उपशमना करनेवाले जीवने जो कर्म नष्ट किया वह स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा उपरिम भागमें स्थित कर्म ही नष्ट किया, क्योंकि स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा उपरिम भागको नष्ट किये बिना अधस्तन या मध्यके भागको नष्ट करना सम्भव नहीं है। तथा जो शेष कर्म बचा है उसको आगे की जानेवाली क्रिया विशेषके द्वारा उत्सारित किया जायगा। यहाँपर 'तमुवरि हदं' के स्थानमें कुछ आचार्य 'तमुवरि हम्मदि' पाठ स्वीकार करते हैं। इस पाठको स्वीकार कर वे ऐसा अर्थ करते हैं कि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीय की उपशमना या क्षपणा करनेवाले जीवने पहले अपने अपने करण परिणामोंके द्वारा जिस कर्मका घात किया कषायोंका उपशम करनेवाला आगे भी घात करनेसे शेष बचे हुए उसी कर्मका घात करता है, क्योंकि यहाँ पर बन्ध या अन्य प्रकारसे दूसरे कर्मको उत्पन्न कर उसका घात करना सम्भव नहीं है।

§ ३६. अब अधःप्रवृत्त आदि तीन करणोंका क्रमसे यहाँ पर कथन करते हुए अधःप्रवृत्तकरणविषयक प्ररूपणाप्रबन्धको सर्वप्रथम आरम्भ करते हैं, क्योंकि 'जैसा उद्देश होता है उसीके अनुसार निर्देश किया जाता है' ऐसा न्याय है।

*** इस समय कषायोंका उपशम करनेवाले जीवके जो अधःप्रवृत्तकरण होता है उसमें स्थितिघात, अनुभागघात और गुणश्रेणि नहीं होती। किन्तु प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे बढ़ता रहता है।**

§ ३७. कसाये उवसामेंतस्स जमधापवत्तकरणं तम्हि पयट्टमाणस्स ट्ठिदिधादादिसंभवो णत्थि । केवलमंतोमुहुत्तमेत्तकालब्भंतरे पडिसमयमणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झमाणो ट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि कादूण अप्पणो पढमसमयट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणं ट्ठिदिबंधं चरिमसमए ठवेदि । अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागबंधोसरणं पि समये समये अणंतगुणहाणीए करेदि । पसत्थाणं कम्माणमणंतगुणवड्ढीए चउट्ठाणियमणुभागबंधं समये समये पयट्टावेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो । संपहि एत्थ अधापवत्तकरणस्स लक्खणं परूवेयव्वं, अण्णहा अणवगयतस्सरूवाणं तव्विसयसेसपरूवणाए असंबंधत्तप्पसंगादो त्ति आसंकाए उत्तरमाह—

*** तं चेव इमस्स वि अधापवत्तकरणस्स लक्खणं जं पुव्वं परूविदं ।**

§ ३८. जं पुव्वं पढमसम्मत्तग्गहणे अधापवत्तकरणस्स लक्खणमणुकट्ठिआदीहिं विसेसियूण परूविदं तं चेव णिरवसेसमेत्थ वि कायव्वं, ण तत्तो विलक्खणमेदस्स लक्खणंतरमत्थि त्ति वुत्तं होइ । एवमपुव्वाणियट्टिकरणाणं पि पुव्वुत्तमेव लक्खणमणुगंतव्वं, विसेसाभावादो । कधं पुण सव्वकिरियासु अभिण्णलक्खणाणमेदेसिं तिण्हं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३७. कषायोंका उपशम करनेवाले जीवके अधःप्रवृत्तकरण होता है उसमें प्रवृत्ति करनेवाले जीवके स्थितिघात आदि सम्भव नहीं है। केवल उसके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके भीतर प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ हजारों स्थितिबन्धापसरण करके अपने प्रथम समयके स्थितिबन्धसे उसके अन्तिम समयमें संख्यातगुणे हीन स्थितिबन्धको स्थापित करता है। अप्रशस्त कर्मोंका प्रति समय अनन्तगुणी हानिको लिये हुए अनुभागबन्धापसरण भी करता है। तथा प्रशस्त कर्मोंका प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिको लिये हुए चतुःस्थानीय अनुभाग बन्ध करता है इस प्रकार यह यहाँ पर सूत्रके अर्थका संग्रह है। अब यहाँ पर अधःप्रवृत्तकरणके लक्षणका कथन करना चाहिए, अन्यथा जिन्होंने उसके स्वरूपको नहीं जाना है उनके लिए तद्विषयक शेष प्ररूपणा असम्बद्ध होनेका प्रसंग प्राप्त होता है ऐसी आशंका होने पर आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस अधःप्रवृत्तकरणका भी वही लक्षण है जिसका पहले कथन किया है।**

§ ३८. प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहणके समय अधःप्रवृत्तकरणका अनुकृष्टि आदि विशेषताओंके साथ जो लक्षण पहले कह आये हैं उसी पूरे लक्षणको यहाँ पर भी कहना चाहिए, उससे विलक्षण इसका दूसरा लक्षण नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणका भी पूर्वोक्त लक्षण ही जानना चाहिए, क्योंकि उनसे इनमें कोई अन्तर नहीं है।

शंका—सब कार्योंमें एक समान लक्षणवाले इन तीनों करणोंमें अलग-अलग कार्योंको उत्पन्न करनेकी शक्ति कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यद्यपि इन करणोंके लक्षणोंके कथनमें वास्तवमें कोई भेद नहीं है फिर भी पूर्वके करणोंमें विशुद्धि अनन्तगुणी हीन होती है और

करणाणं भिण्णकज्जुप्पायणसत्तिसंभवो विरोहादो त्ति णासंका कायव्वा, लक्खणालावगयभेदाभावे वि अत्थदो हेट्ठिमोवरिमकरणविसोहीणमणंतगुणहीणाहियभावभेदमस्सियूण पुध पुध कज्जसिद्धीए विरोहाणुवलंभादो ।

§ ३९. एवमेदेसिं लक्खणाणुवादं कादूण संपहि अधापवत्तकरणपरूवणावसरे पट्ठवणगाहाणमत्थविहासा जहावसरपत्ता कायव्वा त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

मार्गदर्शक- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** तदो अधापवत्तकरणस्स चरिमसमये इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ ।**

§ ४०. विहासियव्वाओ त्ति वक्कसेसो । सेसं सुगमं ।

*** तं जहा ।**

§ ४१. एदं पि सुगमं ।

*** कसायउवसामणपट्ठवगस्स० ॥ १ ॥**

आगेके करणोंमें विशुद्धि अनन्तगुणी अधिक होती है इस प्रकार इन करणोंमें जो भेद उपलब्ध होता है उसका आश्रय कर पृथक्-पृथक् कार्योंकी सिद्धि हो जाती है इसमें कोई विरोध नहीं उपलब्ध होता ।

विशेषार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना, द्वितीयोपशमकी उत्पत्ति, क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति, चारित्रमोहकी उपशमना और क्षपणा ये कार्य हैं जिनमें अधःप्रवृत्त आदि तीन करण होते हैं, उनके लक्षण भी सर्वत्र समान हैं। इसी बातको ध्यानमें रखकर उक्त शंका-समाधान किया गया है। प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके समय इन तीन करणोंमें सबसे कम विशुद्धि होती है। चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके समय इन तीन करणोंमें सबसे अधिक विशुद्धि होती है। मध्यके स्थानोंमें अधिकारी भेदसे यथायोग्य जान लेनी चाहिए।

§ ३९. इस प्रकार इनके लक्षणोंका अनुवाद करके अब अधःप्रवृत्तकरणके कथनके अवसर पर चारों प्रस्थापक गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान क्रमसे अवसर प्राप्त है, ऐसा कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** तत्पश्चात् अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें इन चार सूत्रगाथाओंका व्याख्यान करना चाहिए ।**

§ ४०. 'व्याख्यान करना चाहिए' इतने वाक्यशेषकी अनुवृत्ति करनी चाहिए। शेष कथन सुगम है।

*** वह जैसे ।**

§ ४१. यह सूत्र भी सुगम है।

*** कषायोंका उपशम करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है, किस योग, कषाय और उपयोगमें वर्तमान, किस लेश्यासे युक्त और कौनसे वेदवाला जीव कषायोंका उपशम करता है ॥ १ ॥**

§ ४२. एसा पढमगाहा त्ति जाणावणट्ठमेत्थ एगंकविण्णासो कओ। कथमेत्थ गाहाए एगदेसणिद्देसेण सयलगाहासुत्तपडिवत्ति त्ति णासंकणिज्जं, देसामासयभावेण एदस्स गाहापढमपादस्स सयलगाहापरामरसयभावेण पवुत्तिदंसणादो। तदो सयलगाहा एत्थ उच्चारिय घेत्तव्वा। आद्यन्तनिर्देशाद्वा सिद्धं, सर्वत्रागमिकानामाद्यन्तनिर्देश-व्यवहारस्य सुप्रसिद्धत्वात्।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** काणि वा पुव्वबद्धाणि० ॥ २ ॥**

§ ४३. एसा विदियगाहा त्ति जाणावणट्ठमेत्थ दोअंकविण्णासो चुण्णिसुत्तयारेण कओ। एत्थ वि पुव्वं व गाहेयदेसणिद्देसेण सयलगाहापडिवत्ती वक्खाणेयव्वा।

*** 'के अंसे झीयदे० ॥ ३ ॥**

§ ४४. एसा तइज्जा गाहा त्ति जाणावणट्ठमिह तिण्हमंकविण्णासो। तदो एत्थ वि पुव्वुत्तेणेव णायेण सयलगाहापडिवत्ती दट्ठव्वा।

---

§ ४२. यह प्रथम गाथा है इस बातका ज्ञान करानेकेलिये यहाँ एक अंकका विन्यास किया है।

शंका—यहाँ पर गाथाके एकदेशके विन्यास द्वारा पूरे गाथासूत्रकी प्रतिपत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि देशामर्षकरूपसे गाथाके इस प्रथम पादकी पूरे गाथासूत्रके परामर्शरूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए यहाँ पर पूरे गाथा सूत्रका उच्चारण कर उसे ग्रहण करना चाहिए। अथवा गाथाके आदि और अन्तका निर्देश करनेसे पूरे सूत्रका उच्चारण सिद्ध हो जाता है, क्योंकि सर्वत्र आगमिकोंमें आदि अन्तके निर्देश करनेका व्यवहार सुप्रसिद्ध है।

*** कषायोंका उपशम करनेवाले जीवके पूर्वबद्ध कर्म कौन-कौन हैं, वर्तमानमें किन कर्मांशोंको बाँधता है, कितने कर्म उदयावलिमें प्रवेश करते हैं और यह किन कर्मोंका प्रवेशक होता है ॥ २ ॥**

§ ४३. यह दूसरी गाथा है इसका ज्ञान करानेके लिए चूर्णिसूत्रकारने यहाँ दो अंकका विन्यास किया है। यहाँ पर भी पहलेके समान गाथाके एकदेशके निर्देशद्वारा सम्पूर्ण गाथाकी प्रतिपत्तिका व्याख्यान करना चाहिए।

*** कषायोंके उपशम करनेके सन्मुख होनेके पूर्व ही बन्ध और उदयरूपसे किन प्रकृतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति हो जाती है। आगे चलकर अन्तरको कहाँ पर करता है और कहाँ पर किन-किन कर्मोंका उपशामक होता है ॥ ३ ॥**

§ ४४. यह तीसरी गाथा है इसका ज्ञान करानेके लिये यहाँ पर तीन अंकका विन्यास किया है। इसलिये यहाँ पर भी पूर्वोक्त न्यायसे ही सम्पूर्ण गाथाकी प्रतिपत्ति कर लेनी चाहिए।

* 'किं ट्ठिदियाणि०' ॥ ४ ॥

§ ४५. एसा चउत्थी गाहा त्ति जाणावणफलो सुत्तपरिसमत्तीए चउण्हमंकविण्णासो। एत्थ वि पुव्वुत्तो चेव सयलगाहापडिबद्धवक्खाणेयव्वो। एदासिं च गाहाणमत्थविहासा सुगमा त्ति चुण्णिसुत्तयारेण ण वित्थारिदा; तदो एत्थ मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठमेदेण समप्पिदगाहासुत्तत्थविवरणमणुवत्तइस्सामो। तं जहा—'कसायोवसामणपट्ठवगस्स परिणामो केरिसो भवे' त्ति विहासा—परिणामो विसुद्धो। पुव्वं पि अंतोमुहुत्तप्पहुडि अणंतगुणविसोहीए विसुज्झमाणो आगदो, अण्णहा उवसमसेढिसमारोहणणजोग्गभावाणुववत्तीदो। 'जोगे' त्ति विहासा—अण्णदरमणजोगो, अण्णदरवचिजोगो, ओरालियकायजोगो वा, सेसकायजोगाणमेत्थासंभवादो। 'कसाये' त्ति विहासा—अण्णदरो कसायो। सो किं वड्ढमाणो हायमाणो त्ति? णियमा हायमाणो, वड्ढमाणकसायेण सेढिसमारोहणविरोहादो। 'उवजोगे' त्ति विहासा—एक्को उवदेसो—णियमा सुदोवजुत्तो त्ति। अण्णो उवदेसो—सुदणाणेण वा मदिणाणेण वा, अचक्खुदंसणेण वा चक्खुदंसणेण वा उवजुत्तो त्ति। 'लेस्सा' त्ति विहासा—णियमा सुक्कलेस्सा णियमा च वड्ढमाणलेस्सा। सेसलेस्साविसयमुल्लंघिय़ूण सुविसुद्धसुक्कलेस्साए एदस्स

श्री सुविधिसागर जी महाराज

* कषायोंका उपशम करनेवाला जीव किस स्थितिवाले कर्मोंका तथा किन अनुभागोंमें स्थित कर्मोंका अपवर्तन करके शेष रहे उनके किस स्थानको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

§ ४५. यह चौथी गाथा है इसका ज्ञान करानेके लिए सूत्रकी परिसमाप्ति होने पर चार अंकका विन्यास किया है। यहाँ पर सकल गाथाकी प्रतिपत्तिके पूर्वोक्त उपायका ही व्याख्यान करना चाहिए। इन गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान सुगम है, इसलिये चूर्णिसूत्रकारने विस्तार नहीं किया। इसलिये यहाँ पर मन्दबुद्धिजनोंके अनुग्रहके लिये इसके द्वारा प्राप्त हुए गाथासूत्रोंके अर्थका विवरण करेंगे। यथा 'कषायोंका उपशम करनेवाले जीवका परिणाम कैसा होता है' इसकी विभाषा (विशेष व्याख्यान)—परिणाम विशुद्ध होता है जो पहले ही अन्तर्मुहूर्त कालसे लेकर अनन्तगुणी विशुद्धिके साथ विशुद्ध होता हुआ आया है, अन्यथा उपशमश्रेणि पर चढ़नेके भावकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। 'योग' इस पदकी विभाषा—अन्यतर मनोयोग, अन्यतर वचनयोग अथवा औदारिककाययोग होता है, क्योंकि शेष काययोग यहाँ पर सम्भव नहीं हैं। 'कषाय' इस पदकी विभाषा—अन्यतर कषाय होती है।

शंका—वह क्या वर्धमान होती है या हीयमान होती है?

समाधान—नियमसे हीयमान होती है, क्योंकि वर्धमान कषायके साथ श्रेणि पर आरोहण करनेका विरोध है।

'उपयोग' इस पदकी विभाषा—एक उपदेश है कि नियमसे श्रुतज्ञानमें उपयुक्त होता है। अन्य उपदेश है कि श्रुतज्ञान, मतिज्ञान, अचक्षुदर्शन या चक्षुदर्शनरूपसे उपयुक्त होता है। 'लेश्या' इस पदकी विभाषा—नियमसे शुक्ललेश्या होती है और जो नियमसे वर्धमान होती

परिणदत्तादो । 'वेदो व को भवे' त्ति विहासा—अण्णदरो वेदो भावदो, दव्वदो पुण पुरिसवेदो चेव । एवं पढमगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

है, क्योंकि शेष लेश्याओंके विषयका उल्लंघन कर सुविशुद्ध शुक्ललेश्यारूपसे यह परिणत रहता है । 'वेद कौन होता है', इसकी विभाषा—भावसे अन्यतर वेद होता है, परन्तु द्रव्यसे पुरुषवेद ही होता है । इस प्रकार प्रथम गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—जो सातिशय अप्रमत्त संयत चारित्रमोहनीयका उपशम करनेके लिए उद्यत होता है उसका परिणाम कैसा होता है तथा योग, कषाय, उपयोग, लेश्या और वेद कौन-कौनसी होती हैं इसका एक मनुष्यके प्रसंगसे विचार किया गया है । अप्रमत्तसंयमके मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज स्वरूपपर प्रकाश डालते हुए गोम्मटसार जीवकाण्डमें अन्य विशेषताओंके साथ उसे ध्यानमें निरन्तर लीन बतलाया है । इससे स्पष्ट है कि सातवेंसे लेकर बारहवें तकके सब गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर ध्यान की प्रगाढ़ता होती जाती है । साथही इन गुणस्थानों में एकमात्र निर्विकल्प ध्यान होनेसे कषायोंका सद्भाव अबुद्धिपूर्वक ही पाया जाता है । इसका आशय यह है कि उक्त गुणस्थानोंमें स्थित जीव स्वरूपका अनुभव करता हुआ इष्टानिष्ट विकल्पके बिना ही शुद्ध चैतन्य स्वरूप का अनुभव करता है । निर्विकल्प ध्यान भी इसीका नाम है । अतः चारित्रमोहनीयका उपशमन करनेके लिए उद्यत हुए जीवका परिणाम विशुद्ध होता है यह आगमवचन युक्तियुक्त ही है, क्योंकि यहाँ बुद्धिपूर्वक कषायका सद्भाव तो पाया ही नहीं जाता, अबुद्धि पूर्वक कषायका सद्भाव है भी तो उसमें उत्तरोत्तर हानि होती जाती है और अपने उपयोग परिणामके द्वारा उक्त जीवकी अपने स्वरूपमें उत्तरोत्तर प्रगाढ़ता होती जाती है । यह तो उक्त जीवका परिणाम कैसा होता है इसका स्पष्टीकरण है । योग कौन होता है इसका स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया है कि चारों मनोयोग, चारों वचन योग और औदारिक काययोग इनमेंसे कोई एक योग होता है सो इसका कारण यह है कि एक तो यह पर्याप्त मनुष्य ही होता है, क्योंकि इसके सिवाय अन्य किसी भी अवस्थावाला जीव उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि पर चढ़नेका पात्र नहीं होता । दूसरे यह जीव छद्मस्थ होता है, इसलिए इसके उक्त नौ योगोंमें से कोई एक योग बन जाता है । जो जीव उपशमश्रेणि पर आरोहण करता है उसके संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इनमेंसे किसी भी कषायका सद्भाव होनेमें कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि संज्वलन क्रोध, मान और माया यथासम्भव ये तीन कषाय नौवें गुणस्थान तक और लोभकषाय दसवें गुणस्थान तक पायी जाती है, अतः इनमेंसे किसी भी कषायके सद्भावमें श्रेणिपर आरोहण करना बन जाता है । सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमके समान मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका जोड़ा है । इसलिये श्रेणि आरोहणके समय इनमेंसे विवक्षाभेदसे कोई भी उपयोग कहा जाय इसमें बाधा नहीं आती । इतना अवश्य है कि आत्मानुभवनमें इन्द्रिय और मनका आलम्बन नहीं रहता, क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप होनेसे जो ज्ञानानुभूति है ऐसा स्वीकार करने पर उसका स्वसहाय होना युक्तिसंगत ही है और चूंकि ऐसी अनुभूति रागादि पर भावस्वरूप नहीं होती, पर द्रव्य और उनकी पर्यायस्वरूप तो अज्ञानदशामें भी नहीं होती, इसलिए उसे मात्र स्वभावके आलम्बनसे उत्पन्न हुई होनेसे निश्चय नयस्वरूप कहा है । जिन आचार्योंने यहाँ श्रुतज्ञानोपयोग स्वीकार किया है उसका यही कारण है । किन्तु अन्य जिन आचार्योंने श्रुतज्ञानोपयोग के समान मतिज्ञानोपयोग तथा चक्षुदर्शन स्वीकार किया है उसका यह आशय प्रतीत होता है कि श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है और मतिज्ञान चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शनपूर्वक होता है इसलिए

§ ४६. 'काणि वा पुव्वबद्धाणि' त्ति विहासा—एत्थ पयडिसंतकम्मं अणुभाग-संतकम्मं पदेससंतकम्मं च मग्गियव्वं। तत्थ पयडिसंतकम्ममग्गणाए मूलुत्तरपयडीणं सव्वासिं संतकम्मिओ त्ति वत्तव्वं। णवरि अणंताणु० ४ णियमा असंतकम्मिओ, दंसणतियस्स सिया संतकम्मियो, आउअस्स णियमा मणुसाउअसंतकम्मिओ, देवाउअस्स सिया संतकम्मिओ, सेसाणं दोण्हमाउआणं णियमा असंतकम्मिओ। णामस्स सिया आहारदुगसंतकम्मिओ, एवं तित्थयरस्स वि, तित्थयरसंतकम्मियाण-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मुवसमसेढिसमारोहणे पडिसेहाभावादो। सेसाणं णियमा संतकम्मिओ। जासिं पयडीणं संतकम्मिओ, तासिमाउअवज्जाणमंतोकोडाकोडिट्ठिदिसंतकम्मिओ। अप्पसत्थाणं बिट्ठाणाणुभागसंतकम्मिओ, पसत्थाणं चउट्ठाणाणुभागसंतकम्मिओ। सव्वासिमेव

यहाँ श्रुतज्ञान उपयोग की चरितार्थता रहने पर भी कार्य में कारणका उपचार कर उक्त सभी उपयोग बन जाते हैं। उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्ध होनेसे ऐसे जीवके एकमात्र सुविशुद्ध शुक्ललेश्या कही है। वेद में किसी भी वेदसे श्रेणि चढ़ना सम्भव है, क्योंकि यहाँ पर अबुद्धि-पूर्वक कषायके समान वेद भी अबुद्धिपूर्वक ही पाया जाता है। लोकमें स्त्री, पुरुष और नपुंसकका व्यवहार शरीराश्रित बाह्य चिह्नके अनुसार होता है, मात्र इसीलिए बाह्य चिह्नके अनुसार कथनमें वेद संज्ञा रूढ़ है, परन्तु वह जीवका नोआगम भाव न होनेसे उसकी द्रव्यवेद संज्ञा है। यतःवज्रर्षभनाराचसंहननका धारी मनुष्य जीव ही मोक्षका अधिकारी होता है, अतः द्रव्यनपुंसकके समान द्रव्यस्त्री मोक्षगमनकी पात्र न होनेसे परमागममें द्रव्यस्त्रीके मोक्षगमनका निषेध किया है। साथ ही समग्ररूपसे वस्त्रका त्याग करना उसके लिये सम्भव नहीं है और न ही वह पूर्ण स्वालम्बनपूर्वक ध्यानादिकी अधिकारिणी हो सकती है, अतः वह जिनलिंगके धारण करनेके अयोग्य बतलाई गई है। यही कारण है कि यहाँ पर यह जिज्ञासा होने पर कि उक्त जीवके वेद कौन होता है इसका समाधान करते हुए यह बतलाया गया है कि उक्त जीवके भावसे तीनों वेदोंमें से कोई एक वेद होता है और द्रव्यसे केवल पुरुषवेदका निर्देश किया है। इस प्रकार श्रेणि आरोहण के सन्मुख हुए जीवका परिणाम कैसा होता है आदि का सम्यक् प्रकारसे विचार किया।

§ ४६ 'पूर्वबद्ध कर्म कौन हैं' इस पदकी विभाषा—यहाँ पर प्रकृति सत्कर्म, स्थिति-सत्कर्म, अनुभागसत्कर्म और प्रदेशसत्कर्मका अनुसन्धान करना चाहिए। उनमेंसे प्रकृति सत्कर्मका अनुसन्धान करनेपर मूल और उत्तर सभी प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला होता है ऐसा कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उक्त जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्कर्मवाला नियमसे नहीं होता, दर्शनमोहनीयत्रिकका स्यात् सत्कर्मवाला होता है। आयु कर्ममें मनुष्यायुका नियमसे सत्कर्मवाला होता है, देवायुका स्यात् सत्कर्मवाला होता है। शेष दो आयुओंका सत्कर्मवाला नियमसे नहीं होता है। नामकर्ममें आहारक द्विकका स्यात् सत्कर्म-वाला होता है। इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृतिकी अपेक्षा भी जानना चाहिए, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृतिके सत्कर्मवाले जीवोंका उपशमश्रेणि पर आरोहण करनेके प्रतिषेधका अभाव है। शेष प्रकृतियोंका नियमसे सत्कर्मवाला है। यह जिन प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला है, आयुको छोड़कर उन प्रकृतियों का स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण होता है। अप्रशस्त कर्मोंका द्विस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता है तथा प्रशस्तरूप कर्मोंका चतुःस्थानीय अनुभागसत्कर्मवाला होता

संतपयडीणमजहण्णाणुक्कस्सपदेससंतकम्मिओ ।

§ ४७. के वा अंसे णिबंधदि' त्ति विहासा—एत्थ पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो च मग्गियव्वो । तत्थ पयडिबंधमग्गणाए विसुज्झमाणसंजद-बंधपाओग्गपयडीणं णिद्देसो कायव्वो । तं जहा—पंचणाणावरण-छदंसणावरण-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ-देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय० 'आहारसरीरं सिया समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-आहार-अंगोवंग सिया देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-वण्णगंध-रस-फास-अगुरुअलहुआदि४-पसत्थ-विहायगदि-तसादिचउक्क-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सरादेज्जजसगित्ति-णिमिण-तित्थयरं सिया उच्चगोद-पंचंतराइयाणि त्ति एदाओ पयडीओ बंधदि । एत्थ णामस्स ३१,३०,२९,२८ एदाणि बंधट्ठाणाणि । एदासिं चेव पयडीणमंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधदि, अप्पसत्थाणं विट्ठाणाणुभागमणंतगुणहीणं बंधइ, पसत्थाणं चउट्ठाणाणुभागमणंतगुणं बंधइ ।

है । तथा सभी सत्कर्मप्रकृतियों का अजघन्य-अनुत्कृष्ट प्रदेशसत्कर्मवाला होता है ।

§ ४७. किन कर्मप्रकृतियोंको बाँधता है इस पद की विभाषा—यहाँ पर प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धको अनुसन्धान करना चाहिए । उसमें प्रकृति-बन्धका अनुसन्धान करनेपर उत्तरोत्तर विशुद्धिको प्राप्त होनेवाले संयतके बन्ध योग्य प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिए । यथा—पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, स्यात् आहारकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, स्यात् आहारकशरीर आंगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु आदि चार, प्रशस्त विहायोगति, त्रसादि चार, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, स्यात् तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियोंका बन्ध करता है । यहाँपर नामकर्मके ३१ प्रकृतिक, ३० प्रकृतिक, २९ प्रकृतिक और २८ प्रकृतिक ये चार बन्धस्थान होते हैं । इन्हीं प्रकृतियोंकी अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिका बन्ध करता है । अप्रशस्त प्रकृतियोंका उत्तरोत्तर अनन्तगुणा हीन द्विस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है और प्रशस्त प्रकृतियोंका उत्तरोत्तर चतुःस्थानीय अनुभागका बन्ध करता है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विशेषार्थ—यद्यपि सातवें गुणस्थानमें देवायु सहित ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, परन्तु सातिशय अप्रमत्त संयत देवायुका बन्ध नहीं करता, इसलिए प्रकृतमें देवायुको छोड़कर पूर्वोक्त स्यात् ५८ प्रकृतियोंको, स्यात् ५७ प्रकृतियोंको, स्यात् ५६ प्रकृतियोंको और स्यात् ५५ प्रकृतियोंको बाँधता है । यदि तीर्थंकर-आहारकद्विक सहित बन्ध करता है तो ५८ प्रकृतियोंका बन्ध करता है । यदि तीर्थंकर प्रकृतिके बिना आहारक द्विक सहित बन्ध करता है तो ५७ प्रकृतियोंका बन्ध करता है । यदि आहारकद्विकको छोड़कर तीर्थंकर प्रकृति सहित नामकर्मकी २९ प्रकृतियोंका बन्ध करता है तो ५६ प्रकृतियोंका बन्ध करता है और आहारकद्विक और तीर्थंकर इन तीनोंको छोड़कर बन्ध करता है तो ५५ प्रकृतियोंका बन्ध करता है यहाँ पर ५८ प्रकृतियोंमें नामकर्मकी ३१ प्रकृतियाँ परिगणितकी गई हैं, ५७ प्रकृतियोंमें नामकर्मकी ३० प्रकृतियाँ परिगणितकी गई हैं, ५६ प्रकृतियोंमें नामकर्मकी २९ प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं और ५५ प्रकृतियोंमें नामकर्मकी २८ प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं ।

§ ४८. पदेसबंधे पंचणाणावरण-चउदंसणावरण-सादावेदणीयचदुसंजल०-पुरिसवेद-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-फास—अगुरुअलहुअ४-तसादिचउक्क-थिर-सुभ-जसगित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं णियमा अणुकस्सो। सेसाणं पयडीणं सिया उक्कस्सो सिया अणुक्कस्सो।

§ ४९. 'कदि आवलियं पविसंति' त्ति विहासा—मूलपयडीओ सव्वाओ पविसंति उत्तरपयडीओ वि जाओ अत्थि ताओ सव्वाओ पविसंति। णवरि जइ परभवियं देवाउअमत्थि, तं ण पविसदि।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ५०. 'कदिण्हं वा पवेसगो' त्ति विहासा। आउग-वेदणीयवज्जाणं वेदिज्जमाणपयडीणं पवेसगो। एवं विदियगाहाए विहासा गया।

§ ५१. 'के अंसे झीयदे पुव्वं बंधेण उदएण वा' त्ति विहासा-थीणगिद्धितियमसादावेदणीयमिच्छत्तबारसकसाय-इत्थि-णवुंसयवेद-अरदिसोग सव्वाणि चेव आउआणि परियत्तमाणियाओ णामपयडीओ असुभाओ सव्वाओ चेव मणुसगदि-ओरालियसरीर-

---

§ ४८. प्रदेशबन्धका अनुसन्धान करनेपर पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, सातावेदनीय, चारसंज्वलन, पुरुषवेद, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क, त्रसादिचतुष्क स्थिर, शुभ, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इनका नियमसे अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है तथा शेष प्रकृतियोंका स्यात् उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है और स्यात् अनुत्कृष्ट प्रदेशबन्ध होता है।

§ ४९. 'कितनी प्रकृतियाँ उदयावलिमें प्रवेश करती हैं' इसकी विभाषा—मूल प्रकृतियाँ सभी प्रवेश करती हैं। उत्तर प्रकृतियाँ जिनकी सत्ता है वे सभी प्रवेश करती हैं। इतनी विशेषता है कि यदि परभवसम्बन्धी देवायुकी सत्ता है तो वह प्रवेश नहीं करती।

विशेषार्थ—परभवसम्बन्धी देवायुका बन्ध होते समय उसकी जितनी भुज्यमान आयु शेष होती है आबाधा नियमसे उतनी ही पड़ती है और आबाधाकालके भीतर निषेक रचना होती नहीं। यही कारण है कि यहाँ परभवसम्बन्धी देवायुके उदयावलिमें प्रवेश करनेका निषेध किया है।

§ ५०. 'कितनी प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है' इसकी विभाषा—आयु और वेदनीयको छोड़कर उदयमें आनेवाली प्रकृतियोंका प्रवेशक होता है। इस प्रकार दूसरी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रवेशक पदका अर्थ उदीरक है। यतः आयुकर्म और वेदनीयकर्मकी उदीरणा छटे गुणस्थान तक ही होती है, आगे इनका मात्र उदय रहता है उदीरणा नहीं होती, इसलिए यहाँ पर इनका प्रवेशक नहीं होता यह कहा है।

§ ५१. 'उपशमश्रेणि पर चढ़नेके सन्मुख हुए जीवके इससे पूर्व बन्ध और उदयसे किन प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति हो जाती है' इसकी विभाषा—स्त्यानगृद्धित्रिक, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद नपुंसकवेद, अरति, शोक, सभी आयुकर्म प्रकृतियाँ, परावर्तमान अशुभ सब नामकर्म-प्रकृतियाँ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीर आंगो-

ओरालियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-आदावुज्जोव-णामाओ च सुहाओ णीचागोदं च एदाणि कम्माणि बंधेण वोच्छिण्णाणि ।

§ ५२. थीणगिद्धितियं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तबारसकसाय मणुसाउ-अवज्जाणि आउआणि णिरयगदि-तिरिक्खगदिपाओग्गणामाओ अहारदुगं च अंतिम-संघडणतिय-मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीअपज्जत्तणाम० असुभतियं तित्थयरणामं च णीचागोदमेदाणि कम्माणि उदएण वोच्छिण्णाणि।

§ ५३. 'अंतरं वा कहिं किचा के के उवसामगो कहिं' ति विहासा—ण ताव अंतरं करेदि पुरदो अंतरं काहिदि। एवमुवसामगो वि पुरदो होहिदि त्ति वत्तव्वं । एवं तदियगाहा विहासिदा होदि ।

पांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप और उद्योत ये शुभ नामकर्म प्रकृतियाँ तथा नीचगोत्र ये प्रकृतियाँ बन्धसे व्युच्छिन्न हो जाती हैं।

विशेषार्थ—यहाँ पर परावर्तमान सब अशुभ नामकर्म प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—नरकगति, तिर्यञ्चगति, एकेन्द्रियादि चार जाति, अन्तके पाँच संस्थान, अन्तके पाँच संहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशः कीर्ति। इनकी मिथ्यात्व आदि पूर्वके गुणस्थानोंमें यथास्थान बन्ध व्युच्छित्ति हो जाती है।

§ ५२. स्त्यानगृद्धित्रिक, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय मनुष्यायुके अतिरिक्त तीन आयु, नरकगति-तिर्यञ्चगति-देवगति इन तीनोंके प्रायोग्य नाम-कर्मकी नरकगति, तिर्यञ्चगति, देवगति, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण प्रकृतियाँ तथा आहारक द्विक, अन्तके तीन संहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अपर्याप्त, नामकर्मसम्बन्धी दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति ये तीन अशुभ प्रकृतियाँ तथा तीर्थंकर और नीचगोत्र ये सब प्रकृतियाँ उदयसे व्युच्छिन्न रहती हैं।

विशेषार्थ—उदय योग्य कुल १२२ प्रकृतियाँ हैं। उनमेंसे मनुष्यगतिमें मनुष्यायुको छोड़कर तीन आयु, नरकगतिद्विक, तिर्यञ्चगतिद्विक, देवगतिद्विक, एकेन्द्रिय आदि चार जाति, वैक्रियिकशरीरद्विक, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण ये २० प्रकृतियाँ उदयके सर्वथा अयोग्य हैं। उनके अतिरिक्त अन्य जितनी प्रकृतियाँ पूर्व में गिनाई हैं उनका भी उदय श्रेणिके सन्मुख हुए पर्याप्त मनुष्यके नहीं पाया जाता। इसलिए इन सब प्रकृतियोंको यहाँ उदयसे व्युच्छिन्न कहा है।

§ ५३. 'अन्तर कहाँ करके कहाँ किन-किन प्रकृतियोंका उपशामक होता है' इसकी विभाषा—उपशम श्रेणिके सन्मुख हुआ जीव तो अन्तर नहीं करता, आगे अन्तर करेगा। इसी प्रकार उपशामक भी आगे होगा ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार तीसरी सूत्रगाथाका विशेष व्याख्यान किया।

§ ५४. 'किं ठिदियाणि कम्माणि कं ठाणं पडिवज्जदि' त्ति विहासा-एदीए गाहाए ठिदिघादो अणुभागघादो च सूचिदो भवदि। तदो इमस्स चरिमसमयअधापवत्तकरणस्स णत्थि ठिदिघादो अणुभागघादो वा। से काले दो वि घादा पवत्तीहिंति। एवमेदासु चदुसु गाहासु विहासिदासु अधापवत्तकरणद्धा समप्पदि। तदो अपुव्वकरण-विसया परूवणा एण्हिमाढवेयव्वा त्ति जाणावेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो अपुव्वकरणस्स पढमसमए परूवेयव्वाणि।**

§ ५५. एदाओ अणंतरणिद्दिट्ठाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ अधापवत्तकरण चरिमसमये विहासियूण तदो पच्छा अपुव्वकरणस्स पढमसमए इमाणि ट्ठिदिखंडयादीणि आवासयाणि —परूवेयव्वाणि त्ति भणिदं होइ। तत्थ ताव ट्ठिदिखंडयमाणावहारणट्ठमिदमाह।

मार्गदर्शक
*** जो खीणदंसणमोहणिज्जो कसायउवसामगो तस्स खीणदंसण-मोहणिज्जस्स कसायउवसामणाए अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।**

§ ५६. एसो कसायउवसामगो खीणदंसणमोहो वा होज्ज उवसंतदंसणमोहणिज्जो वा, दोण्हं पि उवसमसेढिसमारोहणे पडिसेहाभावादो। तत्थ जो खीणदंसणमोहणिज्जो

---

§ ५४. 'किस स्थितिवाले कर्म किस स्थानको प्राप्त होते हैं' इसकी विभाषा। इस द्वारा स्थितिघात और अनुभागघात सूचित किया गया है। किन्तु इस जीवके अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें स्थितिघात और अनुभागघात नहीं है। तदन्तर समयमें दोनों ही घात प्रवृत्त होंगे। इस प्रकार इन चार गाथाओंका विशेष व्याख्यान करनेपर अधःप्रवृत्तकरण काल समाप्त होता है। तदनन्तर अपूर्वकरणविषयक प्ररूपणा इस समय आरम्भ करनी चाहिए इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इन चार सूत्रगाथाओंका विशेष व्याख्यान करके तदनन्तर अपूर्वकरणके प्रथम समयमें इन आवश्यकोंका कथन करना चाहिए।**

§ ५५. अनन्तर पूर्व कही गई इन चार सूत्रगाथाओंका अधःप्रवृत्तकरणके अन्तिम समयमें विशेष व्याख्यान करके तत्पश्चात् अपूर्वकरणके प्रथम समयमें इन स्थितिकाण्डक आदि आवश्यकोंका व्याख्यान करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसमें सर्व प्रथम स्थितिकाण्डकके प्रमाणका अवधारण करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** जो क्षीणदर्शनमोहनीय जीव कषायोंका उपशामक होता है उस क्षीणदर्शन-मोहनीय जीवके कषायोंके उपशामनाके अपूर्वकरणमें प्रथम स्थितिकाण्डक नियमसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ ५६. यह कषायोंका उपशामक जीव क्षीणदर्शनमोहनीय होवे अथवा उपशान्तदर्शन-मोहनीय होवे, दोनोंके उपशमश्रेणिपर आरोहण करनेमें निषेधका अभाव है। उनमेंसे जो क्षीण दर्शनमोहनीय कषायोंका उपशामक होता है, कषायोंका उपशम करनेके लिए उद्यत हो

कसायउवसामगो तस्स कसायोवसामणाए अब्भुट्ठिदस्स अपुव्वकरणे वट्टमाणस्स पढमं ट्ठिदिखंडयं किंपमाणमिदि वुत्ते 'णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो' त्ति तप्पमाणणिद्देसो कदो। पुव्वमेव दंसणमोहक्खवयपरिणामेहिं सुट्ठु घादं पत्ताए ट्ठिदीए तत्तो अब्भहियट्ठिदिखंडयस्स पाओग्गभावो ण संभवदि त्ति भावत्थो। एदेण उवसंतदंसणमोहणीयस्स कसायउवसामगस्स अपुव्वकरणपढमसमए ट्ठिदिखंडयपमाणं जहण्णेण पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो, उक्कस्सेण सागरोवमपुधत्तमेत्तमिदि अणुत्तं पि अवगम्मदे, अण्णहा एदस्स विसेसियूण परूवणाए विहलत्तप्पसंगादो।

§ ५७. संपहि तत्थेव ट्ठिदिबंधोसरणपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

*** ठिदिबंधेण जमोसरदि सो वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।**

§ ५८. उवसंतदंसणमोहणिज्जो खीणदंसणमोहणिज्जो वा कसायउवसामगो अपुव्वकरणपढमसमये ठिदिबंधेण जमोसरदि जहण्णुक्कस्सेण सो वि पलिदोवमस्स

अपूर्वकरणमें विद्यमान हुए उसके प्रथम स्थितिकाण्डकका क्या प्रमाण है ऐसा पूछनेपर 'नियमसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग होता है, इस वचन द्वारा उसके प्रमाणका निर्देश किया गया है। दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले परिणामोंके द्वारा पहले ही अच्छी तरहसे घातको प्राप्त हुई स्थितिमें उससे अधिक स्थितिकाण्डककी योग्यता सम्भव नहीं है यह उक्त कथनका भावार्थ है। इस सूत्र वचनसे जो उपशान्तदर्शनमोहनीय जीव कषायोंका उपशम करता है उसके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डकका जघन्य प्रमाण पल्योपमका संख्यातवा भाग और उत्कृष्ट प्रमाण सागरोपमपृथक्त्व होता है यह बिना कहे ही जाना जाता है, अन्यथा कषायोंके उपशामकको विशेषणके साथ कथन करनेपर विशेषणके निष्फल होनेका प्रसंग प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें जो दर्शनमोहनीयका क्षयकर कषायोंके उपशमानेके लिये उद्यत हुआ है उसके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें जो स्थितिकाण्डक प्राप्त होता है वह नियमसे पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है यह नियम उक्त सूत्र द्वारा किया गया है। किन्तु जो दर्शनमोहनीयके उपशम द्वारा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर कषायोंका उपशम करता है उसके लिए ऐसा कोई नियम नहीं है। उसके जघन्य स्थितिकाण्डक तो पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, किन्तु उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक सागरोपमपृथक्त्व प्रमाण होता है यह अर्थ भी उक्त सूत्रसे ध्वनित होता है।

§ ५७ अब वहीं पर स्थितिबन्धापसरणके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** स्थितिबन्धरूपसे जिस स्थितिकाण्डकका अपसरण करता है वह स्थितिकाण्डक भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ ५८. उपशान्तदर्शनमोहनीय या क्षीणदर्शनमोहनीय कषायोंका उपशामक जो जीव अपूर्वकरणके प्रथम समयमें स्थितिबन्धरूपसे जिस स्थितिकाण्डकका अपसरण करता है जघन्य और उत्कृष्ट वह काण्डक भी पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है, वहाँ अन्य

संखेज्जदिभागो[1] चेव, णत्थि तत्थ अण्णो वियप्पो त्ति भणिदं होइ। संपहि एत्थेवाणुभागखंडयपमाणावहारणट्ठमिदमाह—

*** असुभाणं कम्माणमणंता भागा अणुभागखंडयं।**

§ ५९. सुगममेदं सुत्तं। संपहि अपुव्वकरणपढमसमयविसयाणं ट्ठिदिबंधट्ठिदिसंतकम्माणं पमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए ट्ठिदिबंधो वि अंतोकोडाकोडीए।**

§ ६०. कुदो? एत्तो उवरिमट्ठिदिबंधसंताणमेदम्मि विसये संभवाभावादो। संपहि एत्थेव गुणसेढिणिक्खेवपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** गुणसेढी च अंतोमुहुत्तमेत्ता णिक्खित्ता।**

§ ६१. अपुव्वकरणपढमसमए उवरिमसेसट्ठिदीणं पदेसग्गमोकड्डियूण उदयावलियबाहिरे अंतोमुहुत्तायामेण गुणसेढिणिक्खेवमेसो करेदि त्ति वुत्तं होइ। सो वुण अंतोमुहुत्तायामो अपुव्वकरणद्धादो अणियट्टिकरणद्धादो च विसेसाहिओ। एत्थेव गुणसंकमो वि, णवुंसयवेदादिपयडीणमप्पसत्थाणमबज्झमाणाणमाढविज्जदि त्ति वक्खाणेयव्वं। एवमपुव्वकरणपढमसमएण सा सव्वा परूवणा विदियसमए वि। तं चेव ट्ठिदिखंडयं सो

विकल्प नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब यहीं पर अनुभागकाण्डकके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** अनुभागकाण्डक अशुभ कर्मोंके अनन्त बहुभागप्रमाण होता है।**

§ ५९. यह सूत्र सुगम है। अब अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाले स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर होता है और स्थितिबन्ध भी अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर होता है।**

§ ६०. क्योंकि इस स्थानपर इससे अधिक स्थितिबन्ध और स्थितिसत्कर्म सम्भव नहीं है। अब यहीं पर गुणश्रेणिनिक्षेपके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तथा गुणश्रेणि अन्तर्मुहूर्त आयामवाली निक्षिप्त करता है।**

§ ६१. यह जीव अपूर्वकरणके प्रथमसमयमें उपरिम स्थितियोंसे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण कर उदयावलिके बाहर अन्तर्मुहूर्त आयामरूपसे गुणश्रेणिका निक्षेप करता है। किन्तु वह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयाम अपूर्वकरणके कालसे और अनिवृत्तिकरणके कालसे विशेष अधिक होता है। तथा यहीं पर नहीं बँधनेवाली नपुंसकवेद आदि अप्रशस्त प्रकृतियों सम्बन्धी गुणसंक्रमका भी प्रारम्भ करता है इसका व्याख्यान करना चाहिए। इस प्रकार अपूर्वकरणके प्रथम समय द्वारा जो कार्यविशेष प्रारम्भ होते हैं वह सब कथन दूसरे समयमें भी जानना चाहिए। उस समयमें भी वही स्थितिकाण्डक होता है, वही स्थितिबन्ध होता है, वही

---

१ ता०प्रतौ असंखेज्जदिभागो इति पाठः।

चेव ट्ठिदिबंधो, तं चेवाणुभागखंडयं, सा चेव गुणसेढी। णवरि असंखेज्जगुणपदेसविण्णासोवचिदा गलिदसेसायामा च। विसोही च अणंतगुणा। एवं णेदव्वं जाव अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु पढमट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंधकालो अण्णो अणुभागखंडयकालो च जुगवं णिट्ठिदा त्ति। संपहि एदिस्सेव संधिविसेसस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तमवइण्णं—

*** तदो अणुभागखंडयपुधत्ते गदे अण्णमणुभागखंडयं पढमं ट्ठिदिखंडयं जो च अपुव्वकरणस्स पढमो ट्ठिदिबंधो एदाणि समगं णिट्ठिदाणि।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ६२. गयत्थमेदं सुत्तं। णवरि अणुभागखंडयपुधत्तणिद्देसो जेणेत्थ वइपुल्लवाचओ तेणाणुभागखंडयसहस्सपुधत्ते गदे त्ति घेत्तव्वं, एयट्ठिदिबंधकालब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्ताणमणुभागखंडयाणमुवलंभादो। एवमेदेण कमेण संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिखंडएसु ट्ठिदिबंधसमाणपारंभपज्जवसाणेसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीसु गदेसु अपुव्वकरणद्धाए पढमसत्तमभागस्स चरिमसमए वट्टमाणस्स जो विसेससंभवो तदवबोहणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्ते गदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो।**

अनुभागकाण्डक होता है और वही गुणश्रेणि होती है। इतनी विशेषता है कि वह प्रति समय असंख्यातगुणे प्रदेशविन्याससे उपचित और गलितशेष आयामवाली होती है। तथा विशुद्धि भी प्रति समय अनन्तगुणी होती है। इस प्रकार हजारों अनुभागकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर प्रथम स्थितिकाण्डक, स्थितिबन्धकाल और अन्य अनुभागकाण्डककाल एक साथ समाप्त होते हैं। अब इसी सन्धिविशेषका स्पष्टीकरण करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** तत्पश्चात् अनुभागकाण्डकपृथक्त्वके व्यतीत होनेपर अन्य अनुभागकाण्डक, प्रथम स्थितिकाण्डक और जो अपूर्वकरणका प्रथम स्थितिबन्ध है उस सहित ये एक साथ समाप्त होते हैं।**

§ ६२. यह सूत्र गतार्थ है। इतनी विशेषता है कि यतः यहाँपर अनुभागकाण्डक पृथक्त्वका निर्देश विपुलतावाची है, इसलिये हजारपृथक्त्व अनुभाग काण्डकके व्यतीत होनेपर ऐसा यहाँपर ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि एक स्थितिबन्ध-कालके भीतर संख्यात हजार अनुभागकाण्डक उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार इस क्रमसे जो प्रत्येक स्थितिकाण्डक हजारों अनुभागकाण्डकोंका अविनाभावी है तथा जिसमेंसे प्रत्येकका स्थितिबन्धके समान प्रारम्भ और पर्यवसान है ऐसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अपूर्वकरणके प्रथम सातवें भागके अन्तिम समयमें विद्यमान जीवके जो विशेष सम्भव है उसका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** तत्पश्चात् स्थितिकाण्डक-पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर निद्रा और प्रचला प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद होता है।**

§ ६३. एत्थ वि ट्ठिदिखंडयपुधत्तणिद्देसेण ट्ठिदिखंडयसहस्सपुधत्तसंगहो पुव्वुत्तेण णाएणाणुगंतव्वो, अण्णहा अपुव्वकरणकालब्भंतरे संखेज्जसहस्समेत्तट्ठिदिखंडयाणं संखेज्जगुणहीणट्ठिदिसंतकम्मुप्पत्तिणिबंधणाणमसंभवप्पसंगादो। एसो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदविसयो अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागमेत्तो त्ति जइ वि सुत्ते मुत्तकंठमणुवइट्ठो तो वि तस्स तप्पमाणावच्छिण्णत्तं पमाणीभूदसुत्ताविरुद्धपरमगुरूवएसबलेण सुणिच्छिदमिदि घेत्तव्वं।

*** तदो अंतोमुहुत्ते गदे परभवियणामागोदाणं बंधवोच्छेदो।**

§ ६४. तदो णिद्दा-पयलाबंधविच्छेदविसयादो उवरि पुव्वुत्तेणेव कमेण ट्ठिदिअणुभागखंडयसहस्साणि अणुपालेमाणस्स हेट्ठिमद्धाणादो संखेज्जगुणमेत्ते अंतोमुहुत्ते गदे ताधे परभवसंबंधेण बज्झमाणाणं णामपयडीणं देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्वियाहार-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियाहारसरीरंगोवंग-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वि-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ०४-पसत्थविहायगदि-तसादिचउक्क-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सरादेज्ज-णिमिण-तित्थयरसण्णिदाणमुक्कस्सेण तीससंखावहारियाणं जहण्णदो सत्तवीससंखाविसेसिदाणं बंधवोच्छेदो जादो। एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। एत्थ परभवियणामंतब्भूदजसकित्तिणामाए वि बंधवोच्छेदाइप्पसंगो त्ति णासंकणिज्जं, तं मोत्तूण सेसाणं चेव णामपयडीणमिह विवक्खियत्तादो। कुदो एदं परिच्छिज्जदे ? सुहुमसांपराइयचरिमसमए

---

§ ६३. यहाँपर भी स्थितिकाण्डक-पृथक्त्वके निर्देशसे स्थितिकाण्डक सहस्रपृथक्त्वका संग्रह पूर्वोक्त न्यायके अनुसार जानना चाहिए, अन्यथा अपूर्वकरणके कालके भीतर संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्कर्मकी उत्पत्तिके कारण ऐसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके असंभव होनेका प्रसंग आता है। निद्रा-प्रचला प्रकृतियोंके बन्धविच्छेदका यह स्थल अपूर्वकरणके कालमें सातवाँ भागमात्र है ऐसा यद्यपि सूत्रमें मुक्तकण्ठ नहीं कहा है तो भी वह तत्प्रमाण है यह प्रमाणीभूत सूत्राविरुद्ध परम गुरुके उपदेशके बलसे सुनिश्चित है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** तत्पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर परभवसम्बन्धी गोत्र संज्ञावाली नामकर्म प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद होता है।**

§ ६४. तत्पश्चात् निद्रा और प्रचलाके बन्धविच्छेदके स्थलसे ऊपर पूर्वोक्त क्रमसे ही हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका पालन करनेवाले जीवके अधस्तन स्थानसे संख्यातगुणे अन्तर्मुहूर्त कालके जानेपर तब परभवके सम्बन्धसे बँधनेवाली देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, आहारकशरीर आंगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघुचतुष्क (अगुरुलघु, उपघात, परघात और उच्छ्वास) प्रशस्तविहायोगति, त्रसादिचतुष्क (त्रस, बादर पर्याप्त और प्रत्येक) स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर संज्ञावाली, उत्कृष्टरूपसे तीस संख्या जिनकी सुनिश्चित है और जघन्यरूपसे जिनकी संख्या

तब्बंधवोच्छेदविहाणण्णहाणुववत्तीए एत्थुच्चागोदस्स बंधवोच्छेदाभावे परभवियणामा-गोदाणं बंधवोच्छेदो त्ति णिद्देसो कथं घडदि त्ति णासंका कायव्वा, गोदसहचारीणं
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
णामपयडीणं चेव गोदववएसं कादूण सुत्ते तहा णिद्देसावलंबणादो। संपहि णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदकालो अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागमेत्तो, परभवियणामाणं बंधवोच्छेदकालो एसो छ-सत्तमभागमेत्तो त्ति एदस्स णिबंधणमप्पाबहुअमेत्थ कुणमाणो उत्तरं सुत्तपबंधमाह—

*** अपुव्वकरणपविट्ठस्स जम्हि णिद्दा-पयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो।**

§ ६५. कुदो ? अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागपमाणत्तादो।

*** परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो संखेज्जगुणो।**

सत्ताईस हैं ऐसी नामकर्मसम्बन्धी प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद हो जाता है। प्रकृतमें यह इस सूत्रके अर्थका तात्पर्य है।

शंका—यहाँपर परभवसम्बन्धी नामकर्म-प्रकृतियोंमें गर्भित यशःकीर्ति नामकर्म-प्रकृतिके भी बन्धविच्छेदका अतिप्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसे छोड़कर नामकर्मकी शेष प्रकृतियाँ ही यहाँ पर विवक्षित हैं ?

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें उसके बन्ध-विच्छेदका विधान अन्यथा बन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि यहाँ यशःकीर्तिको छोड़कर बन्धविच्छेदरूप उक्त शेष प्रकृतियाँ ही विवक्षित हैं।

शंका—यहाँपर उच्चगोत्रका बन्धविच्छेद नहीं होता तब सूत्रमें 'परभवियणामा-गोदाणं बंधवोच्छेदो' ऐसे पाठका निर्देश कैसे बन सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि गोत्रके साथ रहनेवाली नाम-कर्मसम्बन्धी प्रकृतियोंकी गोत्रसंज्ञा करके सूत्रमें उस प्रकारके निर्देशका अवलम्बन लिया है। अब निद्रा और प्रचलाके बन्धविच्छेदका काल अपूर्वकरणके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है तथा परभवसम्बन्धी नामकर्म-प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद काल छह बटे सात भाग प्रमाण है इस प्रकार इसको बतलानेमें निमित्तरूप अल्पबहुत्वको यहाँपर करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अपूर्वकरण गुणस्थानमें प्रविष्ट हुए संयत जीवके जिस कालमें निद्रा और प्रचलाका बन्धविच्छेद होता है वह काल सबसे थोड़ा है।**

§ ६५. क्योंकि वह अपूर्वकरणके कालका सातवाँ भागप्रमाण है।

*** उससे परभवसम्बन्धी नामकर्म-प्रकृतियोंका बन्धविच्छेद काल संख्यात-गुणा है।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ६६. किं कारणं? अपुव्वकरणद्धाए छ-सत्तभागपमाणत्तेण पवाइज्जमाणत्तादो।

* अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया।

§ ६७. केत्तियमेत्तेण? सगसत्तमभागमेत्तेण। एत्तो उवरि पुव्वं व ट्ठिदि-अणुभागघादं कुणमाणो गच्छइ जाव अपुव्वकरणचरिमसमयो त्ति तत्थुद्देसे परूवणा-भेदपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

* तदो अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमए ट्ठिदिखंडयमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदाणि।

सुगममेदं सुत्तं।

* एदम्हि चेव समए हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं बंधवोच्छेदो।

§ ६९. कुदो? एत्तो उवरिमविसोहीणं तब्बंधविरुद्धसहावत्तादो।

* हस्स - रइ - अरइ - सोग - भय - दुगुंछाणं एदेसिं छण्हं कम्माण-मुदयवोच्छेदो च।

§ ७०. कुदो? एत्तो उवरि एदेसिमुदयसत्तीए अच्चंताभावेण णिरुद्धपवेसत्तादो। एत्थ ट्ठिदिसंतकम्मपमाणमपुव्वकरणपढमसमयट्ठिदिसंतकम्मादो संखेज्जगुणहीणमंतोकोडा-

---

§ ६६. क्योंकि अपूर्वकरणके कालके छह बटे सात भागप्रमाण यह काल प्रवाहरूपसे स्वीकृत चला आ रहा है।

* उससे अपूर्वकरणका काल विशेष अधिक है।

§ ६७. कितना अधिक है? अपने कालका सातवाँ भागमात्र अधिक है। इससे ऊपर पहलेके समान स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातको करता हुआ अपूर्वकरणके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक जाता है, इसलिए उस स्थानपर प्ररूपणाभेदका कथन करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* तत्पश्चात् अपूर्वकरणके कालके अन्तिम समयमें स्थितिकाण्डक, अनुभाग-काण्डक और स्थितिबन्ध एक साथ समाप्त होते हैं।

§ ६८. यह सूत्र सुगम है।

* इसी समय ही हास्य, रति, भय और जुगुप्साका बन्धविच्छेद होता है।

§ ६९. क्योंकि इससे उपरिम विशुद्धियाँ इनके बन्धके विरुद्ध स्वभाववाली हैं।

* तथा इसी समय हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह कर्मोंका उदयविच्छेद होता है।

§ ७०. क्योंकि इससे ऊपर इनकी उदयरूप शक्तिका अत्यन्त अभाव होनेसे इनका उदयरूपसे प्रवेश रुक जाता है। यहाँ पर स्थितिसत्कर्मका प्रमाण अपूर्वकरणके प्रथम समयमें प्राप्त स्थितिसत्कर्मसे संख्यातगुणा हीन अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर है। इसी प्रकार स्थिति-

कोडीए। एवं ट्ठिदिबंधो वि दट्ठव्वो। णवरि अंतोकोडाकोडीए सदसहस्सपुधत्तपमाणो त्ति वत्तव्वं। एवमपुव्वकरणद्धमणुपालिय तदणंतरसमए अणियट्टिकरणपविट्ठो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं—

*** तदो से काले पढमसमयअणियट्टी जादो।**

§ ७१. सुगममेदं। एवमणियट्टिकरणं पविट्ठस्स पढमसमयप्पहुडि केत्तियं पि कालं पुव्वुत्तो चेव ट्ठिदिखंडयघादादिकिरियाकलावो, ण तत्थ णाणत्तमत्थि त्ति पदुप्पाएमाणमुत्तरपबंधमाह—

आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** पढमसमयअणियट्टिकरणस्स ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागो।**

§ ७२. जहा अपुव्वकरणो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागायामेण ट्ठिदिखंडयमागाएंतो आगदो एवमेसो वि पढमसमयाणियट्टिट्ठिदिखंडयमागाएदि, ण तत्थ णाणत्तमिदि वुत्तं होइ। णवरि अपुव्वकरणपढमट्ठिदिखंडयप्पहुडि विसेसहीणकमेण ट्ठिदिखंडएसु ओवट्टिज्जमाणेसु संखेज्जसहस्समेत्तीओ ट्ठिदिखंडयगुणहाणीओ उल्लंघियूण तत्तो संखेज्ज-गुणहीणं चरिमसमयापुव्वकरणस्स ट्ठिदिखंडयं होइ। तत्तो विसेसहीणमेदमणियट्टि-करणं पविट्ठस्स पढमट्ठिदिखंडयमिदि घेत्तव्वं।

बन्धका प्रमाण भी जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अन्त:कोड़ाकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्व-प्रमाण है ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार अपूर्वकरणके कालका पालनकर उसके अनन्तर समयमें अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट होता है इसका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इसके अनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती अनिवृत्तिकरण संयत हो जाता है।**

§ ७१. यह सूत्र सुगम है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए संयतके प्रथम समयसे लेकर कितने ही कालतक पूर्वोक्त ही स्थितिकाण्डक आदि क्रियाकलाप होता है, वहाँ नानापन नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ ७२. जिस प्रकार अपूर्वकरणमें स्थित संयत पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण आयामवाले स्थितिकाण्डकको ग्रहण कर आया है उसी प्रकार यह भी अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है, वहाँ नानापन नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इतनी विशेषता है कि अपूर्वकरणके प्रथम स्थितिकाण्डकसे लेकर विशेष हीन क्रमसे स्थिति-काण्डकोंके अपवर्तित होनेपर संख्यात हजार स्थितिकाण्डक गुणहानियोंका उल्लंघन कर उससे (प्रथम समयके स्थितिकाण्डकसे) अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें संख्यातगुणा हीन स्थितिकाण्डक होता है। तथा अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए संयत जीवका प्रथम स्थितिकाण्डक उससे विशेष हीन होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

* अपुव्वो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो[1] ।

§ ७३. सुगममेदं ।

* अणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा ।

§ ७४. अणियट्टिपढमसमये अणुभागखंडयसंकमो एत्तो पुव्वघादिदाणुभागसंतकम्मस्साणंते भागे गेण्हदि, तत्थ पयारंतरासंभवादो त्ति भणिदं होइ ।

* गुणसेढी असंखेज्जगुणाए सेढीए सेसे सेसे णिक्खेवो ।

§ ७५. जहा अपुव्वकरणे समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए उदयावलियबाहिरे गलिदसेसायामेण गुणसेढिविण्णासो एवमेत्थ वि दट्ठव्वो, ण तत्थ को वि परूवणाभेदो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । गुणसंकमो वि पुव्वुत्ताणमप्पसत्थपयडीणमेत्थ अप्पडिहयपसरो पयट्टदि ति घेत्तव्वं । णवरि हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं पि गुणसंकमो एत्तो पारभदि, तेसिमपुव्वकरणचरिमसमए उवरिदबंधाणं तहाभावपरिणदीए विरोहाभावादो । एवमेदेसु किरियाकलावेसु णाणत्ताभावं पदुप्पाइय संपहि एत्थतणो जो विसेससंभवो तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* अपूर्व स्थितिबन्ध पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन होता है ।

§ ७३. यह सूत्र सुगम है ।

* अनुभागकाण्डक शेषका अनन्त बहुभागप्रमाण होता है ।

§ ७४. क्योंकि संयत जीव अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अनुभागकाण्डकके संक्रमको इससे पूर्व घाते गये अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण ग्रहण करता है, उसमें अन्य प्रकार सम्भव नहीं हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* तथा गुणश्रेणि प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणिक्रमसे होती है, जिसका उत्तरोत्तर गलित-शेष-आयाममें निक्षेप होता है ।

§ ७५. जिस प्रकार अपूर्वकरणमें प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिक्रमसे उदयावलिके बाहर गलित-शेष-आयाममें गुणश्रेणिका विन्यास होता है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। वहाँ कोई प्ररूपणाभेद नहीं है यह इस सूत्रका भावार्थ है। गुणसंक्रम भी पूर्वोक्त अप्रशस्त प्रकृतियोंका यहाँपर बिना रुकावटके प्रवृत्त होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि हास्य, रति, भय और जुगुप्साका गुणसंक्रम भी यहाँसे प्रारम्भ होता है, क्योंकि अपूर्वकरणके अन्तिम समयमें उनका बन्धविच्छेद हो जाता है, इसलिए उनका उस प्रकार परिणमन होनेमें विरोधका अभाव है। इस प्रकार इन क्रियाकलापोंमें नानापनका कथन कर अब यहाँपर जो विशेष सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

१. ता०-प्रतौ असंखेज्जदिभागेण इति पाठः ।

*** तिस्से चेव अणियट्टिअद्धाए पढमसमये अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च वोच्छिण्णाणि ।**

§ ७६. सव्वेसिं कम्माणमणियट्टिगुणट्ठाणपवेसपढमसमए चेव एदाणि तिण्णि वि करणाणि अक्कमेण वोच्छिण्णाणि त्ति भणिदं होइ । तत्थ जं कम्ममोकड्डुक्कड्डण-परपयडिसंकमाणं पाओग्गं होदूण पुणो णो सक्कमुदयट्ठिदिमोकड्डिदुं उदीरणाविरुद्धसहावेण परिणदत्तादो तं तहाविहपइण्णाए पडिग्गहियमप्पसत्थउवसामणाए उवसंतमिदि भण्णदे । तस्स सो पज्जायो अप्पसत्थउवसामणाकरणं णाम । एवं जं कम्ममोकड्डुक्कड्डणासु अविरुद्धसंचरणं होदूण पुणो उदय-परपयडिसंकमाणमणागमणपइण्णाए पडिग्गहियं तस्स सो अवत्थाविसेसो णिधत्तीकरणमिदि भण्णदे । जं पुण कम्मं चदुण्णमेदेसिं उदयादीणमप्पाओग्गं होदूणावट्ठाणपइण्णं तस्स तहावट्ठाणलक्खणो पज्जायविसेसो णिकाचणाकरणं णाम । एवमेदाणि तिण्णि वि करणाणि हेट्ठा सव्वत्थ पयट्टमाणाणि । एदेसु वोच्छिण्णेसु सव्वमेव कम्ममोकड्डिदुमुक्कड्डिदुमुदीरेदुं परपयडीसु च संकामेदुं पाओग्गभावमुवगयमिदि एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । संपहि एत्थेव ट्ठिदिसंत-ट्ठिदिबंधाणमियत्तावहारणट्ठमुत्तरसुत्तद्दयमोइण्णं——

*** आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** उसी अनिवृत्तिकरणकालके प्रथम समयमें अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तीकरण और निकाचनाकरण व्युच्छिन्न होते हैं ।**

§ ७६. सभी कर्मोंके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें प्रवेश करनेके प्रथम समयमें ही ये तीनों ही करण युगपत् व्युच्छिन्न हो जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसमें जो कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके योग्य होकर पुनः उदीरणाके विरुद्ध स्वभावरूपसे परिणत होनेके कारण उदयस्थितिमें अकर्षित होनेके अयोग्य है वह उस प्रकारसे स्वीकार की गई अप्रशस्त उपशामनाकी अपेक्षा उपशान्त ऐसा कहलाता है । उसकी उस पर्यायका नाम अप्रशस्त उपशामनाकरण है । इसी प्रकार जो कर्म अपकर्षण और उत्कर्षणके अविरुद्ध पर्यायके योग्य होकर पुनः उदय और परप्रकृतिसंक्रमरूप न हो सकनेकी प्रतिज्ञारूपसे स्वीकृत है उसकी उस अवस्था विशेषको निधत्तीकरण कहते हैं । परन्तु जो कर्म उदयादि इन चारोंके अयोग्य होकर अवस्थानकी प्रतिज्ञामें प्रतिबद्ध है उसकी उस अवस्थानलक्षण पर्यायविशेषको निकचनाकरण कहते हैं ।[1] इस प्रकार ये तीनों ही करण इससे पूर्व सर्वत्र प्रवर्तमान थे, यहाँ अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें उनकी व्युच्छित्ति हो जाती है । इनके व्युछिन्न होनेपर सभी कर्म अपकर्षण, उत्कर्षण, उदीरणा और परप्रकृतिसंक्रम इन चारोंके योग्य हो जाते हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब यहींपर स्थितिसत्त्व और स्थितिबन्ध इनके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आगेके दो सूत्र आये हैं—

*** आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरोपमके भीतर होता है ।**

---

१. निकायनाकरणका स्वरूप छूटा है ।

§ ७७. कुदो ? सुट्ठु वि घादं पत्तस्स तस्स उवसमसेढीए तब्भावापरिच्चागेणेवावट्ठाणणियमदंसणादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए सदसहस्सपुधत्तं ।**

§ ७८. किं कारणं ? तस्स ट्ठिदिबंधोसरणमाहप्पेण उवरि सुट्ठु ओहट्टमाणस्स तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो ।

*** तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिबंधो सहस्सपुधत्तं ।**

§ ७९. तदो अणियट्टिपढमसमयादो पडि ठिदिबंधोसरणसहगएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु बहुएसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्साविणाभाविसु गदेसु सत्तण्णं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो सागरोवमसदसहस्सपुधत्तादो सुट्ठु होइट्ठूण सागरोवमसहस्सपुधत्तमेत्तो जायदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंबंधो ।

*** तदो अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो ।**

§ ८०. एत्थ सागरोवमसहस्सपुधत्तादो सागरोवमसहस्सं सोहिय सुद्धसेसमेगट्ठिदिबंधोसरणपमाणेण भागं हरिय मज्झिमट्ठिदिबंधवियप्पा णिव्वामोहमणुगंतव्वा । णवरि मोहणीयस्स सागरोवमसहस्सचत्तारिसत्तभागमेत्ते असण्णिपाओग्गे ट्ठिदिबंधे संजादे

---

§ ७७. क्योंकि अत्यन्त रूपसे भी घातको प्राप्त हुए शेष कर्मोंका उपशमश्रेणिमें सूत्रोक्त प्रमाणका त्याग किये बिना अवस्थान नियम देखा जाता है ।

*** स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर लक्षपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण होता है ।**

§ ७८. क्योंकि उसका स्थितिबन्धापसरणके माहात्म्यवश पहले बहुत ह्रास हो गया है, इसलिए उसके सूत्रोक्त सिद्ध होनेमें विरोधका अभाव है ।

*** तत्पश्चात् हजारों स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर स्थितिबन्ध हजार सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण होता है ।**

७९. तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयसे लेकर प्रत्येक हजारों अनुभागकाण्डकोंके अविनाभावी ऐसे बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके स्थितिबन्धापसरणोंके साथ व्यतीत होनेपर सातों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध लक्षपृथक्त्व सागरोपमसे बहुत अधिक घटकर हजारपृथक्त्व सागरोपमप्रमाण हो जाता है यह यहाँ उक्त सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है ।

*** तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरणके संख्यात बहुभागके व्यतीत होनेपर असंज्ञीके समान स्थितिबन्ध होता है ।**

§ ८०. यहाँपर हजार पृथक्त्वप्रमाण सागरोपममें से हजार सागरोपमको घटाकर जो शेष रहे उसमें एक स्थितिबन्धापसरणके प्रमाणका भाग देनेपर स्थितिबन्धके मध्यम विकल्प उत्पन्न होते हैं यह व्यामोहके बिना जान लेना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका हजार सागरोपमके चार बटे सात भागप्रमाण असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्धके हो

सेसाणं कम्माणमप्पणो पडिभागेण सागरोवमसहस्सस्स तिण्णि-सत्त-भागा, वे-सत्त-भागा च एत्थ ट्ठिदिबंधपमाणमिदि वत्तव्वं ।

* तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे चदुरिंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो ।

* एवं तीइंदिय-बीइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो ।

* एइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो ।

§ ८१. एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि। णवरि अप्पप्पणो पडिभागेण कमेण चउरिंदियादिसु परिवाडीए सागरोवमसद-पण्णारस-पणुविस-संपुण्णेगसागरोवमाणं चदुसत्तभाग-तिण्णि-सत्तभाग-वेसत्तभागपमाणो ट्ठिदिबंधो वुत्तसंबंधी होइ त्ति घेत्तव्वो ।

* तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो ट्ठिदिबंधो ।

§ ८२. एत्थ सागरोवम-वे-सत्तभागेहिंतो पलिदोवमं सोहिय सुद्धसेसपलिदोवमे-

---

जानेपर शेष कर्मोंका अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार हजार सागरोपमका तीन बटे सात भागप्रमाण और दो बटे सात भागप्रमाण यहाँपर स्थितिबन्धका प्रमाण होता है ऐसा कहना चाहिए।

* पश्चात् स्थितिबन्ध पृथक्त्वके जानेपर चतुरिन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है।

* इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है।

* तथा एकेन्द्रिय जीवोंके स्थितिबन्धके समान स्थितिबन्ध होता है।

§ ८१. ये सूत्र सुगम हैं। इतनी विशेषता है कि अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार चतुरिन्द्रिय आदि जीवोंमें क्रमसे सौ सागरोपम, पचास सागरोपम, पच्चीस सागरोपम और पूरे एक सागरोपमके चार बटे सात भाग, तीन बटे सात भाग और दो बटे सात भागप्रमाण जो स्थितिबन्ध होता है उसके समान स्थितिबन्ध होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

विशेषार्थ—चतुरिन्द्रिय जीवोंमें सौ सागरोपमका, त्रीन्द्रिय जीवोंमें पचास सागरोपमका, द्वीन्द्रिय जीवोंमें पच्चीस सागरोपमका और एकेन्द्रिय जीवोंमें एक सागरोपमका चरित्रमोहनीयका चार बटे सात भागप्रमाण, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका तीन बटे सात भागप्रमाण, तथा नाम और गोत्रका दो बटे सात भागप्रमाण जो स्थितिबन्ध होता है उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिए।

* तत्पश्चात् स्थितिबंध पृथक्त्वके व्यतीत होनेपर नाम और गोत्रका पल्योपम स्थितिवाला स्थितिबंध होता है।

§ ८२. यहाँपर सागरोपमके दो बटे सात भागमेंसे पल्योपमको घटाकर जो पल्योपम

द्विदो मज्झिमट्ठिदिबंधोसरणट्ठाणाणि आणेयूण णामा-गोदाणं पलिदोवममेत्तट्ठिदिबंधविसयो एसो परूवेयव्वो। संपहि णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगे बंधे जादे सेसकम्माणमेत्थतणो ट्ठिदिबंधो किंपमाणो होदि त्ति आसंकाए इदमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं च दिवड्ढपलिदोवममेत्तट्ठिदिगो बंधो।**

§ ८३. एत्थ वीसपडिभागेण जइ एगपलिदोवममेत्तो ट्ठिदिबंधो लब्भदि तो तीसपडिभागेण किं लभामो त्ति तेरासियं कादूण दिवड्ढपलिदोवममेत्तपयदट्ठिदिबंधविसयो सिस्साणं पडिबोहो कायव्वो। तस्स ठ्ठवणा—।२०।१।३०।

*** मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो।**

§ ८४. एत्थ वि पुव्वं व तेरासियं कादूण पयदट्ठिदिबंधसिद्धी वत्तव्वा।२०।१।४०। एत्थ पुण ट्ठिदिबंधप्पाबहुअमेवं कायव्वं। णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो विसेसो। केत्तियमेत्तो विसेसो? दुभागमेत्तो। मोहणीयस्स ट्ठिदि-

---

शेष रहें उनमेंसे मध्यके स्थितिबन्धापसरण स्थानोंको बिताकर नाम और गोत्रका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्धविषयक इस स्थितिबन्धका कथन करना चाहिए। अब नाम और गोत्र कर्मका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध हो जानेपर शेष कर्मोंका यहाँ सम्बन्धी स्थितिबन्ध कितना होता है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

*** ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका डेढ़ पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।**

§ ८३. यहाँ पर बीसिय कर्मोंके प्रतिभागसे यदि एक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है तो तीसिय कर्मोंके प्रतिभागसे कितना प्राप्त होगा इस प्रकार त्रैराशिक करके डेढ़ पल्योपमप्रमाण प्रकृत स्थितिबन्धविषयक शिष्योंको प्रतिबोध कराना चाहिए। उसकी स्थापना इस प्रकार है—बीसिय कर्मोंका पल्योपम स्थितिबन्ध तो तीसिय कर्मोंका कितना ऐसा त्रैराशिक करने पर १½ पल्योपम स्थितिबन्ध प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर बीसिय कर्मोंसे नाम और गोत्र कर्मोंका ग्रहण किया गया है और तीसिय कर्मोंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और मोहनीय कर्मोंका ग्रहण किया गया है। अल्पबहुत्वके अनुसार नाम और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे उक्त कर्मोंका स्थितिबन्ध डेढ़ गुणा होता है। इससे स्पष्ट है कि जहाँ अनिवृत्तिकरणमें नाम और गोत्र कर्मका एक पल्योपम स्थितिबन्ध होता है वहाँ उक्त कर्मोंका स्थितिबन्ध डेढ़ पल्योपम ही होगा।

*** तथा मोहनीय कर्मका दो पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।**

§ ८४. यहाँपर भी पहलेके समान त्रैराशिक करके प्रकृत स्थितिबन्धकी सिद्धि करनी चाहिए। यथा—बीसिय कर्मोंका १ पल्योपम स्थितिबन्ध तो चालीसिय कर्मोंका कितना ऐसा त्रैराशिक करनेपर २ पल्योपम प्राप्त होता है। परन्तु यहाँपर स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्व इस प्रकार करना चाहिए—नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है। उससे चार

बंधो विसेसाहिओ । केत्तियमेत्तो विसेसो ? तिभागमेत्तो । हेट्ठिमासेसट्ठिदिबंधेसु वि एसो चेव अप्पाबहुअपयारो दट्ठव्वो । संपहि जाव एद्दूरं पावइ ताव सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदिबंधोसरणं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो चेव, णाण्णो वियप्पो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** एदम्हि काले अदिच्छिदे सव्वम्हि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ठिदिबंधेण ओसरदि ।**

§ ८५. गयत्थमेदं सुत्तं, एदम्मि विसयेपयारंतरसंभवाणुवलंभादो । संपहि एत्तो उवरि वि णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय-मोहणीय-अंतराइयाणमेसो चेव ट्ठिदिबंधोसरणकमो ताव दट्ठव्वो जाव पलिदोवममेत्तं ट्ठिदिबंधं ण पावेदि । णामा-गोदाणं पुण अण्णारिसो ट्ठिदिबंधोसरणकमो एत्तो पाए पयट्टदि त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगादो बंधादो अण्णं जं ट्ठिदिबंधं बंधहिदि सो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।**

§ ८६. कुदो एवं चे ? सहावदो चेव, पलिदोवमट्ठिदिगे बंधे जादे तत्तो प्पहुडि

कर्मोंका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? द्वितीय भागप्रमाण है । उससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है । विशेषका प्रमाण कितना है ? तृतीय भागप्रमाण है । अधस्तन समस्त स्थितिबन्धोंमें भी अल्पबहुत्वका यही प्रकार जानना चाहिए । अब इतने दूर स्थानके प्राप्त होने तक सब कर्मोंका स्थितिबन्धापसरण पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, अन्य विकल्प नहीं है इस बातका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** इस कालके जाने तक सर्वत्र पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थिति-बन्धापसरण होता है ।**

§ ८५. यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि इस विषयमें प्रकारान्तर सम्भव नहीं है । अब इससे आगे भी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय कर्मके स्थिति-बन्धापसरणका यह क्रम तब तक जानना चाहिए जब तक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्धको नहीं प्राप्त होता । परन्तु यहाँसे लेकर नामकर्म और गोत्रकर्मका अन्य प्रकारका स्थिति-बन्धापसरण प्रवृत्त होता है इसका कथन करते हुए चूर्णिकार आचार्य आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** नामकर्म और गोत्रकर्मके पल्योपमप्रमाण स्थितिवाले बन्धसे अन्य जिस बन्धको बाँधेगा वह स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है ।**

§ ८६. **शंका**—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा है, क्योंकि पल्योपमप्रमाण स्थितिवाले बन्धके हो

संखेज्जाणं भागाणं ट्ठिदिबंधोसरणणियमदंसणादो ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो ।**

§ ८७. ताधे[1] पुण सेसाणं कम्माणं णाणावरण-दंसणावरण-वेदणीय[2]-मोहणीयंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपरिहीणो चेव होइ, तेसिमज्ज वि पलिदोवमट्ठिदिबंधविसयभावमणुवत्तीदो । ताधे अप्पाबहुअं—णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो । चदुण्हं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । मोहणीयट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । केत्तियमेत्तेण ? तिभागमेत्तेण । एवमेस कमो ताव णेदव्वो जाव सेसकम्माणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो ण पत्तो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

सुविधिसागर जी महाराज

*** तदो प्पहुडि णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधे पुण्णे संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो होइ, सेसाणं कम्माणं जाव पलिदोवमट्ठिदिगं बंधं ण पावदि ताव पुण्णे ट्ठिदिबंधे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो ट्ठिदिबंधो ।**

§ ८८. सुगममेदं सुत्तं ।

जानेपर वहाँसे लेकर संख्यात भागोंका स्थितिबन्धापसरण होता है यह नियम देखा जाता है ।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन होता है ।**

§ ८७. परन्तु तब ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय इन शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्वके स्थितिबन्धसे पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन ही होता है, क्योंकि उनका अभी भी पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध नहीं प्राप्त हुआ है । उस समय अल्पबहुत्व इसप्रकार होता है—नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प होता है । उससे चार कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है तथा उससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है । कितना अधिक होता है ? त्रिभाग अधिक होता है । इस प्रकार स्थितिबन्धका यह क्रम तब तक चलाना चाहिए जब तक शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण नहीं प्राप्त होता है इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** यहाँसे लेकर नामकर्म और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संख्यातगुणा हीन अन्य स्थितिबन्ध होता है तथा शेष कर्मोंका जबतक पल्योपमस्थितिवाला बंध नहीं प्राप्त करता है तब तक एक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर पल्योपमका संख्यातवाँ भाग हीन दूसरा स्थितिबंध होता है ।**

§ ८८. यह सूत्र गतार्थ है ।

---

१. ता. प्रतौ भागहीणो [ट्ठिदिबंधो ।] ताधे इति पाठः ।
२. ता. प्रतौ णाणावरण वेदणीय इति पाठः ।

*** एवं ट्ठिदिबंध-सहस्सेसु गदेसु णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं¹ पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो।**

§ ८९. दिवड्ढपलिदोवममेत्तपुव्वणिरुद्धट्ठिदिबंधादो पलिदोवमबंधे सोहिदे सुद्ध-सेसद्धपलिदोवमम्मि एयट्ठिदिबंधोसरणायामेण भागे हिदे संखेज्जसहस्समेत्तरूवाणि आगच्छंति। पुणो तेत्तियमेत्तट्ठिदिबंधवियप्पेसु समइक्कंतेसु णाणावरणादीणं चदुण्हमेदेसिं च कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जायदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो।

*** मोहणीयस्स तिभागुत्तरं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो।**

§ ९०. तीसियाणं पलिदोवममेत्तट्ठिदिबंधविसये चालीसियस्स केत्तियं ट्ठिदिबंधं लहामो त्ति तेरासियं कादूणेदस्स ट्ठिदिबंधवियप्पस्स समुप्पत्ती वत्तव्वा। एत्थ वि ट्ठिदिबंधप्पाबहुअमणंतरपरूविदं चेव। एवमेदेसिं चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिगे बंधे जादे मोहणीयस्स वि तिभागुत्तरपलिदोवममेत्ते ट्ठिदिबंधे वट्टमाणे एत्तो उवरि केरिसो परूवणाभेदो त्ति आसंकाए इदमाह—

*** तदो जो अण्णो णाणावरणादिचदुण्हं पि ट्ठिदिबंधो सो संखेज्ज-गुणहीणो।**

*** मोहणियस्स ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो।**

*** इस प्रकार हजारों स्थितिबन्धोंके जानेपर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय कर्मोंका पल्योपम स्थितिवाला बन्ध होता है।**

§ ८९. डेढ़ पल्योपमप्रमाण विवक्षित पूर्व स्थितिबन्धमें से पल्योपमप्रमाण स्थिति-बन्धके घटानेपर बाकी बचे अर्ध पल्योपममें एक स्थितिबन्धापसरणके आयामका भाग देने पर संख्यात हजार प्रमाण संख्या प्राप्त होती है। पुनः उतने स्थितिबन्धके भेदोंके विच्छिन्न हो जानेपर इन ज्ञानावरणादिक चार कर्मोंका पल्योपम स्थितिवाला बन्ध प्राप्त होता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

*** तथा मोहनीय कर्मका तीसरा भाग अधिक पल्योपम स्थितिवाला बन्ध होता है।**

§ ९०. जहाँ तीसिय प्रकृतियोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध होता है वहाँ चालीसिय प्रकृतिका कितने स्थितिबन्धको प्राप्त करेगा इस प्रकार त्रैराशिक करके स्थितिबन्धके इस भेदकी उत्पत्ति कहनी चाहिए। यहाँपर भी अनन्तर पूर्व कहा गया स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्व ही होता है। इस प्रकार इन चार कर्मोंका पल्योपम स्थितिवाला बन्ध होनेपर तथा मोहनीय कर्मका भी तीसरा भाग अधिक पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्धके रहते हुए इससे आगेका प्ररूपणाभेद किस प्रकारका होता है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

*** तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि चार कर्मोंका भी जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है और मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है।**

---

१. ता. प्रतौ वेदणीय मोहणीय अंतराइयाणं इति पाठः।

§ ९१. कुदो ? चदुण्हं कम्माणं पलिदोवमट्ठिदिगादो बंधादो पलिदोवमस्स मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज संखेज्जाणं भागाणमेगवारेण ट्ठिदिबंधोसरणदंसणादो। मोहणीयस्स वि ताधे अपत्तपलिदोवमट्ठिदिबंधस्स तक्कालभाविणो ट्ठिदिबंधोसरणस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणाणइक्कमादो। ताधे पुण ट्ठिदिबंधप्पाबहुअं—णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। एवमेदेणप्पाबहुअविधिणा संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु तदो मोहणीयस्स वि पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो जायदि त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

* तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण गदेण मोहणीयस्स वि ट्ठिदिबंधो पलिदोवमं।

§ ९२. तदो पुव्वणिरुद्धट्ठिदिबंधादो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण पलिदोवमस्स ट्ठिदिबंधतिभागमेत्तीसु ट्ठिदीसु कमेणोवट्टिदासु ताधे मोहणीयस्स वि ट्ठिदिबंधो संपुण्णपलिदोवममेत्तो जायदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्सत्थसंगहो। एत्थ अप्पाबहुअमणंतरपरूविदमेव।

* तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।

§ ९३. मोहणीयस्स वि तक्कालभावियस्स ट्ठिदिबंधस्स पलिदोवमस्स संखेज्जेहिं

---

§ ९१. क्योंकि चार कर्मोंके पल्योपम स्थितिवाले बन्धके बाद तब पल्योपमके संख्यात भागोंका एक स्थितिबन्धापसरण देखा जाता है। तब मोहनीय कर्मका भी पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध नहीं प्राप्त हुआ है, इसलिये उस समय जो स्थितिबन्धापसरण होता है वह पल्योपमके संख्यातवें भागका उल्लंघन नहीं करता है। तब स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्व इस प्रकार रहता है—नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे थोड़ा होता है। उससे चार कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। तथा उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा होता है। इस प्रकार इस अल्पबहुत्वकी परिपाटीके अनुसार संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके जानेपर तब मोहनीय कर्मका भी पल्योपम स्थितिवाला बन्ध हो जाता है इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* **तत्पश्चात् स्थितिबन्धपृथक्त्वके व्यतीत होने पर मोहनीयकर्मका भी स्थितिबन्ध पल्योपमप्रमाण होता है।**

§ ९२. 'तदो' अर्थात् पूर्वमें विवक्षित स्थितिबन्धमेंसे स्थितिबन्ध-पृथक्त्वके द्वारा पल्योपमके तीसरे भागप्रमाण स्थितियोंके क्रमसे अपवर्तित होनेपर तब मोहनीयकर्मका भी स्थितिबन्ध पूरा एक पल्योपमप्रमाण हो जाता है यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। जो पहले अल्पबहुत्व कह आये हैं वही यहाँपर भी जानना चाहिए।

* **तत्पश्चात् जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह स्थितिबन्ध आयुकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ ९३. क्योंकि मोहनीय कर्मका भी संख्यात भागोंसे हीन तत्काल होनेवाला स्थिति-

भागेहिं ओसरिदूण बज्झमाणस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तसिद्धीए णिप्पडि-बंधमुवलंभादो।

* तस्स अप्पाबहुअं।

§ ९४. तस्स तक्कालभावियस्स ट्ठिदिबंधस्स सव्वेसु कम्मेसु पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणेण पयट्टमाणस्स थोवबहुत्तमिदाणिं वत्तइस्सामो त्ति भणिदं होइ।

* तं जहा।

§ ९५. सुगमं।

* णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो।

§ ९६. कुदो? पुव्वमेव पलिदोवमट्ठिदिगं बंधं लद्धूण संखेज्जेहि संखेज्जगुणहाणि-पडिबद्धट्ठिदिबंधोसरणेहि सुट्ठु ओहट्टिदत्तादो।

* मोहणीयवज्जाणं कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो।

§ ९७. किं कारणं? पच्छा अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूणेदेसिं पलिदोवममेत्तट्ठिदि-बंधसमुप्पत्तीदो।

* मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ९८. कुदो? एक्कस्सेव संखेज्जगुणहाणिपडिबद्धट्ठिदिबंधोसरणस्स ताधे

बन्ध पल्योपमके संख्यातवें भागमात्र सिद्ध होता है यह बिना बाधाके बन जाता है।

* तत्काल होनेवाले स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व।

§ ९४. 'तस्स' अर्थात् तत्काल प्रवृत्त हुए सब कर्मोंके पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व इस समय बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* वह जैसे।

§ ९५. यह सूत्र सुगम है।

* नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प है।

§ ९६. क्योंकि पूर्वमें ही पल्योपम स्थितिवाले बन्धको प्राप्तकर संख्यात गुणहानियोंसे प्रतिबद्ध संख्यात स्थितिबन्धापसरणोंके द्वारा उक्त स्थितिबन्धको बहुत अधिक कम कर दिया गया है।

* उससे मोहनीय कर्मके अतिरिक्त कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणा है।

§ ९७. क्योंकि पीछेकी ओर अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर इन कर्मोंका पल्योपमप्रमाण स्थितिबन्ध उत्पन्न हुआ था।

* उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

§ ९८. क्योंकि तब मोहनीय कर्मविषयक एक ही संख्यात गुणहानिरूप स्थितिबन्धाप-

मोहणीयस्स विसये समुवलंभादो ।

*** एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि ।**

§ ९९. जाव णामा-गोदाणमपच्छिमो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तो दूराव-किट्ठिसण्णिदो ट्ठिदिबंधो ताव एसो अप्पाबहुअपसरो ण पडिहम्मदि । तत्तो परमण्णो अप्पाबहुअप्पयारो पारमदि त्ति भणिदं होइ ।

*** तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो ।**

§ १००. कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो । तं पि कुदो ? दूरावकिट्ठिट्ठिदिबंधादो पाए असंखेज्जभागाणं ट्ठिदिबंधोसरणणियमदंसणादो ।

मार्गदर्शक*** इदरेसिं चदुण्णं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।**

§ १०१. किं कारणं ? तेसिमज्ज वि दूरावकिट्ठिट्ठिदिबंधविसयस्स असंपत्तीदो ।

*** मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो ।**

§ १०२. सुगमं ।

सरण उपलब्ध होता है ।

*** इस प्रकार इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत हजार स्थितिबन्ध व्यतीत होते हैं ।**

९९. क्योंकि जबतक नामकर्म और गोत्रकर्मका अन्तिम दूरापकृष्टि संज्ञावाला पल्योपमका संख्यातवाँ भागप्रमाण स्थितिबन्ध प्राप्त होता है तबतक अल्पबहुत्वका यह क्रम विच्छिन्न नहीं होता है । तत्पश्चात् अल्पबहुत्वका अन्य प्रकार प्रारम्भ होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उसकी अपेक्षा नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है ।**

§ १००. क्योंकि वह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

शंका—वह भी किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि दूरापकृष्टि संज्ञक स्थितिबन्धसे लेकर असंख्यात बहुभागोंका स्थितिबन्धापसरण नियम देखा जाता है ।

*** उससे इतर चार कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा है ।**

§ १०१. क्योंकि उनका अभी भी दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिबन्ध प्राप्त नहीं हुआ है ।

*** उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है ।**

§ १०२. यह सूत्र सुगम है ।

*** एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।**

§ १०३. जाव णाणावरणादीणं दूरावकिट्ठिविसयं पावदि ताव संखेज्जसहस्समेत्ताणि ट्ठिदिबंधोसरणाणि एदेणेव कमेण गदाणि, ण तत्थ परूवणाभेदो त्ति भणिदं होइ। तदो णाणावरणादिकम्माणं दूरावकिट्ठिट्ठिदिबंधे संपत्ते तत्तो परं तेसिमसंखेज्जे भागे ट्ठिदिबंधेणोसरमाणस्स तक्कालपडिबद्धमप्पाबहुअभेदं वत्तइस्सामो—

*** तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो। णामागोदाणं थोवो।**

§ १०४. सुगमं।

*** इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।**

§ १०५. एदं पि सुगमं।

*** मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो।**

§ १०६. किं कारणं? दूरावकिट्ठिविसयं दूरदो परिहरिय अज्ज वि मोहणीयट्ठिदिबंधस्स पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिबंधवियप्पे समवट्ठाणदंसणादो।

*** एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।**

*** इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए।**

§ १०३. जब जाकर ज्ञानावरणादि कर्मोंका दूरापकृष्टिविषयक स्थितिबन्ध प्राप्त होता है तबतक संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण इसी क्रमसे व्यतीत हुए, वहाँ प्ररूपणाभेद नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तत्पश्चात् ज्ञानावरणादि कर्मोंका दूरापकृष्टिसंज्ञक स्थितिबन्धके प्राप्त होनेपर उसके बाद उन कर्मोंके असंख्यात बहुभागका स्थितिबन्धरूपसे अपसरण करनेवाले जीवके उस कालसे सम्बन्ध रखनेवाले अल्पबहुत्वके भेदको बतलाते हैं—

*** तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। उसकी अपेक्षा नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है।**

§ १०४. यह सूत्र सुगम है।

*** उससे इतर चारों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।**

§ १०५. यह सूत्र भी सुगम है।

*** उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।**

§ १०६. क्योंकि दूरापकृष्टिके विषयभूत स्थितिबन्धको दूरसे छोड़कर अभी भी मोहनीय कर्मसम्बन्धी स्थितिबन्धका पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्धरूप भेदमें अवस्थान देखा जाता है।

*** इस क्रमसे बहुत हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए।**

§ १०७. मोहणीयस्स दूरावकिट्ठिविसयमुल्लंघियूण परदो वि संखेज्जसहस्समेत्ताणि ट्ठिदिबंधोसरणाणि एदेणेवप्पाबहुअकमेण गदाणि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। एवं सव्वेसिं कम्माणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिबंधे असंखेज्जगुणहाणीए संखेज्जसहस्सवारमोसरदि, तम्मि उद्देसे अप्पाबहुअपरूवणाए को वि विसेसो अत्थि त्ति तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं—

*** तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो । णामा-गोदाणं थोवो ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १०८. सुगमं ।

*** मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।**

§ १०९. कुदो ? ताधे मोहणीयट्ठिदिबंधस्स विसेसोवट्टणावसेण चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधादो एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहाणीए ओसरणदंसणादो । कुदो एवमेत्थ एवंविहो विवज्जासो जादो त्ति णासंकणिज्जं, अप्पसत्थयरस्स मोहणीयस्स विसोहिपरिणामेसु वड्ढमाणेसु विसेसघादपवुत्तीए पडिबंधाभावादो ।

*** णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।**

---

§ १०७. मोहनीयकर्मके दूरापकृष्टिसम्बन्धी स्थलको उल्लंघन कर आगे भी संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण इसी अल्पबहुत्व क्रमसे व्यतीत हुए यह इस सूत्रका भावार्थ है। इस प्रकार सभी कर्मोंके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिबन्धमें असंख्यात गुणहानिरूपसे संख्यात हजार बार अपसरण करता है, उस स्थलपर अल्पबहुत्वकी प्ररूपणामें कोई भी विशेषता है इसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है। उसकी अपेक्षा नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे थोड़ा है।**

§ १०८. यह सूत्र सुगम है।

*** उससे मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।**

§ १०९. क्योंकि तब मोहनीय कर्मके स्थितिबन्धका विशेष अपवर्तन होनेसे चार कर्मोंके स्थितिबन्धकी अपेक्षा इसका एक साथ असंख्यात गुणहानिरूपसे अपसरण देखा जाता है।

शंका—यहाँ पर इस प्रकारका विपर्यास कैसे हो गया ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मोहनीय कर्म अतिशय अप्रशस्त कर्म है, अतः विशुद्धिरूप परिणामोंमें वृद्धि होनेपर उसका विशेष घात होनेमें कोई रुकावट नहीं पाई जाती।

*** उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।**

§ ११०. कुदो ? मोहणीयट्ठिदिबंधे हेट्ठा असंखेज्जगुणहाणीए णिवदिदे एदेसिं ट्ठिदिबंधस्स तत्तो असंखेज्जगुणत्तसिद्धीए णायागदत्तादो। संपहि किं कारणमेवंविह-गुणगारपरावत्तीए एत्थप्पाबहुअस्स विवज्जासो जादो त्ति संदेहेण घुलमाणहिययस्स सिस्सस्स णिस्संकीकरणट्ठं पयदप्पाबहुअसमत्थणापरमुवरिमपबंधमाह——

* एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो णाणावरणादिट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जादो असंखेज्जगुणहीणो च। णत्थि अण्णो वियप्पो।

§ १११. एक्कवारेणेव विसेसघादं लद्धूण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो णाणावरणादीणं चदुण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जायमाणो असंखेज्जगुणहीणो चेव जादो त्ति णत्थि अण्णो वियप्पो, असंखेज्जभागहीणो संखेज्जभागहीणो संखेज्जगुणहीणो वा अहोदूण असंखेज्जगुणहाणीए चेव परिणदो त्ति वुत्तं होइ। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठ-मुत्तरसुत्तमोइण्णं——

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो उवरि आसी ताव असंखेज्जगुणो आसी। असंखेज्जगुणादो असंखेज्जगुणहीणो जादो।

§ ११२. गयत्थमेदं सुत्तं। जदो एवं तदो एवंविहो अप्पाबहुअपयारो एत्थ संजादो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह——

---

§ ११०. क्योंकि मोहनीयके स्थितिबन्धके असंख्यात गुणहानिरूपसे नीचे पतित होनेपर इन चार कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा सिद्ध होता है यह न्यायप्राप्त है। अब इस प्रकार गुणकारके परावर्तनका क्या कारण है जिससे यहाँपर अल्पबहुत्वमें लौट-पलट हो गई है इस प्रकारके सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है ऐसे शिष्यको निःशंक करनेके लिये प्रकृत अल्पबहुत्वका समर्थन करनेवाले आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* क्योंकि एक बारमें ही मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि चार कर्मोंके स्थितिबन्धकी अपेक्षा कम स्थितिवाला हो जाता है जो उनके स्थितिबन्धसे असंख्यागुणा हीन होता है, यहाँ अन्य विकल्प नहीं है।

§ १११. एक बारमें ही विशेष घातको प्राप्तकर मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि चार कर्मोंके स्थितिबन्धकी अपेक्षा कम स्थितिवाला होता हुआ नियमसे असंख्यातगुणा हीन हो जाता है, इसलिये यहाँ पर अन्य विकल्प सम्भव नहीं है। अर्थात् वह असंख्यात भागहीन, संख्यात भागहीन अथवा संख्यात गुणहीन न होकर असंख्यात गुणहानिरूपसे ही परिणत होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* जब तक मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि चार कर्मोंके स्थितिबन्ध-से अधिक था तब तक वह असंख्यातगुणा था। अब असंख्यातगुणेके स्थानमें असंख्यात-गुणा हीन हो गया है।

§ ११२. यह सूत्र गतार्थ है। जब कि ऐसा है, इसलिए इस प्रकारका अल्पबहुत्वका प्रकार यहाँपर हो गया है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तदो जो एसो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो । मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।**

§ ११३. गयत्थमेदं सुत्तं । णेदस्स पुणरुत्तभावो आसंकणिज्जो, पुव्वं सामण्णेण परूविदस्स अप्पाबहुअस्स कारणमुहेण विसेसिऊण परूवणे तद्दोसासंभवादो ।

*** एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि जाधे बहूणि गदाणि ।**

§ ११४. एदेणप्पाबहुअपयारेणाणंतरपरूविदेण ट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि जाधे बहूणि गदाणि ताधे अण्णारिसो अप्पाबहुअविसेसो होदि त्ति वुत्तं होइ ।

*** तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण मोहणीयस्स थोवो । णामा-गोदाणमसंखेज्जगुणो । इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं तुल्लो असंखेज्जगुणो ।**

§ ११५. सुगमो च एसो अप्पाबहुअपयारो, विसेसघादवसेण सुट्ठु ओहट्टमाणस्स मोहणीयट्ठिदिबंधस्स णामा-गोदट्ठिदिबंधादो वि थोवभावसिद्धीए पडिबंधाभावादो ।

---

* तत्पश्चात् जो यह स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उसकी अपेक्षा नामकर्मका और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प है, उससे मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है । उससे इतर चारों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ११३. यह सूत्र गतार्थ है । इसके पुनरुक्तपनेकी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पहले सामान्यरूपसे कहे गये अल्पबहुत्वका कारणके साथ विशेषरूपसे कथन करनेमें पुनरुक्त दोष सम्भव नहीं है ।

*** इस अल्पबहुत्वविधिसे जब बहुत हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए ।**

§ ११४. अनन्तर पूर्व प्ररूपित इस अल्पबहुत्वप्रकारके द्वारा बहुत हजार स्थितिबन्धापसरण व्यतीत हुए, तब अन्य प्रकारका अल्पबहुत्व भेद होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है, उसकी अपेक्षा एक बारमें मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प हो जाता है । उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । उससे इतर चार कर्मोंका भी स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा होता है ।**

§ ११५. यह अल्पबहुत्वका प्रकार सुगम है, क्योंकि विशेष घात होनेके कारण बहुत अधिक घटनेवाले मोहनीयके स्थितिबन्धके नाम और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे भी स्तोकपनेकी सिद्धि होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं पाया जाता ।

*** एदेण कमेण संखेज्जाणि ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि ।**

§ ११६. सुगमं ।

*** तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो ।**

§ ११७. तदो अण्णारिसो ट्ठिदिबंधपयारो आढत्तो त्ति भणिदं होदि ।

*** एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो ।**

§ ११८. सुगमं ।

*** णामा-गोदाणं पि कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।**

§ ११९. एदं पि सुबोहं ।

*** णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।**

§ १२०. पुव्वं वेदणीयट्ठिदिबंधेण सरिसो एदेसिं तिण्हं घादिकम्माणं ठिदिबंधो विसेसघादवसेण तत्तो असंखेज्जगुणहीणो होदूण हेट्ठा णिवदिदो त्ति एसो पुव्विल्लप्पाबहुअपयारादो एत्थतणो भेदो ।

*** वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।**

---

* इस क्रमसे बहुत संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए ।

§ ११६. यह सूत्र सुगम है ।

* तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है ।

§ ११७. तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्ध प्रकार प्रारम्भ हुआ यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* तब एक बारमें मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध अल्प हो जाता है ।

§ ११८. यह सूत्र सुगम है ।

* उससे नाम और गोत्रकर्मोंका भी स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा होता है ।

§ ११९. यह सूत्र भी सुबोध है ।

* उससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा होता है ।

§ १२०. पहले वेदनीयकर्मके स्थितिबन्धके सदृश इन तीन घाति कर्मोंका स्थिति बन्ध था जो विशेष घात होनेके कारण उससे असंख्यातगुणा हीन होकर नीचे निपतित हुआ यह पूर्वके अल्पबहुत्व प्रकारसे इस अल्पबहुत्वमें अन्तर है ।

* उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है ।

§ १२१. कुदो ? घादिकम्माणं व अघादिकम्मस्सेदस्स विसोहिवसेण सुट्ठु ट्ठिदिबंधोसरणासंभवादो। एदस्सेवत्थविसेसस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

* तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधस्स वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधादो ओसरंतस्स णत्थि वियप्पो संखेज्जगुणहीणो वा विसेसहीणो वा, एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो।

§ १२२. जहा मोहणीयट्ठिदिबंधस्स णाणा-वरणादिट्ठिदिबंधादो णामागोदट्ठिदिबंधादो च ओसरंतस्स असंखेज्जगुणहीणं मोत्तूण णत्थि अण्णो वियप्पो एवमेत्थ वि तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधस्स वेदणीयट्ठिदिबंधादो हेट्ठा ओसरमाणस्स असंखेज्जगुणहीणत्तमुज्झियूण णत्थि अण्णो वियप्पो असंखेज्जभागहीणो वा, संखेज्जभागहीणो वा संखेज्जगुणहीणो वा अहोदूण एक्कवारेण विसेसघादेणोवट्टिय असंखेज्जगुणहाणीए परिणदो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो।

* एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।

§ १२३. सुगमं।

---

§ १२१. क्योंकि मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज विशुद्धिके वश विशेष घात होता है उस प्रकार इस अघातिकर्मका विशुद्धिके वश बहुत स्थितिबन्धापसरण सम्भव नहीं है। अब इसी अर्थविशेषको स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

* वेदनीयकर्मके स्थितिबन्धसे तीनों ही कर्मोंका घटता हुआ स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है या विशेष हीन होता है ऐसा कोई विकल्प नहीं है। किन्तु एक बारमें वह असंख्यातगुणा हीन हो जाता है।

§ १२२. जिस प्रकार मोहनीयका स्थितिबन्ध ज्ञानावरणादि कर्मोंके स्थितिबन्धसे तथा नामकर्म और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे घटकर असंख्यात गुणाहीन होता है। इसे छोड़कर इस विषयमें अन्य विकल्प सम्भव नहीं है इसी प्रकार यहाँपर भी तीनों घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध वेदनीयकर्मके स्थितिबन्धसे कम होकर असंख्यातगुणा हीन होता है। इसे छोड़कर यहाँपर असंख्यात भागहीन, या संख्यात भागहीन या संख्यात गुणाहीन इस प्रकार अन्य विकल्प नहीं है। किन्तु एक बारमें विशेष घातके वश अपवर्तित होकर वह असंख्यातगुणा हीनरूपसे परिणत हुआ है यह इस सूत्रका अर्थ है।

* इस प्रकार इस अल्पबहुत्वविधिसे बहुत संख्यात हजार स्थितिबन्ध व्यतीत हुए।

१२३. यह सूत्र सुगम है।

विशेषार्थ—यहाँपर मोहनीय कर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प रह गया है। उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा हो गया है। उससे

* तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो ।

§ १२४. तत्तो परमण्णारिसो ट्ठिदिबंधवियप्पो पयट्टदि त्ति वुत्तं होइ ।

* एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो ।

§ १२५. सुगमं ।

* णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

§ १२६. पुव्वमेदेसिं ट्ठिदिबंधो णामा-गोदट्ठिदिबंधादो असंखेज्जगुणो होंतो एक्कवारेणेव विसेसघादं लद्धूणासंखेज्जगुणहीणो तत्तो जादो त्ति एसो एत्थतणो विसेसो ।

* णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो ।

§ १२७. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधे हेट्ठा असंखेज्जगुणहाणीए णिवदिदे तत्तो एदेसिं ट्ठिदिबंधस्स अपत्तविसेसघादस्स तहाभावसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो ।

* वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा हो गया है। उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हो गया है। जिस प्रकार विशुद्धिके कारण ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिबन्ध बहुत अधिक घटा है उस प्रकार अघाति होनेसे वेदनीय कर्मका स्थितिबन्धापसरण होना सम्भव नहीं है। यही कारण है कि यहाँपर ज्ञानावरणादिके स्थितिबन्धसे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हो गया है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* तत्पश्चात् अन्य स्थितिबन्ध प्रारम्भ होता है।

§ १२४. तत्पश्चात् अन्य प्रकारका स्थितिबन्धभेद प्रारम्भ होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है।

* एक वारमें घटकर वहाँ मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है।

§ १२५. यह सूत्र सुगम है।

* उससे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध परस्पर तुल्य होकर असंख्यातगुणा है।

§ १२६. पहले इन कर्मोंका स्थितिबन्ध नामकर्म और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा है जो एक वारमें ही विशेष घातको प्राप्तकर उससे असंख्यातगुणा हीन हो गया है यह इस अल्पबहुत्वसम्बन्धी विशेषता है।

* उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है।

§ १२७. क्योंकि तीनों घातिकर्मोंके स्थितिबन्धके नीचे असंख्यातगुणे हीन प्राप्त होनेपर उससे इन कर्मोंके स्थितिबन्धकी विशेष घातको न प्राप्त होनेके कारण उस प्रकारकी सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है।

* उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

§ १२८. एसो वि णामा-गोदट्ठिदिबंधादो असंखेज्जगुणो अण्णो वा अहोदूण विसेसाहिओ चेव जादो । केत्तियमेत्तो विसेसो? दुभागमेत्तो । एदेसिं जहण्णुक्कस्सट्ठिदि-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

बंधाणमेदेण पडिभागेणावट्ठाणदंसणादो । संपहि एदस्सेव अप्पाबहुअस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

* एत्थ वि णत्थि वियप्पो । तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जायमाणो एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो जादो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो ताधे चेव णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो विसेसाहिओ जादो ।

§ १२९. सुगमं । संपहि एत्तो उवरि जाव सव्वेसिं कम्माणमसंखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो ताव एसो चेव अप्पाबहुअकमो, णत्थि अण्णो वियप्पो त्ति पदुप्पायेमाणो उत्तरसुत्तमाह—

* एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि कादूण जाणि पुण कम्माणि बज्झंति ताणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ १३०. एदेणाणंतरपरूविदेणप्पाबहुअविहाणेण ट्ठिदिबंधोसरणसहस्साणि कादूण गच्छमाणस्स केत्तिओ वि कालो गदो ताधे पुण जाणि कम्माणि बज्झंति तेसिं सव्वेसि-

---

§ १२८. यह भी नामकर्म और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे असंख्यातगुणा या अन्य प्रकारका न होकर विशेष अधिक हो गया है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—द्वितीय भागमात्र है, क्योंकि इनके भेदरहित जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिबन्धोंका इस प्रतिभागके अनुसार अवस्थान देखा जाता है ।

अब इसी अल्पबहुत्वका स्पष्टीकरण करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* यहाँपर भी अन्य कोई विकल्प नहीं है । जब तीनों ही कर्मोंका स्थितिबन्ध नाम और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे कम होता हुआ एकवारमें असंख्यातगुणा हो जाता है तभी वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध नाम और गोत्रकर्मके स्थितिबन्धसे विशेष अधिक हो गया है ।

§ १२९. यह सूत्र सुगम है । अब इससे ऊपर सब कर्मोंका स्थितिबन्ध जब तक असंख्यात वर्षवाला है तब तक अल्पबहुत्वका यही क्रम चलता रहता है, अन्य विकल्प नहीं पाया जाता इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस अल्पबहुत्वविधिसे संख्यात हजार स्थितिबन्धोंको करके पुनः जो कर्म बँधते हैं उनका वह स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

§ १३०. अनन्तर पूर्व कही गई इस अल्पबहुत्वविधिसे हजारों स्थितिबन्धापसरण क्रियाको करते हुए जीवका जब कितना ही काल निकल जाता है तब पुनः जो कर्म बँधते हैं

मेव ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव णाज्जवि कस्स वि कम्मस्स संखेज्ज-वस्सिओ ट्ठिदिबंधो पारभदि, एत्तो सुदूरमुवरि गंतूणंतरकरणादो परदो संखेज्जवस्स-ट्ठिदिबंधस्स पारंभदंसणादो। ट्ठिदिसंतकम्मं पुण सव्वेसिमेव कम्माणमंतोकोडाकोडीए एदम्मि विसये दट्ठव्वं, उवसमसेढीए पयारंतरासंभवादो। एदम्मि अदिक्कंतट्ठिदिबंधो-सरणविसये सव्वत्थेव पुव्वुत्तेणेव विहिणा ट्ठिदि-अणुभागखंडय-गुणसेढिआदीणमणुगमो कायव्वो, तत्थ णाणत्ताभावादो। संपहि एत्थुद्देसे कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो——

* तदो असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च।

§ १३१. हेट्ठा सव्वत्थेव असंखेज्जलोगपडिभागेण पयट्टमाणा उदीरणा एण्हिं परिणामपाहम्मेण पुव्वुत्तकिरियाकलावस्सुवरि असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा च पयत्तदि, दिवड्ढगुणहाणिमेत्तसमयपबद्धाणमोकड्डणभागहारादो असंखेज्जगुणेण भागहारेण खंडिदेयखंडस्स असंखेज्जसमयपबद्धपमाणस्सेदस्सुदीरणासरूवेणुदये पवेसदंसणादो। मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज उदयस्स पुण असंखेज्जदिभागो चेव उदीरणा एत्थ सव्वत्थ गहेयव्वा, उक्कस्सोदीरणादव्वस्स वि उदयगदगुणसेढिम्हि गोवुच्छं पेक्खियूणासंखेज्जगुणहीणत्तणियमदंसणादो।

* तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मणपज्जवणाणावरणीय-

उन सभी कर्मोंका स्थितिबन्ध पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, अभी तक किसी भी कर्मका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध प्रारम्भ नहीं हुआ है, क्योंकि इससे बहुत दूर ऊपर जाकर अन्तरकरणके पश्चात् संख्यात वर्षकी स्थितिवाले बन्धका प्रारम्भ देखा जाता है। किन्तु इस स्थलपर सभी कर्मोंका स्थितिसत्कर्म अन्तःकोड़ाकोड़ीके भीतर जानना चाहिए, क्योंकि उपशमश्रेणिमें अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। यहाँ ये जितने स्थितिबन्धाप-सरण हुए हैं वहाँ सर्वत्र ही पूर्वोक्त विधिसे ही स्थितिकाण्डकघात, अनुभागकाण्डकघात और गुणश्रेणि आदिका अनुगम करना चाहिए, क्योंकि इस विषयमें नानात्व नहीं पाया जाता। अब इसी स्थलपर किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* पश्चात् असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है।

§ १३१. पूर्वमें सर्वत्र ही जो उदीरणा असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार प्रवृत्त होती आ रही थी इस समय वह उदीरणा परिणामोंके माहात्म्यवश पूर्वोक्त क्रियाकलापके ऊपर असंख्यात समयप्रबद्धोंकी प्रवृत्त होती है, क्योंकि अपकर्षण भागहारसे असंख्यात-गुणे भागहारके द्वारा डेढ़ गुणहानिप्रमाण समयप्रबद्धोंको भाजित कर जो असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण एक भाग लब्धरूपसे प्राप्त होता है उसका यहाँ उदीरणारूपसे उदयमें प्रवेश देखा जाता है। परन्तु यहाँ सर्वत्र उदीरणाको उदयके असंख्यातवें भागप्रमाण ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उत्कृष्ट उदीरणाद्रव्यका भी ऐसा नियम है कि वह उदयगत गुण-श्रेणिकी गोपुच्छाको देखते हुए असंख्यातगुणा हीन देखा जाता है।

* तत्पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होने पर मनःपर्यय

दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होइ।

१३२. तदो पुव्वुत्तसंधीदो उवरि संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयाविणाभावीसु पादेक्कमणुभागखंडयसहस्सगब्भेसु वोलीणेसु मणपज्जवणाणावरणीय-दाणंतराइयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होदि, सव्वमंदपरिणामस्स तेसिमणुभागबंधस्स पुव्वमेव तहाभावपरिणामे विरोहाभावादो। पुव्वमेदेसिमणुभागबंधो हेट्ठा सव्वघादि-विट्ठाणसरूवेहिंतो एण्हिमेक्कसराहेण परिणामविसेससहकारिकारणं लद्धूण देसघादिविट्ठाणसरूवेण परिणदो त्ति वुत्तं होइ। संतकम्माणुभागो पुण सव्वघादिविट्ठाणिओ चेव, तत्थ देसघादिकरणाभावादो।

*** तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि।**

§ १३३. एदेसिं तिण्हं कम्माणमणुभागो पुव्विल्लपयडीणमणुभागादो अणंतगुणो अण्णोण्णं समाणो च। तदो पच्छा स देसघादी जादो। सेसं सुगमं।

*** तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं भोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि।**

§ १३४. एत्थ वि पुव्वं व कारणणिद्देसो कायव्वो।

ज्ञानावरणीय और दानान्तरायका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाति होता है।

१३२. 'तदो' अर्थात् पूर्वोक्त सन्धिके बाद जिस प्रत्येक स्थितिकाण्डकमें हजारों अनुभागकाण्डक गर्भित हैं ऐसे संख्यात स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर मनःपर्ययज्ञानावरणीय और दानान्तरायकर्मका अनुभाग बन्धकी अपेक्षा देशघाति हो जाता है, क्योंकि उन कर्मोंके सबसे मन्द परिणामरूप अनुभागबन्धका उस प्रकारसे परिणमन होनेमें विरोधका अभाव है। इन कर्मोंका पहले जो अनुभागबन्ध सर्वघाति द्विस्थानरूपसे होता रहा यहाँ वह एक बारमें सहकारी कारणरूप परिणामविशेषको प्राप्तकर देशघाति द्विस्थानरूपसे परिणत हो गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु वहाँ सत्कर्मका अनुभाग तो सर्वघाति द्विस्थानरूप ही होता है, क्योंकि उसका देशघातिकरण नहीं होता।

*** पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होने पर अवधिज्ञानारणीय अवधिदर्शनावरणीय और लाभान्तरायकर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाति करता है।**

§ १३३. इन तीन कर्मोंका अनुभाग पूर्वकी दो प्रकृतियोंके अनुभागसे अनन्तगुणा और परस्पर समान होता है। तत्पश्चात् वह देशघाति हो गया है। शेष कथन सुगम है।

*** तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और भोगान्तराय कर्मको बन्धकी अपेक्षा देशघाति करता है।**

§ १३४. यहाँपर भी पहलेके समान कारणका निर्देश करना चाहिए।

* तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयं बंधेण देसघादिं करेदि ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १३५. सुगमं ।

* तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहियणाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि ।

§ १३६. सुगमं ।

* तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयं बंधेण देसघादिं करेदि ।

§ १३७. कुदो एवमेदेसिं देसघादिकरणस्स कमणियमो त्ति आसंकणिज्जं, अणंतगुणहीणाहियसत्तीणं कम्माणमक्कमेण देसघादिकरणाणुववत्तीदो । चदुसंजलण-पुरिसवेदाणमणुभागबंधस्स देसघादिकरणमेत्थ किण्ण परूविदं ? ण, तेसिमणुभागबंधस्स पुव्वमेव संजदासंजदप्पहुडि देसघादिविट्ठाणसरूवेण पयट्टमाणस्स एदम्मि विसये देसघादित्तं पडि विसंवादाणुवलंभादो ।

* तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर चक्षुदर्शनावरणीयको बन्धकी अपेक्षा देशघाति करता है ।

§ १३५. यह सूत्र सुगम है ।

* तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय और परिभोगान्तरायको बन्धकी अपेक्षा देशघाति करता है ।

§ १३६. यह सूत्र सुगम है ।

* तत्पश्चात् संख्यात स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर वीर्यान्तरायकर्मको बंधकी अपेक्षा देशघाति करता है ।

§ १३७. **शंका**—इनके इस प्रकार देशघातिकरणका क्रमनियम किस कारणसे है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जो कर्म अनन्तगुणी हीन शक्तिवाले हैं और जो कर्म अनन्तगुणी अधिक शक्तिवाले हैं उनका युगपत् देशघातिकरण नहीं बन सकता ।

शंका—चार संज्वलन और पुरुषवेदके अनुभागबन्धका यहाँपर देशघातिकरण क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनका अनुभागबन्ध पहले ही संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर देशघाति द्विस्थानस्वरूपसे प्रवर्तमान है, अतः इस स्थलपर उनके देशघातिपनेके प्रति विसंवाद उपलब्ध नहीं होता ।

*** एदेसिं कम्माणमखवगो अणुवसामगो सव्वो सव्वघादिं बंधदि ।**

§ १३८. संसारावत्थाए सव्वत्थ खवगोवसमसेढीसु च सुगमं चेदमप्पाबहुअं, देसघादिकरणादो हेट्ठा सव्वो जीवो सव्वघादिं चेव णिरुद्धकम्माणमणुभागं बंधदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेसिं कम्माणं देसघादिकरणचरिमसमये ट्ठिदिबंधो केरिसो होइ त्ति आसंकाए इदमाह—

*** ट्ठिदिबंधो मोहणीए थोवो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइएसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । णामागोदेसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १३९. एदेसु कम्मेसु देसघादीसु जादेसु वि पुव्वुत्तो चेव अप्पाबहुअपयारो, णत्थि एत्थ पयारंतरमिदि पदुप्पायणफलत्तादो । संपहि एत्तो उवरि कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं करेदि ।**

§ १४०. एदम्हादो देसघादिकरणादो उवरि संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु एदेणप्पाबहुअविहिणा गदेसु तम्हि अवत्थंतरे अंतरकरणं काढुमाढवेदि त्ति भणिदं होइ । संपहि

*** सब अक्षपक और अनुपशामक जीव इन कर्मोंके सर्वघाती अनुभागको बाँधते हैं ।**

§ १३८. संसार अवस्थामें सर्वत्र क्षपकश्रेणि और उपशमश्रेणीमें देशघातीकरणके पूर्व सब जीव विवक्षित कर्मोंके सर्वघाति ही अनुभागको बाँधते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन कर्मोंके देशघातिकरणके अन्तिम समयमें स्थितिबन्ध किस प्रकार होता है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

*** इन कर्मोंके देशघाति हो जानेपर भी मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध सबसे थोड़ा होता है । उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा होता है । उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक होता है ।**

§ १३९. यह अल्पबहुत्व सुगम है, क्योंकि इन कर्मोंके देशघाति हो जानेपर भी पूर्वोक्त ही अल्पबहुत्वका प्रकार है, यहाँ प्रकारान्तर नहीं है यह इस कथनका फल है । अब इसके आगे किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** पश्चात् देशघाति करनेके बाद संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर अन्तरकरण करता है ।**

§ १४०. इस देशघातिकरणके बाद इस अल्पबहुत्वविधिसे संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर उस अवस्थामें अन्तरकरण करनेके लिए आरम्भ करता है यह उक्त कथनका

केसिं कम्माणमंतरं करेइ त्ति आसंकाए इदमाह—

*** बारसण्हं कसायाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणं च, णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं।**

§ १४१. बारसकसायाणं णवणोकसायाणं चेव अंतरकरणमाढवेइ, णाण्णेसिं कम्माणमिदि वुत्तं होइ। संपहि एदेसिमंतरं करेमाणो केसिं कम्माणं केत्तियं पढमट्ठिदिं
मार्गदर्शक — आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
मोत्तूण केत्तियाओ ट्ठिदीओ कदमम्मि उद्देसे घेत्तूणंतरं करेदि त्ति सिस्साहिप्पायमासंकिय तण्णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरं पबंधमाह—

*** जं संजलणं वेदयदि, जं च वेदं वेदयदि, एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तिगाओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि।**

§ १४२. एत्थ ताव पुरिसवेद-कोहसंजलणाणमुदएण सेढिमारूढो जीवो घेत्तव्वो, सव्वेसिमक्कमेण परूवणोवायाभावादो। तदो दोण्हमेदेसिं कम्माणमंतोमुहुत्तमेत्तीओ पढमट्ठिदीओ मोत्तूण उवरि केत्तियाओ वि ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि त्ति सुत्तत्थविणिच्छओ। तत्थ पुरिसवेदपढमट्ठिदिपमाणं णवुंसयवेदोवसामणद्धा इत्थिवेदोवसामणद्धा सत्तणोकसायोवसामणद्धा चेदि तिण्हमेदेसिं अद्धाणं समासमेत्तं होइ। कोहसंजलणस्स पुण एत्तो विसेसाहिया पढमट्ठिदी होइ। केत्तियमेत्तो विसेसो। पुरिसवेदपढमट्ठिदीए

तात्पर्य है। अब किन कर्मोंका अन्तर करता है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं।

*** बारह कषाय और नौ नोकषायवेदनीयका अन्तर करता है, अन्य कर्मका अन्तरकरण नहीं होता।**

§ १४१. बारह कषाय और नौ नोकषायके अन्तरकरणका ही आरम्भ करता है, अन्य कर्मोंका नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इन कर्मोंका अन्तर करता हुआ किन कर्मोंकी कितनी प्रथम स्थितिको छोड़कर किस स्थानपर किसकी कितनी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायको आशंकारूपसे ग्रहणकर उसका निर्णय करनेके लिए आगेके प्रबंधको कहते हैं—

*** जिस संज्वलनका वेदन करता है और जिस वेदका वेदन करता है इन दोनों कर्मोंकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापितकर अन्तरकरण करता है।**

§ १४२. सर्वप्रथम यहाँपर पुरुषवेद और क्रोधसंज्वलनके उदयसे श्रेणीपर चढ़े हुए जीवको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सबके युगपत् कथन करनेका उपाय नहीं पाया जाता। अतः इन दोनों कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर ऊपरकी कितनी ही स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है यह इस सूत्रके अर्थका निर्णय है। उसमें पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिका प्रमाण नपुंसकवेदका उपशामन काल, स्त्रीवेदका उपशामन काल और सात नोकषायोंका उपशामन काल इन तीन कालोंका जितना योग हो उतना होता है। परन्तु क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति इससे कुछ अधिक होती है।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है?

देसूणतिभागमेत्तो। तिण्हं कोहाणमुवसामणद्धामेत्तो त्ति भणिदं होइ। एवमेदेसिं दोण्हं कम्माणमंतोमुहुत्तमेत्तिं पढमट्ठिदिं ठवेयूण पुणो उवरि केत्तियाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि त्ति आसंकाए णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

***पढमट्ठिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ अंतरट्ठं।**

§ १४३. अंतरकरणट्ठमुवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ गुणसेढिसीसएण सह गहिदाओ त्ति वुत्तं होइ। संपहि अण्णदरवेद-संजलणाणं पढमट्ठिदिं जहा अंतोमुहुत्तमेत्तिं ठवेइ, किमेवं सेसाणमेक्कारसकसाय-अट्ठणोकसायाणं पि ठवेइ आहो णेदि आसंकाए णिरायरणट्ठमिदमाह—

*** सेसाणमेक्कारसण्हं कसायाणमट्ठण्हं च णोकसायवेदणीयाणमुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि।**

§ १४४. एदेसिं कम्माणमुदयावलियमेत्तं मोत्तूणावलियबाहिरट्ठिदीओ अंतरट्ठमागाएदि त्ति वुत्तं होइ। कुदो एवं चेव ? एदेसिमुदयाभावादो।

*** उवरि समट्ठिदिअंतरं, हेट्ठा विसमट्ठिदिअंतरं।**

समाधान—पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिसे कुछ कम तीसरा भागप्रमाण है। तीन क्रोधोंके उपशमानेका जितना काल है तत्प्रमाण है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार इन दोनों कर्मोंकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थितिको स्थापितकर पुनः ऊपर कितनी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** प्रथम स्थितिसे संख्यातगुणी स्थितियाँ अन्तरके लिए ग्रहण की जाती हैं।**

§ १४३. अन्तर करनेके लिए ऊपर संख्यातगुणी स्थितियाँ गुणश्रेणिशीर्षके साथ ग्रहण की जाती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब अन्यतर वेद और अन्यतर संज्वलनकी जिस प्रकार प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है उस प्रकार क्या शेष ग्यारह कषाय और आठ नोकषायोंकी भी स्थापित करता है या नहीं स्थापित करता है ऐसी आशंकाका निराकरण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** शेष ग्यारह कषायों और आठ नोकषायवेदनीयोंका उदयावलिको छोड़कर अन्तर करता है।**

§ १४४. इन कर्मोंकी उदयावलिप्रमाण स्थितियोंको छोड़कर आवलिबाह्य स्थितियोंको अन्तरके लिए ग्रहण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा ही क्यों होता है।

समाधान—क्योंकि इन शेष कर्मोंका उदय नहीं पाया जाता।

*** इन सब कर्मोंका ऊपर समस्थिति अन्तर है, किन्तु नीचे विषम-स्थिति अन्तर है।**

§ १४५. सव्वेसिमेव कसाय-णोकसायाणमुदइल्लाणमणुदइल्लाणं च अंतरचरिमट्ठिदी सरिसी चेव होइ, विदियट्ठिदीए पढमणिसेयस्स सव्वत्थ सरिसभावेणावट्ठाणदंसणादो। तदो उवरि समट्ठिदिअंतरमिदि वुत्तं। हेट्ठा पुण विसरिसमंतरं होइ, अणुदइल्लाणं सव्वेसिं पि सरिसत्ते वि उदइल्लाणमण्णदरवेद-संजलणाणमंतोमुहुत्तमेत्तपढमट्ठिदीदो परदो अंतरपढमट्ठिदीए समवट्ठाणदंसणादो। तदो पढमट्ठिदीए विसरिसत्तमस्सियूण हेट्ठा विसमट्ठिदियमंतरं होदि त्ति भणिदं।

§ १४६. संपहि अंतरं करेमाणो किमेक्केणेव समएणागाइदट्ठिदीओ सुण्णाओ
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
करेदि आहो कमेण त्ति आसंकाए अंतरुक्कीरणद्धापमाणणिद्देसकरणट्ठमुत्तरो पबंधो—

*** जाधे अंतरमुक्कीरदि ताधे अण्णो ट्ठिदिबंधो पबद्धो अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयं च गेण्हदि।**

§ १४७. जम्हि समए अंतरकरणं आढत्तं तम्हि चेव समए हेट्ठिमट्ठिदिबंध-

---

§ १४५. उदयस्वरूप और अनुदयस्वरूप सभी कषायों और नोकषायोंके अन्तरकी अन्तिम स्थिति सदृश ही होती है, क्योंकि द्वितीय स्थितिके प्रथम निषेकका सर्वत्र सदृशरूपसे अवस्थान देखा जाता है, इसलिए ऊपर अन्तर समस्थितिवाला है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। किन्तु नीचे अन्तर विसदृश होता है, क्योंकि अनुदयस्वरूप सभी प्रकृतियोंके अन्तरके सदृश होनेपर भी उदयस्वरूप अन्यतर वेद और अन्यतर संज्वलनकषायकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थितिसे परे अन्तर और प्रथम स्थितिका अवस्थान देखा जाता है। इसलिये प्रथम स्थितिके विसदृशपनेका आश्रयकर नीचे विषम स्थिति अन्तर होता है यह कहा है।

विशेषार्थ—तीन वेद और चार संज्वलनोंमें से जिन दो प्रकृतियोंके उदयसे श्रेणिपर चढ़ता है उनकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थिति स्थापितकर उनसे ऊपरकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंका अन्तर करता है। तथा इनके अतिरिक्त अन्य जिन दो वेदों और ग्यारह कषायोंका अनुदय रहता है उनकी उदयावलिप्रमाण प्रथम स्थिति स्थापितकर उससे ऊपरकी उतनी स्थितियोंका अन्तर करता है जिससे ऊपरके भागमें यह अन्तर उदयस्वरूप प्रकृतियोंके अन्तरके समान हो जाता है। अतः उदयस्वरूप प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती है और अनुदयस्वरूप प्रकृतियोंकी प्रथमस्थिति एक आवली प्रमाण होती है, इसलिये इस प्रथम स्थितिके विषम होनेसे अधोभागमें अन्तरमें विषमता आ जाती है। अर्थात् जहाँ उदयस्वरूप प्रकृतियोंका अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर प्रारम्भ होता है वहाँ अनुदयस्वरूप प्रकृतियोंका यह अन्तर मात्र एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको छोड़कर प्रारम्भ होता है।

§ १४६. अब अन्तरको करता हुआ क्या एक ही समय द्वारा ग्रहण की गई स्थितियोंको शून्यरूपकर देता है या क्रमसे करता है, ऐसी आशंका होनेपर अन्तर-उत्कीरण कालके प्रमाणका निर्देश करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** जब अन्तरका प्रारम्भ करता है तब अन्य स्थितिबन्ध बाँधता है तथा अन्य स्थितिकाण्डक और अन्य अनुभागकाण्डकको ग्रहण करता है।**

§ १४७. जिस समय अन्तरकरणका आरम्भ किया उसी समय पूर्वके स्थितिबन्ध,

ट्ठिदिखंडयाणुभागखंडयाणं समत्तिवसेण अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहाणीए बंधिदुमाढत्तो, अण्णं च ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागपमाणेणाइद्दमणुभागखंडयं च सेसस्साणंता भागा आगाइदा त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एवमक्कमेणाढत्ताणमेदेसिं समत्ती कधं होदि त्ति चे वुच्चदे--

* अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं तं चेव ट्ठिदिखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो अंतरस्स उक्कीरणद्धा च समगं पुण्णाणि।

§ १४८. कुदो एवं चे ? अणुभागखंडयसहस्साणि अब्भंतरं करिय ट्ठिदतक्कालभाविट्ठिदिबंध-ट्ठिदिखंडयकालेहिं अंतरकरणद्धाए सरिसभावब्भुवगमादो। तदो एगट्ठिदिबंधकालमेत्तेण कालेणंतरकरणं समाणेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। संपहि एत्तिएण कालेणंतरं कुणमाणो अंतरट्ठिदीणमुक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं कत्थ णिक्खिवदि, किं विदियट्ठिदीए, किं वा पढमट्ठिदीए, आहो उहयत्थ णिक्खिवदि त्ति आसंकाए णिच्छयविहाणट्ठमुत्तरं पबंधमाह--

* अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति वेदिज्जंति तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदिओ उक्कीरेंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि विदियट्ठिदीए च देदि।

स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक समाप्त हो जानेके कारण अन्य स्थितिबन्धको असंख्यात गुणहानिरूपसे बाँधनेके लिये आरम्भ किया, अन्य स्थितिकाण्डकको पल्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाणरूपसे ग्रहण किया और शेष अनुभागके अनन्त बहुभागको ग्रहण किया यह इस सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है। इस प्रकार युगपत् आरम्भ किये गये इनकी समाप्ति कैसे होती है ऐसा प्रश्न होनेपर कहते हैं—

* हजारों अनुभागकाण्डकोंके व्यतीत होनेपर अन्य अनुभागकाण्डक, वही स्थितिकाण्डक, वही स्थितिबन्ध और अन्तरका उत्कीरणकाल एक साथ सम्पन्न होते हैं।

§ १४८. **शंका**—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—हजारों अनुभागकाण्डकोंको भीतरकर तत्काल होनेवाले स्थितिबन्ध और स्थितिकाण्डकके कालके समान अन्तरकरणका काल स्वीकार किया गया है। अतः एक स्थितिबन्धकालप्रमाण कालके द्वारा अन्तरकरणको सम्पन्न करता है यह यहाँ सूत्रके अर्थका तात्पर्य है। अब इतने काल द्वारा अन्तरको करता हुआ अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके प्रदेशोंको उत्कीर्ण कर कहाँ निक्षिप्त करता है, क्या द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त करता है या क्या प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है ऐसी आशंका होनेपर निश्चय करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* अन्तर करनेवाले जीवके जो कर्मपुञ्ज बाँधते हैं और वेदे जाते हैं उन कर्मोंकी अन्तरस्थितियोंको उत्कीरण करता हुआ उन स्थितियोंके प्रदेशपुञ्जको बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिमें देता है और द्वितीय स्थितिमें देता है।

§ १४९. जे कम्मंसा बज्झंति च वेदिज्जंति च, जहा पुरिसवेदो अण्णदरसंजलणो वा, तेसिमंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं कत्थ णिक्खिवदि त्ति चे ? वुच्चदे— बंधपयडीणमुदइल्लाणं पढमट्ठिदीए च ओकड्डिदूण देदि, बंधपयडीणमेव बिदियट्ठिदीए च देदि, बंधसब्भावेण तत्थुक्कड्डणाए विरोहाभावादो। तदो बंधोदयसहिदाणं पयडीणमंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स समयाविरोहेण बंधपयडीणं पढम-विदियट्ठिदीसु संचरणमविरुद्धमिदि सिद्धो सुत्तत्थसब्भावो। संपहि जेसिं बंधो उदयो च णत्थि, जहा अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं, तेसिमंतरट्ठिदीसुक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं कत्थ कधं संछुहदि त्ति आसंकाए इदमाह—

*** जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि।**

§ १५०. कुदो एदेसिं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि ? उदयाभावेण पढमट्ठिदिसंबंधाभावादो बंधसंबंधाभावेण विदियट्ठिदीए उक्कड्डणाभावादो च। तदो सत्थाणपरिहारेण णिरुद्धपयडीणमंतरट्ठिदिसुक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गं बज्झमाणपयडीणं विदियट्ठिदीए बंधपढमणिसेयमादिं कादूणुवरिमबंधट्ठिदीसु उक्कड्डणाए णिक्खिवदि सोदयाणं

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १४९. **शंका**—जो कर्मपुञ्ज बँधते हैं और वेदे जाते हैं, जैसे कि पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलन, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे उत्कीरण होनेवाले प्रदेशपुंजको कहाँ निक्षिप्त करता है ?

समाधान—कहते हैं, उदयवाली बन्धप्रकृतियोंकी प्रथम स्थितिमें अपकर्षित करके देता है और बन्ध प्रकृतियोंकी ही द्वितीय स्थितिमें देता है, क्योंकि बन्धरूप होनेसे उनमें उत्कर्षण होनेमें विरोधका अभाव है। इसलिये बन्ध और उदयसहित प्रकृतियोंकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुंजका आगमके अनुसार यथाविधि बन्धप्रकृतियोंकी प्रथम और द्वितीय स्थितियोंमें सञ्चरण अविरुद्ध है इस प्रकार सूत्रार्थ सिद्ध होता है।

अब जिन प्रकृतियोंका बन्ध और उदय दोनों नहीं होते, जैसे आठ कषाय और छह नोकषाय, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जको कहाँ किस प्रकार निक्षिप्त करता है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

*** जो कर्मपुञ्ज न बँधते हैं और न वेदे जाते हैं उनके उत्कीर्ण किये जानेवाले प्रदेशपुञ्जको स्वस्थानमें नहीं देता है, बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंकी अनुत्कीर्ण होनेवाली स्थितियोंमें देता है।**

§ १५० **शंका**—इनके प्रदेशपुञ्जको स्वस्थानमें क्यों नहीं देता है ?

समाधान—क्योंकि उदयका अभाव होनेसे एक तो इनका प्रथम स्थितिसे सम्बन्धका अभाव है, दूसरे इनके बन्धरूप न होनेसे द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षणका अभाव है। इसलिये स्वस्थानके परिहार द्वारा विवक्षित प्रकृतियोंकी अन्तरसम्बन्धी स्थितिके उत्कीर्ण होनेवाले

पढमट्ठिदीए च ओकड्डियूण णिक्खिवदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थणिच्छओ। एत्थ 'वज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु' त्ति वुत्ते बंधपयडीणं विदियट्ठिदिसंबंधिणीसु अणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु सोदयाणमणुक्कीरमाणपढमट्ठिदिसंबंधिणीसु च णिक्खिवदि त्ति घेत्तव्वं। संपहि जेसिं कम्माणं बंधसंभवो णत्थि, केवलमुदओ चेव, जहा इत्थि-णवुंसयवेदाणं, तेसिमंतरट्ठिदीसुक्कीरिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स कत्थ संचरणमिदि आसंकाए णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** जे कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए च देदि, वज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदीसु देदि।**

§ १५१. एदेसिं कम्माणमुक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गमप्पणो पढमट्ठिदीए सोदयाणं संजलणाणं च पढमट्ठिदीए णिसिंचदि, अप्पणो विदियट्ठिदीए ण णिसिंचदि, बंधसंबंधाभावेण सत्थाणे उक्कस्सणाभावादो। किंतु वज्झमाणीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि, बंधसंभवेण तत्थुक्कड्डणाए विरोहाभावादो। एत्थ वि वज्झमाणीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु त्ति वुत्ते बंधपयडीणं विदियट्ठिदीए जासिमुदयो अत्थि तासिं पढमट्ठिदीए च गहणं कायव्वं। संपहि जेसिं कम्माणं बंधो अत्थि केवलमुदयो णत्थि, जहा सेसवेदोदये

प्रदेशपुञ्जको बँधनेवाली प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिके बन्धरूप प्रथम निषेकसे लेकर उपरिम बन्धरूप स्थितियोंमें उत्कर्षण करके निक्षिप्त करता है यह इस सूत्रके अर्थका निश्चय है।

यहाँ पर सूत्रमें 'वज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु' ऐसा कहनेपर बन्ध प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिसम्बन्धी अनुत्कीर्ण होनेवाली स्थितियोंमें और उदयसहित बन्ध-प्रकृतियोंकी अनुत्कीर्ण होनेवाली प्रथम स्थितियोंमें निक्षेप करता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। अब जिन कर्मोंका बन्ध सम्भव नहीं है, केवल उदय ही है, जैसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जका कहाँ संचरण होता है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

*** जो कर्मपुञ्ज बँधते नहीं, किन्तु वेदे जाते हैं उनके उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेश पुञ्जको अपनी-अपनी प्रथम स्थितिमें देता है और बध्यमान प्रकृतियोंकी अनुत्कीर्ण होनेवाली स्थितियोंमें देता है।**

§ १५१ इन कर्मोंके उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जको अपनी प्रथम स्थितिमें और उदयसहित संज्वलनोंकी प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है अपनी द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त नहीं करता, क्योंकि इन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होनेसे स्वस्थानमें उत्कर्षणका अभाव है। किन्तु बँधनेवाली प्रकृतियोंकी अनुत्कीर्ण होनेवाली स्थितियोंमें देता है, क्योंकि बन्ध होनेसे उनमें उत्कर्षण होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता। यहाँ पर भी 'वज्झमाणीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु' ऐसा कहने पर बन्ध प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिका और जिनका उदय है उनकी प्रथम स्थितिका ग्रहण करना चाहिए। अब जिन कर्मोंका बन्ध होता है, केवल उदय नहीं

णिरुद्धे पुरिसवेदस्स, जहा वा अण्णदरसंजलणोदये णिरुद्धे सेससंजलणाणं, तेसिमंतरट्ठिदीसुक्कीरिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स कत्थ णिक्खेवो होदि त्ति एदस्स णिद्धारणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

* **जो कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि ।**

§ १५२. एदेसिं च कम्माणं उक्कीरिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स बज्झमाणीणमणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु विदियट्ठिदिसंबंधिणीसु जासिं बंधपयडीणं पढमट्ठिदी अत्थि, तत्थ य संचरणमोकड्डुक्कड्डणावसेण ण विरुज्झदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेहिं चदुहिं सुत्तेहिं परूविदत्थस्स पुणो विसेसणिण्णयं कस्सामो । तं जहा—अंतरं करेमाणो जाणि कम्माणि बंधदि वेदेदि च तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीसुक्कीरिज्जमाणं पदेसग्गमप्पणो पढमट्ठिदीए च णिक्खिवदि आबाधं मोत्तूण पुणो वि विदियट्ठिदीए च णिक्खिवदि, अंतरट्ठिदीसु पुण ण णिक्खिवदि, तासु णिल्लेविज्जमाणीसु णिक्खेवविरोहादो । जाव अंतरदुचरिमफाली ताव सत्थाणे वि ओकड्डुणा-अइच्छावणावलियं मोत्तूणंतरट्ठिदीसु पयट्टदि त्ति के वि आइरिया वक्खाणेंति एसो अत्थो सव्ववियप्पेसु जाणिय

है, जैसे शेष वेदोंके उदयके रहते हुए पुरुषवेदका केवल बन्ध होता है अथवा जैसे अन्यतर संज्वलनका उदय रहते हुए शेष संज्वलनोंका मात्र बन्ध होता है, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जका कहाँ पर निक्षेप होता है इस प्रकार इस सूत्रका निर्धारण करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

* **जो कर्मपुञ्ज न बँधते हैं और न वेदे जाते हैं उनका उत्कीर्ण होनेवाला प्रदेशपुञ्ज बन्धको प्राप्त होनेवाली प्रकृतियोंकी उत्कीर्ण नहीं होनेवाली स्थितियोंमें देता है ।**

§ १५२. इन कर्मोंके उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जका बँधनेवाली प्रकृतियोंकी नहीं उत्कीर्ण होनेवाली द्वितीय स्थितिसम्बन्धी स्थितियोंमें और जिन बन्ध प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति है उसमें अपकर्षण और उत्कर्षणके कारण संचरण विरोधको नहीं प्राप्त होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इन चार सूत्रों द्वारा प्ररूपित अर्थका फिर भी विशेष निर्णय करेंगे। यथा—अन्तरको करनेवाला जीव जिन कर्मोंको बाँधता है और वेदता है उन कर्मोंकी अन्तर स्थितियोंमेंसे उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जको अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षिप्त करता है और आबाधाको छोड़कर द्वितीय स्थितिमें भी निक्षिप्त करता है, किन्तु अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें निक्षिप्त नहीं करता, क्योंकि उनके कर्मपुञ्जसे वे स्थितियाँ रिक्त होनेवाली हैं, इसलिये उनमें निक्षेप होनेका विरोध है। जबतक अन्तरसम्बन्धी द्विचरम फालि है तब तक स्वस्थानमें भी अपकर्षणसम्बन्धी अतिस्थापनावलिको छोड़कर अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें प्रवृत्त रहता है ऐसा कितने ही आचार्य व्याख्यान करते हैं। यह अर्थ सब विकल्पोंमें जानकर बतलाना

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

पण्णवेयव्वो, सुत्ते मुत्तकंठमेवंविहस्स संभवस्स पडिसिद्धत्तादो। जाणि पुण कम्माणि ण बज्झंति ण वेदिज्जंति य ताणि कदमाणि त्ति वुत्ते अट्ठकसाय-छण्णोकसाय-वेदणीयाणि तेसिमुक्कीरिज्जमाणपदेसग्गमप्पणो ट्ठिदीसु ण दिज्जदि, किंतु बज्झमाणीणं पयडीणं विदियट्ठिदीए बंधपढमणिसेयमादिं कादूणुक्कड्डणाए णिसिंचदि। बज्झमाणीण-मबज्झमाणीणं च जासिं पढमट्ठिदी अत्थि तत्थ वि जहासंभवमोकड्डण-परपयडिसंकमेहिं णिक्खिवदि, सत्थाणे पुण ण णिक्खिवदि। जे पुण कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च, जहा इत्थिवेदो णवुंसयवेदो वा तेसिमंतरट्ठिदिपदेसग्गं घेत्तूण अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए च ओकड्डणासंकमेण देदि उदइल्लाणं संजलणाणं पढमट्ठिदीए च ओकड्डण-परपयडि-संकमेहिं समयाविरोहेण णिक्खिवदि विदियट्ठिदीए च बंधम्मि उक्कड्डियूण णिसिंचदि। जे पुण कम्मंसा बज्झमाणा चेव केवलं ण वेदिज्जमाणा, जहा परोदय-विवक्खाए पुरिसवेदो अण्णदरसंजलणो वा, तेसिमंतरट्ठिदीसु उक्कीरिज्जमाणस्स पदेसग्गस्स अप्पणो विदियट्ठिदीए उक्कड्डणावसेण संचारो सोदयाणं बज्झमाणाणं पढम-विदिय-ट्ठिदीसु अणुदयाणं बज्झमाणाणं विदियट्ठिदीए च संचारो ण विरुद्धो त्ति। एसो चउण्हं सुत्ताणमत्थसंगहो।

चाहिए, क्योंकि सूत्रमें इस प्रकारका सम्भव मुक्तकण्ठ प्रतिषिद्ध है। परन्तु जो कर्म न बँधते हैं और न वेदे जाते हैं वे कौन हैं ऐसी पृच्छा होने पर वे आठ कषाय और छह नोकषाय हैं। उनके उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुंजको अपनी स्थितियोंमें नहीं देता है, किन्तु बँधनेवाली प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें बन्धके प्रथम निषेकसे लेकर उत्कर्षण द्वारा सींचता है। तथा बँधनेवाली और नहीं बँधनेवाली जिन प्रकृतियोंकी प्रथम स्थिति है उनमें भी यथासम्भव अपकर्षण और परप्रकृतिसंक्रमद्वारा सींचता है, परन्तु स्वस्थानमें निक्षिप्त नहीं करता। किन्तु जो कर्म बँधते नहीं हैं, किन्तु वेदे जाते हैं, जैसे स्त्रीवेद और नपुंसकवेद, उनको अन्तरसंबंधी स्थितियोंके प्रदेशपुंजको ग्रहणकर अपनी-अपनी प्रथम स्थितिमें अपकर्षणसंक्रमद्वारा देता है, उदयको प्राप्त संज्वलनोंकी प्रथमस्थितिमें अपकर्षण और परप्रकृतिसंक्रमद्वारा आगमानुसार निक्षिप्त करता है और बन्धकी द्वितीय स्थितिमें उत्कर्षणकर सिञ्चित करता है। परन्तु जो कर्म केवल बन्धको ही प्राप्त होते हैं, वेदे नहीं जाते हैं, जैसे परोदयकी विवक्षामें पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलन, उनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें से उत्कीर्ण होनेवाले प्रदेशपुञ्जका उत्कर्षणवश अपनी द्वितीय स्थितिमें सञ्चार, उदयसहित बँधनेवाली प्रकृतियोंकी प्रथम और द्वितीय स्थितियोंमें तथा अनुदयरूप बँधनेवाली प्रकृतियोंकी द्वितीय स्थितिमें सञ्चार विरुद्ध नहीं है इस प्रकार पूर्वमें कहे गये चार सूत्रोंका समुच्चयार्थ है।

विशेषार्थ—जब यह जीव अनिवृत्तिकरणमें चारित्रमोहनीयकी अवशिष्ट बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अन्तर करता है तब उन प्रकृतियोंकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमें स्थित प्रदेशपुञ्जका यथासम्भव उत्कर्षण, अपकर्षण या परप्रकृतिसंक्रम होकर निक्षेप कहाँ किस-प्रकार होता है इस प्रकार इस बातका विशेष विचार अनन्तर पूर्वके चार सूत्रोंमें किया गया है। प्रकृतमें उक्त प्रकृतियोंका विवरण इस प्रकार है—

** एदेण कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं ।

§ १५३. एदेणाणंतरपरूविदेण कमेण अंतोमुहुत्तमेत्तफालिसरूवेण पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए उक्कीरिज्जमाणमंतरं चरिमफालीए उक्कीरिदाए णिरवसेसमुक्कीरिदं

---

१. स्वोदय बन्धप्रकृतियाँ यथा—पुरुषवेद या अन्यतर संज्वलन ।

२. परोदयकी विवक्षामें बन्धप्रकृतियाँ । यथा—पुरुषवेद या अन्यतर संज्वलन ।

३. अबन्धरूप उदयप्रकृतियाँ । यथा—स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ।

४. अबन्धरूप और अनुदयरूप प्रकृतियाँ । यथा—मध्यकी आठ कषाय और छह नोकषाय ।

अब इनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके प्रदेशपुंजका अन्यत्र निक्षेप किस प्रकार होता है इसका स्पष्टीकरण क्रमसे करते हैं—(१) जब पुरुषवेद और अन्यतर संज्वलनका बन्धके साथ उदय भी रहता है तब इनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका एक तो प्रथम स्थितिमें निक्षेप करता है, क्योंकि इनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाई जाती है। दूसरे इनका उत्कर्षण होकर आबाधाको छोड़कर द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करता है। आबाधाको इसलिये छुड़ाया है, क्योंकि उत्कर्षित द्रव्यका आबाधामें निक्षेप नहीं होता। (२) जब अन्यतर संज्वलनको छोड़कर शेष संज्वलनोंका और पुरुषवेदका केवल बन्ध होता है, उदय नहीं होता तब इनकी प्रथम स्थिति आवलिप्रमाण होनेसे इनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका एक तो अपनी अपनी द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करता है। दूसरे स्वयंको छोड़कर जो अन्य प्रकृतियाँ बँधती हैं उनकी भी प्रथम स्थिति आवलिप्रमाण होनेसे उनकी भी द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करता है। तीसरे जो प्रकृतियाँ उदयके साथ बँधती भी हैं उनकी प्रथम और द्वितीय स्थिति दोनोंमें निक्षेप करता है। (३) जब स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जीवके उदय होता है तब इनकी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके निषेकपुञ्जका एक तो अपनी-अपनी प्रथम स्थितिमें निक्षेप करता है। दूसरे इस जीवके जिन संज्वलनोंमें से किसी एक का उदय होता है उसकी प्रथम और द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करता है। तथा तीसरे उदयरूप विवक्षित संज्वलनको छोड़कर अन्य जो संज्वलन और पुरुषवेद मात्र बँधते हैं उनकी प्रथम स्थिति आवलिप्रमाण होनेसे उनकी द्वितीय स्थितिमें निक्षेप करता है। (४) अब रहे मध्यके आठ कषाय और छह नोकषाय सो न तो यहाँ इनका बन्ध ही होता है और न उदय ही होता है, अतः इनका, जो प्रकृतियाँ उस समय बँधती हैं उनकी द्वितीय स्थितिमें, निक्षेप करता है और जो प्रकृतियाँ उस समय बन्ध और उदय दोनों रूप हैं उनकी प्रथम और द्वितीय दोनों स्थितियोंसे निक्षेप करता है। परन्तु उनका स्वस्थानमें निक्षेप नहीं होता। कारण स्पष्ट है। यहाँ प्रथम स्थितिमें निक्षेप अपकर्षण होकर होता है, द्वितीय स्थितिमें निक्षेप उत्कर्षण होकर होता है और एक प्रकृतिस्थितिका दूसरी प्रकृतिस्थितिमें निक्षेप परप्रकृति संक्रमपूर्वक यथासम्भव उत्कर्षण या अपकर्षण होकर होता है। शेष कथन मूलके अनुसार जान लेना चाहिये।

** इस क्रमसे उत्कीर्ण किया जानेवाला अन्तर उत्कीर्ण किया ।

§ १५३. इस अनन्तर पूर्व कहे गये क्रमसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण फालिरूपसे प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिद्वारा उत्कीर्ण होनेवाला अन्तर अन्तिम फालिके उत्कीर्ण होनेपर पूरा

होदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स अत्थविणिच्छयो। णवरि अंतरचरिमफालीए णिवद्‌माणाए सव्वमंतरट्ठिदिदव्वं पढम-विदियट्ठिदीसु पुव्वपरूवणाणुसारेण संकमदि त्ति वत्तव्वं। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमिमा परूवणा कीरदे। तं जहा—पढमट्ठिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूण आबाहब्भंतरे अंतरं करेमाणो गुणसेढिअग्गग्गादो संखेज्जदिभागं खंडेइ[1] उवरिमण्णाओ च संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ अंतरट्ठमागाएदि। एवमागाएंतस्स अंतरब्भंतरे पइट्ठगुणसेढिसीसयं किंपमाणमिदि वुत्ते अणियट्टिअद्धाए जो सेसो संखेज्जदिभागो तेत्तियमेत्तं होदूण पुणो विसेसाहियसुहुमसांपराइयद्धामेत्तेणब्भहियं होइ। किं कारणं? अपुव्वकरणपढमसमए अपुव्वाणियट्टिकरणद्धाहिंतो उवसंतद्धाए संखेज्जभागब्भहियसुहुमसांपराइयद्धामेत्तेण विसेसाहिओ होदूण जो गुणसेढिणिक्खेवो णिक्खित्तो सो गलिदसेसायामत्तादो अंतरपारंभपढमसमये तप्पमाणो होदूण दीसइ त्ति। एदेण कारणेण एवंविहगुणसेढिसीसएण सह उवरि संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूणंतरं करेदि त्ति णिच्छेयव्वं। एवमेदेणायामेणंतरं करेमाणस्स जाव अंतरकरणं समप्पइ ताव अंतरम्मि उक्कीरिज्जमाणट्ठिदीओ अवट्ठिदपमाणाओ चेव भवंति। पढमट्ठिदी वि अवट्ठिदायामो चेव होइ। किं कारणं? पढमट्ठिदीए एगणिसेगे हेट्ठा गलिदे उवरिमेगट्ठिदी पढमट्ठिदीए पविसदि, अंतरट्ठिदीसु एगणिसेगस्स पढमट्ठिदीए

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

उत्कीर्ण हुआ इस प्रकार यह इस सूत्रके अर्थका निश्चय है। इतनी विशेषता है कि अन्तरसम्बन्धी अन्तिम फालिका पतन हो जानेपर अन्तरस्थितिसम्बन्धी सब द्रव्य प्रथम और द्वितीय स्थितिमें पहलेकी प्ररूपणाके अनुसार संक्रमित होता है ऐसा कहना चाहिये। अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये यह प्ररूपणा करते हैं। यथा—प्रथम स्थितिसे संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर आबाधाके भीतर अन्तरको करता हुआ गुणश्रेणीके अग्रभागके अग्रभागमेंसे संख्यातवें भागको खण्डित करता है तथा उससे ऊपरकी संख्यातगुणी अन्य स्थितियोंको भी अन्तरके लिए ग्रहण करता है। इस प्रकार ग्रहण करनेवाले जीवके अन्तरके भीतर प्रविष्ट हुए गुणश्रेणीशीर्षका कितना प्रमाण है ऐसी पृच्छा होनेपर अनिवृत्तिकरणके कालका जो संख्यातवाँ भाग शेष है उतना होकर पुनः विशेष अधिक सूक्ष्मसाम्परायका जितना काल है उतना अधिक है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणके कालसे, उपशान्तमोहके कालसे संख्यातवाँ भाग अधिक जो सूक्ष्मसाम्परायका काल है उतना, विशेष अधिक होकर जो गुणश्रेणीका निक्षेप किया था वह गलित शेष आयामरूप होनेसे अन्तरके प्रारम्भ होनेके प्रथम समयमें तत्प्रमाण होकर दिखलाई देता है, अतः इस कारणसे इस प्रकारके गुणश्रेणीशीर्षके साथ ऊपरकी संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तर करता है ऐसा निश्चय करना चाहिये। इस प्रकार इतने आयामवाले अन्तरको करनेवाले जीवके अन्तर करनेकी क्रियाके समाप्त होनेतक अन्तरमेंसे उत्कीर्ण होनेवाली स्थितियाँ अवस्थितप्रमाणवाली ही होती हैं, तथा प्रथम स्थिति भी अवस्थित आयामवाली होती है, क्योंकि प्रथम स्थितिमेंसे नीचे एक निषेकके गलनेपर ऊपर प्रथम स्थितिमेंसे एक स्थितिका प्रवेश हो जाता है, क्योंकि अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंमेंसे एक निषेकका प्रथम स्थितिमें प्रवेश पाया जाता है

१. ताप्रतौ खंडेदूण इति पाठः।

पवेसुवलंभादो । तक्काले चेव विदियट्ठिदीए आदिट्ठिदी वि अंतरट्ठिदीसु पविसदि त्ति एदेण कारणेण अंतरायामो पढमट्ठिदिआयामो च अवट्ठिदो चेव होदि । तदो एवंविहाणेण कीरमाणमंतरमंतोमुहुत्तेण कालेण णिल्लेविदमिदि सिद्धं ।

*** ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ बंधो, णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदयो, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो, एदाणि सत्तविहाणि करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति ।**

तथा उसी समय द्वितीय स्थितिकी पहली स्थितिका भी अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंका प्रवेश हो जाता है, इसलिए इस कारणसे अन्तरायाम और प्रथमस्थितिसम्बन्धी आयाम अवस्थित ही होते हैं, इसलिये इस विधिसे किये जानेवाले अन्तरको अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा निर्लेप कर दिया जाता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहाँपर जिन स्थितियोंका अन्तर करता है आदि कई बातोंका खुलासा करते हुए जो बतलाया है उसका खुलासा इस प्रकार है—(१) प्रथम स्थितिका जितना प्रमाण है उससे संख्यातगुणी स्थितियोंका अन्तर करता है जो प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थितिके मध्य की स्थितियोंका किया जाता है । (२) गुणश्रेणीका जो अग्रभाग है उसके भी अग्रभागको और उससे भी संख्यातगुणी स्थितियोंको अन्तरके लिये ग्रहण करता है यह उक्त कथनका आशय है । किन्तु अन्तरकरणके कालमें जो कर्मबन्ध होता है उसकी आबाधा इससे भी अधिक होती है (३) यहाँ अन्तरके लिए गुणश्रेणिशीर्षके कितने भागको ग्रहण करता है इसका स्पष्टीकरण करते हुये बतलाया है कि अन्तर करते समय अनिवृत्तिकरणका जो संख्यातवाँ भाग काल शेष है और विशेष अधिक सूक्ष्मसाम्परायका जितना काल होता है, इन दोनोंके बराबर अन्तरके लिये ग्रहण किया गया गुणश्रेणीशीर्ष है । आगे सप्रमाण इसे ही स्पष्ट किया गया है । (४) अन्तरमेंसे उत्कीर्ण होनेवाली स्थितियाँ और प्रथमस्थिति इनका प्रमाण किस प्रकार अवस्थित है इसका स्पष्टीकरण करते हुये बतलाया है कि अन्तरको प्राप्त होनेवाली स्थितियोंमेंसे नीचे एक स्थितिके प्रथम स्थितिमें प्रवेश करनेपर ऊपर द्वितीय स्थितिमेंसे एक स्थिति अन्तरमें प्रवेश करती रहती है, इसलिये अन्तर क्रियाके होनेके अन्तिम समय तक ये दोनों अवस्थित प्रमाणवाले ही होते हैं । अन्तरकरणके समाप्त होनेपर मात्र प्रथम स्थितिमेंसे एक-एक स्थिति कम होने लगती है । (५) इस प्रकार जिन अन्तरसम्बन्धी स्थितियोंके कर्मपुञ्जका निर्लेपन होता है वे कर्मपुञ्ज यथासम्भव प्रथम और द्वितीय स्थितिमें निक्षिप्त हो जाते हैं और इसलिये अन्तर सम्बन्धी स्थितियोंमेंसे कर्मपुञ्जका अभाव हो जाता है अर्थात् उतनी स्थितियाँ कर्मपुञ्जसे रहित हो जाती हैं । इतना यहाँ अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये कि यह अन्तरकरण प्रकृतमें चारित्रमोहनीयकी शेष रहीं १२ कषाय और ९ नोकषायोंका ही होता है ।

*** तभी मोहनीयका आनुपूर्वीसंक्रम, लोभसंज्वलनका असंक्रम, मोहनीयकर्मका एकस्थानीय बन्ध, नपुंसकवेदका प्रथम समय उपशामक, छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा, मोहनीयकर्मका एकस्थानीय उदय, मोहनीयकर्मका संख्यात वर्षकी स्थितिवाला बन्ध ये सात प्रकारके करण अन्तरकर चुकनेके प्रथम समयमें प्रारम्भ होते हैं ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री [illegible]दाणि सत्त वि करणाणि पारद्धाणि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स समुच्चयत्थो। तत्थ मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो णाम पढमं करणं तमेवमणुगंतव्वं। तं जहा—इत्थि-णवुंसयवेदपदेसग्गमेत्तो पाए पुरिसवेदे चेव णियमा संछुहदि। पुरिसवेद-छण्णोकसाय-पच्चक्खाणापच्चक्खाणकोहपदेसग्गं कोहसंजलणस्सुवरि संछुहदि, णाण्णत्थ कत्थ वि। कोहसंजलण-दुविहमाणपदेसग्गं पि माणसंजलणे णियमा संछुहदि, णाण्णम्हि कम्हि वि। माणसंजलणदुविहमायापदेसग्गं च णियमा मायासंजलणे णिक्खिवदि। मायासंजलणदुविहलोभपदेसग्गं च लोभसंजलणे णियमा संछुहदि त्ति एसो आणुपुव्वीसंकमो णाम। पुव्वमणाणुपुव्वीए पयट्टमाणो चरित्तमोहपयडीणं संकमो इदाणिमेदाए पडिणियदाणुपुव्वीए पयट्टदि त्ति भणिदं होइ।

§ १५५. 'लोभस्स असंकमो' त्ति विदियं करणं। एत्थ लोभस्से त्ति सामण्णणिद्देसे वि लोभसंजलणस्सेव गहणं कायव्वं, वक्खाणादो विसेसपडिवत्ती होदि त्ति णायादो। तदो पुव्वमणाणुपुव्वीए लोभसंजलणस्स वि सेससंजलण-पुरिसवेदेसु पयट्टमाणो संकमो एण्हिमाणुपुव्वीसंकमपारंभे पडिलोमसंकमाभावेण णिरुद्धो त्ति एत्तो प्पहुडि लोभसंजलणस्स ण संकमो चेवे त्ति घेत्तव्वं। जइ वि आणुपुव्वीसंकमेण चेव एसो अत्थो समुवलब्भइ तो वि मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठं पुध णिद्दिट्ठो त्ति ण पुणरुत्तदोससंभवो।

---

§ १५४. अन्तर समाप्तिका जो काल है उसी समयसे ही ये सात करण प्रारम्भ हुये हैं यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। उनमेंसे मोहनीयकर्मका आनुपूर्वीसंक्रम यह प्रथम करण है उसे इस प्रकार जानना चाहिये। यथा—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके प्रदेशपुञ्जको यहाँसे लेकर पुरुषवेदमें ही नियमसे संक्रान्त करता है। पुरुषवेद, छह नोकषाय तथा प्रत्याख्यान और अप्रत्याख्यानके प्रदेशपुञ्जको क्रोधसंज्वलनमें संक्रमण करता है, अन्य किसीमें नहीं। क्रोध संज्वलन और दोनों प्रकारके मानके प्रदेशपुञ्जको भी मानसंज्वलनमें नियमसे संक्रमण करता है, अन्य किसीमें नहीं। मानसंज्वलन और दोनों प्रकारके मायाके प्रदेशपुञ्जको नियमसे मायासंज्वलनमें निक्षिप्त करता है। तथा माया संज्वलन और दोनों प्रकारके लोभके प्रदेशपुञ्जको नियमसे लोभसंज्वलनमें निक्षिप्त करता है यह आनुपूर्वीसंक्रम है। पहले चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंका आनुपूर्वीके बिना प्रवृत्त होता हुआ संक्रम इस समय इस प्रतिनियत आनुपूर्वीसे प्रवृत्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ १५५. लोभका असंक्रम यह दूसरा करण है। यहाँ सूत्रमें 'लोभस्स' ऐसा सामान्य निर्देश करनेपर भी लोभसंज्वलनका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि व्याख्यानसे विशेषकी प्रतिपत्ति होती है ऐसा न्याय है। इसलिये पहले आनुपूर्वीके बिना लोभसंज्वलनका भी शेष संज्वलन और पुरुषवेदमें प्रवृत्त होनेवाला संक्रम यहाँ आनुपूर्वीसंक्रमका प्रारम्भ होनेपर प्रतिलोमसंक्रमका अभाव होनेसे रुक गया। यहाँसे लेकर लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं ही होता ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यद्यपि आनुपूर्वीसंक्रमसे ही यह अर्थ उपलब्ध हो जाता है तो भी मन्दबुद्धिजनोंका अनुग्रह करनेके लिये पृथक् निर्देश किया, इसलिए पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता।

§ १५६. 'मोहणीयस्स एयट्ठाणिओ बंधो' त्ति तदियं करणं । एदस्सत्थो—एत्तो हेट्ठा देसघादिविट्ठाणिएहिंतो मोहणीयस्साणुभागबंधो एण्हिं परिणाममाहप्पेणोहट्टिदूण एयट्ठाणिओ जादो त्ति घेत्तव्वो । 'णवुंसयवेदपढमसम्मत्तउवसामओ' त्ति चउत्थकरणमेत्थाढत्तं, णवुंसयवेदस्सेव पढममाउत्तकरणेण उवसामणकिरियाए एत्तो पवुत्तिदंसणादो । 'छसु आवलियासु गदासु उदीरणा' एदं पंचमं करणमेत्थाढविज्जदे । एदस्सत्थविवरणमुवरि चुण्णिसुत्तावलंबणेण पवंचइस्सामो । 'मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदयो' त्ति छट्ठं करणं । एदस्सत्थो—पुव्वं विट्ठाणियदेसघादिसरूवेण पयट्टमाणो मोहणीयाणुभागोदयो अंतरकरणाणंतरमेव एयट्ठाणियसरूवेण परिणदो त्ति भणिदं होइ । 'मोहणीयस्स संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो' त्ति सत्तमं करणं । एदस्सत्थो—पुव्वमसंखेज्जवस्सियस्स मोहणीयट्ठिदिबंधस्स एण्हिं सुट्ठु ओहट्टिदूण संखेज्जवस्ससहस्सपमाणेणावट्ठाणं होइ त्ति वुत्तं होइ । सेसाणं पुण कम्माणमसंखेज्जवस्सियो चेव ठिदिबंधो, तेसिमज्ज वि संखेज्जवस्सियट्ठिदिबंधपारंभविसयस्साणुप्पत्तीदो । एवमेदेसिं सत्तण्हं करणाणमंतरं कदपढमसमए जुगवं पारंभो होदि त्ति एदेण सुत्तेण पदुप्पाइय संपहि 'छसु आवलियासु गदासु उदीरणा' त्ति जं पदं तस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ—

*** छसु आवलियासु गदासु उदीरणा णाम, किं भणिदं होइ ।**

---

§ १५६. मोहनीयका एकस्थानीय बन्ध यह तीसरा करण है। इसका अर्थ—इससे पूर्व देशघाति द्विस्थानीयरूपसे मोहनीयका अनुभागबन्ध होता रहा, अब परिणामोंके माहात्म्य वश घट कर यह एकस्थानीय हो गया ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। नपुंसकवेदका प्रथम समय उपशामक यह चौथा करण यहाँपर आरम्भ हुआ है, क्योंकि प्रथम आयुक्तकरणके द्वारा नपुंसकवेदकी ही उपशामन क्रियामें यहाँसे प्रवृत्ति देखी जाती है। छह आवलियाओंके जानेपर उदीरणा इस पाँचवें करणको यहाँ आरम्भ करता है। इसके अर्थका विवरण आगे चूर्णिसूत्रके अवलम्बन द्वारा विस्तारसे करेंगे। मोहनीयका एकस्थानीय उदय यह छटा करण है। इसका अर्थ—पहले द्विस्थानीय देशघातिरूपसे प्रवृत्त हुआ मोहनीय कर्मका अनुभाग-उदय अन्तरकरणके अनन्तर ही एकस्थानीयरूपसे परिणत हो गया यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'मोहनीयकर्मका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध' यह सातवाँ करण है। इसका अर्थ—पहले मोहनीयकर्मका जो स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षप्रमाण होता रहा उसका इस समय काफी घटकर संख्यात हजार वर्षप्रमाणरूपसे अवस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु शेष कर्मोंका असंख्यात वर्षप्रमाण ही स्थितिबन्ध होता है, क्योंकि उनका अभी भी संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध प्रारम्भ नहीं हुआ है। इस प्रकार इन सात करणोंका अन्तर कर चुकनेके प्रथम समयसे ही युगपत् प्रारम्भ होता है इस प्रकार इस सूत्र द्वारा कथन करके अब 'छह आवलियाओंके व्यतीत होनेपर उदीरणा' यह जो सूत्रपद है उसका स्पष्टीकरण करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

*** 'छह आवलियाओंके व्यतीत होनेपर उदीरणा' ऐसा कहनेका क्या तात्पर्य है।**

§ १५७. सेसाणं छण्हं करणाणमत्थो सुगमो त्ति तप्परिच्चागेण जत्थ किंचि वि वत्तव्वमत्थि तव्विसयमेव पुच्छावक्कमेदमुवरि णिबद्धमिदि दट्ठव्वं। तं कधं? बंधावलियादिक्कंतस्स कम्मस्स उदीरणा होइ त्ति सुपसिद्धमेदं, इदं पुण छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति तव्विरुद्धमिदाणिं परूविज्जदे, तदो छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति किं भणिदं होदि, णेदस्स सरूवं सम्ममवगच्छामो त्ति एदेण पुच्छा कदा होइ। संपहि एवं पुच्छाविसयीकयस्स पयदत्थस्स णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरो विहासागंथो—

* विहासा।

§ १५८. सुगमं।

* जहा णाम समयपबद्धो बद्धो आवलियादिक्कंतो सक्को उदीरेदुमेवमंतरादो पढमसमयकदादो पहुडि जाणि कम्माणि बज्झंति मोहणीयं वा मोहणीयवज्जाणि वा ताणि कम्माणि छसु आवलियासु गदासु सक्काणि उदीरेदुं ऊणिगासु छसु आवलियासु ण सक्काणि उदीरेदुं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १५९. जहा खलु हेट्ठा सव्वत्थेव समयपबद्धो बंधावलियादिक्कंतमेत्तो चेव

---

§ १५७. शेष छह करणोंका अर्थ सुगम है, इसलिए उनको छोड़कर जिस विषयमें कुछ भी वक्तव्य है तद्विषयक ही पृच्छावाक्य यह ऊपर निबद्ध किया गया है ऐसा जानना चाहिए।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—जिस कर्मकी बन्धावलि व्यतीत हो गई है उसकी उदीरणा होती है इस प्रकार यह सुप्रसिद्ध है, परन्तु छह आवलियाओंके जाने पर उदीरणा होती है यह उसके विरुद्ध है, उसकी इस समय प्ररूपणा करते हैं—'छह आवलियाओंके जानेपर उदीरणा होती है' ऐसा कहनेका क्या तात्पर्य है, इसका स्वरूप सम्यक् प्रकारसे नहीं जानते हैं इस प्रकार इस सूत्रद्वारा पृच्छा की गई है। अब इस प्रकार पृच्छाके विषय हुए इस प्रकृत अर्थका निर्णय करनेके लिये आगेका विभाषा ग्रन्थ आया है—

* उसका विशेष व्याख्यान इस प्रकार है।

§ १५८. यह सूत्र सुगम है।

* जिस प्रकार बन्धको प्राप्त हुआ समयप्रबद्ध एक आवलिके बाद उदीरणाके लिए शक्य होता रहा इस प्रकार अन्तर किये जानेके प्रथम समयसे लेकर मोहनीय और मोहनीयके अतिरिक्त अन्य जो कर्म बँधते हैं वे कर्म बन्ध-समयसे लेकर छह आवलि-प्रमाण काल जानेपर उदीरणाके लिये शक्य हैं, वे छह आवलियोंसे कम समयमें उदीरणाके लिये शक्य नहीं हैं।

§ १५९. जैसे पहले सर्वत्र ही समयप्रबद्ध बन्धावलिके व्यतीत होनेके बाद ही नियमसे

सक्को उदीरेदुं, ण एवमेत्थ सक्किज्जदे । किंतु अंतरादो पढमसमयकदादो पाये जाणि कम्माणि बज्झंति मोहणीयं वा मोहणीयवज्जाणि वा णाणावरणादीणि ताणि कम्माणि छसु आवलियासु समइक्कंतासु सक्काणि उदीरेदुं । जाव बंधसमयप्पहुडि छ आवलियाओ संपुण्णाओ ण गदाओ ताव णो उदीरेदुं सक्काणि त्ति भणिदं होइ । जहा अंतरकरणादो हेट्ठा सव्वत्थ बंधावलियादिक्कंतस्स उदीरणापाओग्गत्तणियमो सहावपडिबद्धो, एवमेदम्मि वि विसये बंधसमयप्पहुडि छावलियादिक्कंतस्स उदीरणापाओग्गत्तणियमो सहावणिबद्धो त्ति एसो एदस्स भावत्थो ।

*** एसा छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति सण्णा ।**

§ १६०. गयत्थमेदं पुव्वसुत्तत्थोवसंहारवक्कं । संपहि एदस्सेवत्थस्स णिण्णय-करणट्ठं किंचि कारणंतरं परूवेमाणो उत्तरं पबंधमाह—

*** केण कारणेण छसु आवलियासु गदासु उदीरणा भवदि ।**

§ १६१. पुव्वं बंधावलियादिक्कंतसमये चेव पयट्टमाणा उदीरणा केण कारणेण एदम्मि विसये छसु आवलियासु गदासु पयट्टदि त्ति एसो एत्थ पुच्छाहिप्पाओ ।

*** णिदरिसणं ।**

§ १६२. छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति एदस्सत्थस्स णिण्णयकरणट्ठं

उदीरणाके लिए शक्य रहता आया है इस प्रकार यहाँ पर शक्य नहीं है। किन्तु अन्तर किये जानेके प्रथम समयसे लेकर जो कर्म बँधते हैं मोहनीय या मोहनीयके अतिरिक्त अन्य ज्ञानावरणादिक वे कर्म छह आवलियोंके व्यतीत होनेके बाद उदीरणाके लिये शक्य होते हैं। बन्ध समयसे लेकर जब तक पूरी छह आवलियाँ व्यतीत नहीं होती हैं तब तक उनकी उदीरणा होना शक्य नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस प्रकार अन्तरकरणके पूर्व सर्वत्र बन्धावलिके व्यतीत होनेके बाद बद्ध कर्म उदीरणाके योग्य होता है यह नियम स्वभावसे प्रतिबद्ध है उसी प्रकार इस स्थल पर भी बन्धसमयसे लेकर छह आवलि व्यतीत होनेके बाद बद्ध कर्म उदीरणाके योग्य होता है यह नियम स्वभावसे प्रतिबद्ध है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

*** इसकी छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा यह संज्ञा है ।**

§ १६०. पूर्वके सूत्रके अर्थका उपसंहार करनेवाला यह सूत्रवाक्य गतार्थ है । अब इसी अर्थका निर्णय करनेके लिये किंचित् कारणान्तरका कथन करते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** किस कारणसे छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा होती है ?**

§ १६१. पहले बन्धावलिके बादके समयमें ही प्रवृत्त होनेवाली उदीरणा इस स्थलपर किस कारणसे छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर प्रवृत्त होती है यह यहाँपर की गई पृच्छाका अभिप्राय है।

*** प्रकृत विषयके समर्थनमें निदर्शन ।**

§ १६२. छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा होती है इस प्रकार इस अर्थका

किंचि णिदरिसणमिह वत्तइस्सामो त्ति भणिदं होइ।

*** जह्रा णाम बारस किट्टीओ अवे पुरिसवेदं च बंधइ तस्स जं पदेसग्गं पुरिसवेदे बद्धं ताव आवलियं अच्छदि ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १६३. उवसमसेढीए ताव बारसण्हं किट्टीणं संभवो चेव णत्थि, खवगसेढिविसयाणं तासिमेत्थासंभवणिण्णयादो । तदो खवगसेढिसमालंबणेण णिदरिसणमेदं घडावियव्वं । तत्थ वि पुरिसवेदबंधविसये बारसकिट्टीणमच्चंतासंभवो चेव, पुरिसवेदे संछुद्धे अस्सकण्णकरणे च णिट्ठिदे तदो परं किट्टीकरणद्धाए बारसण्हं किट्टीणं सरूवोवलंभादो[1] । तदो एवंविहसंभवाभावे वि संभवसद्दमस्सियूण जइ किह वि एसो संभवो हवेज्ज तो णिदरिसणमेदमेत्थमणुगंतव्वमिदि एसो णिदरिसणोवण्णासो आढविज्जदि । तं जहा—बारसकिट्टीसु सेचीयसरूवेण विज्जमाणासु जइ तत्थ पुरिसवेदबंधसंभवो होज्ज तो तस्स तहाबंधमाणस्स खवगस्स पुरिसवेदसरूवेण जं बद्धं पदेसग्गं तं ताव सत्थाणे चेव बंधावलियमेत्तकालमविचलिदसरूवं होदूण चिट्ठदि त्ति एसा ताव एक्का आवलिया उदीरणावत्थापरंमुही समुवलब्भदे ।

*** आवलियादिक्कंतं कोहस्स पढमकिट्टीए विदियकिट्टीए च संकामिज्जदि ।**

निर्णय करनेके लिए किंचित् निदर्शन यहाँ बतलावेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** यथा—बारह कृष्टियाँ होवें और पुरुषवेदका बन्ध होता है तो उसके पुरुषवेदमें बद्ध प्रदेशपुञ्ज एक आवलि काल तक तदवस्थ रहता है ।**

§ १६३. उपशमश्रेणिमें तो बारह कृष्टियोंका होना सम्भव ही नहीं है, क्योंकि क्षपकश्रेणिविषयक उनका यहाँ नहीं होनेका निर्णय है । अतः क्षपकश्रेणिका आलम्बन लेकर इस निदर्शनको घटित करना चाहिये । उसमें भी पुरुषवेदके बँधते समय बारह कृष्टियोंका होना असम्भव ही है, क्योंकि पुरुषवेदकी निर्जरा होनेके बाद अश्वकर्णकरणके सम्पन्न होनेपर तत्पश्चात् कृष्टिकरणके कालमें बारह कृष्टियोंका सद्भाव पाया जाता है । इसलिए इस प्रकारकी सम्भावना नहीं होनेपर भी सम्भव शब्दका आश्रयकर यदि कहीं भी यह सम्भव होवे तो इस निदर्शनको यहाँपर जानना चाहिये इस प्रकार इस निदर्शनका निर्देश किया है । यथा—सिंचनरूपसे बारह कृष्टियोंके रहते हुए यदि वहाँ पुरुषवेदका बन्ध सम्भव होवे तो उस प्रकार बाँधनेवाले उस क्षपकके पुरुषवेदरूपसे जो प्रदेशपुञ्ज बँधा है वह सर्वप्रथम तो स्वस्थानमें ही बन्धावलिप्रमाणकाल तक अविचलितस्वरूप होकर ठहरा रहता है इस प्रकार यह एक आवलि-उदीरणासे विमुख उपलब्ध होती है ।

*** बन्धावलिके व्यतीत होनेके बाद पुरुषवेदके उस प्रदेशपुञ्जको क्रोधकी प्रथम कृष्टिमें और द्वितीय कृष्टिमें संक्रान्त करता है ।**

१. ता०. प्रती सरूबोवलद्धीदो इति पाठः ।

§ १६४. सत्थाणे बंधावलियादिक्कंतं पुरिसवेदस्स णिरुद्धपदेसग्गं कोहसंजलणस्स पढमविदियकिट्टीसु जदो संकामिज्जदे तदो तत्थ संकमणावलियमेत्तकालमविचलिद-सरूवेणावचिट्ठदे। तम्हा एसा विदिया आवलिया उदीरणापज्जायविमुही समुवलब्भदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स अत्थविणिण्णओ।

*** विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं तं कोहस्स तदियकिट्टीए च माणस्स पढमविदियकिट्टीसु च संकामिज्जदि।**

§ १६५. एवं कोहस्स पढम-विदियकिट्टीसु संकंतं पुरिसवेदस्स पदेसग्गं तत्थावलियमेत्तकालावट्ठाणेण संकमपाओग्गं होदूण कोहविदियकिट्टीदो कोहस्स तदिय-किट्टीए माणस्स पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदि त्ति एसो तदियावलियविसयो दट्ठव्वो, तत्थ संकमणावलियमेत्तकालमणवट्ठिदस्स अवत्थंतरसंकंतीए अभावादो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** माणस्स विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं माणस्स च तदिय-किट्टीए मायाए पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदे।**

§ १६६. सुगममेदं सुत्तं। तदो एत्थ वि संकमणावलियमेत्तकालमवचिट्ठदि त्ति एसो चउत्थावलियविसयो।

---

§ १६४. स्वस्थानमें बन्धावलिके व्यतीत होनेके बाद पुरुषवेदके विवक्षित प्रदेशपुञ्जको क्रोधसंज्वलनकी प्रथम और द्वितीय कृष्टिमें यतः संक्रमाता है अतः वहाँपर संक्रमावलिप्रमाण काल तक वह अविचलितस्वरूपसे ठहरा रहता है, इसलिए यह दूसरी आवलि उदीरणासे विमुख उपलब्ध होती है यह इस सूत्रके अर्थका निर्णय है।

*** क्रोधकी उक्त कृष्टियोंमें रहे हुए पुरुषवेदके उस प्रदेशपुञ्जको एक आवलिके व्यतीत होनेके बाद क्रोधकी दूसरी कृष्टिमेंसे क्रोधकी तीसरी कृष्टिमें और मानकी पहली और दूसरी कृष्टियोंमें संक्रान्त करता है।**

§ १६५. इस प्रकार पुरुषवेदका जो प्रदेशपुंज क्रोधकी प्रथम और द्वितीय कृष्टियोंमें संक्रान्त हुआ और जो वहाँ आवलिप्रमाण काल तक अवस्थान होनेसे संक्रमके योग्य हो गया उसे क्रोधकी दूसरी कृष्टिमेंसे क्रोधकी तीसरी कृष्टिमें तथा मानकी प्रथम और द्वितीय कृष्टियों-में संक्रान्त करता है इस प्रकार यह तीसरी आवलिका विषय जानना चाहिये, क्योंकि वहाँ-पर संक्रमणावलिप्रमाण काल तक अवस्थित हुए उसका अवस्थान्तररूपसे संक्रान्त होनेका अभाव है।

*** क्रोध और मानकी उक्त कृष्टियोंमें रहे हुए पुरुषवेदके उस प्रदेशपुञ्जको एक आवलिके व्यतीत होनेके बाद मानकी दूसरी कृष्टिमेंसे मानकी तीसरी कृष्टिमें तथा मायाकी प्रथम और द्वितीय कृष्टियोंमें संक्रान्त करता है।**

§ १६६. यह सूत्र सुगम है। इसलिए यहाँ पर भी संक्रमणावलिप्रमाण काल तक अव-स्थित रहता है इस प्रकार यह चौथी आवलिका विषय है।

*** मायाए विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं मायाए तदिय-किट्टीए लोभस्स च पढम-विदियकिट्टीसु संकामिज्जदि ।**

§ १६७. गयत्थमेदं पि सुत्तं ।

*** लोभस्स विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं लोभस्स तदिय-किट्टीए संकामिज्जदि ।**

§ १६८. तदो पुव्वुत्तपणालीए आगंतूण लोभस्स तदियकिट्टीए संकमिय तत्थ संकमणावलियमेत्तकालमवट्ठिदं संतं पुव्वणिरुद्धपुरिसवेदपदेसग्गं छावलियादिक्कंतं होदूण उदीरणापाओग्गं होदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । एवमेदं बालजणाणुग्गहट्ठं णिदरिसणोवण्णासं कादूण संपहि एदस्सेवत्थस्स दढीकरणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

*** एदेण कारणेण समयपबद्धो छसु आवलियासु गदासु उदीरिज्जदे ।**

§ १६९. गयत्थमेदं पुव्वुत्तत्थोवसंहारवक्कं । संपहि जहा एसो अत्थो पुरिसवेद-णवकबंधमस्सियूण णिदरिसिदो, किमेवं कोहसंजलणादीणं पि णिदरिसेदुं सक्किज्जदे आहो ण सक्किज्जदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** मान और मायाकी उक्त कृष्टियोंमें रहे हुए पुरुषवेदके उस प्रदेशपुञ्जको एक आवलि व्यतीत होनेके बाद मायाकी दूसरी कृष्टिमेंसे मायाकी तीसरी कृष्टिमें तथा लोभकी पहली और दूसरी कृष्टिमें संक्रान्त करता है ।**

§ १६७. यह सूत्र गतार्थ है ।

*** माया और लोभकी उक्त कृष्टियोंमें रहे हुए पुरुषवेदके उस प्रदेशपुञ्जको एक आवलि व्यतीत होनेके बाद लोभकी दूसरी कृष्टिमेंसे लोभकी तीसरी कृष्टिमें संक्रान्त करता है ।**

§ १६८. इसलिए पूर्वोक्त प्रणालीसे आकर लोभकी तीसरी कृष्टिमें संक्रान्त होकर तथा वहाँ संक्रमणावलिप्रमाण काल तक अवस्थित हुआ पूर्वमें विवक्षित पुरुषवेदका प्रदेशपुञ्ज छह आवलि कालके जानेके बाद उदीरणाके योग्य होता है यह इस सूत्रका भावार्थ है । इस प्रकार बालजनोंके अनुग्रहके लिए इस निदर्शनका उपन्यास करके अब इसी अर्थको दृढ़ करनेके लिये उपसंहार वाक्यको कहते हैं—

*** इस कारणसे नवीन बद्ध समयप्रबद्ध छह आवलियोंके व्यतीत होनेपर उदीरणा-को प्राप्त किया जाता है ।**

§ १६९. पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करनेवाला यह वचन गतार्थ है । अब जिस प्रकार इस अर्थको पुरुषवेदके नवक बन्धका आश्रयकर दिखलाया है क्या इस प्रकार क्रोध संज्वलन आदिको भी दिखलाना शक्य है अथवा शक्य नहीं है इस प्रकारकी आशंकाके निवारण करने-के लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** जहा एवं पुरिसवेदस्स समयपबद्धादो छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति कारणं णिदरिसिदं तहा एवं सेसाणं कम्माणं जदि वि एसो विधी णत्थि, तहा वि अंतरादो पढमसमयकदादो पाए जे कम्मंसा बज्झंति तेसिं कम्माणं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा ।**

§ १७०. सेसाणं कम्माणं कोहसंजलणादीणं णाणावरणादीणं च जइ वि एसो विधी णिदरिसणोवणयविसयो ण संभवइ तहा वि पुरिसवेदविसयणिदरिसणोवणयमेदं णिबंधणं कादूण अंतरकरणादो उवरि सव्वेसिं कम्माणं सहावदो चेव छसु आवलियासु गदासु उदीरणाणियमो समालंबेयव्वो त्ति एसो एदस्स भावत्थो ।

*** एदं णिदरिसणमेत्तं तं पमाणं कादूं णिच्छयदो गेण्हियव्वं ।**

§ १७१. सिस्समइवित्थारणट्ठमेदमसब्भूदत्थोदाहरणमुहेण णिदरिसणोवणयणमम्हेहिं पयासिदं, अण्णहा अव्वुप्पण्णाणं सिस्साणं पयदत्थविसयसंमोहणिरायरणाणुववत्तीदो । तदो दिसामेत्तेणेदेण पुव्वुत्तमत्थजादं पमाणं कादूण विप्पडिवत्तीए विणा णिच्छयदो गेण्हियव्वं, सव्वण्हुवएसस्स सिद्धसरूवस्स विप्पडिवत्तिविसयमुल्लंघियूण सम्मवट्ठाणादो त्ति एसो एदस्स भावत्थो ।

*** जिस प्रकार उक्त विधिसे पुरुषवेदके नूतन समयप्रबद्धमेंसे छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा होती है इसका सकारण निदर्शन किया उसी प्रकार उक्त प्रकारसे शेष कर्मोंकी यद्यपि यह विधि नहीं है तथापि अन्तर किये जानेके प्रथम समयसे लेकर जो कर्मपुञ्ज बँधते हैं उन कर्मोंकी छह आवलियाँ जानेपर उदीरणा होती है ।**

§ १७०. शेष क्रोध संज्वलन आदि और ज्ञानावरण आदिकी यद्यपि निदर्शनोपनय विषयक यह विधि सम्भव नहीं है तथापि पुरुषवेदविषयक इस निदर्शनोपनयको कारण बनाकर अन्तरकरणके बाद सर्वत्र सभी कर्मोंके स्वभावसे ही छह आवलियोंके जानेपर उदीरणा सम्बन्धी नियमका अवलम्बन करना चाहिए यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

*** यह निदर्शनमात्र है, इस रूपमें इसे प्रमाण करके निश्चयसे ग्रहण करना चाहिये ।**

§ १७१. अति विस्तारसे शिष्यको बतलानेके लिए असद्भूत अर्थरूप उदाहरण द्वारा इस निदर्शनोपनयको हमने प्रकाशित किया है । अन्यथा अव्युत्पन्न शिष्योंका प्रकृत अर्थविषयक सम्मोहका निराकरण नहीं बन सकता है, इसलिये दिशामात्र इस निदर्शनद्वारा पूर्वोक्त अर्थजातको प्रमाण करके बिना विवादके निश्चयसे अर्थजातको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि सर्वज्ञका उपदेश सिद्धस्वरूप है, इसलिये विवादके विषयको उल्लंघन करके वह अवस्थित है यह इसका भावार्थ है ।

विशेषार्थ—अन्तर क्रियाके सम्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर बँधनेवाले जितने भी कर्म हैं उनकी उदीरणा छह आवलियोंके बाद ही प्रारम्भ होती है । यह परमार्थ है । इसे स्पष्ट

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १७२. एवमेदमत्थमुवसंहारिय संपहि एत्तो उवरि णवुंसयवेदादिपयडीणं जहाकममुवसामणाविहाणं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** अंतरादो पढमसमयकदादो पाए णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणउवसामगो, सेसाणं कम्माणं ण किंचि उवसामेदि ।**

§ १७३. एत्तो प्पहुडि अंतोमुहुत्तमेत्तकालं णवुंसयवेदस्स आउत्तकिरियाए उवसामगो होइ, सेसाणं कम्माणं ण ताव किंचि उवसामेदि तेसिमुवसामणकिरियाए अज्ज वि पारंभाभावादो त्ति भणिदं होइ । किमाउत्तकरणं णाम ? आउत्तकरणमुज्जत्तकरणं पारंभकरणमिदि एयट्ठो । तात्पर्येण नपुंसकवेदमितः शमयत्युपशमयतीत्यर्थः । एवमाउत्तकिरियाए णवुंसयवेदोवसामणमाढविय उवसामेमाणो समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए णवुंसयवेदपदेसग्गमुवसंतं करेदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

*** जं पढमसमये पदेसग्गमुवसामेदि तं थोवं । जं बिदियसमये उव-**

करनेके लिए उस समय बँधनेवाले पुरुषवेदको जो उदाहरणरूपमें उपस्थित किया है वह यद्यपि कल्पित है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें क्रोध, मान और मायाका कृष्टिकरण नहीं होता । यह सब क्षपकश्रेणिमें सम्भव है । तथा क्षपकश्रेणिमें भी पुरुषवेदका कृष्टिकरणके कालमें बन्ध नहीं होता, इसलिये पुरुषवेदके नवीन बन्धको विषय बनाकर जो निदर्शन उपस्थित किया गया है वह मात्र कल्पित है । फिर भी उससे इस परमार्थका ज्ञान हो जाता है कि अन्तर क्रियाके सम्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर वहाँ बँधनेवाले कर्मोंकी उदीरणा बन्ध समयसे छह आवलियोंके बाद होती है, इसके पूर्व नहीं ।

§ १७२. इस प्रकार इस अर्थका उपसंहारकर अब इससे ऊपर नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंके क्रमसे उपशामनाविधिका कथन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अन्तर किये जानेके प्रथम समयसे लेकर नपुंसकवेदका आयुक्तकरण उपशामक होता है, शेष कर्मोंको किञ्चिन्मात्र भी नहीं उपशमाता है ।**

§ १७३. यहाँसे लेकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक नपुंसकवेदका आयुक्त क्रियाके द्वारा उपशामक होता है, शेष कर्मोंको तो किञ्चिन्मात्र भी नहीं उपशमाता है, क्योंकि उनकी उपशामनक्रियाका अभी भी प्रारम्भ नहीं हुआ है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—आयुक्तकरण किसे कहते हैं ?

समाधान—आयुक्तकरण, उद्यतकरण और प्रारम्भकरण ये तीनों एकार्थक हैं । तात्पर्यरूपसे यहाँसे लेकर नपुंसकवेदको उपशमाता है यह इसका अर्थ है ।

इस प्रकार आयुक्तक्रियाके द्वारा नपुंसकवेदके उपशमानेका आरम्भकर उपशमाता हुआ प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे नपुंसकवेदके प्रदेशपुञ्जको उपशान्त करता है इस बातका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** प्रथम समयमें जिस प्रदेशपुञ्जको उपशमाता है वह स्तोक है । दूसरे समयमें**

सामेदि तमसंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेदि जाव उवसंतं ।

§ १७४. कुदो एवं ? समयं पडि तक्कारणपरिणामेसु वड्ढमाणेसु उवसामिज्जमाण-पदेसग्गस्स तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो । एवं परिणाममाहप्पेण समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए णवुंसयवेदपदेसग्गमुवसामेमाणस्स पुणो वि उवसामिज्जमाणपदेस-माहप्पजाणावणट्ठमिदमप्पाबहुअसुत्तमोइण्णं—

*** णवुंसयवेदस्स पढमसमयउवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा ।**

§ १७५. एत्थ जस्स वा तस्स वा कम्मस्से त्ति वयणं णवुंसयवेदावहारण-णिरायरणदुवारेण सव्वेसिमेव वेदिज्जमाणपयडीणमुदीरणादव्वस्स गहणट्ठं । एसा च उदीरणा असंखेज्जसमयपबद्धपमाणा होदूण उवरिमपदावेक्खाए थोवा त्ति गहेयव्वा ।

*** उदयो असंखेज्जगुणो ।**

§ १७६. एत्थ वि जस्स वा तस्स वा कम्मस्से त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो । तेण वेदिज्जमाणसव्वपयडीणमुदीरणादव्वादो उदयो असंखेज्जगुणो त्ति गहेयव्वो । कुदो एदस्सासंखेज्जगुणत्तणिण्णयो चे ? अंतोमुहुत्तसंचिदगुणसेढिगोवुच्छमाहप्पादो ।

जिस प्रदेशपुंजको उपशमाता है वह उससे असंख्यातगुणा है । इस प्रकार उसके उपशान्त होने तक असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाता है ।

§ १७४. **शंका**—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि प्रति समय कारणभूत परिणामोंकी वृद्धि होनेपर उपशमाये जानेवाले प्रदेशपुञ्जके उस प्रकारसे सिद्धि होनेमें विरोधका अभाव है । इस प्रकार परिणामोंके माहात्म्यवश प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे नपुंसकवेदके प्रदेशपुञ्जको उपशमानेवाले जीवके फिर भी उपशमाये जानेवाले प्रदेशोंके माहात्म्यका ज्ञान करानेके लिए यह अल्पबहुत्व सूत्र आया है—

*** प्रथम समयमें नपुंसकवेदके उपशामकके जिस-किसी कर्मके प्रदेशपुञ्जकी उदीरणा सबसे स्तोक है ।**

§ १७५. यहाँ सूत्रमें 'जिस-किसी कर्मके' यह वचन नपुंसकवेदके अवधारणके निराकरणद्वारा सभी वेदी जानेवाली प्रकृतियोंके उदीरणाद्रव्यके ग्रहणके लिए आया है । यह उदीरणा असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होकर आगे कहे जानेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

*** उससे उदय असंख्यातगुणा है ।**

§ १७६. यहाँ भी 'जस्स वा तस्स वा कम्मस्स' इस वचनका अधिकारके साथ सम्बन्ध करना चाहिये । इसलिये वेदी जानेवाली सभी प्रकृतियोंके उदीरणासम्बन्धी द्रव्यसे उदय-सम्बन्धी द्रव्य असंख्यातगुणा है ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

* णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिसंकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं ।

§ १७७. ओकड्डणादव्वस्स असंखेज्जदिभागपडिबद्धो उदयो। एसो पुण परपयडीसु गुणसंकमो गहिदो, तेणासंखेज्जगुणो जादो, गुणसंकमभागहारादो ओकड्डण-भागहारस्सासंखेज्जगुणत्तणिच्छयादो ।

* उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं ।

§ १७८. णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमिदि अहियारसंबंधो एत्थ कायव्वो, तक्काले सेसपयडीणमुवसामिज्जमाणपदेसासंभवादो । गुणसंकमभागहारादो असंखेज्जगुणहीणेण भागहारेण खंडिदेयखंडमेत्तमुवसामिज्जमाणपदेसग्गं होदि त्ति पुव्विल्लादो एद-मसंखेज्जगुणं जादं । जहा णवुंसयवेदोवसामगस्स पढमसमये एदमप्पाबहुअं तहा विदियादिसमएसु वि णेदव्वं इदि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं—

* एवं जाव चरिमसमयउवसंते त्ति ।

§ १७९. सुगममेदं सुत्तं । संपहि एदम्मि अवत्थाविसेसे ट्ठिदिबंधस्स पवुत्ती कधं होदि त्ति आसंकाए णिण्णयविहाणट्ठमिदमाह—

शंका—उदीरणाके द्रव्यसे उदयका द्रव्य असंख्यातगुणा है इसका निर्णय कैसे किया ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण संचित गुणश्रेणिके गोपुच्छाके माहात्म्यसे इसका निर्णय होता है कि प्रकृतमें उदीरणाके द्रव्यसे उदयका द्रव्य असंख्यातगुणा है ।

* उससे नपुंसकवेदका अन्य प्रकृतियोंमें संक्रमित होनेवाला प्रदेशपुञ्ज असंख्यातगुणा है ।

१७७. अपकर्षणसम्बन्धी द्रव्यके असंख्यातवें भागसे प्रतिबद्ध उदयसम्बन्धी द्रव्य है । परन्तु यह पर-प्रकृतियोंमें गुणसंक्रमरूप ग्रहण किया गया है, इसलिए असंख्यातगुणा हो गया है, क्योंकि गुणसंक्रमसम्बन्धी भागहारसे अपकर्षणसम्बन्धी भागहारके असंख्यातगुणे होनेका निश्चय है ।

* उससे उपशमित होनेवाला प्रदेशपुञ्ज असंख्यातगुणा है ।

§ १७८. यहाँ सूत्रमें 'नपुंसकवेदका प्रदेशपुंज' इतना अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि उस समय शेष प्रकृतियोंके उपशमित होनेवाले प्रदेशपुंजका अभाव है । गुणसंक्रमसम्बन्धी भागहारसे असंख्यातगुणे हीन भागहारके द्वारा भाजित करनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतना उपशमित होनेवाला प्रदेशपुंज है, इसलिये संक्रमित होनेवाले द्रव्यसे यह असंख्यातगुणा हो गया है । जिस प्रकार नपुंसकवेदके उपशामकका प्रथम समयमें यह अल्पबहुत्व है उसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी जानना चाहिये इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस प्रकार नपुंसकवेदके उपशम होनेके अन्तिम समयतक जानना चाहिए ।

§ १७९. यह सूत्र सुगम है । अब इस अवस्थाविशेषमें स्थितिबन्धकी प्रवृत्ति किस प्रकारकी होती है ऐसी आशंका होनेपर निर्णय करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** जाधे पाए मोहणीयस्स बंधो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो जादो ताधे पाए ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो संखेज्जगुणहीणो[1] ट्ठिदिबंधो ।**

§ १८०. पुव्वमसंखेज्जगुणहाणीए ट्ठिदिबंधपमाणो अंतरसमत्तिसमकालमेव मोहणीयस्स संखेज्जवस्सिये ट्ठिदिबंधे जादे तदो प्पहुडि अंतोमुहुत्तेण ट्ठिदिबंधं णियत्तिय जमण्णं ट्ठिदिबंधमाढवेइ तं संखेज्जगुणहीणमाढवेइ, णाण्णहा त्ति वुत्तं होइ । एवं मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधोसरणविहिमेदम्मि विसये णिद्धारिय संपहि सेसकम्माणमेदम्मि विसए ट्ठिदिबंधोसरणमेदेण विहाणेण करेदि त्ति जाणावेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** मोहणीयवज्जाणं कम्माणं णवुंसयवेदमुवसामेंतस्स ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहीणो ।**

§ १८१. कुदो एवं चेव ? तेसिमज्ज वि संखेज्जवस्सियट्ठिदिबंध-विसयस्साणुप्पत्तीदो । एत्थ ट्ठिदिबंधप्पाबहुअस्स पुव्विल्लो चेवालावो कायव्वो, तत्थ णाणत्ताभावादो । ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणं पि पुव्वं व अणुगमो कायव्वो । णवरि

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** जिस स्थलपर मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण हो गया है वहाँसे लेकर प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है ।**

§ १८०. पहले जो स्थितिबन्धका प्रमाण असंख्यात गुणहीनरूपसे चालू था, अन्तरकरण-की समाप्तिके कालमें ही उस स्थितिबन्धके संख्यात वर्षप्रमाण हो जानेपर वहाँसे लेकर अन्तर्मु-हूर्तकाल द्वारा एक स्थितिबन्धको निवृत्तकर जिस अन्य स्थितिबन्धको आरम्भ करता है उसे संख्यातगुणा हीन करके आरम्भ करता है, अन्य प्रकारसे नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इस स्थलपर मोहनीयकर्मसम्बन्धी स्थितिबन्धापसरणविधिका निर्धारणकर अब इस स्थलपर शेष कर्मोंके स्थितिबन्धापसरणको इस विधिसे करता है इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** नपुंसकवेदका उपशम करनेवाले जीवके मोहनीयकर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर अन्य स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा हीन होता है ।**

§ १८१. **शंका**—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि उनका अभी संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध नहीं प्राप्त हुआ है ।

यहाँपर स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्वका पूर्वोक्त आलाप करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है । स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका भी पहलेके समान अनुगम करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अन्तरकरण करके नपुंसकवेदकी उपशामनाका प्रारम्भ होनेपर वहाँसे लेकर मोहनीयकर्मके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होते ऐसा निश्चय करना चाहिये ।

---

१. ता०प्रतौ असंखेज्जगुणहीणो इति पाठः ।

अंतरकरणं कादूण णवुंसयवेदोवसामणाए पारद्धाए तदो प्पहुडि मोहणीयस्स ट्ठिदि-अणुभागघादा णत्थि त्ति णिच्छयो कायव्वो। कुदो एवं णव्वदे? तंत-जुत्तीदो। तं जहा—णवुंसयवेदमुवसामेमाणो पढमसमए सव्वासु ट्ठिदीसु ट्ठिदिपदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागमुवसामेदि। एवमुवसामिय जदि ट्ठिदि-अणुभागे घादेदि तो उवसामिदपदेसग्गाणं पि ट्ठिदि-अणुभागघादो पसज्जदे, उवसामिदपदेसग्गं मोत्तूण सेसाणं चेव घादणोवाया-मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराजभावादो। ण च उवसामिदस्स पदेसग्गस्स घादसंभवो अत्थि, पसत्थोवसामणाए उवसामिदस्स तस्स अप्पणो ट्ठिदि-अणुभागेहिं चलणाभावादो। एवं पढमट्ठिदिखंडय-कालब्भंतरे समए समए उवसामिदपदेसग्गस्स ट्ठिदि-अणुभागघादाइप्पसंगो अणुगंतव्वो तहा पढमट्ठिदिखंडए घादिदे बिदियट्ठिदिखंडए वि उवसामिदस्स दव्वस्स घादप्पसंगो जोजेयव्वो। एवं गंतूण पुणो णवुंसयवेदमुवसामिय इत्थिवेदमुवसामेंतो जइ णवुंसयवेदस्स ट्ठिदि-अणुभागखंडयं गेण्हइ तो उवसामणा णिरत्थिया पसज्जदे।

§ १८२. अह जइ उवसामिज्जमाणाए उवसंताए च पयडीए कंडयघादो णत्थि, सेसाणमणुवसामिज्जमाणमोहपयडीणं कंडयघादो अत्थि त्ति अब्भुवगम्मदे तो णवुंसयवेदट्ठिदीदो इत्थिवेदट्ठिदी संखेज्जगुणहीणा पसज्जदे। किं कारणं? णवुंसयवेदोवसामणद्धाए उवसामिज्जमाणस्स णवुंसयवेदस्स ट्ठिदिघादो णत्थि, इत्थिवेदो पुण

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—आगमानुसार युक्तिसे जाना जाता है।

यथा—नपुंसकवेदको उपशमानेवाला जीव प्रथम समयमें सब स्थितियोंमें स्थित प्रदेश-पुञ्जके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको उपशमाता है। इस प्रकार उपशमाकर यदि स्थिति और अनुभागका घात करता है तो उपशमाये गये प्रदेशपुंजका भी स्थितिघात और अनुभागघात प्राप्त होता है, क्योंकि उपशमाये गये प्रदेशपुंजको छोड़कर शेषके भी घातका कोई उपाय नहीं पाया जाता। और उपशमाये गये प्रदेशपुञ्जका घात सम्भव है नहीं, क्योंकि प्रशस्त उपशामना द्वारा उपशमाये गये प्रदेशपुंजका अपने स्थिति और अनुभागमें परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार प्रथम स्थितिकाण्डकके कालके भीतर समय समयमें उपशमाये गये प्रदेशपुंजके स्थितिघात और अनुभागघातका अतिप्रसंग प्राप्त होता है यह जानना चाहिए। तथा प्रथम स्थितिकाण्डकके घाते जानेपर दूसरे स्थितिकाण्डकके भी उपशमाये गये द्रव्यके घातका प्रसंग प्राप्त होता है ऐसी योजना कर लेनी चाहिये। इस प्रकार जाकर पुनः नपुंसकवेदको उपशमाकर स्त्रीवेदको उपशमानेवाला जीव यदि नपुंसकवेदके स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका घात करता है तो उपशामना निरर्थक प्रसक्त होती है।

§ १८२. अब यदि उपशमाई जानेवाली या उपशान्त हुई प्रकृतियोंका काण्डकघात नहीं होता, शेष नहीं उपशमाई जानेवाली मोहप्रकृतियोंका काण्डकघात होता है ऐसा स्वीकार करते हैं तो नपुंसकवेदकी स्थितिसे स्त्रीवेदकी स्थिति संख्यातगुणी हीन प्राप्त होती है, क्योंकि नपुंसकवेदके उपशमानेके कालके भीतर उपशमाये जानेवाले नपुंसकवेदका तो स्थितिघात होता नहीं, परन्तु स्त्रीवेद बादमें उपशमाया जाता है, इसलिये तब उसका स्थितिघात प्राप्त होता है।

पच्छा उवसामिज्जदि त्ति ताधे तस्स ट्ठिदिघादो अत्थि । एवं च संते णवुंसयवेदट्ठिदीदो इत्थिवेदट्ठिदीए पत्ताहियघादाए संखेज्जगुणहीणत्तप्पसंगादो सो दुण्णिवारो । एवमित्थि-वेदे उवसामिज्जमाणे तस्स ट्ठिदिघादो णत्थि, सत्तणोकसाय-बारसकसायट्ठिदीओ पच्छा उवसामिज्जंति त्ति तासिं पि इत्थिवेदट्ठिदीदो संखेज्जगुणहीणत्तप्पसंगो दुप्पडिसेहो । ण चेदमिच्छिज्जदे, उवसंतावत्थाए बारसकसाय-णवणोकसायाणं ट्ठिदी सरिसा चेव होदि त्ति परमगुरूवएसेण पडिसिद्धत्तादो । तम्हा अंतरकरणे णिट्ठिदे मोहणीयस्स

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ट्ठिदि-अणुभागघादा णत्थि त्ति पडिवज्जेयव्वं । अण्णं च गंथयारो उवरि मुत्तकंठमेदं भणिहिदि जहा मायावेदगस्स पढमसमए 'माया-लोहसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो दो मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणा । सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सेसाणं कम्माणं ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो त्ति ।' मोहणीयस्स पुण तत्थ ट्ठिदिखंडयपमाणं ण भणिदं, तेण णव्वदे अंतरकरणे कदे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स ट्ठिदि-अणुभागघादो णत्थि त्ति ।

और ऐसा होनेपर नपुंसकवेदकी स्थितिसे अधिक घात होनेके कारण स्त्रीवेदकी स्थितिके संख्यातगुणी हीन होनेका जो प्रसंग आता है वह दुर्निवार है। इसी प्रकार स्त्रीवेदके उपशमाते समय उसका जो स्थितिघात होता नहीं, किन्तु सात नोकषाय और बारह कषायोंकी स्थितियाँ बादमें उपशमाई जाती हैं, इसलिए उनकी भी स्थितिके स्त्रीवेदकी स्थितिसे संख्यातगुणे-हीनपनेका प्रसंग निवारण करना कठिन है। और यह इष्ट नहीं है, क्योंकि उपशान्त अवस्थामें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति सदृश ही होती है ऐसा परम गुरुके उपदेशसे सिद्ध है। इसलिए अन्तरकरण सम्पन्न होनेपर मोहनीयकर्मके स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होते ऐसा निश्चय करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि आगे ग्रन्थकार स्वयं यह बात मुक्तकण्ठ होकर कहेंगे। यथा—मायावेदकके प्रथम समयमें 'माया और लोभसंज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम दो महीना है। शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष है तथा शेष कर्मोंका स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है।' इस प्रकार यहाँपर मोह-नीयकर्मके स्थितिकाण्डकका प्रमाण नहीं कहा है, इससे ज्ञात होता है कि अन्तरकरण कर लेनेपर वहाँसे लेकर मोहनीयकर्मका स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता।

विशेषार्थ—अन्तरकरणकी क्रिया सम्पन्न होने पर प्रथम समयसे लेकर मोहनीय-कर्मका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात क्यों नहीं होता इसे स्पष्ट करते हुए जो तर्क और प्रमाण दिये गये हैं उनमें प्रथम तर्क यह दिया है कि (१) यदि अन्तरकरण क्रिया होनेके बाद नपुंसकवेदका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया जाता है तो नपुंसकवेदकी उपशमानेकी क्रिया सम्पन्न होनेके पूर्व उसके जिन प्रदेशपुञ्जोंको नहीं उपशमाया गया है उनके साथ जो प्रदेशपुञ्ज उपशमाये जा चुके हैं उनके भी स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातका प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु उपशमाये गये प्रदेश-पुञ्जका न तो स्थितिकाण्डकघात ही सम्भव है और न अनुभागकाण्डकघात ही सम्भव है, क्योंकि उनका प्रशस्त उपशामना द्वारा उपशम हुआ है। (२) उक्त विषयके समर्थनमें दूसरा यह तर्क दिया है कि यदि उपशमाई जानेवाली प्रकृतिको छोड़कर उस समय नहीं उपशमाई जाने-वाली मोह प्रकृतियोंका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया जाता है तो

§ १८३. एवमेदीए परूवणाए णवुंसयवेदमुवसामेमाणो अंतोमुहुत्तेण कालेण सव्वप्पणा णवुंसयवेदमुवसंतं करेदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो उवसामिज्ज-माणो उवसंतो ।**

§ १८४. सुगममेदं सुत्तं। णवरि उवरि 'उवसामिज्जमाणो उवसंतो' त्ति भणिदे पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जमाणो संतो कमेण उवसंतो त्ति अत्थो गहेयव्वो । एवं णवुंसयवेदमुवसामिय तदणंतरसमयप्पहुडि इत्थिवेदोवसामणमाढवेदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

*** णवुंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो ।**

§ १८५. णवुंसयवेदे उवसंते जादे तदणंतरसमए चेव इत्थिवेदस्स उवसामण-

उपशमश्रेणिमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके स्थितिबन्धमें विषमता आ जाती है जो युक्त नहीं है, क्योंकि इन कर्मोंकी उपशान्त अवस्थामें स्थिति सदृश होती है ऐसा गुरुपरम्परासे उपदेश चला आ रहा है। (२) इस प्रकार ये दो तर्क देनेके बाद इस विषयकी पुष्टि आगम प्रमाणसे भी की गई है। आगे मायवेदकके होनेवाले कार्योंका उल्लेख करते हुए जो चूर्णिसूत्र आये हैं उनमें जहाँ मोहनीयकर्मको छोड़ कर शेष कर्मोंका स्थितिबन्धके साथ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात स्वीकार किया गया है वहाँ मायासंज्वलन और लोभसंज्वलनका केवल स्थितिबन्ध तो स्वीकार किया गया है, परन्तु स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उपशम-श्रेणिमें उपशामनाविधिके प्रारम्भ होनेके समयसे लेकर बारह कषाय और नौ नोकषायोंका स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होता। चूर्णिसूत्रका उक्त वचन मूलमें उद्धृत किया ही है।

§ १८३. इस प्रकार इस प्ररूपणा द्वारा नपुंसकवेदको उपशमानेवाला जीव अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा पूरी तरहसे नपुंसकवेदका उपशम करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगे-का सूत्र आया है—

*** इस प्रकार संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर उपशमाया जाने-वाला नपुंसकवेद उपशान्त होता है।**

§ १८४. यह सूत्र सुगम है। इतनी विशेषता है कि 'उवसामिज्जमाणो उवसंतो' ऐसा कहने पर प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाया जाता हुआ क्रमसे उपशान्त होता है ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार नपुंसकवेदको उपशमा कर तदनन्तर समयसे लेकर स्त्रीवेदको उपशमानेके लिये आरम्भ करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये इस सूत्रको-कहते हैं—

*** नपुंसकवेदके उपशान्त होनेपर तदनन्तर समयमें स्त्रीवेदका उपशामक होता है।**

§ १८५. नपुंसकवेदका उपशम हो जानेपर तदनन्तर समयमें ही स्त्रीवेदको उपशमाने-

माढवेदि त्ति भणिदं होइ।

*** ताधे चेव अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च पत्थिदो।**

§ १८६. जाधे इत्थिवेदमुवसामेदुमाढत्तो ताधे चेव मोहणीयवज्जाणं कम्माणमपुव्वं ट्ठिदिखंडयमणुभागखंडयं च पुव्वाढत्तट्ठिदि-अणुभागखंडयाणं समत्ती-वसेणाढवेइ। मोहणीयस्स पुण एत्थ णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो, ट्ठिदिबंधो च पत्थिदो। एवं भणिदे णाणावरणादीणमसंखेज्जगुणहाणीए मोहणीयपयडीणं च वज्झमाणियाणं संखेज्जगुणहाणीए पुव्वट्ठिदिबंधादो अण्णो ट्ठिदिबंधो एदम्मि संधीए पारद्धो त्ति भणिदं होइ।

*** जहा णवुंसयवेदो उवसामिदो तेणेव कमेण इत्थिवेदं पि गुण-सेढीए उवसामेदि।**

§ १८७. जहा णवुंसयवेदो असंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिदो तहा चेव पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए इत्थिवेदं च उवसामेदि त्ति भणिदं होदि। णवरि इत्थिवेदोवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तत्थ जो विसेसो संभवंतओ तण्णिद्देस-विहाणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

के लिये आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** उसी समय अपूर्व स्थितिकाण्डक, अपूर्व अनुभागकाण्डक और अपूर्व स्थिति-बन्ध प्रारम्भ होता है।**

§ १८६. जिस समय स्त्रीवेदको उपशमानेके लिये आरम्भ किया उसी समय मोहनीय कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके पहले आरम्भ किये गये स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंकी समाप्ति हो जानेके कारण अपूर्व स्थितिकाण्डक और अपूर्व अनुभागकाण्डकका आरम्भ करता है। परन्तु मोहनीयकर्मका यहाँ पर स्थितिघात और अनुभागघात नहीं है, मात्र स्थितिबन्ध-को प्रारम्भ किया। ऐसा कहने पर ज्ञानावरणादि प्रकृतियोंके असंख्यात गुणहानिरूपसे और बँधनेवाली मोहनीय प्रकृतियोंका संख्यात गुणहानिरूपसे इस सन्धिमें अन्य स्थितिबन्ध प्रारंभ किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** जिस प्रकार नपुंसकवेदको उपशमाया है उसी क्रमसे स्त्रीवेदको भी गुणश्रेणि-रूपसे उपशमाता है।**

§ १८७. जिस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे नपुंसकवेदको उपशमाया है उसी प्रकार प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे स्त्रीवेदको उपशमाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदके उपशमानेके कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालके जाने पर वहाँ जो विशेष सम्भव हो उसका निर्देश करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो भवदि।**

१८८. एदेसिं तिण्हं घादिकम्माणमेत्थुद्देसे असंखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो परिहाइदूण संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो संजादो त्ति भणिदं होइ। तिण्हं अघादिकम्माणं पुण णाज्ज वि संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो होइ, घादिकम्माणं व तेसिं सुट्ठु ट्ठिदिबंधोसरणासंभवादो। एत्थेवुद्देसे तिण्हमेदेसिं घादिकम्माणमणुभागबंधविसए वि को वि विसेसो संवुत्तो त्ति जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

*** जाधे संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तस्समए चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १८९. जम्हि चेव समए तिण्हमेदासिं घादिकम्ममूलपयडीणं संखेज्जवस्सिओ ट्ठिदिबंधो पारद्धो तम्हि चेव समए णाणावरणीयस्स केवलणाणावरणवज्जाओ दंसणावरणीयस्स केवलदंसणावरणवज्जाओ अंतरायस्स सव्वाओ चेव जाओ उत्तरपयडीओ एवमेदेसिं बारसण्हं पयडीणं पुव्वं देसघादिविट्ठाणियसरूवो अणुभागबंधो सुट्ठु ओहट्टियूण एगट्ठाणियभावेण परिणदो त्ति वुत्तं होइ।

*** स्त्रीवेदके उपशमानेके कालके संख्यातवें भागप्रमाण कालके जानेपर तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होता है।**

§ १८८. इस स्थल पर इन तीन घाति कर्मोंके असंख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धको घटाकर संख्यात हजार वर्ष प्रमाण हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु तीन अघाति कर्मोंका अभी भी संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध नहीं होता है, क्योंकि घातिकर्मोंके बहुत अधिक हुए स्थितिबन्धापसरणोंके समान उन कर्मोंका बहुत अधिक स्थितिबन्धापसरण सम्भव नहीं है। इस स्थल पर इन तीन घाति कर्मोंके अनुभागबन्धके विषयमें भी कोई विशेषता हो गई है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** जिस समय संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध हुआ उसी समय इन तीन मूल प्रकृतियोंकी केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणको छोड़कर जितनी शेष उत्तर प्रकृतियाँ हैं उनका एकस्थानीय बन्ध होने लगता है।**

§ १८९. जिस समय इन तीन घाति मूल प्रकृतियोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध प्रारम्भ हुआ उसी समय ज्ञानावरणकी केवलज्ञानावरणको छोड़कर और दर्शनावरणकी केवलदर्शनावरणको छोड़कर शेष प्रकृतियाँ तथा अन्तराय कर्मकी सभी जितनी उत्तर प्रकृतियाँ हैं इन बारह उत्तर प्रकृतियोंका जो पहले देशघाति द्विस्थानीय अनुभागबन्ध होता रहा वह बहुत घटकर एकस्थानीयरूपसे परिणत हो गया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* जत्तो पाए णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तम्हि पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो ।

§ १९०. किं कारणं ? संखेज्जवस्सिए ट्ठिदिबंधे पारद्धे तत्तो परमसंखेज्जगुणहाणीए असंभवादो । णामा-गोद-वेदणीयाणं पुण णाज्ज वि संखेज्जवस्सिओ ठिदिबंधो पारभदि त्ति तेसिमसंखेज्जगुणहीणो चेव ट्ठिदिबंधो एत्थ पयट्टदि त्ति घेत्तव्वं । एवं च पयट्टमाणस्स ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुअपरूवणट्ठमिदमाह—

* तम्हि समए सव्वकम्माणमप्पाबहुअं भवदि ।

§ १९१. सुगमं ।

* तं जहा ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ १९२. सुगमं ।

* मोहणीयस्स सव्वत्थोवो ट्ठिदिबंधो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

§ १९३. सुगमत्तादो ण एत्थ किंचि वत्तव्वमत्थि । एवमित्थिवेदोवसामणद्धाए

---

* जहाँसे लेकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका जो संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध हुआ, उसके सम्पन्न होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह संख्यातगुणा हीन होता है ।

§ १९०. क्योंकि संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्धके प्रारम्भ होनेपर उसके बाद असंख्यातगुणी हानि होना असम्भव है । परन्तु नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंका अभी भी संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध प्रारम्भ नहीं करता, इसलिए उनका असंख्यात गुणाहीन ही स्थितिबन्ध यहाँ प्रवृत्त रहता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार प्रवृत्त हुए स्थितिबन्धके अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उसी समय सब कर्मोंका अल्पबहुत्व होता है ।

§ १९१. यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ १९२. यह सूत्र सुगम है ।

* मोहनीयकर्मका स्थितिबन्ध सबसे स्तोक है । उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है । उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध असंख्यातगुणा है तथा उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है ।

§ १९३. सुगम होनेसे यहाँ कुछ वक्तव्य नहीं है । इस प्रकार स्त्रीवेदकी उपशामनाके

संखेज्जदिभागे चेव एवंविहं ट्ठिदिबंधमाढविय गच्छमाणस्स पुणो वि संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिबंधेसु एदेणेव विहाणेण समइक्कंतेसु तदो इत्थिवेदोवसामणद्धा समप्पइ, ताधे चेव इत्थिवेदो सव्वोवसामणाए उवसामिदो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदो उवसामिज्जमाणो उवसामिदो ।**

§ १९४. एदं पि सुत्तं सुगमं । एवमित्थिवेदमुवसामिय तदणंतरसमए छण्णोकसाय-पुरिसवेदाणमुवसामणमाढवेदि त्ति पदुप्पायणफलमुत्तरसुत्तं—

*** इत्थिवेदे उवसंते से काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो ।**

§ १९५. सुगमं ।

*** ताधे चेव अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभागखंडयं च आगाइदं, अण्णो च ट्ठिदिबंधो पबद्धो ।**

§ १९६. एत्थ ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणि मोहणीयवज्जाणं कम्माणं अवगंतव्वाणि, मोहणीयस्स तदुभयपवुत्तीए एदम्मि विसए जुत्ति-सुत्तेहिं पडिसिद्धत्तादो । ट्ठिदिबंधो पुण सत्तण्हं पि मूलपयडीणं जाओ उत्तरपयडीओ बज्झंति तासिं सव्वासिमेव होदि त्ति दट्ठव्वं ।

संख्यातवें भागके होनेपर इस प्रकारके स्थितिबन्धका आरम्भ करके जो जीव अवस्थित है उसके फिर भी संख्यातों हजार स्थितिबन्धोंके इसी विधिसे व्यतीत होनेपर तत्पश्चात् स्त्रीवेदका उपशामनाकाल समाप्त होता है । अतः उसी समय सर्वोपशामनारूपसे स्त्रीवेद उपशमाया गया इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर उपशामित किये जानेवाले स्त्रीवेदको उपशामित किया ।**

§ १९४. यह सूत्र भी सुगम है । इस प्रकार स्त्रीवेदको उपशमाकर तदनन्तर समयमें छह नोकषायों और पुरुषवेदको उपशमानेके लिए आरम्भ करता है इस बातका कथन करनेके लिए उत्तर सूत्रको कहते हैं—

*** स्त्रीवेदके उपशान्त होनेपर तदनन्तर समयमें सात नोकषायोंका उपशामक होता है ।**

§ १९५. यह सूत्र सुगम है ।

*** उसी समय अन्य स्थितिकाण्डक और अन्य अनुभागकाण्डकको ग्रहण किया तथा अन्य स्थितिबन्ध बाँधा ।**

§ १९६. यहाँपर स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डक मोहनीयकर्मको छोड़कर अन्य कर्मोंके जानने चाहिये, क्योंकि इस स्थलपर मोहनीयकी उन दोनोंरूप प्रवृत्तिका युक्ति और सूत्र दोनों प्रकारसे निषेध है । स्थितिबन्ध तो सातों ही मूल प्रकृतियोंकी जो उत्तर प्रकृतियाँ बँधती हैं उन सभीका होता है ऐसा जानना चाहिये ।

* एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णामा-गोद-वेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो।

§ १९७. एदम्मि अवत्थंतरे तिण्हमघादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जवस्सियादो

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परिहाइदूणेक्कसराहेण संखेज्जवस्सिओ जादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ। एवमेत्थ सव्वेसिमेव कम्माणं ठिदिखंडे संखेज्जवस्सिये जादे[1] तत्थ जो ट्ठिदिबंधप्पाबहुअविही तप्परूवणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* ताधे ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुअं।

§ १९८. सुगमं।

* तं जहा।

§ १९९. एदं पि सुबोहं।

* सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो।

* णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

* णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।

---

* इस प्रकार संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर सात नोकषायोंके उपशामनाकालके संख्यातवें भागके व्यतीत होनेपर तत्पश्चात् नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीय कर्मोंका संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता है।

§ १९७. इस अवस्थाके भीतर तीन अघाति कर्मोंका स्थितिबन्ध असंख्यात वर्षसे घटकर एक बारमें संख्यात वर्षप्रमाण हो गया यह यहाँ सूत्रके अर्थका सार है। इस प्रकार यहाँपर सभी कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण हो जानेपर वहाँ जो स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्वविधि प्राप्त होती है उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* उस समय स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व।

§ १९८. यह सूत्र सुगम है।

* वह जैसे।

§ १९९. यह सूत्र भी सुबोध है।

* मोहनियकर्मका स्थितिबन्ध सबसे अल्प है।

* उससे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

* उससे नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा है।

---

१. ता. प्रतौ ट्ठिदिखंडो संखेज्जवस्सिओ जादो इति पाठः

* **वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।**

§ २००. सुगमो च एसो अप्पाबहुअपबंधो । एत्तो पाए ट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो आढविज्जदि सो सव्वेसिमेव कम्माणं संखेज्जगुणहीणो चेव, णत्थि अण्णो वियप्पो त्ति जाणावणफलमुवरिमसुत्तं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* **एदम्मि ट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो सव्वकम्माणं पि अप्पप्पणो ट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो ।**

§ २०१. गयत्थमेदं सुत्तं ।

* **एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसंता ।**

§ २०२. एवमेदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि समुपालेमाणस्स पुरिसवेदपढमट्ठिदीए चरिमसमयम्मि सत्त णोकसाया सव्वप्पणा उवसंता त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदेण सामण्णवयणेण पुरिसवेदणवकबंधसमयपबद्धाणं पि समयूणदोआवलियमेत्ताणं तत्थुवसंतभावे अइप्पसत्ते तत्थ तेसिमुवसमाभावपदुप्पायणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

* **णवरि पुरिसवेदस्स वे आवलिया बंधा समयूणा अणुवसंता ।**

§ २०३. कुदो एत्तियमेत्ताणं समयपबद्धाणमेत्थाणुवसमो चे ? चरिमावलिय-

---

* उससे वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।

§ २००. यह अल्पबहुत्वप्रबन्ध सुगम है। यहाँसे आगे स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जिस अन्य स्थितिबन्धका आरम्भ करता है वह सभी कर्मोंका संख्यातगुणा हीन ही होता है, अन्य विकल्प नहीं है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर जो अन्य स्थितिबन्ध होता है वह सभी कर्मोंका अपने-अपने स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन होता है।

§ २०१. यह सूत्र गतार्थ है।

* इस क्रमसे हजारों स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर सात नोकषाय उपशान्त हो जाते हैं।

§ २०२. इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिबन्धोंको करनेवाले जीवके पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सात नोकषाय सर्वात्मना उपशान्त हो जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इस सामान्य वचनके अनुसार पुरुषवेदके नवक बन्धसम्बन्धी एक समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंके भी वहाँ उपशान्त भावका अतिप्रसंग होनेपर वहाँ उनके उपशमका अभाव बतलानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदके एक समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं।

§ २०३. शंका—इतने समयप्रबद्धोंका यहाँपर उपशम क्यों नहीं होता ?

बद्धाणं बंधावलियाणदिक्कमादो समयूणदुचरिमावलियबद्धाणं च उवसामणावलियाए अज्ज वि पडिवुण्णत्ताभावादो। तम्मि चेव समए ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** तस्समए पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि।**

*** संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि।**

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**

§ २०४. पुव्वं संखेज्जसहस्समेत्तो एदेसिं ट्ठिदिबंधो, तत्तो संखेज्जगुणहाणीए हाइदूण सवेदचरिमसमए पुरिसवेद-चउसंजलणाणं जहाकमं सोलस-बत्तीसवस्समेत्तो जादो। सेसाणं पुण कम्माणमज्ज वि संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो चेव दट्ठव्वो त्ति भणिदं होदि।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे वे आवलियाओ सेसाओ ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो।**

§ २०५. पढम-विदियट्ठिदिपदेसग्गाणमुक्कड्डणोकड्डणावसेण परोप्परविसयसंकमो आगाल-पडिआगालो त्ति भण्णदे। विदियट्ठिदिपदेसग्गस्स पढमट्ठिदीए आगमणमागालो। पढमट्ठिदिपदेसग्गस्स विदियट्ठिदीए पडिलोमेण गमणं पडिआगालो त्ति

समाधान—क्योंकि जो अन्तिम आवलिमें बँधे हैं उनकी बन्धावलिका काल अभी व्यतीत नहीं हुआ और जो एक समय कम द्विचरम आवलिमें बँधे हैं उनकी उपशामनावलि अभी भी पूर्ण नहीं हुई है। अब उसी समय स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** उस समय पुरुषवेदका स्थितिबन्ध सोलह वर्षप्रमाण होता है।**

*** संज्वलनोंका स्थितिबन्ध बतीस वर्षप्रमाण होता है।**

*** तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है।**

§ २०४. पहले इन कर्मोंका संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता रहा। उससे संख्यातगुणी हानिरूपसे घटकर सवेद भागके अन्तिम समयमें पुरुषवेद और चार संज्वलनोंका क्रमसे सोलह वर्ष और बत्तीस वर्ष हो गया। शेष कर्मोंका तो अभी भी संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें जब दो आवलि शेष रहीं तब आगाल और प्रत्यागालोंकी व्युच्छित्ति हो गई।**

§ २०५. प्रथम और द्वितीय स्थितिके प्रदेशपुञ्जोंका उत्कर्षण और अपकर्षणवश परस्पर विषयसंक्रमको आगाल और प्रत्यागाल कहते हैं। द्वितीय स्थितिके प्रदेशपुञ्जका प्रथम स्थितिमें आना आगाल है तथा प्रथम स्थितिके प्रदेशपुञ्जका प्रतिलोमरूपसे दूसरी स्थितिमें

गहणादो। एवंविहो आगाल-पडिआगालो ताव, जाव पुरिसवेदपढमट्ठिदीए समयाहियाओ दो आवलियाओ सेसाओ त्ति। पुणो आवलि-पडिआवलियमेत्तसेसाए ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। अथवा आवलिय-पडिआवलियासु पडिवुण्णासु सेसासु आगाल-पडिआगालो होदूण पुणो से काले समयूणासु दोआवलियासु सेसासु आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो त्ति एसो एत्थ सुत्ताहिप्पायो, उप्पादाणुच्छेदमस्सियूण भावचरिमसमए चेव सुत्ते तदभावविहाणादो। एत्तो पाए पुरिसवेदस्स गुणसेढी वि णत्थि। पडिआवलियादो चेव असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा होदि त्ति दट्ठव्वं।

* अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुहदि पुरिसवेदे, कोहसंजलणे संछुहदि।

मार्गदर्शक :— आचार्य श्री सुविहिसागर जी महाराज

जाना प्रत्यागाल है ऐसा ग्रहण किया है। इस प्रकार पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक दो आवलियाँ शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। पुनः आवलि और प्रत्यावलि मात्रके शेष रहनेपर तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं यह इस सूत्रका भावार्थ है। अथवा परिपूर्ण आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागाल होकर पुनः तदनन्तर समयमें एक समय कम दो आवलि शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं यह यहाँपर उक्त सूत्रका अभिप्राय है, क्योंकि उत्पादानुच्छेद का आश्रय लेकर सद्भावके अन्तिम समयमें ही सूत्रमें उसके अभावका विधान किया है। यहाँसे लेकर पुरुषवेदकी गुणश्रेणि भी नहीं होती। प्रत्यावलिमेंसे ही असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा होती है ऐसा जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पुरुषवेदकी कितनी प्रथम स्थिति शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं इस प्रकार प्रश्न होने पर सूत्रमें तो मात्र इतना ही बतलाया है कि पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें दो आवलियाँ शेष रहने पर आगाल-प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। इस पर टीका करते हुए इस सूत्रकी दो प्रकारसे व्याख्या की गई है जिनका उल्लेख मूलमें किया ही है। प्रथम व्याख्याके अनुसार पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक दो आवलियाँ शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। जब पूरी दो आवलियाँ शेष रहती हैं तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। किन्तु दूसरी व्याख्याके अनुसार दो आवलियाँ शेष रहने तक आगाल और प्रत्यागाल होते हैं। किन्तु एक समय कम दो आवलियाँ शेष रहने पर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं। इस पर यह प्रश्न होता है कि यदि ऐसा है तो सूत्रमें यह क्यों कहा कि पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिमें जब दो आवलियाँ शेष रहती हैं तब आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं सो इसका समाधान यह है कि सूत्रमें यह कथन उत्पादानुच्छेद नयका आश्रय लेकर कहा है, क्योंकि उत्पादानुच्छेदके अनुसार विवक्षित वस्तुके सद्भावका जो अन्तिम समय है उस समयमें ही उसके अभावका प्रतिपादन किया जाता है।

* अन्तरक्रिया सम्पन्न होनेके पश्चात् छह नोकषायोंके प्रदेशपुञ्जको पुरुषवेदमें संक्रमित नहीं करता, क्रोधसंज्वलनमें संक्रमित करता है।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २०६. कुदो एस णियमो चे ? आणुपुव्वीसंकमवसेणे[1] त्ति भणामो। संपहि पुरिसवेदणवकबंधसमयपबद्धाणमवगदवेदभावेण कोहोवसामणकालब्भंतरे उवसामणविहिं परूवेमाणो इदमाह—

*** जो पढमसमयअवेदो तस्स पढमसमयअवेदस्स संतं पुरिसवेदस्स दो आवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता।**

§ २०७. चरिमसमयसवेदस्स समयूणदोआवलियमेत्ता णवकबंधसमयपबद्धा अणुवसंता त्ति पुव्वं परूविदं, एण्हिं पुण पढमसमयअवेदभावे वट्टमाणस्स पुरिसवेदसंतं णवकबंधसरूवं केत्तियमत्थि त्ति भणिदे दोआवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता त्ति णिद्दिट्ठं, सवेदचरिमावलियणवकबंधाणमणूणाहियाणं दुचरिमावलियणवकबंधाणं च दुसमयूणावलियमेत्ताणमणुवसंताणमेत्थ संभवदंसणादो।

*** जो दो आवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता तेसिं पदेसग्गमसंखेज्ज-गुणाए सेढीए उवसामिज्जदि।**

§ २०८. बंधावलियादिक्कंतणवकबंधसमयपबद्धाणमुवसामणकालो आवलियमेत्तो होइ। तत्थ समयं पडि असंखेज्जगुणा तेसिं पदेसग्गमुवसामेदि त्ति वुत्तं होइ। ण

§ २०६ **शंका**—ऐसा नियम किस कारणसे है ?

समाधान—आनुपूर्वी संक्रमके कारण यह नियम है ऐसा हम कहते हैं।

अब पुरुषवेदके नवक बन्धसम्बन्धी समयप्रबद्धोंको अवगत वेदरूपसे क्रोधसंज्वलनके उपशमानेके कालके भीतर उपशामनाविधिका कथन करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

*** जो प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी जीव है, प्रथम समयवाले उस अपगतवेदी जीवके जो नवक समयप्रबद्धका सत्त्व दो समय कम दो आवलिप्रमाण शेष है वह अभी अनुपशान्त है।**

§ २०७. अन्तिम समयवर्ती सवेदी जीवके एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं यह पहले कह आये हैं, इस समय पुनः अवेदभावके प्रथम समयमें विद्यमान जीवके नवक बन्धस्वरूप पुरुषवेदका सत्त्व कितना रहता है ऐसा पूछने पर दो समय कम दो आवलिप्रमाण बद्ध कर्म अनुपशान्त रहता है ऐसा निर्देश किया है, क्योंकि सवेद भागकी अन्तिम आवलिके न्यूनता और अधिकतासे रहित पूरा नवकबन्ध तथा द्विचरमावलिके दो समय कम आवलि प्रमाण नवकबन्ध अनुपशान्तरूपसे यहाँ पर देखे जाते हैं।

जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं उनके प्रदेशपुञ्जको असंख्यातगुणी श्रेणिके क्रमसे उपशमाता है।

§ २०८. जो नवक समयप्रबद्ध हैं उनका बन्धावलिके बाद उपशामन काल एक आवलिप्रमाण होता है। वहाँ पर प्रत्येक समयमें उनके प्रदेशपुञ्जको असंख्यातगुणी श्रेणिके क्रमसे

१. ता॰ प्रतौ चे ता (आ) णुपुव्वी-इति पाठः।

केवलं तेसिं पदेसग्गं सत्थाणे चेव उवसामेदि, किंतु[1] परपयडीए वि संकामेदि त्ति जाणावणफलो उत्तरसुत्तणिद्देसो—

*** परपयडीए पुण अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि।**

§ २०९. एत्थ परपयडीए त्ति वुत्ते कोहसंजलणपयडीए गहणं कायव्वं, तत्तो अण्णत्थ पुरिसवेदपदेसग्गस्स एदम्मि विसए संकमासंभवादो। कुदो पुण बंधुवरमे संते गुणसंकमं मोत्तूण अधापवत्तसंकमसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, उवरदबंधाणं पि तिसंजलण-पुरिसवेदपयडीणं णवकबंधस्स अधापवत्तसंकमब्भुवगमादो।

*** पढमसमयअवेदस्स संकामिज्जदि बहुअं, से काले विसेसहीणं।**

§ २१०. कुदो एवं चे? बंधावलियादिक्कंतणिरुद्धसमयपबद्धमधापवत्तभागहारेण खंडिदेयखंडं पढमसमये संकामेयूण पुणो विदियसमये तं चेव समयपबद्धं पढमसमयसंकंतोवसंतसगासंखेज्जभागपरिहीणमधापवत्तभागहारेण खंडिदूणेयखंडमेत्तं संकामेदि त्ति एदेण कारणेण समयं पडि विसेसहीणं चेव संकामिज्जमाणं पदेसग्गं

उपशमाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उनके प्रदेशपुञ्जको केवल स्वस्थानमें ही नहीं उपशमाता है, किन्तु पर प्रकृतिमें भी संक्रमित करता है यह जतलाने के लिए अगले सूत्रका निर्देश करते हैं—

*** परन्तु पर प्रकृतिमें अधःप्रवृत्त संक्रमके द्वारा संक्रमाता है।**

§ २०९. यहाँ पर 'पर प्रकृति' ऐसा कहने पर क्रोध संज्वलन प्रकृतिका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उससे अतिरिक्त प्रकृतिमें पुरुषवेदके प्रदेशपुञ्जका इस स्थल पर संक्रम नहीं हो सकता।

शंका—बन्धके उपरम हो जाने पर गुणसंक्रमको छोड़कर अधःप्रवृत्त संक्रम कैसे सम्भव है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बन्धके उपरत हो जाने पर भी तीन संज्वलन और पुरुषवेद प्रकृतियोंके नवकबन्धका अधःप्रवृत्तसंक्रम स्वीकार किया है।

*** अवेदभागके प्रथम समयमें बहुत प्रदेशपुञ्जको संक्रमाता है, तदनन्तर समयमें विशेषहीन प्रदेशपुञ्जको संक्रमाता है।**

§ २१०. **शंका**—ऐसा किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि बन्धावलिके व्यतीत होनेके बाद विवक्षित समयप्रबद्धको अधःप्रवृत्त भागहारसे भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो उसे प्रथम समयमें संक्रमित करे। पुनः दूसरे समयमें जो कि प्रथम समयमें अपने द्रव्यका असंख्यातवाँ भाग उपशान्त और संक्रमित हो गया है उससे हीन शेष बचे समयप्रबद्धको अधःप्रवृत्त भागहारके द्वारा भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो उसे संक्रमित करता है, इस प्रकार इस कारणसे प्रत्येक समयमें विशेषहीन

१. ता. प्रतौ अदिक्कंत इति पाठः।

दट्ठव्वं । एदं च एयसमयपबद्धविवक्खाए परूविदं । णाणासमयपबद्धप्पणाए चउव्विह-वड्ढि-हाणीहि संकमपवुत्तीए संभवदंसणादो त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स जाणावण-फलमुत्तरसुत्तं— मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* एस कमो एयसमयपबद्धस्स चेव ।

§ २११. अयमेदस्स भावत्थो—णाणासमयपबद्धा चउव्विहवड्ढि-हाणिपरिणद-जोगेहिं बंधावलियादिक्कंतवसेण संकमपाओग्गभावमुवढुक्कमाणा पुव्विल्लजोगाणुसारेणेव संकामिज्जंति त्ति ण तत्थ विसेसहाणीए संकमणियमो, किंतु सिया विसेसहीणं, सिया विसेसाहियं संखेज्जासंखेज्जभागेहिं, सिया संखेज्जगुणहीणं, सिया संखेज्जगुणं, सिया असंखेज्जगुणहीणं, सिया असंखेज्जगुणं च णाणासमयपबद्धणिबद्धं संकमदव्वं होइ, तण्णिबंधणजोगाणं तहाभावेणावट्ठाणादो त्ति । तम्हा णिरुद्धेयसमयपबद्धपडिबद्धं चेव पदेसग्गं विसेसहीणं होदूण संकामिज्जदि त्ति पुव्विल्लमप्पाबहुअं सुसंबद्धं ।

* पढमसमयअवेदस्स संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि । सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

§ २१२. चरिमसमयसवेदस्स ठिदिबंधो संजलणाणं संपुण्णबत्तीसवस्समेत्तो तम्मि चेव पज्जवसिदो । तदो तम्मि ट्ठिदिबंधे समत्ते पढमसमयअवेदो अण्णं ट्ठिदि-

---

ही प्रदेशपुञ्ज संक्रमित होता हुआ जानना चाहिए। यह एक समयप्रबद्धको विवक्षित कर कहा है, क्योंकि नाना समयप्रबद्धोंकी विवक्षामें चार प्रकारकी वृद्धि और हानिरूपसे संक्रमकी प्रवृत्तिकी संभावना देखी जाती है इस प्रकार इस अर्थविशेषका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* यह क्रम एक समयप्रबद्धका ही है।

§ २११. इस सूत्रका यह भावार्थ है—बन्धको प्राप्त हुए नाना समयप्रबद्ध चार प्रकार-की वृद्धि और हानिरूपसे परिणत हुए योगोंके द्वारा बन्धावलिके व्यतीत हो जाने पर संक्रमभावके योग्य होकर पूर्वके योगके अनुसार ही संक्रमित होते हैं, इसलिए वहाँ विशेष हानिरूपसे संक्रमका नियम नहीं है। किन्तु संख्यातवें और असंख्यातवें भागरूपसे कदाचित् विशेष हीन और कदाचित् विशेष अधिक तथा कदाचित् संख्यात गुणहीन और कदाचित् संख्यात गुणा तथा कदाचित् असंख्यातगुणा हीन और कदाचित् असंख्यातगुणा नाना समयप्रबद्धसम्बन्धी संक्रमद्रव्य होता है, क्योंकि उन नाना समयप्रबद्धोंके कारणभूत योगोंका उसी प्रकारसे अवस्थान होता है, इसलिए एक समयप्रबद्धसे सम्बन्धित प्रदेशपुञ्ज ही विशेष हीन होकर संक्रमित किया जाता है, इसलिए पूर्वका अल्पबहुत्व सुसम्बद्ध है।

* प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी जीवके चारों संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम बत्तीस वर्ष है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष है।

§ २१२. सवेदी जीवके अन्तिम समयमें संज्वलनोंका स्थितिबन्ध सम्पूर्ण बत्तीस वर्ष-प्रमाण होता है, क्योंकि उस स्थितिबन्धका वहीं पर्यवसान हो जाता है, इसलिए उस स्थिति-

बंधमाढवेमाणो संजलणाणं पुव्विल्लट्ठिदिबंधादो अंतोमुहुत्तूणं ट्ठिदिबंधमाढवेइ, एत्तो पाए संजलणाणं ट्ठिदिबंधोसरणमंतोमुहुत्तपमाणत्तादो। सेसाणं पुण कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणहाणीए बज्झमाणो संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो दट्ठव्वो त्ति भणिदं होइ।

*** पढमसमयअवेदो तिविहं कोहमुवसामेइ।**

§ २१३. पुरिसवेदचिराणसंतकम्मे उवसंते तण्णवकबंधं जहावुत्तेण कमेणुवसामेमाणो तदवत्थाए चेव तिविहं कोहमेत्तो प्पहुडि उवसामेदुमाढवेदि त्ति वुत्तं होइ।

*** सा चेव पोराणिया पढमट्ठिदी हवदि।**

§ २१४. जा पुव्वमंतरं करेंतेण कोधसंजलणस्स पढमट्ठिदी पुरिसवेदपढमट्ठिदीदो विसेसाहिया ठविदा सा चेव गलिदसेसयमाणा एण्हिं पि पयट्टदि त्ति घेत्तव्वा। जहा उवरि माणादीणमुवसामणाए अपुव्वा पढमट्ठिदी सवेदगद्धादो आवलियब्भहिया कीरदे ण एवमेत्थ तिविहस्स कोहस्स उवसामणट्ठमपुव्वा पढमट्ठिदी कीरदे, किंतु सा चेव चिरंतणी पढमट्ठिदी विरइदा जाव तिविहं कोहमुवसामेदि ताव पडिबंधेण विणा पयट्टदि त्ति वुत्तं होइ।

बन्धके समाप्त होनेपर अपगतवेदी जीव अवेदभागके प्रथम समयमें अन्य स्थितिबन्धका आरम्भ करता हुआ संज्वलनोंके पूर्वके स्थितिबन्धसे अन्तर्मुहूर्त कम स्थितिबन्धका आरम्भ करता है, क्योंकि यहाँसे लेकर संज्वलनोंके स्थितिबन्धका उत्तरोत्तर अपसरण अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। परन्तु शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणी हानिके क्रमसे बन्धको प्राप्त होता हुआ संख्यात हजार वर्षप्रमाण जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** प्रथम समयवर्ती अपगतवेदी जीव तीन प्रकारके क्रोधको उपशमाता है।**

§ २१३. पुरुषवेदके पुराने सत्कर्मके उपशान्त होनेपर उसके नवक बन्धको यथोक्त क्रमसे उपशमाता हुआ उस अवस्थामें ही तीन प्रकारके क्रोधको यहाँसे लेकर उपशमानेके लिए आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** इनकी वही पुरानी प्रथम स्थिति होती है।**

§ २१४. पहले अन्तर करते हुए क्रोधसंज्वलनकी जो प्रथम स्थिति पुरुषवेदकी प्रथम स्थितिसे विशेष अधिक स्थापित की थी, गलित होनेसे वहाँपर जितनी शेष बची वही यहाँपर प्रवृत्त रहती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार आगे मानादिककी उपशामना करते समय सवेदकके कालसे एक आवलि अधिक अपूर्व प्रथम स्थिति की जाती है उस प्रकार यहाँपर तीन प्रकारके क्रोधके उपशमानेके लिए अपूर्व प्रथम स्थिति नहीं की जाती, किन्तु रची गई वही पुरानी प्रथम स्थिति तीन प्रकारके क्रोधके उपशमाने तक बिना प्रतिबन्धके प्रवृत्त रहती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे संजलणाणं ठिदिबंधो विसेसहीणो ।**

§ २१५. केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तमेत्तेण ।

*** सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो ।**

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २१६. गयत्थमेदं सुत्तं । तदो एत्थ वि ट्ठिदिबंधअप्पाबहुअमणंतरपरूविदेणेव कमेणाणुगंतव्वं, विसेसाभावादो । ठिदि-अणुभागखंडयघादा वि मोहणीयवज्जाणं कम्माणं पुव्वुत्तेणेव कमेण पयट्टंति त्ति वत्तव्वं ।

*** एदेण कमेण जाधे आवलिय-पडिआवलियाओ सेसाओ कोहसंजलणस्स ताधे विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो ।**

§ २१७. एत्थावलिया त्ति वुत्ते उदयावलिया गहेयव्वा । पडिआवलिया त्ति वुत्ते उदयावलियादो बाहिरा उदयावलिया घेत्तव्वा । एत्तियमेत्तावसेसाए कोहसंजलण-पढमट्ठिदीए आगाल-पडिआगालवोच्छेदो होइ । एदं च उप्पादाणुच्छेदमस्सियूण भणिदं, दोसु आवलियासु सेसासु आगाल-पडिआगालो होदूण समयूणासु दोसु आवलियासु संतीसु आगाल-पडिआगालवोच्छेदस्स इह विवक्खियत्तादो ।

*** पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोहसंजलणस्स ।**

*** प्रत्येक स्थितिबन्धके पूर्ण होनेपर संज्वलनचतुष्कका अन्य स्थितिबन्ध विशेष हीन होता है ।**

§ २१५. **शंका**—कितना हीन होता है ?

समाधान—पूर्वके स्थितिबन्धसे अन्तर्मुहूर्त हीन होता है ।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यातगुणा हीन होता है ।**

§ २१६. यह सूत्र गतार्थ है, इसलिए यहाँपर भी स्थितिबन्धसम्बन्धी अल्पबहुत्वको पूर्वमें कहे गये क्रमके अनुसार ही जानना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है । स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात भी मोहनीय कर्मको छोड़कर शेष कर्मोंके पूर्वोक्त क्रमसे ही प्रवर्तते हैं ऐसा यहाँ कहना चाहिए ।

*** इस क्रमसे जब क्रोधसंज्वलनकी आवलि-प्रत्यावलि शेष रहती है तब द्वितीय स्थितिमेंसे आगाल और प्रथम स्थितिमेंसे प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं ।**

§ २१७. यहाँपर आवलि ऐसा कहनेपर उदयावलिको ग्रहण करना चाहिए तथा प्रत्यावलि ऐसा कहनेपर उदयावलिसे बाहरकी उदयावलिको ग्रहण करना चाहिए । क्रोध-संज्वलनकी प्रथम स्थितिके इतनी मात्र शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जाती है । यह उत्पादानुच्छेदका आश्रय लेकर कहा है, क्योंकि प्रथम स्थितिमें दो आवलियोंके शेष रहनेतक आगाल और प्रत्यागाल होकर एक समय कम दो आवलियोंके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालकी यहाँपर व्युच्छित्ति विवक्षित है ।

*** तब क्रोध संज्वलनकी प्रत्यावलिमेंसे ही उदीरणा होती है ।**

§ २१८. आगाल-पडिआगालवोच्छेदे संजादे तदो पहुडि कोहसंजलणस्स णत्थि गुणसेढिणिक्खेवो, गुणसेढिआयामस्स सव्वजहण्णस्स वि आवलियपमाणादो हेट्ठा संभवाणुवलंभादो। तदो पडिआवलियादो चेव पदेसग्गमोकड्डियूणासंखेज्जे समयपबद्धे उदीरेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थविणिच्छओ।

*** पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ठिदिउदीरणा।**

§ २१९. कुदो? एक्किस्से चेव ट्ठिदीए उदयावलियबाहिराए ओकड्डियूणुदयावलियब्भंतरं पवेसिज्जमाणाए जहण्णभावाविरोहादो। संपहि एत्थेव ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** चदुण्हं संजलणाणं ठिदिबंधो चत्तारि मासा।**

§ २२०. बत्तीसवस्सियादो पुव्वणिरुद्धट्ठिदिबंधादो कमेण परिहाइदूण मासचउक्कमेत्तो एत्थ संजलणाणं ठिदिबंधो जादो त्ति वुत्तं होइ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**

§ २२१. णाणावरणादिकम्माणं संखेज्जवस्सियादो पढमट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहाणीए संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु वि तेसिमेत्थतणट्ठिदिबंधस्स संखेज्जवस्ससहस्सपमाणत्ताविरोहादो। एत्थ ट्ठिदिबंधप्पाबहुअं पुव्वुत्तेणेव विहाणेणाणुगंतव्वं।

---

§ २१८. आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति हो जानेपर वहाँसे लेकर क्रोधसंज्वलनका गुणश्रेणिनिक्षेप नहीं होता, क्योंकि सबसे जघन्य भी गुणश्रेणि आयाम एक आवलिप्रमाण है, उससे कम उपलब्ध होना सम्भव नहीं है। इसलिए प्रत्यावलिमें से ही प्रदेशपुंजका अपकर्षण करके असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणा करता है यह यहाँ सूत्रार्थका निर्णय है।

*** प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहनेपर क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति उदीरणा होती है।**

§ २१९. क्योंकि उदयावलिके बाहर जो एक स्थिति शेष है उसमेंसे अपकर्षणकर उदयावलिमें प्रवेश करानेपर जघन्य स्थिति उदीरणा होती है, इसमें कोई विरोध नहीं है। अब यहींपर स्थितिबन्धके प्रमाणका निश्चय करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

*** तब चार संज्वलनोंका स्थितिबन्ध चार माह होता है।**

§ २२०. चार संज्वलनोंका जो पहले बत्तीस वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध होता रहा वह क्रमसे घट कर यहाँपर चार मासप्रमाण हो गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** तथा शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है।**

§ २२१. क्योंकि ज्ञानावरणादि कर्मोंके संख्यात वर्षप्रमाण प्रथम स्थितिबन्धमेंसे संख्यातगुणहानि द्वारा संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्धोंके व्यतीत हो जानेपर भी उनका यहाँपर स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है इसमें कोई विरोध नहीं है। यहाँपर स्थिति-

संपहि कोहसंजलणपढमट्ठिदीए उदयावलियं पविट्ठाए जो परूवणाविसेसो तप्परूवणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

※ पडिआवलिया उदयावलियं पविसमाणा पविट्ठा ।

§ २२२. सुगममेदं सुत्तं । णवरि पडिआवलियाए उदयावलियं पविट्ठाए आवलियमेत्ती चेव कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदी परिसिट्ठा । एसा च उच्छिट्ठावलिया णाम, एदिस्से सगसरूवेणाणुभावेणाभावादो ।

※ ताधे चेव कोहसंजलणे दोआवलियबंधे दुसमयूणे मोत्तूण सेसा तिविहकोधपदेसा उवसामिज्जमाणा उवसंता ।

§ २२३. तम्हि चेव णिरुद्धसमये कोहसंजलणस्स दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधे मोत्तूण तिविहस्स कोहस्स सेसासेसपदेसग्गं पसत्थोवसामणाए उवसंतमिदि एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ । 'उवसामिज्जमाणा उवसंता' त्ति वुत्ते पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जमाणा संता कमेण उवसंता त्ति घेत्तव्वं । जे ते दुसमयूणदोआवलियमेत्ता कोहसंजलणस्स णवकबंधा तेसिमुवसामणाए पुरिसवेदभंगो । संपहि अइक्कंतत्थविसयं किंचि परामरसं कुणमाणो इदमाह—

※ कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संछुहदि जाव कोहसंजलणस्स

बन्धका अल्पबहुत्व पूर्वोक्त विधिसे ही जानना चाहिए। अब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिके उदयावलिमें प्रविष्ट हो जानेपर जो प्ररूपणाविशेष है उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

※ प्रत्यावलि उदयावलिमें प्रवेश करती हुई प्रविष्ट हो गई ।

§ २२२. यह सूत्र सुगम है। इतनी विशेषता है कि प्रत्यावलिके उदयावलिमें प्रविष्ट हो जानेपर क्रोधसंज्वलनकी आवलिमात्र प्रथम स्थिति शेष रही। इसका नाम उच्छिष्टावलि है। इसका अपने रूपसे अनुभवन नहीं होता।

※ तभी क्रोधसंज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर शेष तीन प्रकारके क्रोधप्रदेश उपशमाये जाते हुए उपशान्त हुए ।

§ २२३. उसी विवक्षित समयमें क्रोधसंज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धको छोड़कर बाकीके सभी प्रदेशपुञ्ज प्रशस्त उपशामनारूपसे उपशान्त हो गये यह यहाँ पर सूत्रके अर्थका समुच्चय है। 'उवसामिज्जमाणा उवसंता' ऐसा कहने पर प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाये जाते हुए क्रमसे उपशान्त हुए ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। तथा जो ये क्रोधसंज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक बन्ध हैं उनके उपशामनेका भंग पुरुषवेदके समान है। अब अतिक्रान्त हुए अर्थके विषयमें कुछ परामर्श करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

※ क्रोधसंज्वलनमें दो प्रकारके क्रोधोंका तब तक संक्रमण करता है जब तक क्रोध-

पढमट्ठिदीए तिण्णि आवलियाओ सेसाओ त्ति ।

§ २२४. एत्थ दुविहो कोहो त्ति वुत्ते पच्चक्खाणापच्चक्खाणकोहाणं गहणं
कायव्वं, अण्णहासंभवादो। सो ताव कोहसंजलणे गुणसंकमेण संछुहदि जाव कोहसंजलण-
पढमट्ठिदी आवलियत्तियमेत्ता सेसा त्ति । कुदो ? एदम्मि अवत्थंतरे तत्थ तदुभय-
संकंतीए विरोहाभावादो । संकमणावलियभावेण पढमावलियं बोलाविय पुणो विदिया-
वलियाए पढमसमयप्पहुडि उवसामणावलियमेत्तेण कालेण तं दव्वमुवसामेदि । तदो
तदियावलियमुच्छिट्ठावलियभावेण छंडेदि त्ति एदेण कारणेण तिसु आवलियासु

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

सेसासु कोहसंजलणस्स दुविहस्स कोहस्स संकमो ण विरुज्झदे ।

* तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोहो
कोहसंजलणे ण संछुभदि ।

§ २२५. कोहसंजलणपढमट्ठिदीए अणंतरपरूविदाणं तिण्हमावलियाणं
पडिवुण्णाणमभावे तमुल्लंघियूण माणसंजलणम्मि दुविहं कोहं संछुभदि[2], पयारंतासं-
भवादो त्ति भणिदं होइ । एवमेदेण कमेण कोहसंजलणपढमट्ठिदिं गालेमाणस्स जाधे

संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें तीन आवलियाँ शेष रहती हैं ।

§ २२४. यहाँ पर दो प्रकारका क्रोध ऐसा कहने पर प्रत्याख्यानावरण क्रोध और
अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्य प्रकार सम्भव नहीं है । वे
दोनों क्रोधसंज्वलनमें गुणसंक्रमके द्वारा तब तक संक्रमित होते हैं जब तक क्रोधसंज्वलनकी
प्रथम स्थिति तीन आवलिप्रमाण शेष रहती है, क्योंकि इस अवस्थाके भीतर उसमें उन दोनों
के संक्रमित होनेमें विरोधका अभाव है । संक्रमणावलिरूपसे प्रथम आवलिको बिताकर पुनः
दूसरी आवलिके प्रथम समयसे उपशामनावलिप्रमाण कालके द्वारा उस द्रव्यको उपशमाता है,
इसलिए तीसरी आवलिको उच्छिष्टावलिरूपसे छोड़ देता है । इस कारणसे तीन आवलियाँ
शेष रहने तक क्रोधसंज्वलनमें दो प्रकारके क्रोधोंका संक्रम विरोधको नहीं प्राप्त होता ।

विशेषार्थ—क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिसम्बन्धी संक्रमणावलि, उपशमनावलि और
उच्छिष्टावलि इन तीन आवलियोंके अवशिष्ट रहने तक क्रोधसंज्वलनमें अप्रत्याख्यानावरण
क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम होता है । इसके बाद नहीं यह उक्त कथनका
तात्पर्य है ।

* एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहने पर वहाँसे लेकर दो प्रकारके क्रोध-
का क्रोधसंज्वलनमें संक्रम नहीं होता ।

§ २२५. क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें अनन्तर पूर्व कही गई परिपूर्ण तीन आव-
लियोंका अभाव होनेपर उसको उल्लंघन कर मानसंज्वलनमें दो प्रकारके क्रोधका संक्रम
करता है, क्योंकि दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार

१. ता. प्रतौ दुविहकोह (हो) संजलणे इति पाठः ।
२. ता. प्रतौ कोहं [ण] संछुभदि इति पाठः ।

कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदी उच्छिट्ठावलियमेत्ता सेसा ताधे कोहसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिज्जंति त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** जाधे कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणावलिया सेसा ताधे चेव कोहसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ।**

§ २२६. कुदो एत्थ उच्छिट्ठावलियाए समयूणत्तमिदि णासंकणिज्जं, तम्मि चेव समये उदयवोच्छेदवसेण पढमणिसेगट्ठिदीए माणसंजलणोदयम्मि त्थिवुक्कसंकमेण संकममाणाए तिस्से तहाभावोवलंभादो ।

*** माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च ।**

§ २२७. कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदिं समयूणुच्छिट्ठावलियवज्जं गालिय तब्बंधोदयवोच्छेदं कादूण ट्ठिदो तम्मि चेव समये माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो होइ । कधं पुण विदियट्ठिदीए समवट्ठिदस्स माणसंजलणस्स तक्काले चेव उदयसंभवो होदि त्ति आसंकाए इदमाह 'पढमट्ठिदिकारओ चेदि' विदियट्ठिदीए समवट्ठिदं माणसंजलणस्स

इस क्रमसे क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिको गलानेवाले जीवके जब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति उच्छिष्टावलिप्रमाण शेष रहती है तब क्रोधसंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न हो जाते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र आया है—

*** जब क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम एक आवलि शेष रहती है तभी क्रोधसंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न हो जाते हैं ।**

§ २२६. **शंका**—यहाँ पर उच्छिष्टावलिमें एक समय कम किस कारणसे किया ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उसी समय उदयकी व्युच्छित्ति हो जानेके कारण प्रथम निषेकस्थितिके मानसंज्वलनके उदयमें स्तिवुक संक्रमके द्वारा संक्रमित हो जाने पर उसकी उस प्रकारसे उपलब्धि होती है ।

विशेषार्थ—जो क्रोधसंज्वलनके उदयका अन्तिम समय है उसके तदनन्तर समयमें उसकी उदयावलिका अधस्तन प्रथम निषेक मानसंज्वलनमें स्तिवुकसंक्रमके द्वारा संक्रमित हुए रहनेसे उसमेंसे एक निषेकके कम हो जानेके कारण यहाँ पर उच्छिष्टावलिमेंसे एक समय कम किया ।

*** तथा तभी वह मानसंज्वलनका प्रथम समय वेदक और प्रथम समय कारक होता है ।**

§ २२७. एक समय कम उच्छिष्टावलिके सिवाय क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिको गलाकर तथा उसके बन्ध और उदयकी व्युच्छित्ति करके स्थित हुआ जीव उसी समय मानसंज्वलनका प्रथम समय वेदक होता है ।

शंका—द्वितीय स्थितिमें स्थित मानसंज्वलनका उसी समय उदय कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी शंका होने पर 'प्रथम स्थितिका करनेवाला' होता है' यह वचन कहा है । द्वितीय स्थितिमें स्थित मानसंज्वलनके प्रदेशपुञ्जको अपकर्षितकर उदयादि गुणश्रेणि-

पदेसग्गमोकड्डियूणुदयादिगुणसेढीए णिक्खेवं कुणमाणो ताधे चेव पढमट्ठिदिकारगो होंतो माणवेदगो होदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठ-मुत्तरं पबंधमाह—

*** पढमट्ठिदिं करेमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्ज-गुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव पढमट्ठिदिचरिमसमओ त्ति।**

§ २२८. विदियट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डियूण माणसंजलणस्स पढमट्ठिदिं कुणमाणो एदेण विण्णासेण करेदि त्ति वुत्तं होइ। एत्थ पढमट्ठिदिदीहत्तमंतोमुहुत्तपमाणं होदूण माणवेदगद्धादो आवलियब्भहियं होदि त्ति घेत्तव्वं। एवं पढमट्ठिदिम्मि तक्कालोकड्डिद-सव्वदव्वस्सासंखेज्जभागमेत्तदव्वं ट्ठिदिं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए णिसिंचिय पुणो सेसदव्वं विदियट्ठिदीए कधं णिसिंचदि त्ति आसंकाए सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं, तदो विसेस-हीणं चेव।**

§ २२९. कुदो ताव विदियट्ठिदीए आदिट्ठिदिम्मि असंखेज्जगुणहीणं णिसिंचदि त्ति वुत्ते वुच्चदे—पढमट्ठिदीए चरिमणिसेयम्मि गुणसेढिसीसयभावेणावट्ठिदम्मि असं-खेज्जा समयपबद्धा णिसित्ता। संपहि विदियट्ठिदीए आदिमट्ठिदिम्मि णिसिंचमाण-

रूपसे निक्षेप करता हुआ उसी समय प्रथम स्थितिका करनेवाला होकर मानवेदक होता है यह इस सूत्रका भावार्थ है। अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** प्रथम स्थितिको करता हुआ उदयमें अल्प प्रदेशपुञ्जको देता है। तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है। इस प्रकार असंख्यातगुणे श्रेणिक्रमसे प्रथम स्थितिके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक देता है।**

§ २२८. द्वितीय स्थितिके प्रदेशपुञ्जको अपकर्षित कर मानसंज्वलनकी प्रथम स्थितिको करता हुआ इस रचनाके अनुसार करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ पर प्रथम स्थितिकी लम्बाई अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होकर मानसंज्वलनके वेदककालसे एक आवलिप्रमाण अधिक होती है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्रथम स्थितिमें तत्काल अपकर्षित किये गये सर्व द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको प्रत्येक स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातगुणे श्रेणिरूपसे सिंचित कर पुनः शेष द्रव्यको दूसरी स्थितिमें किस प्रकार सिंचित करता है ऐसी आशंका होने पर आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** द्वितीय स्थितिकी जो आदि स्थिति है उसमें असंख्यातगुणे हीन प्रदेशपुंजका सिंचन करता है। उससे आगे विशेष हीन प्रदेशपुञ्जका ही सिंचन करता है।**

§ २२९. द्वितीय स्थितिकी आदि स्थितिमें किस कारणसे असंख्यातगुणे हीन प्रदेश-पुञ्जका सिंचन करता है ऐसा कहनेपर कहते हैं—क्योंकि प्रथम स्थितिके गुणश्रेणिशीर्षरूपसे अवस्थित अन्तिम निषेकमें असंख्यात समयप्रबद्ध निक्षिप्त करता है। अब द्वितीय स्थितिमें

दव्वपमाणमेगसमयपबद्धासंखेज्जभागमेत्तं चेव होइ, तक्कालोकड्डिददव्वस्स असंखेज्जाणं भागाणं दिवड्डगुणहाणिपडिभागेण लद्धेगभागपमाणत्तादो। तम्हा सिद्धमेदस्सासंखेज्ज-गुणहीणत्तं। एत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिक्खिवदि जाव चरिमट्ठिदि-मइच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति, तत्थ पयारंतरासंभवादो। एवं चेव माणवेदगस्स बिदियादिसमएसु वि पढम-बिदियट्ठिदीसु पदेसविण्णासक्कमो दट्ठव्वो। णवरि समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गमोकड्डियूण गलिदसेसायामेण उदयादिगुणसेढि-णिक्खेवं करेदि त्ति वत्तव्वं।

*** जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाये माणस्स तिविहस्स उवसामगो।**

§ २३०. कोहसंजलणोवसामणाणंतरं जहावसरपत्तस्स तिविहस्स माणस्स आवुत्तकिरियाए उवसामगो होदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। संपहि एत्थेवुद्देसे ट्ठिदिबंधपमाणा-वहारणट्ठमुवरिमसुत्तावयारो—

*** ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**

§ २३१. अणंतराइक्कंतहेट्ठिमट्ठिदिबंधो संजलणाणं चत्तारि मासा पडिवुण्णा त्ति

आदिकी स्थितिमें निक्षिप्त किये जानेवाले द्रव्यका प्रमाण एक समयप्रबद्धके असंख्यातवें भाग-प्रमाण ही होता है, क्योंकि वह उस समय जितने द्रव्यका अपकर्षण होता है उसे डेढ़ गुण-हानिसे भाजित करने पर असंख्यात बहुभागोंके अतिरिक्त जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण होता है। इसलिये यह असंख्यातगुणा हीन होता है यह सिद्ध हुआ। इससे ऊपर सर्वत्र अति-स्थापनावलिप्रमाण स्थितिको छोड़कर अन्तिम स्थिति तक विशेष हीन द्रव्यको ही निक्षिप्त करता है, क्योंकि वहाँ अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है। इसी प्रकार मानवेदकके द्विती-यादि समयोंमें भी प्रथम और द्वितीय स्थितियोंमें प्रदेशोंके विन्यासका क्रम जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण कर उदयादि गुणश्रेणिका जितना आयाम गलित होता जाय उससे शेष रहनेवाले उसके आयाममें निक्षेप करता है ऐसा कहना चाहिए।

*** जिस समय क्रोधसंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न होते हैं उसी समय तीन प्रकारके मानका उपशामक होता है।**

§ २३०. क्रोधसंज्वलनके उपशमाये जानेके अनन्तर यथावसर प्राप्त तीन प्रकारके मानका आयुक्त किया द्वारा उपशामक होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी स्थलपर स्थितिबन्धके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** उस समय तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास होता है और शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्ष होता है।**

§ २३१. अनन्तर पूर्व संज्वलनोंका स्थितिबन्ध पूरा चार माह कह आये हैं। परन्तु

वुत्तं। एण्हिं पुण तिण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तूणमासचउक्कमेत्तो होइ, एदम्मि विसए संजलणाणं ट्ठिदिबंधोसरणस्स अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो। सेसकम्माणं पुण ट्ठिदिबंधो संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो होदूण समणंतरहेट्ठिमट्ठिदिबंधादो संखेज्जगुणहीणो समारद्धो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थविणिच्छयो। ठिदिबंधप्पाबहुअमेत्थ पुव्वुत्तेणेव विहाणेणाणुगंतव्वं। एवं तिविहस्स माणस्स उवसामणमाढविय समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गमुवसामेमाणस्स संखेज्जसहस्समेत्तेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए झीयमाणाए थोवावसेसाए जो किरियाभेदो तप्पदुप्पायणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजलणे ण संछुब्भदि।**

§ २३२. गयत्थमेदं सुत्तं, कोहसंजलणपरूवणाए पवंचियत्तादो। संपहि एत्तो पुणो वि समयूणावलियमेत्तं गालिय दोआवलियमेत्तिं पढमट्ठिदिं धरेदूणावट्ठिदस्स आगाल-पडिआगालवोच्छेदविहाणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो।**

§ २३३. का पडिआवलिया णाम? उदयावलियादो उवरिम जा बिदियावलिया सा पडियावलिया त्ति भण्णदे। सेसं सुगमं। एत्तो पुणो वि समयूणावलियं गालिय

यहाँपर तीन संज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम चार मास होता है, क्योंकि इस स्थल पर संज्वलनोंके बन्धापसरणका प्रमाण अन्तर्मुहूर्तमात्र होता है। परन्तु शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होकर अनन्तर पूर्वके स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा हीन आरम्भ करता है यह यहाँ सूत्रके अर्थका निश्चय है। यहाँ पर स्थितिबन्धका अल्पबहुत्व पूर्वोक्त विधिसे ही जानना चाहिए। इस प्रकार तीन प्रकारके मानके उपशमानेका आरम्भ करके प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे प्रदेशपुञ्जको उपशमानेवाले जीवके संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके जानेपर क्षीण होती हुई मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिके थोड़ी शेष रहनेपर जो क्रियाभेद होता है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** मानसंज्वलनकी प्रथम स्थितिके एक समय कम तीन आवलिप्रमाण शेष रहनेपर दो प्रकारके मानको मानसंज्वलनमें संक्रान्त नहीं करता है।**

§ २३२. यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनके कथनके समय इसका विस्तारसे विवेचन कर आये हैं। अब इससे आगे फिर भी एक समय कम एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको गलाकर दो आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको धारणकर स्थित हुए जीवके आगाल और प्रत्यागालकी व्युच्छित्तिका विधान करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं।**

§ २३३. **शंका**—प्रत्यावलि किसे कहते हैं?

समाधान—उदयावलिके ऊपरकी जो दूसरी आवलि है उसे प्रत्यावलि कहते हैं।

शेष कथन सुगम है। इससे आगे फिर भी एक समय कम एक आवलिप्रमाण गला-

समयाहियावलियमेत्तपढमट्ठिदिं धरेदूणावट्ठिदस्स जो परूवणाभेदो तप्पदुप्पायणफलो उत्तरसुत्तणिद्देसो—

*** पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे माणसंजलणस्स दोआवलियसमयूणबंधे मोत्तूण सेसं तिविहस्स माणस्स पदेससंतकम्मं चरिमसमयउवसंतं ।**

§ २३४. एदम्मि अवत्थाविसेसे तिविहस्स माणस्स ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंतकम्मं सव्वं पि जहाणिद्दिट्ठपमाणमाणसंजलणणवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं सव्वोवसामणाए चरिमसमयोवसंतं जादमिदि वुत्तं होइ, जहाकममुवसामिज्जमाणस्स तस्स ताधे णिरवसेसमुवसंतभावेण परिणमणदंसणादो । एत्थ उच्छिट्ठावलियमप्पहाणं कादूण माणसंजलणस्स समयूणदोआवलियबंधे मोत्तूणे त्ति सुत्ते णिद्दिट्ठं । एत्थेव समए माणसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा च दट्ठव्वा । संपहि एत्थतणट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

*** ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो ।**

§ २३५. सुगमं ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।**

कर एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण प्रथम स्थितिको धरकर स्थित हुए जीवके विषयमें जो प्ररूपणाभेद है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

*** प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहनेपर मानसंज्वलनके एक समय कम दो आवलिप्रमाण समयप्रबद्धोंको छोड़कर तीन प्रकारके मानका शेष प्रदेशसत्कर्म अन्तिम समयमें उपशान्त हो जाता है ।**

§ २३४. इस अवस्थाविशेषमें मानसंज्वलनके यथा निर्दिष्ट प्रमाणवाले नवकबन्धकी उच्छिष्टावलिको छोड़कर तीन प्रकारके मानकी सभी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशसत्कर्म सर्वोपशामनारूपसे अन्तिम समयमें उपशान्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि यथाक्रम उपशमाये जानेवाले उसका उस समय निरवशेष उपशान्तरूपसे परिणमन देखा जाता है । यहाँ पर उच्छिष्टावलिको गौणकर मानसंज्वलनके एक समय कम दो आवलिप्रमाण बन्धको छोड़कर ऐसा सूत्रमें निर्देश किया है । तथा इसी समय मानसंज्वलनकी जघन्य स्थिति-उदीरणा जाननी चाहिए । अब यहाँ पर स्थितिबन्धके प्रमाणका निश्चय करनेके लिए आगेका सूत्र आया है—

*** उस समय मान, माया और लोभ संज्वलनका स्थितिबन्ध दो माहप्रमाण होता है ।**

§ २३५. यह सूत्र सुगम है ।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मार्गदर्शक :– आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २३६. गयत्थमेदं सुत्तं। एदम्मि चेव समए माणसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा, उप्पादाणुच्छेदमस्सियूण तदुववत्तीदो।

*** तदो से काले मायासंजलणमोकड्डियूण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि।**

§ २३७. तदो माणवेदगचरिमसमयादो से काले समणंतरसमए मायासंजलणपदेसग्गमोकड्डियूण उदयादिगुणसेढिकमेण णिक्खिवमाणो मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तायाममुप्पादिय मायावेदगो होदि त्ति। एत्थ मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिदीहत्तमावलियब्भहियसगवेदगद्धामेत्तमिदि गहेयव्वं।

*** ताधे पाये तिविहाए मायाए उवसामगो।**

§ २३८. गयत्थमेदं सुत्तं। संपहि एदम्मि चेव मायावेदगपढमसमये ट्ठिदिबंधपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो दो मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया।**

§ २३९. अणंतराइक्कंतदोमासमेत्तट्ठिदिबंधादो अंतोमुहुत्तमेत्तमोसरियूण दोण्हं संजलणाणमेण्हिं ट्ठिदिबंधमाढवेदि त्ति वुत्तं होइ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।**

§ २४०. अवगयत्थमेदं सुत्तं।

---

§ २३६. यह सूत्र गतार्थ है। इसी समय मानसंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि उत्पादानुच्छेदका आलम्बनकर ऐसा बन जाता है।

*** इसके एक समय बाद मायासंज्वलनका अपकर्षणकर उसकी प्रथम स्थिति करता है।**

§ २३७. मानवेदकके अन्तिम समयके बाद तदनन्तर समयमें मायासंज्वलनके प्रदेशपुञ्जका अपकर्षणकर तथा उदयादि गुणश्रेणिरूपसे उसका निक्षेप करता हुआ मायासंज्वलनकी प्रथम स्थितिको अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्पन्न करके मायासंज्वलनका वेदक होता है। यहाँपर मायासंज्वलनकी प्रथम स्थितिकी लम्बाई एक आवलि अधिक अपने वेदक कालप्रमाण होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** वहाँसे लेकर यह तीन प्रकारकी मायाका उपशामक होता है।**

§ २३८. यह सूत्र गतार्थ है। अब इसी मायावेदकके प्रथम समयमें स्थितिबन्धके प्रमाणका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** माया और लोभसंज्वलनोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम दो माहप्रमाण होता है।**

§ २३९. अनन्तर पूर्व व्यतीत हुए दो माहप्रमाण स्थितिबन्धसे अन्तर्मुहूर्त घटकर इस समय दो संज्वलनोंका स्थितिबन्ध आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है।**

§ २४०. इस सूत्रका अर्थ अवगत है।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ।**

§ २४१. एत्थ सेसकम्मणिद्देसेण अंतरकरणसमत्तीदो प्पहुडि मोहणीयस्स ट्ठिदिखंडयासंभवो जाणाविदो, मोहणीयवज्जाणमिह सेसभावेण विवक्खियत्तादो। एवमणुभागखंडयस्स वि मोहणीयवज्जेसु कम्मेसु अणंतगुणहाणीए पवुत्ती अणुगंतव्वा, सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो। संपहि माणसंजलणुच्छिट्ठावलियाए समयूणावलियमेत्तगोवुच्छाणं कत्थ कधं वा विवागो होदि त्ति आसंकाए उत्तरसुत्तमाह—

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** जं तं माणसंतकम्ममुदयावलियाए समयूणाए तं मायाए त्थिवुकसंकमेण उदए विपच्चिहिदि ।**

§ २४२. जं तं चरिमसमए माणवेदगेण माणसंतकम्ममुच्छिट्ठावलियाए परिसेसिदं तमिदाणिं मायासंजलणसरूवेण त्थिवुक्कसंकमेण उदये विपच्चदि त्ति भणिदं होइ। को त्थिवुक्कसंकमो णाम ? उदयसरूवेण समट्ठिदीए जो संकमो सो त्थिवुक्कसंकमो त्ति भण्णदे। एसो त्थिवुक्कसंकमेण उच्छिट्ठावलियाए विवागकमो कोहसंजलणस्स वि जोजेयव्वो। संपहि माणसंजलणस्स दुसमयूणदोआवलियमेत्ते णवकबंधसमयपबद्धाणमणुवसंताणं मायावेदगकालब्भंतरे उवसामणकमजाणावणट्ठमुत्तरसुत्तणिद्देसो—

*** तथा शेष कर्मोंका स्थितिकाण्डक पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ २४१. यहाँपर शेष कर्म ऐसा निर्देश करनेसे अन्तरकरणकी समाप्तिके समयसे लेकर मोहनीयकर्मका स्थितिकाण्डक असम्भव है इस बातका ज्ञान कराया है, क्योंकि मोहनीय कर्मके अतिरिक्त कर्म यहाँपर 'शेष कर्म' पद द्वारा विवक्षित किये गये हैं। इसी प्रकार मोहनीयकर्मसे अतिरिक्त कर्मोंके अनुभागकाण्डककी भी अनन्तगुणी हानिरूपसे प्रवृत्ति जाननी चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है। अब मानसंज्वलनसम्बन्धी उच्छिष्टावलिके एक समय कम आवलिप्रमाण गोपुच्छोंका कहाँपर किस प्रकार विपाक होता है ऐसी आशंका होनेपर आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** उस समय मान संज्वलनका जो एक समय कम उदयावलिप्रमाण सत्कर्म शेष रहा वह स्तिवुकसंक्रमके द्वारा मायाके उदयमें विपाकको प्राप्त होगा ।**

§ २४२. मानवेदकने अपने अन्तिम समयमें जो उच्छिष्टावलिप्रमाण मानसत्कर्म शेष रखा वह इस समय स्तिवुकसंक्रमके द्वारा मायासंज्वलनरूपसे उसके उदयमें विपाकको प्राप्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—स्तिवुकसंक्रम किसे कहते हैं ?

समाधान—उदयरूपसे समान स्थितिमें जो संक्रम होता है उसे स्तिवुकसंक्रम कहते हैं।

यह स्तिवुकसंक्रमके द्वारा उच्छिष्टावलिका यह विपाकक्रम क्रोधसंज्वलनका भी लगा लेना चाहिये। अब मानसंज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण अनुपशान्त नवक समयप्रबद्धोंके मायासंज्वलनके वेदककालके भीतर उपशमानेके क्रमका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

*** जे माणसंजलणस्स दोण्हमावलियाणं दुसमयूणाणं समयपबद्धा अणुवसंता ते गुणसेढीए उवसामिज्जमाणा दोहिं आवलियाहिं दुसमयूणाहिं उवसामिज्जिहिंति ।**

§ २४३. एत्थ मायावेदगपढमसमए पुव्वपरूविदाणं समयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधसमयपबद्धाणमादिमो समयपबद्धो णिल्लेविज्जदि त्ति तं मोत्तूण अवसेसा दुसमयूणा दोआवलियमेत्ता चेव णवकबंधसमयपबद्धा सुत्तणिद्दिट्ठा ते च समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जमाणा मायवेदगकालब्भंतरे समयूणदोआवलियमेत्तकालेण णिरवसेसमुवसामिज्जंति, तत्थ समए समए एक्केक्कस्स समयपबद्धस्स उवसामणकिरियाए परिसमत्तिदंसणादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** जं पदेसग्गं मायाए संकमदि तं विसेसहीणाए सेढीए संकमदि ।**

§ २४४. एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा पुरिसवेदणवकबंधसंकमणाए पडिबद्धसुत्तस्स वुत्तो तहा परूवेयव्वो, विसेसाभावादो ।

*** एसा परूवणा मायाए पढमसमयउवसामगस्स ।**

§ २४५. सुगमं । एवमेदीए परूवणाए मायासंजलणमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेमाणस्स बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु मायासंजलणपढमट्ठिदीए समयूणा-

---

*** मान संज्वलनके दो समय कम दो आवलिप्रमाण जो अनुपशान्त समयप्रबद्ध हैं वे गुणश्रेणिद्वारा उपशमाये जाते हुए दो समय कम दो आवलिप्रमाण काल द्वारा उपशमाये जावेंगे ।**

§ २४३. यहाँपर मायावेदकके प्रथम समयमें पूर्वमें कहे गये एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धके समयप्रबद्धोंका आदिका समयप्रबद्ध निर्लेप होता है, इसलिए उसे छोड़कर सूत्रमें निर्दिष्ट जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध समयप्रबद्ध हैं वे प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाये जाते हुए मायावेदकके कालके भीतर एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालके द्वारा पूरी तरहसे उपशमाये जाते हैं, क्योंकि यहाँपर प्रत्येक समयमें एक-एक समयप्रबद्धके उपशामन क्रियाकी समाप्ति देखी जाती है ।

*** जो प्रदेशपुञ्ज मायासंज्वलनमें संक्रमण करता है वह विशेष हीन श्रेणिक्रमसे संक्रमण करता है ।**

§ २४४. पुरुषवेदके नवकबन्धके संक्रमणसे सम्बन्ध रखनेवाले सूत्रका अर्थ जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिए, क्योंकि उसके कथनसे इसके कथनमें कोई अन्तर नहीं है ।

*** मायाकषायके प्रथम समयमें उपशामककी यह प्ररूपणा है ।**

§ २४५. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार इस प्ररूपणा द्वारा माया संज्वलनके असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उपशमाये जानेवाले जीवके बहुत हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत

वलियमेत्तसेसाए जो अत्थविसेसो तप्परूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** एत्तो ट्ठिदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि, तदो मायाए पढम-ट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहा माया मायासंजलणे ण संछुहदि, लोहसंजलणे च संछुहदि ।**

§ २४६. एत्थ कारणं पुव्वं व परूवेयव्वं ।

*** पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो ।**

§ २४७. सुगमं ।

*** समयाहियाए आवलियाए सेसाए मायाए चरिमसमयउवसामगो मोत्तूण दोआवलियबंधे समयूणे ।**

§ २४८. एदं पि सुत्तं सुगमं । संपहि एदम्मि संधिविसेसे वट्टमाणस्स चरिम-समयमायावेदगस्स ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** ताधे माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो ।**

§ २४९. सुगमं ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि ।**

होनेपर मायासंज्वलनकी प्रथम स्थितिके एक समय कम तीन आवलिप्रमाण शेष रहनेपर जो अर्थ विशेष होता है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** इसके बाद बहुत हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत होते हैं, तब मायासंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलियोंके शेष रहनेपर दो प्रकारकी मायाको मायासंज्वलनमें संक्रान्त नहीं करता है, लोभसंज्वलनमें संक्रान्त करता है ।**

§ २४६. यहाँपर कारणका पहलेके समान कथन करना चाहिये ।

*** प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न होते हैं ।**

§ २४७. यह सूत्र सुगम है ?

*** एक समय अधिक एक आवलिकालके शेष रहनेपर एक समय कम दो आवलि-प्रमाण नवकबन्धको छोड़कर तीन प्रकारकी मायाका अन्तिम समयवर्ती होकर उप-शामक होता है ।**

§ २४८. यह सूत्र भी सुगम है । अब इस सन्धिविशेषमें विद्यमान अन्तिम समयवर्ती मायावेदकके स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** उस समय माया और लोभसंज्वलनका स्थितिबन्ध एक मास होता है ।**

§ २४९. यह सूत्र सुगम है ।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होता है ।**

§ २५०. सुगमं ।

*** तदो से काले मायासंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ।**

§ २५१. अणुप्पादाणुच्छेदमस्सियूणेदं वुत्तं, उप्पादाणुच्छेदविवक्खाए पुव्विल्ल-समए चेव तदुभयवोच्छेदविहाणोववत्तीदो । एत्तो पाए लोभसंजलणं वेदेमाणो तिविहं लोभमुवसामेदुमाढवेइ । तत्थ मायासंजलणुच्छिट्ठावलियाए त्थिवुक्कसंकमेण लोभसंजल-णम्मि विवागो होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं—

*** मायासंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणा आवलिया सेसा त्थिवुक्क-संकमेण लोभे विपच्चिहिदि ।**

§ २५२. गयत्थमेदं सुत्तं ।

*** ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डियूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि ।**

§ २५३. तक्काले चेव विदियट्ठिदीदो लोहसंजलणपदेसग्गमोकड्डियूण उदयादि-
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
गुणसेढीए णिक्खिवमाणो अंतोमुहुत्तमेत्तिं लोहसंजलणस्स पढमट्ठिदिं समुप्पादिय वेदेदि त्ति भणिदं होदि । संपहि एदिस्से लोभसंजलणपढमट्ठिदीए दीहत्तमेत्तियं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** एत्तो पाए जा लोभवेदगद्धा होदि तिस्से लोभवेदगद्धाए वेत्ति-भागा एत्तीयमेत्ती लोभस्स पढमट्ठिदी कदा ।**

---

§ २५०. यह सूत्र सुगम है ।

*** उसके एक समय बाद मायासंज्वलनके बन्ध और उदय व्युच्छिन्न होते हैं ।**

§ २५१. अनुत्पादानुच्छेदका आश्रय लेकर यह सूत्र कहा है, क्योंकि उत्पादानुच्छेदकी विवक्षामें अनन्तर पूर्वके समयमें ही इन दोनोंके व्युच्छित्तिका कथन बन जाता है । यहाँसे लेकर लोभसंज्वलनका वेदन करता हुआ तीन प्रकारके लोभको उपशमानेके लिए आरम्भ करता है । वहाँपर मायासंज्वलनकी उच्छिष्टावलिका स्तिवुकसंक्रमके द्वारा लोभसंज्वलनमें विपाक होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** मायासंज्वलनकी प्रथम स्थितिमें जो एक समय कम एक आवलि शेष है वह स्तिवुकसंक्रमके द्वारा लोभसंज्वलनमें विपाकको प्राप्त होगी ।**

§ २५२. यह सूत्र गतार्थ है ।

*** उसी समय लोभसंज्वलनका अपकर्षणकर लोभकी प्रथम स्थिति करता है ।**

§ २५३. उसी समय द्वितीय स्थितिसे लोभसंज्वलनके प्रदेशपुञ्जका अपकर्षणकर उदयादि गुणश्रेणिरूपसे निक्षेप करता हुआ लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थितिको अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित कर वेदन करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थितिकी लम्बाई इतनी होती है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** यहाँसे लेकर जो लोभ वेदककाल है उस लोभवेदक कालके दो त्रिभाग प्रमाण लोभकी प्रथम स्थिति की ।**

§ २५४. एददुक्तं भवति—एत्तो प्पहुडि जा लोभवेदगद्धा होइ सुहुमसांपराइय-चरिमसमयपज्जंता तं लोभवेदगद्धं तिण्णि भागे कादूण तत्थ सादिरेयवेत्तिभागमेत्ती लोभसंजलणस्स पढमट्ठिदी एण्हिं कदा त्ति। किं कारणं ? एत्तो उवरिमासेसलोभवेद-गद्धाए देसूणतिभागमेत्ती सुहुमलोभवेदगद्धा होदि। तं मोत्तूण तत्तो सादिरेयदुगुण-मेत्तबादरलोभवेदगद्धमावलियमब्भहियं कादूण बादरसांपराइओ पढमट्ठिदिं करेदि त्ति। एदेण कारणेण सव्विस्से लोभवेदगद्धाए सादिरेयवेत्तिभागमेत्ती लोभस्स पढमट्ठिदी एसा घेत्तव्वा। एवमेत्तियमेत्तिं पढमट्ठिदिं कादूण तिविहं लोभमुवसामेमाणस्स पढम-समए लोभसंजलणादीणं ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो मासो अंतोमुहुत्तेण ऊणो।**

§ २५५. चरिमसमयमायावेदगस्स ट्ठिदिबंधो मासो पडिवुण्णो, तत्तो अंतोमुहुत्तेण ओसरिदूण लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधमेण्हिमाढवेदि त्ति वुत्तं होइ।

*** सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि।**

§ २५६. णाणावरणादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो पुव्विल्लट्ठिदिबंधादो संखेज्ज-गुणहाणीए पयट्टमाणो अज्ज वि संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो चेव, संखेज्जवस्ससहस्स-वियप्पाणमणेयभेयभिण्णत्तादो त्ति भणिदं होदि। एत्थ णाणावरणादिकम्माणं ट्ठिदि-

---

§ २५४. इसका यह तात्पर्य है—यहाँसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समय पर्यन्त जो लोभवेदक काल है उस लोभवेदक कालके तीन भाग करके उनमेंसे साधिक दो त्रिभागप्रमाण लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थिति इस समय की, क्योंकि यहाँसे उपरिम समस्त लोभ वेदक कालके कुछ कम तीसरे भागप्रमाण सूक्ष्म लोभवेदक काल होता है। उसे छोड़कर उससे साधिक दूने बादर लोभ वेदक कालको एक आवलिप्रमाण अधिक करके बादर साम्परायिक जीव प्रथम स्थिति करता है। इस कारणसे पूरा लोभ वेदककाल साधिक दो त्रिभागप्रमाण लोभकी यह प्रथम स्थिति जाननी चाहिए। इस प्रकार इतनी प्रथम स्थिति करके तीन प्रकारके लोभको उपशमानेवाले जीवके प्रथम समयमें लोभ-संज्वलनादिकके स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये आगेका सूत्रप्रबन्ध कहते हैं—

*** तब लोभसंज्वलनका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तकम एक मास होता है।**

§ २५५. अन्तिम समयवर्ती मायावेदकका स्थितिबन्ध पूरा एक मास होता है, उससे अन्तर्मुहूर्त घटाकर इस समय लोभसंज्वलनके स्थितिबन्धको आरम्भ करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात वर्षप्रमाण होता है।**

§ २५६. परन्तु ज्ञानावरणादि कर्मोंका स्थितिबन्ध पूर्वके स्थितिबन्धसे संख्यातगुणी हानिरूपसे प्रवृत्त होता हुआ अभी भी संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही होता है, क्योंकि संख्यात हजार वर्षोंके अनेक भेद पाये जाते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ पर ज्ञाना-

अणुभागखंडयपमाणं पि पुव्वुत्तेण विहिणा अणुगंतव्वं । एवमेदेण कमेणाढविय तिविहं लोभमुवसामेमाणस्स संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णिरुद्धपढमट्ठिदीए अद्धमेत्तं गालिय ट्ठिदस्स तदवत्थाए जो विसेससंभवो तप्परूवणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* तदो संखेज्जेहिं ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं तिस्से लोभस्स पढमट्ठिदीए अद्धं गदं ।

§ २५७. एत्थ 'पढमट्ठिदीए अद्धं गदं' इदि वुत्ते सादिरेयमद्धं गदमिदि घेत्तव्वं । कुदो एदमवगम्मदे ? उवरिमअप्पाबहुअसुत्तादो ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* तदो अद्धस्से चरिमसमए लोहसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं ।

§ २५८. पुव्वुत्तसंधीए लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तूणमासमेत्तो होंतो तत्तो कमेण परिहाइदूण एदम्हि संधिविसेसे दिवसपुधत्तमेत्तो संजादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्सत्थो ।

* सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्तं ।

§ २५९. पुव्वुत्तसंखेज्जवस्ससहस्साणं सुट्ठु ओहट्टिदूण तप्पमाणेणेत्थ समवट्ठाणादो । संपहि एदम्मि चेव समए अणुभागसंतकम्मगयविसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

वरणादि कर्मोंके स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका प्रमाण भी पूर्वोक्त विधिसे जानना चाहिए । इस प्रकार इस क्रमसे आरम्भ करके तीन प्रकारके लोभको उपशमानेवाले जीवके संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर विवक्षित प्रथम स्थितिके अर्धभागको गलाकर स्थित होनेपर उस अवस्थामें जो विशेष सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं--

* तत्पश्चात् संख्यात हजार स्थितिबन्धोंके व्यतीत होनेपर लोभकी उस प्रथम स्थितिका अर्ध भाग व्यतीत हो गया ।

§ २५७. यहाँपर 'प्रथम स्थितिका अर्ध भाग व्यतीत हो गया' ऐसा कहनेपर 'साधिक अर्ध भाग व्यतीत हो गया' ऐसा ग्रहण करना चाहिए ।

शंका--यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान--आगे आनेवाले अल्पबहुत्वसम्बन्धी सूत्रसे जाना जाता है ।

* वहाँ अर्ध भागके अन्तिम समयमें लोभ संज्वलनका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वप्रमाण होता है ।

§ २५८. पूर्वोक्त सन्धिके प्राप्त होनेपर लोभसंज्वलनका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त कम एक माहप्रमाण था, उससे क्रमसे घटकर इस सन्धिविशेषके प्राप्त होनेपर दिवसपृथक्त्व प्रमाण हो जाता है यह इस सूत्रका अर्थ है ।

* शेष कर्मोंका स्थितिबन्ध सहस्र वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है ।

§ २५९. क्योंकि संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध अच्छी तरह घट कर यहाँ पर उसका अवस्थान तत्प्रमाण हो गया है । अब इसी समय अनुभाग सत्कर्मसम्बन्धी विशेषका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* ताधे पुण फद्दयगदं संतकम्मं ।

§ २६० णेदं सुत्तमारंभणीयं, पुव्वं पि अणुभागसंतकम्मस्स फद्दयगदत्तं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो त्ति? सच्चमेदं, किंतु अंतदीवयभावेणेदस्स परूवणं कादूण एत्तो उवरि लोभसंजलणस्साणुभागकिट्टीणं संभवपरूवणट्ठमेदं सुत्तमोइण्णमिदि ण किंचि विरुज्झदे।

मार्गदर्शक
* से काले विदियतिभागस्स पढमसमये लोभसंजलणाणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणुभागकिट्टीओ करेदि ।

§ २६१. 'से काले' तदणंतरसमये त्ति वुत्तं होदि। एदस्सेव फुडीकरणट्ठं 'विदियतिभागस्स पढमसमए' त्ते त्ति णिद्दिट्ठं । तम्मि समए लोभसंजलणाणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणंतगुणहाणीए ओवट्टियूणाणुभागकिट्टीओ करेदि । किमेदाओ बादरकिट्टीओ आहो सुहुमकिट्टीओ त्ति पुच्छिदे सुहुमकिट्टीओ एदाओ त्ति घेत्तव्वं, उवसमसेढीए बादरकिट्टीणमसंभवादो । तम्हा पुव्वफद्दएहिंतो पदेसग्गमोकड्डियूण सव्वजहण्णलदासमाणफद्दयादिवग्गणाविभागपलिच्छेदेहिंतो अणंतगुणहीणाणुभागाओ सुहुमकिट्टीओ करेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ । संपहि एदासिं किट्टीणं पमाणमेत्तियं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

---

* परन्तु उस समय सत्कर्म स्पर्धकगत होता है ।

§ २६०. शंका—इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए, क्योंकि पहलेसे ही अनुभाग सत्कर्म स्पर्धकगत रहता आ रहा है, उसे छोड़कर प्रकारान्तर सम्भव नहीं है ?

समाधान—यह सच है, किन्तु अन्तदीपकरूपसे इसका कथन करके इससे आगे लोभसंज्वलनकी अनुभागसम्बन्धी कृष्टियाँ सम्भव हैं सो उनका कथन करनेके लिये इस सूत्रका अवतार हुआ है, इसलिये कुछ भी विरुद्ध नहीं है ।

* तदनन्तर कालमें दूसरे त्रिभागके प्रथम समयमें लोभसंज्वलनके अनुभाग सत्कर्मका जो जघन्य स्पर्धक है उसके नीचे अनुभागकृष्टियोंको करता है ।

§ २६१. 'तदनन्तर कालमें' इसका तात्पर्य है तदनन्तर समय में । इसीको स्पष्ट करनेके लिये 'दूसरे त्रिभागके प्रथम समयमें' विकल्परूपसे ऐसा निर्देश किया है । उस समय लोभसंज्वलनके अनुभागसत्कर्मका जो जघन्य स्पर्धक है उसके नीचे अनन्तगुण हानिरूपसे अपवर्तित कर अनुभागकृष्टियोंको करता है ।

शंका—क्या ये बादर कृष्टियाँ हैं या सूक्ष्म कृष्टियाँ हैं ?

समाधान—ऐसी पृच्छा होनेपर ये सूक्ष्म कृष्टियाँ हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उपशमश्रेणिमें बादर कृष्टियोंका होना असम्भव है । इसलिये पहलेके स्पर्धकोंसे प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण कर सबसे जघन्य लतासमान स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे अनन्तगुणे हीन अनुभागयुक्त सूक्ष्म कृष्टियोंको करता है यह यहाँपर सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है । अब इन कृष्टियोंका प्रमाण इतना है इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

---

१. ता.प्रती तस्सेव इति पाठः ।

* तासिं पमाणमेयफद्दयवग्गणाणमणंतभागो ।

§ २६२. अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणं सिद्धाणंतभागवग्गणाहिं एगं फद्दयं होदि । एवंविहमेयफद्दयवग्गणद्धाणं तप्पाओग्गेहिं अणंतरूवेहिं खंडियूण तत्थेय-खंडम्मि जत्तियाओ वग्गणाओ तत्तियमेत्तपमाणाओ किट्टीओ एत्थ णिव्वत्तिज्जंति त्ति वुत्तं होइ ।

* पढमसमए बहुआओ किट्टीओ कदाओ । से काले अपुव्वाओ असंखेज्जगुणहीणाओ । एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ त्ति असंखेज्जगुणहीणाओ ।

§ २६३. एदस्स सुत्तस्सत्थो वुच्चदे । तं जहा—किट्टीकरणद्धाए पढमसमए जाओ किट्टीओ णिव्वत्तिदाओ अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाओ सिद्धाणमणंत-भागमेत्तिओ होदूण एयफद्दयवग्गणाणमणंतभागपमाणाओ ताओ बहुगीओ । पुणो तदणंतरसमए पढमसमयणिव्वत्तिदकिट्टीणं हेट्ठा जाओ अपुव्वाओ किट्टीओ णिव्वत्तिज्जंति ताओ असंखेज्जगुणहीणाओ। एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ ताव समए समए णिव्वत्तिज्जमाणाओ अपुव्वकिट्टीओ अणंतराणंतरादो असंखेज्जगुण-हीणाओ दट्ठव्वाओ । किं कारणं ? ओकड्डिदसयलदव्वस्सासंखेज्जभागमेत्तमेव
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
दव्वमपुव्वकिट्टीसु समयाविरोहेण णिसिंचिय सेसबहुभागाणमुवरिमपुव्वकिट्टीसु

---

* उनका प्रमाण एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण है ।

§ २६२. अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंका एक स्पर्धक होता है । इस प्रकारके एक स्पर्धककी वर्गणाओंके आयाममें तत्प्रायोग्य अनन्तसे भाजित कर वहाँ एक खण्डमें जितनी वर्गणाएँ प्राप्त हों तत्प्रमाण कृष्टियाँ यहाँपर बनती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* पहले समयमें बहुत कृष्टियाँ की जाती हैं । तदनन्तर समयमें अपूर्व असंख्यातगुणी हीन कृष्टियाँ की जाती हैं । इस प्रकार दूसरे त्रिभागके अन्तिम समयके प्राप्त होनेतक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी हीन कृष्टियाँ की जाती हैं ।

§ २६३. इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—कृष्टिकरणके कालके प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ की गईं वे अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण होकर एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण हैं। वे बहुत हैं। पुनः तदनन्तर समयमें प्रथम समयमें उत्पन्न की गईं कृष्टियोंके नीचे जो अपूर्व कृष्टियाँ उत्पन्न की जाती हैं वे उनसे असंख्यातगुणी हीन होती हैं । इस प्रकार द्वितीय त्रिभागके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक समय समयमें जो अपूर्व कृष्टियाँ रची जाती हैं वे अनन्तर पूर्व अनन्तर पूर्वकी कृष्टियोंसे असंख्यातगुणी हीन जाननी चाहिए, क्योंकि अपकर्षित समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको ही अपूर्व कृष्टियोंमें यथाशास्त्र सिंचितकर शेष बहुभागप्रमाण द्रव्यको उपरिम पूर्वकी कृष्टियोंमें और स्पर्धकोंमें अपने-अपने विभागानुसार विभाजितकर निषेकोंकी

फद्दएसु च जहापविभागं विहंजियूण णिसेगविण्णासकरणादो । संपहि एवमसंखेज्ज-गुणहाणीए सेढीए अंतोमुहुत्तमेत्तकालं किट्टीओ णिव्वत्तेमाणेण समयं पडि ओकड्डिज्ज-माणदव्वस्स थोवबहुत्तविहाणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

*** जं पढमसमए पदेसग्गं किट्टीओ करेंतेण किट्टीसु णिक्खित्तं तं थोवं, से काले असंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमयो त्ति असंखेज्जगुणं ।**

§ २६४. पढमसमए सव्वसमासेण किट्टीसु णिक्खित्तदव्वमोकड्डिदसयल-दव्वस्सासंखेज्जदिभागमेत्तं होदूण सव्वत्थोवं जादं । तदो विदियसमए विसोहि-पाहम्मेणासंखेज्जगुणं दव्वमोकड्डियूण तत्तो असंखेज्जदिभागं घेत्तूण पुव्वाणुव्वकिट्टीसु णिसिंचमाणदव्वं पुव्विल्लादो असंखेज्जगुणं । किं कारणमसंखेज्जगुणं ? तक्कालोकड्डिद-दव्वादो किट्टीसु णिवदमाणदव्वस्स वि तप्पडिभागेणेव पवुत्तिदंसणादो । एवं तदियादिसमएसु वि परूवणा कायव्वा जाव चरिमसमयो त्ति । संपहि एवमव्वोगाढ-सरूवेण किट्टीसु णिसित्तपदेसपिंडस्स थोवबहुत्तगवेसणं कादूण संपहि पढमादि-समएसु किट्टिं पडि णिसिंचमाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

रचना करता है । अब इस प्रकार असंख्यातगुणे हानिरूप श्रेणिके क्रमसे अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियोंको करनेवाले जीवके द्वारा प्रति समय अपकर्षित किये जानेवाले द्रव्यके अल्पबहुत्वका विधान करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** कृष्टियोंको करनेवाले जीवने प्रथम समयमें जिस प्रदेशपुञ्जको कृष्टियोंमें निक्षिप्त किया वह सबसे थोड़ा है । तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको निक्षिप्त करता है । इस प्रकार अन्तिम समयके प्राप्त होने तक प्रति समय असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको निक्षिप्त करता है ।**

§ २६४. प्रथम समयमें कृष्टियोंमें सबके जोड़रूपसे निक्षिप्त हुआ द्रव्य अपकर्षित किये गये समस्त द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होकर सबसे अल्प हो जाता है । तदनन्तर दूसरे समयमें विशुद्धिके माहात्म्यवश असंख्यातगुणे द्रव्यका अपकर्षणकर उसमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यको ग्रहणकर पूर्वानुपूर्वीरूपसे स्थित कृष्टियोंमें सिंचित किया जानेवाला द्रव्य पूर्वके द्रव्यसे असंख्यातगुणा होता है ।

शंका—यह असंख्यातगुणा किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि तत्काल अपकर्षित किये जानेवाले द्रव्यमेंसे कृष्टियोंमें दिये जाने-वाले द्रव्यकी उसीके प्रतिभागके अनुसार प्रवृत्ति देखी जाती है । इसी प्रकार अन्तिम समयके प्राप्त होनेतक तीसरे आदि समयोंमें भी प्ररूपणा करनी चाहिए । अब इस प्रकार सघन-रूपसे कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेशपिंडके अल्पबहुत्वका अनुसन्धान करके अब प्रथम आदि समयोंमें प्रत्येक कृष्टिके प्रति दिये जानेवाले प्रदेशपुञ्जकी श्रेणिका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** पढमसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं, विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं तं विसेसहीणं।**

§ २६५. पढमसमए ताव ओकड्डिदसयलपदेसग्गस्सासंखेज्जदिभागं घेत्तूण किट्टीसु णिक्खिवमाणो जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं देदि। तत्तो उवरिमाणंतराए विदियाए किट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं देदि। केत्तियमेत्तेण? अणंतिमभागमेत्तेण दोगुणहाणिपडिभागिएण। एवमेदेण पडिभागेणाणंतराणंतरादो विसेसहीणं कादूण णेदव्वं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं विसेसहीणं ति। णवरि परंपरोवणिधाए वि जोइज्जमाणाए पढमकिट्टीए णिक्खित्तपदेसग्गादो चरिमकिट्टीए णिसित्तपदेसग्गमणंतभागहीणं चेव होदि। कुदो? किट्टीणमद्धाणस्स एयफद्दयवग्गणाणमणंतिमभागपमाणत्तादो। पुणो चरिमकिट्टीए णिक्खित्तपदेसादो उवरि जहण्णफद्दयस्सादिवग्गणाए अणंतगुणहीणं पदेसग्गं देदि। सुत्तेणाणुवइट्ठमेदं कुदो परिच्छिज्जदे? सुत्ताविरोहितंतजुत्तीदो। तं जहा—चरिमकिट्टीए णिसित्तपदेसग्गं इच्छामो त्ति तस्सोवट्टणे ठविज्जमाणे एगमादिवग्गणं ठविय दिवड्ढगुणहाणीए तम्मि गुणिदे फद्दयगदसयलदव्वं होइ। एत्तो सव्ववग्गणाहिंतो ओकड्डिदसयलदव्वागमण-

---

*** प्रथम समयमें जघन्य कृष्टिका प्रदेशपुञ्ज बहुत है। उससे दूसरी कृष्टिमें प्रदेशपुञ्ज विशेष हीन है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक प्रत्येक कृष्टिका प्रदेशपुञ्ज उत्तरोत्तर विशेष हीन है।**

§ २६५. सर्वप्रथम प्रथम समयमें अपकर्षित किये गये समस्त प्रदेशपुञ्जके असंख्यातवें भागको ग्रहणकर कृष्टियोंमें निक्षेप करता हुआ जघन्य कृष्टिमें बहुत प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे अनन्तर उपरिम दूसरी कृष्टिमें प्रदेशपुञ्ज विशेष हीन देता है।

शंका—कितना कम देता है?

समाधान—दो गुणहानिके प्रतिभागके अनुसार अनन्तवें भागप्रमाण विशेष हीन देता है।

इस प्रकार इस प्रतिभागके अनुसार उत्तरोत्तर अनन्तर पूर्व कृष्टिके प्रदेशपुञ्जसे विशेष हीन करके अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होनेतक विशेष हीन प्रदेशपुञ्ज देता है। इतनी विशेषता है कि परम्परोपनिधाकी अपेक्षासे भी गणना करनेपर प्रथम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुञ्जसे अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त प्रदेशपुञ्ज अनन्तवाँ भागहीन ही होता है, क्योंकि कृष्टियोंका आयाम एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण है। पुनः अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुञ्जसे ऊपर जघन्य स्पर्धककी आदि वर्गणामें अनन्तगुणे हीन प्रदेशपुञ्जको देता है।

शंका—सूत्रद्वारा अनुपदिष्ट इसे किस प्रमाणसे जानते हैं?

समाधान—सूत्रके अविरोधी आगमानुसार युक्तिसे जानते हैं। यथा—

अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुञ्जको लाना चाहते हैं, इसलिये उसके अपवर्तनको स्थापित करनेपर एक आदि वर्गणाको स्थापितकर डेढ़ गुणहानि द्वारा उसके गुणित करनेपर स्पर्धकगत समस्त द्रव्य होता है। आगे सर्व वर्गणाओंमेंसे अपकर्षित किये

भिच्छियूणेदस्स ओकड्डुणभागहारो हेट्ठा ठवेयव्वो। पुणो एदस्सासंखेज्जदिभागो चेव किट्टीसु णिसिंचदि त्ति तप्पाओग्गासंखेज्जरूवेहि पुणो वि खंडियूण तत्थ बहुभागे पुध ट्ठविय एगभागं घेत्तूण किट्टिअद्धाणेणोवट्टिदे चरिमकिट्टीए णिवदिददव्वमणंतादि-वग्गणपमाणमागच्छदि। एवमेदं ठविय पुणो जहण्णफद्दयस्सादिवग्गणाए णिवदिद-पदेसग्गपमाणावहारणट्ठमोकड्डुणविहिं वत्तइस्सामो। तं जहा—पुव्वं पुध ट्ठविदबहुभागे फद्दयवग्गणासु सव्वासु विहंजिय एगगोवुच्छायारेण णिसिंचदि त्ति तेसिं दिवड्ढगुण-हाणिभागहारो हेट्ठा ट्ठवेयव्वो, पढमवग्गणाए णिसित्तदव्वपमाणेण सयलदव्वे कीरमाणे दिवड्ढगुणहाणिपमाणुप्पत्तिदंसणादो। तदो गुणगार-भागहारेसु सरिसमवणिय जोइदे आदिवग्गणाए असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव तत्थ णिवदिददव्वपमाणमागच्छदि। तदो चरिमकिट्टीए णिवदिददव्वादो अणंतादिवग्गणपरिमाणादो एगादिवग्गणासंखेज्जदि-भागमेत्तमेदं दव्वमणंतगुणहीणमिदि सिद्धं, दिस्समाणं पि पेक्खियूण भण्णमाणे तहाभावोवलंभादो। तम्हा किट्टीसु एया गोवुच्छा, सेढिफद्दएसु अण्णा त्ति एवमेत्थ दोगोवुच्छसेढीओ, दोण्हमेयगोवुच्छकरणोवायाभावादो।

§ २६६. अण्णे वक्खाणाइरिया किट्टीसु फद्दएसु च एयगोवुच्छासेढी होदि त्ति भण्णमाणा एवं भणंति—जहा चरिमकिट्टीए णिक्खित्तपदेसादो जहण्णादिफद्दय-

---

गये समस्त द्रव्यको लाना चाहते हैं, इसलिये इसके अपकर्षण भागहारको इसके नीचे स्थापित करना चाहिए। पुनः इसका असंख्यातवाँ भाग ही कृष्टियोंमें निक्षिप्त होता है, इसलिये तत्प्रायोग्य असंख्यातके द्वारा फिर भी खण्डितकर उसमेंसे बहुभागको पृथक् स्थापित कर एक भागको ग्रहणकर कृष्टिसम्बन्धी अध्वानके द्वारा अपवर्तित करनेपर अन्तिम कृष्टिमें प्राप्त द्रव्य अनन्त आदि वर्गणाप्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार इसको स्थापितकर पुनः जघन्य स्पर्धककी आदि वर्गणामें प्राप्त प्रदेशपुञ्जके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये अपकर्षणविधिको बतलायेंगे। यथा—पहले पृथक् स्थापित किये गये बहुभागको स्पर्धककी सभी वर्गणाओंमें विभाजित कर एक गोपुच्छाकाररूपसे सिञ्चित करता है, इसलिये उनका डेढ़ गुणहानिप्रमाण भागहार नीचे स्थापित करना चाहिए, क्योंकि प्रथम वर्गणामें निक्षिप्त हुए द्रव्यके प्रमाणरूपसे सकल द्रव्यके करनेपर डेढ़ गुणहानिप्रमाणकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिए गुणकार और भागहारमेंसे सदृशका अपनयनकर देखनेपर, आदि-वर्गणाका असंख्यातवाँ भाग ही वहाँ प्राप्त हुआ द्रव्यप्रमाण आता है। इसलिये अन्तिम कृष्टिमें प्राप्त द्रव्यकी अपेक्षा अनन्त आदि वर्गणाके प्रमाणसे एक आदि वर्गणाके असंख्यातवें भागप्रमाण यह द्रव्य अनन्तगुणा हीन है यह सिद्ध हुआ, क्योंकि दृश्यमान द्रव्यको भी देखते हुए कथन करनेपर उस प्रकारकी उपलब्धि होती है। इसलिये कृष्टियोंमें एक गोपुच्छा होती है तथा श्रेणि-स्पर्धकोंमें अन्य गोपुच्छा होती है इस प्रकार यहाँपर दो गोपुच्छाश्रेणियाँ होती हैं, क्योंकि दोनों गोपुच्छाओंका एक गोपुच्छा करनेके उपायका अभाव है।

§ २६६. अन्य व्याख्यानाचार्य कृष्टियोंमें और स्पर्धकोंमें एक गोपुच्छाश्रेणि होती है ऐसा बतलाते हुए ऐसा कहते हैं—अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशोंसे जघन्य स्पर्धककी

वग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं विसेसहीणं च पदेसग्गं देदि अणंतभागेणे त्ति णेदं घडदे, तहा इच्छिज्जमाणे किट्टीसु णिवदिदासेसदव्वस्स एयसमयपबद्धाणंतभागपमाणत्तपसंगादो। होदु चे? ण, तहाब्भुवगमे कीरमाणे सुहुमकिट्टीओ वेदयमाणस्स सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदीए गुणसेढिणिक्खेवाभावदोसप्पसंगादो। ण च समयपबद्धाणंतिमभागमेत्तपदेसेहिं गुणसेढिणिक्खेवसंभवो, विप्पडिसेहादो। तम्हा पुव्वुत्तो समयपबद्धो घेत्तव्वो। एवं ताव पढमसमए किट्टीसु दिज्जमाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं कादूण संपहि विदियसमए तप्परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ--

*** विदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। विदियाए विसेसहीणं। एवं जाव ओघुक्कस्सियाए विसेसहीणं।**

§ २६७. एदस्स सुत्तस्सत्थो। तं जहा--पढमसमयोकड्डिददव्वादो असंखेज्जगुणं पढमोकड्डियूण विदियसमए पुव्वापुव्वकिट्टीसु णिसिंचमाणो विदियसमए जा जहण्णिया किट्टी तक्कालणिव्वत्तिज्जमाणाणमपुव्वकिट्टीणमादिमा, तिस्से आयारेण पदेसग्गमसंखेज्जगुणं देदि। कत्तो एदं दव्वमसंखेज्जगुणमिदि चे? पढमसमए चरिमकिट्टीए

आदिवर्गणामें असंख्यातगुणे हीन और विशेष हीन प्रदेशपुञ्जको देता है, अनन्तवें भाग हीन देता है यह घटित नहीं होता है, क्योंकि उस प्रकारसे इच्छित करनेपर कृष्टियोंमें पतित हुआ समस्त द्रव्य एक समयप्रबद्धके अनन्तवें भागप्रमाण होता है ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है।

शंका--ऐसा होओ?

समाधान--नहीं, क्योंकि वैसा स्वीकार करनेपर सूक्ष्म कृष्टियोंका वेदन करनेवाले सूक्ष्मसाम्परायिककी प्रथम स्थितिमें गुणश्रेणिनिक्षेपके अभावरूप दोषका प्रसंग प्राप्त होता है। और समयप्रबद्धके अनन्तवें भागप्रमाण प्रदेशोंके द्वारा गुणश्रेणिनिक्षेप सम्भव नहीं है, क्योंकि इसका निषेध है। इसलिये पूर्वोक्त समयप्रबद्ध ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार प्रथम समयमें कृष्टियोंमें दिये जानेवाले प्रदेशपुञ्जकी श्रेणिका कथन करके अब दूसरे समयमें उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं--

*** उससे दूसरे समयमें जघन्य कृष्टिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है। उससे दूसरी कृष्टिमें विशेष हीन प्रदेशपुञ्जको देता है। इस प्रकार ओघ उत्कृष्ट कृष्टिके प्राप्त होने तक विशेष हीन प्रदेशपुञ्जको देता है।**

§ २६७. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा--प्रथम समयमें अपकर्षित द्रव्यसे असंख्यातगुणे द्रव्यको प्रथम अपकर्षित कर द्वितीय समयमें पूर्व और अपूर्व कृष्टियोंमें सिंचन करता हुआ द्वितीय समयमें तत्काल रची जानेवाली अपूर्व कृष्टियोंकी जो आदि जघन्य कृष्टि है उसमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको देता है।

शंका--किससे यह द्रव्य असंख्यातगुणा है?

समाधान--प्रथम समयकी अन्तिम कृष्टिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे यह असंख्यातगुणा है।

णिसित्तपदेसग्गादो। ण तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणत्तमसिद्धं, असंखेज्जगुणोकड्डिददव्व-माहप्पेणेदस्स तत्तो तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो। एत्तो विदियाए अपुव्वकिट्टीए विसेसहीणं देदि। केत्तियमेत्तेण? अणंतभागमेत्तेण। एवं णेदव्वं जाव अपुव्वाणं चरिमकिट्टि त्ति। तदो पढमसमयणिव्वत्तिदाणं किट्टीणं जहण्णियाए किट्टीए विसेसहीणं०। केत्तियमेत्तेण? असंखेज्जदिभागमेत्तेण अणंतिमभागमेत्तेण च। तं कधं? पुव्वकिट्टीणमुवरि पढमसमए णिसित्तदव्वादो एण्हिं णिसिंचमाणदव्वमोकड्डिददव्व-माहप्पेणासंखेज्जगुणं होदि, तेण तत्थ पुव्वावट्ठिददव्वमेण्हिं णिसिंचमाणदव्वस्सासंखेज्जदि-भागमेत्तमत्थि। तदो तेत्तियमेत्तेणूणं कादूण पुणो एगगोवुच्छविसेसमेत्तेण च ऊणं कादूण पदेसविण्णासं करेदि, अण्णहा किट्टीसु एगगोवुच्छासेढीए अणुप्पत्तीदो। एत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणमणंतभागेण जाव ओघुक्कस्सियाए पढमसमयणिव्वत्तिदकिट्टीणं चरिमा किट्टि त्ति। तदो जहण्णफद्दयादिवग्गणाए अणंतगुणहीणं। तत्तो विसेसहीण-मणंतभागेणे त्ति णेदव्वं जाव उक्कस्सफद्दयादो जहण्णाइच्छावणामेत्तफद्दयाणि हेट्ठा

तथा उसकी अपेक्षा इसका असंख्यातगुणापन असिद्ध नहीं है, क्योंकि अपकर्षित किये गये असंख्यातगुणे द्रव्यके माहात्म्यवश इसके उसकी अपेक्षा उस प्रकारके सिद्ध होनेमें विरोधका अभाव है। इसकी अपेक्षा दूसरी अपूर्व कृष्टिमें विशेष हीन देता है।

शंका—कितना कम देता है?

समाधान—अनन्तवें भागप्रमाण कम देता है।

इसप्रकार अपूर्व कृष्टियोंमें जो अन्तिम कृष्टि है वहाँ तक इसी क्रमसे द्रव्य देते हुए ले जाना चाहिए। उसके बाद प्रथम समयमें रची गई कृष्टियोंमें जो जघन्य कृष्टि है उसमें विशेष हीन देता है।

शंका—कितना कम देता है?

समाधान—असंख्यातवें भागप्रमाण और अनन्तवें भागप्रमाण कम देता है।

शंका—वह कैसे?

समाधान—पूर्वकी कृष्टियोंके ऊपर प्रथम समयमें निक्षिप्त किये गये द्रव्यसे इस समय निक्षिप्त किये जानेवाला द्रव्य अपकर्षित किये गये द्रव्यके माहात्म्यवश असंख्यातगुणा होता है, इसलिए उसमें पहलेका अवस्थित द्रव्य इस समय सिंचित किये जानेवाले द्रव्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है।

इसलिये उतना कम करके पुनः एक गोपुच्छाविशेष और कम करके प्रदेशविन्यास करता है, अन्यथा कृष्टियोंमें एक गोपुच्छाश्रेणिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इससे आगे ओघ उत्कृष्ट कृष्टिकी अपेक्षा प्रथम समयमें रची गई कृष्टियोंमें अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक सर्वत्र अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन प्रदेश विन्यास करता है। पुनः उससे जघन्य स्पर्धककी आदिकी वर्गणामें अनन्तगुणा हीन प्रदेश विन्यास करता है। पुनः उससे उत्कृष्ट स्पर्धकसे जघन्य अतिस्थापनाप्रमाण स्पर्धक नीचे सरककर स्थित हुए वहाँके स्पर्धककी

ओसरिदूण विदियफद्दयस्स उक्कस्सिया वग्गणा त्ति। संपहि एसा चेव परूवणा तदियादिसमएसु वि कायव्वा विसेसाभावादो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

※ जहा विदियसमए तहा सेसेसु समएसु।

§ २६८. सुगमं। एसा दिज्जमाणस्स दव्वस्स सेढिपरूवणा। संपहि दिस्समाणस्स सेढिपरूवणे भण्णमाणे पढमाए किट्टीए दिस्समाणं पदेसग्गं बहुअं, विदियाए विसेसहीणमणंतभागेण। एवं विसेसहीणं विसेसहीणं जाव चरिमकिट्टि त्ति। पुणो फद्दयवग्गणासु वि दिस्समाणं विसेसहीणं चेव भवदि। णवरि किट्टीदो फद्दयसंधी अणंतगुणहीणा। संपहि किट्टीणं तिव्वमंददाए अप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

※ तिव्वमंददाए जहण्णिया किट्टी थोवा। विदिया किट्टी अणंतगुणा। तदिया अणंतगुणा। एवमणंतगुणाए सेढीए गच्छदि जाव चरिमकिट्टि त्ति।

§ २६९. एत्थ 'जहण्णिया किट्टी थोवा' त्ति भणिदे जहण्णकिट्टीए सरिसधणियपरमाणुं मोत्तूण तत्थेयपरमाणुअविभागपलिच्छेदे घेत्तूण एगा किट्टी भवदि। इमा थोवा त्ति घेत्तव्वा। पुणो विदियकिट्टी अणंतगुणा त्ति वुत्ते एसो वि एगपरमाणुधरिदाविभागपलिच्छेदकलावो चेव गहेयव्वो। एवमेगेगपरमाणुं चेव घेत्तूण अणंतगुण-

---

उत्कृष्ट वर्गणाके प्राप्त होने तक अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन प्रदेशविन्यास करता है। अब विशेषका अभाव होनेसे यही प्ररूपणा तृतीयादि समयोंमें भी करनी चाहिए इस बातका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

※ प्रदेशविन्यासका जैसा क्रम दूसरे समयमें है वैसा शेष समयोंमें जानना चाहिए।

§ २६८. यह सूत्र सुगम है। दिये जानेवाले द्रव्यकी यह श्रेणिप्ररूपणा है। अब दृश्यमान द्रव्यकी श्रेणि प्ररूपणा करनेपर प्रथम कृष्टिमें दृश्यमान प्रदेशपुंज बहुत है। उससे दूसरीमें अनन्तवाँ भागप्रमाण विशेष हीन है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक उत्तरोत्तर विशेष हीन है। पुन: स्पर्धककी वर्गणाओंमें भी दृश्यमान द्रव्य विशेष हीन ही होता है। अब कृष्टियोंकी तीव्र-मन्दता सम्बन्धी अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

※ तीव्रमन्दताकी अपेक्षा जघन्य कृष्टि स्तोक है। उससे दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी है। उससे तीसरी अनन्तगुणी है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टि तक अनन्तगुणित श्रेणिरूपसे क्रम चालू रहता है।

§ २६९. यहाँपर 'जघन्य कृष्टि स्तोक है' ऐसा कहनेपर जघन्य कृष्टिके सदृश धनवाले परमाणुको छोड़कर वहाँके एक परमाणुके अविभाग प्रतिच्छेदोंको ग्रहणकर एक कृष्टि होती है। यह स्तोक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। पुनः 'दूसरी कृष्टि अनन्तगुणी है' ऐसा कहने पर यह भी एक परमाणुमें जितने अविभागप्रतिच्छेद प्राप्त हों उनका समुदाय

कमेण णेदव्वं जाव चरिमकिट्टि त्ति। अथवा 'जहण्णिया किट्टी थोवा' एवं भणिदे जहण्णकिट्टीए सरिसधणियपरमाणू अणंता अत्थि। ते सव्वे घेत्तूण जहण्णकिट्टी णाम उच्चदे। एसा थोवा भवदि। एवं विदियकिट्टीए वि सरिसधणियसव्वपरमाणू घेत्तूणाणंत-गुणत्तमवगंतव्वं। एवं जाव चरिमकिट्टि त्ति। अदो चेव एदासिं किट्टिववएसो- अविभागपडिच्छेदुत्तरकमवड्ढीए एत्थाणुवलंभादो। पुणो चरिमकिट्टीदो उवरि जहण्ण-फद्दयपढमवग्गणा अणंतगुणा। एवं सव्वाओ वग्गणाओ जाणिय णेदव्वाओ—

*** एसो विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा णाम।**

§ २७०. जदो एवमेत्थ फद्दयगदाणुभागमोवट्टिय किट्टीओ करेदि तदो एदस्स लोभवेदगद्धाविदियतिभागस्स किट्टीकरणद्धा त्ति सण्णा अत्थाणुगया दट्ठव्वा त्ति भणिदं होदि। जहा खवगसेढीए किट्टीओ करेमाणो पुव्वापुव्वफद्दयाणि सव्वाणि णिरवसेस-मोवट्टेयूण किट्टीओ चेव ठवेदि, ण एवमेत्थ संभवो। किंतु पुव्वफद्दएसु सव्वेसु सगसरूव-मछंडिय तहावट्ठिदेसु सव्वफद्दएहिंतो असंखेज्जदिभागमेत्तदव्वमोकड्डियूण एयफद्दय-वग्गणाणमणंतभागमेत्ताओ सुहुमकिट्टीओ एत्थ णिव्वत्तेदि त्ति वत्तव्वं।

*** किट्टीकरणद्धासंखेज्जेसु भागेसु गदेसु लोभसंजलणस्स अंतो-मुहुत्तट्ठिदिगो बंधो।**

ही ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार एक-एक परमाणुको ही ग्रहणकर अनन्तगुणित क्रमसे अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिए। अथवा 'जघन्य कृष्टि स्तोक हैं' ऐसा कहनेपर जघन्य कृष्टिमें सदृश धनवाले परमाणु अनन्त हैं। उन सबको ग्रहण कर जघन्य कृष्टि कहते हैं। यह स्तोक है। इसीप्रकार दूसरी कृष्टिमें भी सदृश धनवाले सब परमाणुओंको ग्रहण कर अनन्तगुणा जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्तिम कृष्टि तक जानना चाहिए। इसीलिये इनकी कृष्टि संज्ञा है, क्योंकि उत्तरोत्तर अविभाग प्रतिच्छेदोंकी क्रम वृद्धि यहाँपर नहीं पाई जाती। पुनः अन्तिम कृष्टिसे ऊपर जघन्य स्पर्धककी प्रथम वर्गणा अनन्तगुणी है। इसी प्रकार सभी वर्गणाओंको जानकर कथन करना चाहिए।

*** इस द्वितीय त्रिभागका नाम कृष्टिकरणकाल है।**

§ २७०. यतः इस प्रकार यहाँपर स्पर्धकगत अनुभागका अपवर्तनकर कृष्टियोंको करता है, अतः इस लोभवेदककालके द्वितीय त्रिभागकी कृष्टिकरणकाल यह सार्थक संज्ञा जाननी चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जिस प्रकार क्षपकश्रेणिमें कृष्टियोंको करता हुआ सभी पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका पूरी तरहसे अपवर्तनकर कृष्टियोंको ही स्थापित करता है, उस प्रकार यहाँपर सम्भव नहीं है, क्योंकि सभी पूर्व स्पर्धकोंके अपने-अपने स्वरूपको न छोड़कर उस प्रकार अवस्थित रहते हुए सब स्पर्धकोंमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्यका अपकर्षणकर एक स्पर्धककी वर्गणाओंके अनन्तवें भागप्रमाण सूक्ष्म कृष्टियोंकी यहाँपर रचना करता है ऐसा कहना चाहिये।

*** कृष्टिकरणकालके संख्यात बहुभागके व्यतीत होनेपर लोभसंज्वलनका स्थिति-बन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।**

§ २७१. किट्टीकरणद्धाए चरिमसमयमपावेयूण अंतोमुहुत्तं हेट्ठा ओसरियूण तिस्से संखेज्जाणं भागाणं चरिमसमए वट्टमाणस्स तक्कालिओ लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो पुव्व-णिरुद्धदिवसपुधत्तमेत्तट्ठिदिबंधादो सुट्ठु ओसरियूण अंतोमुहुत्तपमाणो संजादो त्ति वुत्तं होइ।

*** तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं।**

§ २७२. तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्तमेत्तो होंतो जहाकमं संखेज्जगुणहाणीए ओहट्टियूण तक्काले दिवसपुधत्तमेत्तो जादो त्ति भणिदं होदि।

*** जाव किट्टीकरणद्धाए दुचरिमो ट्ठिदिबंधो ताव णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिबंधो।**

§ २७३. एतदुक्तं भवति—तिण्हमेदेसिमघादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो जाव किट्टी-करणद्धाए दुचरिमो ट्ठिदिबंधो ताव संखेज्जवस्ससहस्सिओ चेव, घादिकम्माणं व अघादि-कम्माणं सुट्ठु ट्ठिदिबंधोसरणासंभवादो। तम्हा णिरुद्धसमए एदेसिं ठिदिबंधो णियमा संखेज्जवस्ससहस्समेत्तो त्ति। संपहि किट्टीकरणद्धाए चरिमो ट्ठिदिबंधो किंपमाणो त्ति णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** किट्टीकरणद्धाए चरिमो ट्ठिदिबंधो लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तिओ।**

---

§ २७१. कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयको प्राप्त किये बिना वहाँसे अन्तर्मुहूर्त नीचे सरककर उस कालके संख्यात भागोंके अन्तिम समयमें विद्यमान जीवके लोभसंज्वलनका तात्कालिक स्थितिबन्ध पूर्वमें होनेवाले दिवसपृथक्त्वप्रमाण स्थितिबन्धसे यथाक्रम घटकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण हो गया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध दिवसपृथक्त्वप्रमाण होता है।**

§ २७२. इससे पहले तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध सहस्रवर्षपृथक्त्वप्रमाण होता रहा जो यथाक्रम संख्यात गुणहानिके क्रमसे घटकर तत्काल दिवसपृथक्त्वप्रमाण हो गया यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** कृष्टिकरणकालके द्विचरम स्थितिबन्ध तक नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण होता है।**

§ २७३. यह तात्पर्य है कि कृष्टिकरणकालके द्विचरम स्थितिबन्धके समाप्त होने तक इन तीन अघातिकर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षप्रमाण ही होता है, क्योंकि घाति-कर्मोंके स्थितिबन्धके अपसरण होनेके समान अघातिकर्मोंके स्थितिबन्धका बहुत अधिक अपसरण होना असम्भव है। इसलिए विवक्षित समयमें इनका स्थितिबन्ध नियमसे संख्यात हजारवर्षप्रमाण होता है। अब कृष्टिकरणकालके भीतर होनेवाले अन्तिम स्थितिबन्धका क्या प्रमाण है इस बातका निर्णय करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** कृष्टिकरणकालमें अन्तिम स्थितिबन्ध लोभसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमहोरत्तस्संतो। णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणमंतो ।

§ २७४. एत्थ किट्टीकरणद्धाए चरिमट्ठिदिबंधो णाम बादरसांपराइयस्स चरिमो ट्ठिदिबंधो घेत्तव्वो । एसो च लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तिओ होदूण खवगसेढीए चरिमट्ठिदिबंधादो दुगुणमेत्तो होइ । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं च अहोरत्तस्संतो होदूण खवगस्स बादरसांपराइयचरिमट्ठिदिबंधादो दुगुणमेत्तो घेत्तव्वो । णामा-गोद-वेदणीयाणं पि संखेज्जवस्ससहस्सियादो ट्ठिदिबंधादो परिहाइदूण वेण्हं वस्साणमंतो पयट्टमाणो एत्थतणो ट्ठिदिबंधो बादरसांपराइयक्खवगस्स चरिमट्ठिदिबंधादो दुगुणपमाणो चेव गहेयव्वो, तत्थतणट्ठिदिबंधस्स वस्सस्संतो इदि पमाणपरूवणोवलंभादो । संपहि बादरसांपराइयपढमट्ठिदी जाधे समयूणावलियमेत्तियमेत्ता सेसा ताधे जो विसेससंभवो तप्परूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

*** तिस्से किट्टीकरणद्धाए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो लोहो लोहसंजलणे ण संकामिज्जदि सत्थाणे चेव उवसामिज्जदि ।**

§ २७५. कुदो ? संकमणोवसामणावलियाणमेत्थ पडिपुण्णाणमसंभवादो । तम्हा तदवत्थाए दुविहो लोहो लोहसंजलणे ण संकामिज्जदि । किंतु सत्थाणे चेव उवसामेदि

है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंका कुछ कम दिन-रात्रिप्रमाण होता है तथा नाम गोत्र और वेदनीय कर्मोंका कुछ कम दो वर्षप्रमाण होता है ।

§ २७४. यहाँपर कृष्टिकरणके कालमें जो अन्तिम स्थितिबन्ध होता है वह बादरसाम्परायिक जीवका अन्तिम स्थितिबन्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिये । वह लोभसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है जो क्षपकश्रेणिमें होनेवाले स्थितिबन्धसे दूना है । ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका कुछ कम दिन-रात्रिप्रमाण होता है जो क्षपकके बादरसाम्परायिक गुणस्थानमें होनेवाले अन्तिम स्थितिबन्धसे दूना ग्रहण करना चाहिए । तथा नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मके भी संख्यात हजार वर्षप्रमाण स्थितिबन्धसे घटकर इस स्थलपर प्राप्त होनेवाला कुछ कम दो वर्षप्रमाण स्थितिबन्ध बादरसाम्परायिक क्षपकके अन्तिम स्थितिबन्धसे दूना ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि क्षपकश्रेणिमें इस स्थलपर प्राप्त होनेवाला स्थितिबन्ध एक वर्षसे कुछ कम होता है इस प्रकारके प्रमाणकी प्ररूपणा पाई जाती है । अब जब बादरसाम्परायिक जीवके प्रथम स्थिति एक समय कम एक समय आवलिप्रमाण शेष रहती है तब जो विशेष सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** उस कृष्टिकरणके कालमें एक समय कम तीन आवलियाँ शेष रहनेपर दो प्रकारका लोभ लोभसंज्वलनमें संक्रान्त नहीं होता है । स्वस्थानमें ही उपशमाया जाता है ।**

§ २७५. क्योंकि संक्रमणावलि और उपशमनावलिका यहाँपर परिपूर्ण होना असम्भव है, इसलिये उस अवस्थामें दो प्रकारका लोभ लोभसंज्वलनमें नहीं संक्रमाता है, किन्तु

त्ति समीचीणमेदं। संपहि एत्तो पुणो वि विसमयूणावलियाए गलिदाए जो अत्थविसेसो तण्णिद्देसकरणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** किट्टीकरणद्धाए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो।**

§ २७६. सुगमं। संपहि पडिआवलियाए उदयावलियं पविसमाणाए जाधे एक्को समयो सेसो ताधे लोभसंजलणस्स जहण्णिया ठिदिउदीरणा होइ त्ति पदुप्पाएमाणो इदमाह—

*** पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे लोहसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा।**

§ २७७. सुगमं।

*** ताधे चेव जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तियमेत्ता लोहसंजलणस्स समयपबद्धा अणुवसंता, किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ, तव्वदिरित्तं लोहसंजलणस्स पदेसग्गं उवसंतं, दुविहो लोहो सव्वो चेव उवसंतो णवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

स्वस्थानमें ही उपशमाता है इस प्रकार यह कथन समीचीन है। अब यहाँसे आगे फिर भी दो समय कम एक आवलिके गल जानेपर जो अवस्था विशेष होती है उसका निर्देश करनेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** कृष्टिकरणके कालमें आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागाल व्युच्छिन्न हो जाते हैं।**

§ २७६. यह सूत्र सुगम है। अब प्रत्यावलिके उदयावलिमें प्रवेश करनेपर जब एक समय शेष रहता है तब लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति उदीरणा होती है इसका कथन करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

*** प्रत्यावलिमें एक समय शेष रहनेपर लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिउदीरणा होती है।**

§ २७७. यह सूत्र सुगम है।

*** उसी समय जो एक समय कम दो आवलियाँ हैं इतने लोभसंज्वलनके समयप्रबद्ध अनुपशान्त रहते हैं, कृष्टियाँ सभी अनुपशान्त रहती हैं। उनके अतिरिक्त नवकबन्ध और उच्छिष्टावलिको छोड़ लोभसंज्वलनका सभी प्रदेशपुञ्ज उपशान्त रहता है तथा दोनों प्रकारका सर्व लोभ उपशान्त रहता है।**

§ २७८. सव्वमेदं लोभसंजलणपदेसग्गं फद्दयगदमेदम्मि समए सव्वप्पणा उवसंतं किट्टीगदमज्ज वि अणुवसंतं, सुहुमसांपराइयद्धाए किट्टीणमुवसामणदंसणादो। दुविहो पुण लोभो सव्वो चेव उवसंतो, तत्थ णवकबंधादीणमणुवसमं होदूण मणुवलंभादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स समुदायत्थो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

❈ एसो चेव चरिमसमयबादरसांपराइयो।

§ २७९. एसो चेव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए वट्टमाणो चरिमसमयबादरसांपराइयो णाम भवदि, एत्थेवाणियट्टिकरणद्धाए परिच्छेददंसणादो।

❈ से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो।

§ २८०. अणियट्टिअद्धाए खीणाए तदणंतरसमए चेव सुहुमकिट्टिवेदगभावेण परिणमिय सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणं पडिवण्णो त्ति भणिदं होदि। कधं पुण एसो विदियट्ठिदीए ट्ठिदाओ लोभकिट्टीओ वेदेदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमिदमाह—

❈ तेण पढमसमयसुहुमसांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा।

§ २८१. एसो पढमसमयसुहुमसांपराइओ ताधे चेव विदियट्ठिदीदो किट्टीगदं पदेसग्गमोकड्डणभाग-पडिभागेणोकड्डियूणुदयादिगुणसेढीए अंतोमुहुत्तायामेण पढमट्ठिदिविण्णासं कुणदि त्ति भणिदं होइ। संपहि एदिस्से सुहुमसांपराइयपढमट्ठिदीए

---

§ २७८. स्पर्धकगत यह सब लोभसंज्वलनसम्बन्धी प्रदेशपुञ्ज इस समय पूरी तरहसे उपशान्त हो जाता है, किन्तु कृष्टिगत प्रदेशपुञ्ज अभी भी अनुपशान्त रहता है, क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायके कालमें कृष्टियोंकी उपशामना देखी जाती है। परन्तु दोनों प्रकारका लोभ पूरा ही उपशान्त हो जाता है, क्योंकि वहाँपर नवकबन्धादिकका अनुपशम पाया जाता है यह इस सूत्रका समुदायरूप अर्थ है।

❈ यही अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक संयत है।

§ २७९. कृष्टिकरणकालके अन्तिम समयमें विद्यमान यही अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक संयत है, क्योंकि यहींपर अनिवृत्तिकरणके कालका अन्त देखा जाता है।

❈ तदनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत हो जाता है।

§ २८०. अनिवृत्तिकरणके कालके क्षीण होनेपर तदनन्तर समयमें ही वह सूक्ष्म कृष्टिवेदकरूपसे परिणमकर सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु यह द्वितीय स्थितिमें स्थित लोभसंज्वलनकी कृष्टियोंका वेदन कैसे करता है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

❈ उस समय उस प्रथम समयवर्ती संयतने अन्य प्रथम स्थिति की।

§ २८१. वह प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीव उसी समय दूसरी स्थितिमें से कृष्टिगत प्रदेशपुञ्जका अपकर्षण भागहारके द्वारा अपकर्षणकर उदयादि श्रेणिरूपसे अन्तर्मुहूर्त आयामको लिये हुए प्रथम स्थितिका विन्यास करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य

पमाणमेत्तियं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो थोऊणाओ ।**

§ २८२. कोहोदएणुवट्ठिदस्स पढमसमयलोभवेदगस्स बादरसांपराइयस्स जा पढमट्ठिदी सव्विस्से एत्थतणलोभवेदगद्धाए सादिरेयवेत्तिभागमेत्ता तिस्से थोवूणदु-भागमेत्तो इमो सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिविण्णासो त्ति भणिदं होदि । होंतो वि सुहुमसांपराइयद्धामेत्तो चेव एत्थतणपढमट्ठिदिआयामो त्ति घेत्तव्वो । णाणावरणादीणं पुण गुणसेढिणिक्खेवो तक्कालभाविओ सुहुमसांपराइयद्धादो विसेसाहिओ होदूण उदया-वलियबाहिरे णिक्खित्तो, अपुव्वकरणपढमसमए णिक्खित्तगुणसेढिणिक्खेवस्स गलिद-सेसस्स तप्पमाणेणेण्हिमवसिट्ठत्तादो । एवंविहपढमट्ठिदिं कादूण सुहुमकिट्टीओ वेदेमाणो कधं वेदेदि त्ति आसंकाए किट्टीणमेवं वेदगो होदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** पढमसमयसुहुमसांपराइओ किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि ।**

§ २८३. पढमसमए ताव किट्टीणं हेट्ठिमोवरिमअसंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेस-

है । अब सूक्ष्मसाम्परायिक संयतकी इस प्रथम स्थितिका प्रमाण इतना होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** प्रथम समयवर्ती लोभवेदककी जो प्रथम स्थिति होती है उस प्रथम स्थितिके कुछ कम दो त्रिभाग प्रमाण सूक्ष्मसाम्परायिक संयतकी यह प्रथम स्थिति होती है ।**

§ २८२. क्रोधके उदयसे चढ़े हुए प्रथम समयवर्ती लोभवेदक बादर साम्परायिक संयतके यहाँके समस्त लोभवेदक कालके साधिक दो बटे तीन भागप्रमाण जो प्रथम स्थिति होती है उसका कुछ कम दो भागप्रमाण सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके यह प्रथम स्थितिविन्यास होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । ऐसा होता हुआ भी यहाँ की प्रथम स्थितिकी रचना सूक्ष्म-साम्परायिकके कालके बराबर होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए । परन्तु ज्ञाना-वरणादिकका उस कालमें होनेवाला गुणश्रेणिनिक्षेप सूक्ष्मसाम्परायके कालसे विशेष अधिक होकर उदयावलिके बाहर निक्षिप्त हुआ है, क्योंकि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें निक्षिप्त हुआ गुणश्रेणिनिक्षेप गलितशेष होकर इस समय तत्प्रमाण अवशिष्ट रहता है । इस प्रकारकी प्रथम स्थितिको करके सूक्ष्म कृष्टियोंका वेदन करता हुआ किस प्रकार वेदन करता है ऐसी आशंका होनेपर कृष्टियोंका इस प्रकार वेदक होता है इस बातका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका वेदन करता है ।**

§ २८३. सर्वप्रथम प्रथम समयमें कृष्टियोंके अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें

असंखेज्जे भागे वेदयदि, सव्वाहिंतो किट्टीहिंतो पदेसग्गस्स असंखेज्जदिभागमोकड्डियूण वेदयमाणो मज्झिमकिट्टिसरूवेण वेदेदि त्ति भणिदं होदि। संपहि एदं चेव अत्थं विसेसियूण परूवेमाणो उत्तरसुत्तमाह–

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ पढमसमए उदिण्णाओ।**

§ २८४. किट्टीकरणद्धाए पढमसमयं चरिमसमयं च मोत्तूण सेससमएसु जाओ अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ चेव सुहुमसांपराइयस्स पढमसमए उदिण्णाओ दट्ठव्वाओ। एदं च सरिसधणियविवक्खाए भणिदं, अण्णहा तासिं सव्वासिमेव पढमसमए णिरवसेसमुदिण्णत्तप्पसंगादो। ण च एवं, ताहिंतो असंखेज्जदिभागमेत्तस्सेव सरिसधणियपरमाणुपुंजस्स ओकड्डणापडिभागेणुदयदंसणादो।

*** जाओ पढमसमये कदाओ किट्टीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण।**

§ २८५. पढमसमए णिव्वत्तिदाणं किट्टीणमुवरिमासंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ पढमसमए उदिण्णाओ त्ति सुत्तत्थसंगहो। एदं पि सरिसधणियविवक्खाए वुत्तं, तासिं सव्वासिमेकसमयेण णिरवसेसमुदयपरिणामाणुवलंभादो।

भागको छोड़कर शेष असंख्यात बहुभागका वेदन करता है, क्योंकि सब कृष्टियोंमेंसे प्रदेश-पुञ्जके असंख्यातवें भागका अपकर्षणकर वेदन करता हुआ मध्यम कृष्टिरूपसे वेदन करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी अर्थका विशेषरूपसे कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** अप्रथम और अचरम समयमें जो अपूर्व कृष्टियाँ की गईं वे सब प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं।**

§ २८४. कृष्टिकरणके कालमेंसे प्रथम समय और अन्तिम समयको छोड़कर शेष समयोंमें जो अपूर्व कृष्टियाँ की गईं वे सभी सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं ऐसा जानना चाहिए और यह सदृश धनकी विवक्षामें कहा है, अन्यथा उन सभीका प्रथम समयमें पूरी तरहसे उदीर्ण होनेका प्रसंग आता है। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि उनमेंसे असंख्यातवें भागमात्र सदृश धनवाले परमाणुपुंजका ही अपकर्षण प्रतिभागके अनुसार उदय देखा जाता है।

*** प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ की गईं उनके अग्राग्रमेंसे असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष समस्त कृष्टियाँ प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं।**

§ २८५. प्रथम समयमें जो कृष्टियाँ रची गईं उनके उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियाँ प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाती हैं यह सूत्रार्थसंग्रह है। यह भी सदृश धनकी विवक्षामें कहा है, क्योंकि उन सबका एक समयमें पूरी तरहसे

तम्हा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदेयखंडमेत्तमुवरिमासंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसा जे पढमसमए कदकिट्टीणमसंखेज्जा भागा ते वि सुहुमसांपराइयस्स पढमसमए उदिण्णा त्ति घेत्तव्वं ।

* जाओ चरिमसमए कदाओ किट्टीओ तासिं च जहण्णकिट्टिप्पहुडि असंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ उदिण्णाओ ।

§ २८६. किट्टीकरणद्धाए चरिमसमए णिव्वत्तिदाणं किट्टीणं जहण्णकिट्टीदो पहुडि हेट्ठिमसंखेज्जदिभागपलिदोवमासंखेज्जदिभागपडिभागियमुज्झियूण सेसबहुभाग-विसयाओ सव्वाओ चेव किट्टीओ तक्कालमुदये पवेसिदाओ त्ति भणिदं होदि । तदो सिद्धं पढमसमयसुहुमसांपराइयो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदेदि त्ति पढम-चरिमसमय-णिव्वत्तिदकिट्टीणमुवरिमहेट्ठिमासंखेज्जदिभागविसयाणं चेव किट्टीणमेत्थोदयबहिब्भाव-दंसणादो । णवरि पढमसमयम्मि कदकिट्टीणमवेदिज्जमाणउवरिमासंखेज्जदिभागब्भंतर-किट्टीओ ओकड्डणाए अणंतगुणहीणाओ होदूण मज्झिमकिट्टिसरूवेण वेदिज्जंति । चरिमसमयणिव्वत्तिदकिट्टीणं जहण्णकिट्टिप्पहुडि अवेदिज्जमाणहेट्ठिमासंखेज्जदिभाग-ब्भंतरकिट्टीओ च मज्झिमकिट्टिसरूवेणाणंतगुणाओ होदूण वेदिज्जंति त्ति वत्तव्वं, सगसरूवेणेव तेसिमुदयाभावपदुप्पायणादो, मज्झिमायारेण तदुदयसिद्धीए पडिसेहा-

---

उदयरूप परिणाम नहीं पाया जाता, इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागप्रमाण उपरिम असंख्यातवें भागको छोड़कर प्रथम समयमें की गई कृष्टियोंका शेष जो असंख्यात बहुभाग बचता है वह सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयमें उदीर्ण हो जाता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

* और जो कृष्टियाँ अन्तिम समयमें की गईं उनकी जघन्य कृष्टिसे लेकर असं-ख्यातवें भागको छोड़कर शेष सब कृष्टियाँ उदीर्ण हो जाती हैं ।

§ २८६. कृष्टिकरणके कालके अन्तिम समयमें रची गईं कृष्टियोंके पल्योपमके असं-ख्यातवें भागरूप प्रतिभाग द्वारा प्राप्त जघन्य कृष्टिसे लेकर, अधस्तन असंख्यातवें भागको छोड़कर शेष बहुभागप्रमाण सभी कृष्टियोंको उस समय उदयमें प्रविष्ट कराई गई यह उक्त कथनका तात्पर्य है, इसलिए सिद्ध हुआ कि प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीव कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका वेदन करता है, अतः प्रथम समय और अन्तिम समयमें रचित कृष्टियोंमेंसे उपरिम और अधस्तन असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंका ही यहाँपर उदयाभाव देखा जाता है । इतनी विशेषता है कि प्रथम समयमें की गई कृष्टियोंमेंसे नहीं वेदे जानेवाले उपरिम असंख्यातवें भागके भीतरकी कृष्टियाँ अपकर्षण द्वारा अनन्तगुणी हीन होकर मध्यम कृष्टिरूपसे वेदी जाती हैं । तथा अन्तिम समयमें रची गई कृष्टियोंमेंसे जघन्य कृष्टिसे लेकर नहीं वेदे जानेवाले अधस्तन असंख्यातवें भागके भीतरकी कृष्टियाँ मध्यम कृष्टि-रूपसे अनन्तगुणी होकर वेदी जाती हैं ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि अपने रूपसे ही उनके उदयाभावका कथन किया है, मध्यम आकाररूप होकर उनके उदयकी सिद्धिका प्रतिषेध नहीं

भावादो। जहा मिच्छत्तफद्दयाणि सम्मत्तसरूवेणुदयमागच्छमाणाणि सगसरूवं छड्डिय अणंतगुणहीणाणि होदूणुदये पविसंति, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तफद्दयाणि मिच्छत्तायारेण उदयमागच्छमाणाणि सगसरूवपरिच्चागेणाणंतगुणाणि होदूणुदये णिवदंति, ण च विरोहो, एवमिहावि उवरिमहेट्ठिमासंखेज्जदिभागकिट्टीओ मज्झिमकिट्टिसरूवेण वेदिज्जंति त्ति ण किंचि विप्पडिसिद्धं। संपहि तम्मि चेव समए किट्टीणमुवसामणाविहाणपरूवणट्ठ-मिदमाह—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* ताधे चेव सव्वासु किट्टीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेढीए।

§ २८७. तक्काले चेव सव्वासु किट्टीसु ट्ठिदपदेसग्गमुवसामेदि। तं कधमुव-सामेदि? गुणसेढीए। समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए किट्टीणं पदेसग्गमुवसामेदि त्ति वुत्तं होदि। तं जहा—पढमसमए ताव सव्वासिं किट्टीणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण भागलद्धमेत्तं पदेसग्गमुवसामेदि। पुणो विदियसमयम्मि सव्वकिट्टीणं पदेसग्गं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागलद्धमेत्तमुवसामेमाणो पढमसमयम्मि उवसामिदपदे-सग्गादो असंखेज्जगुणं पदेसग्गमुवसामेदि त्ति। कुदो एवं चेव? परिणामपाहम्मादो। एवं सव्वत्थ गुणसेढिकमेणुवसामेदि त्ति जाव सुहुमसांपराइयचरिमसमयो त्ति। संपहि

है। जिस प्रकार मिथ्यात्वके स्पर्धक सम्यक्त्वरूपसे उदयको प्राप्त होते हुए अपने स्वरूपको छोड़कर अनन्तगुणे हीन होकर उदयमें प्रवेश करते हैं तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्पर्धक मिथ्यात्वरूपसे उदयको प्राप्त होते हुए अपने स्वरूपको छोड़कर अनन्तगुणे होकर उदय-को प्राप्त होते हैं और इसमें कोई विरोध नहीं है इसी प्रकार यहाँपर भी उपरिम और अधस्तन असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ मध्यम कृष्टिरूपसे वेदी जाती हैं, इसलिए कुछ निषिद्ध नहीं है। अब उसी समय कृष्टियोंकी उपशामना विधिका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* उसी समय सभी कृष्टियोंके प्रदेशपुञ्जको गुणश्रेणिरूपसे उपशमाता है।

§ २८७. उसी समय सभी कृष्टियोंमें स्थित प्रदेशपुञ्जको उपशमाता है।

शंका—उसे किस प्रकार उपशमाता है?

समाधान—गुणश्रेणिक्रमसे उपशमाता है। अर्थात् प्रति समय असंख्यातगुणी श्रेणि-रूपसे कृष्टियोंके प्रदेशपुञ्जको उपशमाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यथा—सर्वप्रथम प्रथम समयमें सब कृष्टियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग प्राप्त हो उतने प्रदेशपुञ्जको उपशमाता है। पुनः दूसरे समयमें सब कृष्टियोंमें पल्योपमके असंख्या-तवें भागका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आवे उतने प्रदेशपुञ्जको उपशमाता हुआ प्रथम समयमें उपशमाये गये प्रदेशपुञ्जसे असंख्यातगुणे प्रदेशपुञ्जको उपशमाता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—परिणामोंके माहात्म्यसे जाना जाता है।

इस प्रकार सूक्ष्म साम्परायिक गुणस्थानके अन्तिम समयको प्राप्त होने तक सर्वत्र गुणश्रेणिके क्रमसे उपशमाता है। अब केवल कृष्टियोंको ही असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे नहीं

ण केवलं किट्टीओ चेव असंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेदि, किंतु जे दुसमयूणदो-आवलियमेत्तणवकबंधसमयपबद्धा फद्दयगदा ते वि समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

* जे दोआवलियबंधा दुसमयूणा ते वि उवसामेदि ।

§ २८८. असंखेज्जगुणाए सेढीए त्ति अत्थवसेणेत्थाहियारसंबंधो कायव्वो । सुगममण्णं ।

* जा उदयावलिया छंडिदा सा त्थिवुकसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि ।

§ २८९. जा सा बादरसांपराइएण पुव्वमुच्छिट्ठावलिया छंडिया फद्दयगदा सा एण्हिं किट्टिसरूवेण परिणमिय त्थिवुक्कसंकमेण विपच्चिहिदि त्ति भणिदं होदि । एवं सुहुमसांपराइयपढमसमए सव्वमेदं किरियाकलावं परूविय संपहि विदियादिसमएसु किट्टीओ वेदेमाणो एदेण सरूवेण वेदेदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि, हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिपडिभागमाफुंददि, एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति ।

§ २९०. विदियसमए ताव पढमसमयोदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो सव्वुवरिम-

---

उपशमाता है किन्तु जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण स्पर्धकगत नवक समयप्रबद्ध हैं उन्हें भी असंख्यातगुणित श्रेणिरूपसे उपशमाता है इसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

* जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्ध हैं उन्हें भी उपशमाता है ।

§ २८८. 'असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे' इसका अर्थवश यहाँपर अधिकारके साथ संबंध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

* जो उदयावलि छोड़ दी गई थी वह स्तिवुक संक्रमके द्वारा कृष्टियोंमें विपाकको प्राप्त होगी ।

§ २८९. बादरसाम्परायिक संयतने पहले जो उच्छिष्टावलि छोड़ दी थी स्पर्धकगत वह यहाँपर कृष्टिरूपसे परिणमकर स्तिवुकसंक्रमके द्वारा विपाकको प्राप्त होगी यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयमें इस सब क्रियाकलापका कथनकर अब दूसरे आदि समयोंमें कृष्टियोंका वेदन करता हुआ इस रूपसे वेदन करता है इस बातका ज्ञान करानेके इस सूत्रको कहते हैं—

* द्वितीय समयमें उदीर्ण हुई कृष्टियोंके अग्राग्रसे असंख्यातवें भागको छोड़ता है तथा नीचेसे अपूर्व असंख्यातवें भागका स्पर्श करता है । इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समय तक जानना चाहिए ।

§ २९०. दूसरे समयमें तो प्रथम समयमें उदीर्ण हुई कृष्टियोंके अग्राग्रसे अर्थात् सबसे

किट्टीदो पहुडि हेट्ठा असंखेज्जदिभागं मुंचदि। कुदो एवमिदि चे? पढमसमयोदयादो विदियसमयोदयस्स अणंतगुणहीणत्तण्णहाणुववत्तीदो। तम्हा पुव्वसमयोदिण्णाणं किट्टीणमग्गकिट्टीदो पहुडि असंखेज्जदिभागमेत्तमुवरिमभागं मोत्तूण हेट्ठिमबहुभागाकारेण विदियसमए किट्टीओ वेदेदि त्ति सिद्धं। हेट्ठदो पुण पढमसमए अणुदिण्णाणं किट्टीणमसंखेज्जदिभागमेत्तमपुव्वमाफुंददि आस्पृशति वेदयत्यवष्टभ्य गृह्णातीत्यर्थः, पढमसमयोदिण्णकिट्टीहिंतो विदियसमयोदिण्णकिट्टीओ विसेसहीणाओ असंखेज्जदिभागेण। कुदो? हेट्ठिमापुव्वलाहादो उवरिमपरिचत्तभागस्स बहुत्तब्भुवगमादो। एवं तदियादिसमएसु वि वत्तव्वं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइओ त्ति। एवमेदीए परूवणाए सुहुमसांपराइयद्धमणुपालेमाणो आवलिय-पडिआवलियासु सेसासु आगाल-पडिआगालवोच्छेदं काद्ण तदो समयाहियावलियसेसे जहण्णयं ट्ठिदिउदीरणं काद्ण पुणो कमेण चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो। संपहि तत्थतणट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तपबंधो—

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

*** चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो।**

§ २९१ सुगमं।

उपरिम कृष्टिसे लेकर नीचे असंख्यातवें भागको छोड़ता है।

शंका—ऐसा किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि ऐसा न हो तो प्रथम समयके उदयसे दूसरे समयका उदय अनन्तगुणा हीन नहीं बन सकता है।

इसलिए पूर्व समयमें उदीर्ण हुई कृष्टियोंमेंसे सबसे उपरिम कृष्टिसे लेकर असंख्यातवें भागप्रमाण उपरिम भागको छोड़कर अधस्तन बहुभागप्रमाण कृष्टियोंका दूसरे समयमें वेदन करता है यह सिद्ध हुआ। परन्तु नीचेसे प्रथम समयमें अनुदीर्ण हुई कृष्टियोंके अपूर्व असंख्यातवें भागप्रमाणको 'आफुंददि' स्पर्श करता है, वेदता है, आलम्बन कर ग्रहण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। प्रथम समयमें उदीर्ण कृष्टियोंसे दूसरे समयमें उदीर्ण हुई कृष्टियाँ असंख्यातवें भागप्रमाण विशेष हीन हैं, क्योंकि अधस्तन अपूर्व लाभसे उपरिम परित्यक्त भाग बहुत स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक तीसरे आदि समयोंमें भी कथन करना चाहिए। इस प्रकार इस प्ररूपणाके अनुसार सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानके कालका पालन करता हुआ आवलि और प्रत्यावलिके शेष रहनेपर आगाल और प्रत्यागालका विच्छेद करके पश्चात् एक समय अधिक आवलिप्रमाण कालके शेष रहनेपर जघन्य स्थिति उदीरणाको करके पुनः क्रमसे अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है। अब वहाँपर होनेवाले स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।**

§ २९१. यह सूत्र सुगम है।

*** णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता ।**

§ २९२. सुगमं ।

*** वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस मुहुत्ता ।**

§ २९३. कुदो ? बारसमुहुत्तियादो खवगचरिमट्ठिदिबंधादो दुगुणपमाणत्तादो । एत्थेव सव्वेसिं कम्माणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधवोच्छेदो दट्ठव्वो । णवरि वेदणीयस्स पयडिबंधो उवसंतकसाए वि अत्थि, तस्स जोगणिबंधणस्स जाव सजोगि-चरिमसमयो त्ति [illegible]संभवादो । एवमेदेण विहिणा सुहुमसांपराइयकालं बोलिय तदणंतरसमये वट्टमाणस्स मोहणीयं सव्वमुवसंतं होदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तर-सुत्तणिद्देसो—

*** से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं ।**

§ २९४. कुदो ? तत्थ मोहणीयस्स बंधोदयसंकमोदीरणोकड्डुक्कड्डणादीणं सव्वेसिमेव करणाणं सव्वप्पणा उवसंतभावेणावट्ठाणदंसणादो । संपहि एत्तो पहुडि अंतोमुहुत्तमेत्तकालमुवसंतकसायवीदरागछदुमत्थो होदूण चिट्ठदि त्ति पदुप्पायणट्ठ-मुत्तरसुत्तारंभो—

*** तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो ।**

§ २९५. उवसंता सव्वे कसाया जस्स सो उवसंतकसायो । उवसंतकसाओ च सो

*** नाम और गोत्र कर्मोंका स्थितिबन्ध सोलह मुहूर्तप्रमाण होता है ।**

§ २९२. यह सूत्र सुगम है ।

*** वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध चौबीस मुहूर्तप्रमाण होता है ।**

§ २९३. क्योंकि क्षपकके होनेवाले बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तिम स्थितिबन्धसे यह दूने प्रमाणको लिये हुए होता है । यहीं पर सभी कर्मोंके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धकी व्युच्छित्ति जाननी चाहिए । इतनी विशेषता है कि वेदनीयकर्मका प्रकृति-बन्ध उपशान्तकषाय गुणस्थानमें भी होता है, क्योंकि प्रकृतिबन्ध योगके निमित्तसे होता है, इसलिए सयोगकेवलीके अन्तिम समय तक उक्त बन्ध सम्भव है । इस प्रकार इस विधिसे सूक्ष्मसाम्परायिकके कालको बिताकर तदनन्तर समयमें विद्यमान जीवके मोहनीयकर्म पूरा उपशान्त रहता है इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

*** तदनन्तर समयमें सब मोहनीयकर्म उपशान्त हो जाता है ।**

§ २९४. क्योंकि वहाँपर मोहनीयकर्मके बन्ध, उदय, संक्रम, उदीरणा, अपकर्षण और उत्कर्षण आदि सभी करणोंका पूरी तरहसे उपशान्तरूपसे अवस्थान देखा जाता है । अब यहाँसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ होकर स्थित रहता है इसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** यहाँसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक उपशान्तकषायवीतराग रहता है ।**

§ २९५. जिसके सब कषाय उपशान्त हो गये हैं वह उपशान्तकषाय कहलाता है तथा

वीदरागो च उवसंतकसायवीदरागो, उवसमिदासेसकसायत्तादो उवसंतकसायो, विणट्ठासेसरागपरिणामत्तादो वीदरागो च होदूण अंतोमुहुत्तमेसो सच्छपरिणामो होदूणच्छदि त्ति वुत्तं होइ। अंतोमुहुत्तादो अहियं कालमेत्तोवसंतकसायभावेण किण्णावचिट्ठदे ? ण, अंतोमुहुत्तादो परमुवसमपज्जायस्सावट्ठाणासंभवादो।

*** सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदपरिणामो।**

§ २९६. कुदो ? परिणामहाणि-वड्ढिणिबंधणकसायाणमुदयाभावादो अवट्ठिद-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजमाणुविद्धसुविसुद्धवीयरायपरिणामेण पडिसमयमभिण्णसरूवेण सगद्धमेसो अणुपालेदि त्ति वुत्तं होइ। संपहि एदेण कीरमाणगुणसेढिणिक्खेवस्स पमाणावहारणट्ठमुत्तरसुत्तणिद्देसो—

*** गुणसेढिणिक्खेवो उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागो।**

§ २९७. उवसंतद्धा अंतोमुहुत्तपमाणा, एदिस्से उवसंतद्धाए संखेज्जदिभाग-मेत्तायामो एदस्स गुणसेढिणिक्खेवो णाणावरणादिकम्मपडिबद्धो होदि। होंतो वि अपुव्वकरणपढमसमए कदगलिदसेसगुणसेढिणिक्खेवस्स एण्हिमुवलब्भमाणसीसयादो संखेज्जगुणो। कुदो एदं णव्वदे ? उवरि भणिस्समाणअप्पाबहुअसुत्तादो।

उपशान्तकषाय वीतराग वह उपशान्तकषायवीतराग कहलाता है। समस्त कषायोंके उपशान्त हो जानेसे उपशान्तकषाय और समस्त रागपरिणामके नष्ट हो जानेसे वीतराग होकर वह अन्तर्मुहूर्त काल तक अत्यन्त स्वच्छ परिणामवाला होकर अवस्थित रहता है यह उक्त कथन-का तात्पर्य है।

शंका—अन्तर्मुहूर्तसे अधिक काल तक वह उपशान्तकषायभावके साथ क्यों अव-स्थित नहीं रहता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे और अधिक काल तक उपशम पर्यायका अव-स्थान असम्भव है।

*** तब समस्त उपशान्त कालमें वह अवस्थित परिणामवाला होता है।**

§ २९६. क्योंकि परिणामोंकी हानि और वृद्धिके कारणभूत कषायोंके उदयका अभाव होनेसे अवस्थित यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमसे युक्त सुविशुद्ध वीतरागपरिणामके साथ प्रति समय अभिन्नरूपसे उपशान्तकषाय वीतरागके कालका यह पालन करता है यह उक्त कथन-का तात्पर्य है। अब इस द्वारा किये जानेवाले गुणश्रेणिनिक्षेपके प्रमाणका अवधारण करने-के लिए आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

*** वहाँ गुणश्रेणिनिक्षेप उपशान्त कालके संख्यातवें भागप्रमाण होता है।**

§ २९७. उपशान्त काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है। इस उपशान्त कालके संख्यातवें भाग-प्रमाण आयामवाला इस जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंका गुणश्रेणि निक्षेप होता है। होता हुआ भी अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किये गये गलित शेष गुणश्रेणिनिक्षेपके इस समय प्राप्त होने-वाले शीर्षसे संख्यातगुणा होता है।

* सव्विस्से उवसंतद्धाए गुणसेढिणिक्खेवेण वि पदेसग्गेण वि अवट्ठिदा।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ २९८. कुदो एवं ? अवट्ठिदपरिणामत्तादो। ण चावट्ठिदपरिणामस्साणवट्ठिदायामेणाणवट्ठिदपदेसग्गोकड्डणाए च गुणसेढिविण्णासस्संभवो, विप्पडिसेहत्तादो। तम्हा सव्विस्से वि उवसंतद्धाए कीरमाणगुणसेढिणिक्खेवायामेण ओकड्डिज्जमाणपदेसग्गेण च अवट्ठिदा चेव होदि त्ति सम्ममवहारिदं। अपुव्वकरणपढमसमयप्पहुडि जाव सुहुमचरिमसमयो त्ति ताव मोहणीयवज्जाणं कम्माणं गुणसेढिणिक्खेवो उदयावलियबाहिरे गलिदसेसो भवदि। पुणो उवसंतपढमसमयप्पहुडि जाव तस्सेव चरिमसमयो त्ति ताव गुणसेढिणिक्खेवो उदयादिअवट्ठिदायामो अवट्ठिदपदेसविण्णासो च होदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो।

* पढमे गुणसेढिसीसये उदिण्णे उक्कस्सओ पदेसुदओ।

§ २९९. एत्थ पढमगुणसेढिसीसये त्ति भणिदे उवसंतकसाएण पढमसमए णिक्खित्तगुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गट्ठिदीए गहणं कायव्वं। तम्हि उदयमागदे णाणावरणादिकम्माणमुक्कस्सओ पदेसुदयो होदि। किं कारणमिदि चे ? तत्थ

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—आगे कहे जानेवाले अल्पबहुत्व सूत्रसे जाना जाता है।

* सम्पूर्ण उपशान्त कालमें वह (गुणश्रेणि) गुणश्रेणि निक्षेपकी अपेक्षा भी और प्रदेशपुञ्जकी अपेक्षा भी अवस्थित होती है।

§ २९८. शंका—ऐसा किस कारणसे है ?

समाधान—अवस्थित परिणाम होनेसे। और अवस्थित परिणामवाले जीवके अनवस्थित आयामरूपसे तथा अनवस्थित प्रदेशपुञ्जके अपकर्षणरूपसे गुणश्रेणिविन्यास सम्भव नहीं है, क्योंकि इसका निषेध है। इसलिये पूरे ही उपशान्त कालके भीतर किये जानेवाले गुणश्रेणिनिक्षेपके आयामकी अपेक्षा और अपकर्षित किये जानेवाले प्रदेशपुञ्जकी अपेक्षा वह अवस्थित ही होती है यह सम्यक् प्रकारसे निश्चित हुआ। अपूर्वकरणके प्रथम समयसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समय तक मोहनीयको छोड़कर शेष कर्मोंका गुणश्रेणिनिक्षेप उदयावलिके बाहर गलित शेष होता है। परन्तु उपशान्तकषायके प्रथम समयसे लेकर उसीके अन्तिम समय तक गुणश्रेणिनिक्षेप उदयसे लेकर अवस्थित आयामवाला और अवस्थित प्रदेशोंकी रचनाको लिये हुए होता है यह यहाँ पर सूत्रके अर्थका तात्पर्य है।

* प्रथम गुणश्रेणिशीर्षके उदीर्ण होनेपर उत्कृष्ट प्रदेश-उदय होता है।

§ २९९. यहाँ पर प्रथम गुणश्रेणिशीर्ष ऐसा कहने पर उपशान्तकषाय जीवके द्वारा प्रथम समयमें निक्षिप्त गुणश्रेणिनिक्षेपकी अग्र स्थितिका ग्रहण करना चाहिए। उसके उदय को प्राप्त होनेपर ज्ञानावरणादि कर्मोंका उत्कृष्ट प्रदेश उदय होता है।

शंका—इसका क्या कारण है ?

अंतोमुहुत्तमेत्तगुणसेढिगोवुच्छाणमेगीभूदाणमुदयदंसणादो । तं जहा—पढमसमयो-
मार्गदर्शक:- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज
वसंतकसायस्स गुणसेढिसीसयं तत्थाविणट्ठसरूवमुवलब्भदे । विदियसमयोव-संतकसायस्स वि दुचरिमगुणसेढिगोवुच्छा तत्थेव दीसइ । तदियसमयोवसंतकसायस्स त्तिचरिमगुणसेढिगोवुच्छा वि तत्थेव समुवलब्भदे । एवमेदेण कमेण पढमसमयम्मि कदगुणसेढिणिक्खेवायाममेत्तीओ चेव गुणसेढिगोवुच्छाओ तत्थ दीसंति। एदेण कारणेण विसयंतरपरिहारेणेत्थेवुक्कस्सओ पदेसुदओ गहिओ। एत्तो उवरिमसमयप्पहुडि जाव उवसंतकसायचरिमसमओ त्ति एदेसु वि ट्ठिदिविसेसेसु एत्तियमेत्तीओ चेव गुणसेढि-गोवुच्छाओ अणूणाहियपमाणाओ लब्भंति, तदो तत्थ वि उक्कस्सपदेसुदयसामित्तेणेदेण होदव्वमिदि वुत्ते ण, तहा घेप्पमाणे पयडिगोवुच्छावेक्खाए जहाकममेगेगगोवुच्छ-विसेसहाणिदंसणादो । तदो गोवुच्छविसेसलाहमुद्दिसिय जहाणिद्दिट्ठविसये चेव सामित्त-मेदं गहेयव्वमिदि सिद्धं । अत्राह—अपुव्वकरणपढमसमयम्हि कदगुणसेढिसीसयं उवसंतकसायपढमसमयणिक्खित्तगुणसेढिणिक्खेवब्भंतरे चेव हेट्ठा समुवलब्भदे, तदो तम्मि उदयमागदे सामित्तमेदं गेण्हामो, संचयगोवुच्छमाहप्पेण तस्स सुट्ठु बहुत्त-दंसणादो त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—णेदं घेत्तुं सक्किज्जदे, एदम्हादो सव्वदव्वादो

समाधान—क्योंकि वहाँ पर एक पिण्ड होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण गुणश्रेणिगोपुच्छाओं-का उदय देखा जाता है। यथा—प्रथम समयवर्ती उपशान्तकषायका गुणश्रेणिशीर्ष वहाँ अविनष्टरूपसे उपलब्ध होता है। द्वितीय समयवर्ती उपशान्तकषायकी भी द्विचरम गुण-श्रेणिगोपुच्छा वहीं दिखलाई देती है। तृतीय समयवर्ती उपशान्तकषायकी त्रिचरम गुणश्रेणि-गोपुच्छा भी वहीं उपलब्ध होती है। इस प्रकार इस क्रमसे प्रथम समयमें किये गये गुण-श्रेणिनिक्षेपके आयामप्रमाण ही गुणश्रेणिगोपुच्छाएँ वहाँ दिखलाई देती हैं। इस कारण दूसरे स्थानको छोड़कर यहीं पर उत्कृष्ट प्रदेश-उदयको ग्रहण किया है।

शंका—यहाँसे जो अगला समय है उससे लेकर उपशान्तकषायके अन्तिम समय तक इन स्थितिविशेषोंमें भी न्यूनाधिकतासे रहित इतनी ही गुणश्रेणिगोपुच्छाएं प्राप्त होती हैं, इसलिये वहाँ पर भी उत्कृष्ट प्रदेशउदयका यह स्वामित्व होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँपर उन स्थितिविशेषोंमें वैसा ग्रहण करने पर प्रकृति गोपुच्छाकी अपेक्षा क्रमसे एक-एक गोपुच्छाविशेषकी हानि देखी जाती है। इसलिये गोपुच्छा-विशेषके लाभको लक्ष्य कर यथा निर्दिष्ट स्थानपर ही इस स्वामित्वको ग्रहण करना चाहिए यह सिद्ध हुआ।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किया गया गुणश्रेणिशीर्ष उपशान्तकषायके प्रथम समयमें निक्षिप्त गुणश्रेणिशीर्षके भीतर ही नीचे उप-लब्ध होता है, इसलिये उसके उदयको प्राप्त होनेपर इस स्वामित्वको हम ग्रहण करते हैं, क्योंकि संचयको प्राप्त हुए गोपुच्छाके माहात्म्यवश उसके बहुत अधिक प्रदेशोंका संचय देखा जाता है ?

समाधान—अब यहाँ पर इस शंकाका परिहार करते हैं—सबसे अधिक प्रदेशपुञ्जकी अपेक्षा इसे ग्रहण करना शक्य नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धी समस्त द्रव्यसे भी उपशान्त-

वि उवसंतकसाएण पढमसमयम्मि कदगुणसीसेढिसयस्स परिणाममाहप्पेणासंखेज्ज-गुणत्तदंसणादो। तम्हा पुव्वुत्तविसये चेव णाणावरणादीणं छण्हं मूलपयडीणं जहासंभवमुत्तरपयडीणं च उक्कस्सपदेसुदओ णादव्वो। किंतु आदेसुक्कस्सो एसो, खवगसेढीए एदासिमोघुक्कस्सपदेसुदयदंसणादो।

§ ३००. संपहि उवसंतकसायम्मि णाणावरणादिकम्माणमणुभागोदओ किमवट्ठिदो आहो अणवट्ठिदसरूवो त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणीयाणमणुभागुदएण सव्वउव-संतद्धाए अवट्ठिदवेदगो।**

कषाय द्वारा प्रथम समयमें किया गया गुणश्रेणिशीर्ष परिणामोंके माहात्म्यवश असंख्यात-गुणा देखा जाता है। इसलिये पूर्वोक्त स्थलपर ही ज्ञानावरणादि छह मूल प्रकृतियोंका और यथासम्भव उत्तर प्रकृतियोंका उत्कृष्ट प्रदेश-उदय ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यह आदेश उत्कृष्ट है, क्योंकि इनका ओघ उत्कृष्ट प्रदेश-उदय क्षपकश्रेणिमें देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ इस पूरे प्रकरण द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि उपशान्तकषायके प्रथम समयमें अवस्थित आयामवाले गुणश्रेणिशीर्षमें द्रव्यका निक्षेप होता है, और जब क्रमसे उसका उदय होता है तब उत्कृष्ट प्रदेश-उदय होता है, क्योंकि इसमें अपूर्वकरणके प्रथम समयमें किये गये गलित शेष गुणश्रेणिशीर्षमें निक्षिप्त पूरे द्रव्यकी अपेक्षा असंख्यातगुणे द्रव्यका निक्षेप होता है। किन्तु ज्ञानावरणादि कर्मोंके इस प्रदेश-उदयको ओघ-उत्कृष्ट नहीं समझना चाहिए, क्योंकि इन कर्मोंका ओघसे उत्कृष्ट प्रदेश-उदय क्षपकश्रेणिमें होता है। यहाँ पर एक शंका यह भी की गई है कि उपशान्तकषाय जीवके गुणश्रेणिसम्बन्धी प्रत्येक स्थितिमें प्रति समय अवस्थित पुञ्जका ही निक्षेप होता है, ऐसी अवस्थामें उपशान्तकषायके प्रथम समयमें जो गुणश्रेणिशीर्ष किया गया है उसीके उदयमें आनेपर उत्कृष्ट प्रदेश-उदय क्यों कहा है। उसके बादके उपशान्तकषायमें प्राप्त होनेवाले जितने स्थितिविशेष हैं उनमें भी जब उतने ही प्रदेशपुञ्जका निक्षेप होता है तब उनके भी क्रमसे उदयमें आनेपर वहाँ भी उत्कृष्ट प्रदेश-उदय कहना चाहिये। यह एक प्रश्न है। इसका समाधान करते हुए जो कुछ कहा गया है उसका आशय यह है कि उन स्थितिविशेषोंमें जो पूर्वकी गोपुच्छा है जिसे प्रकृति गोपुच्छा कहते हैं उसके प्रत्येक स्थितिविशेषमें उत्तरोत्तर एक-एक गोपुच्छाविशेषकी हानि देखी जाती है, अतः उन स्थितिविशेषोंमेंसे प्रत्येकमें संचित हुआ समग्र द्रव्य उपशान्त-कषायके प्रथम समयमें किये गये गुणश्रेणिशीर्षके द्रव्यसे उत्तरोत्तर हीन-हीन होता गया है, अतः उत्कृष्ट प्रदेश-उदय निर्दिष्ट स्थलपर ही जानना चाहिए।

§ ३००. अब उपशान्तकषायमें ज्ञानावरणादि कर्मोंका अनुभाग-उदय क्या अवस्थित होता है या अनवस्थितस्वरूप होता है ऐसी आशंका होनेपर उसका निराकरण करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** समग्र उपशान्तकालके भीतर केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणके अनु-भाग-उदयकी अपेक्षा अवस्थित वेदक होता है।**

§ ३०१. एदासिं दोण्हं सव्वघादिपयडीणमणुभागुदएण णिहालिज्जमाणे सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो होदि । किं कारणं ? अवट्ठिदपरिणामत्तादो । ण केवलमेदासिं चेवावट्ठिदवेदगो, किंतु अण्णासिं पि सव्वघादिपयडीणमुदइल्लाण-मवट्ठिदवेदगो चेव होदि [illegible] विद्यासागर जी महाराज

*** णिद्दा-पयलाणं पि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो ।**

§ ३०२. एदाओ णिद्दा-पयलाओ अद्धुवोदयाओ, तदो एदासिं सिया वेदगो सिया ण वेदगो । जदि वेदगो, जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो चेव होदि अवट्ठिद-परिणामत्तादो त्ति भणिदं होदि ।

*** अंतराइयस्स अवट्ठिदवेदगो ।**

§ ३०३. अंतराइयस्स वि पंचण्हं पयडीणमवट्ठिदवेदगो चेव होदि, अवट्ठिद-परिणामत्तादो । जइ वि एदासिं पयडीणं खओवसमलद्धिसंभवादो छवड्ढि-हाणीहिं हेट्ठा उदयसंभवो तो वि एत्थेदासिमवट्ठिदो चेव उदयपरिणामो होदि, अवट्ठिदेयवियप्प-परिणामविसए परिणामायत्ताणमेदाणमुदयस्स पयारंतरासंभवादो त्ति एसो एदस्स भावत्थो ।

---

§ ३०१. इन दोनों सर्वघाति प्रकृतियोंका अनुभाग-उदयकी अपेक्षा विचार करनेपर समग्र उपशान्तकालमें अवस्थित वेदक होता है ।

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—अवस्थित परिणाम होनेसे यह जीव उक्त कर्मोंके अनुभाग-उदयका अव-स्थित वेदक होता है ।

केवल इन्हीं प्रकृतियोंका अवस्थित वेदक नहीं होता । किन्तु उदयस्वरूप जो अन्य सर्वघाति प्रकृतियाँ हैं उनका भी अवस्थित वेदक ही होता है इसका ज्ञान करानेके लिए आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** निद्रा और प्रचलाका भी जब तक वेदक है तब तक अवस्थित वेदक होता है ।**

§ ३०२. ये निद्रा और प्रचला अध्रुव उदयवाली प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनका कदाचित् वेदक नहीं होता है । यदि वेदक होता है तो जब तक वेदक होता है तब तक अवस्थित वेदक ही होता है, क्योंकि वहाँपर अवस्थित परिणाम होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** अन्तरायकर्मका अवस्थितवेदक होता है ।**

§ ३०३. अन्तरायकर्मकी भी पाँचों प्रकृतियोंका अवस्थित वेदक ही होता है, क्योंकि इसके अवस्थित परिणाम होता है । यद्यपि इन प्रकृतियोंकी क्षयोपशम लब्धि सम्भव होनेसे छह वृद्धियों और छह हानियों द्वारा नीचे उदय सम्भव है तो भी यहाँ पर इन प्रकृतियोंका अवस्थित ही उदयपरिणाम होता है, क्योंकि अवस्थित एक भेदरूप परिणामके होनेपर परि-णामके आधीन इनके उदयका दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

*** सेसाणं लद्धिकम्मंसाणमणुभागुदयो वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा ।**

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

§ ३०४. सेसग्गहणेण पंचंतराइयाणं वुदासो कओ दट्ठव्वो। तदो ते मोत्तूण चदुणाणावरण-तिदंसणावरणाणमिह ग्गहणं कायव्वं, तत्तो अण्णेसिं लद्धिकम्मंसाणमेत्थाणुवलंभादो। जेसिं खओवसमपरिणामो अत्थि ते लद्धि-कम्मंसा त्ति भण्णंते, खओवसमलद्धी होदूण कम्मंसाणं लद्धिकम्मस्स ववएससिद्धीए विरोहाभावादो। एदेसिं च लद्धिकम्मंसाणमणुभागोदयो अवट्ठिदो चेवे त्ति णत्थि णियमो, किंतु तेसिमणुभागुदयस्स वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा होज्ज। कुदो एवं चे? परिणामपच्चयत्ते वि तेसिं छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदपरिणामाणमेत्थ संभवोवएसादो। तं जहा—ओहिणाणावरणीयस्स ताव उच्चदे। उवसंतकसायम्मि जइ ओहिणाणावरणस्स खओवसमो णत्थि तो अवट्ठिदोदयो भवदि, तत्थाणवट्ठाणकारणाणुवलंभादो। अथ खओवसमो अत्थि तो तत्थ छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदकमेणाणुभागस्स उदयो होदि। किं कारणं? ओहिणाणावरणक्खओवसमस्स देस-परमोहिणाणीसु असंखेज्जलोयभेय-भिण्णस्स वड्ढि-हाणि-अवट्ठिदाणमवट्ठिदपरिणामाणं वज्झंतरंगकारणसव्वपेक्खाणं संभवे विरोहाभावादो। तदो सव्वुक्कस्सखओवसमपरिणदम्मि उक्कस्सोहिणाणिम्मि

*** शेष लब्धिकर्मांशोंका अनुभाग-उदय वृद्धि, हानि या अवस्थानस्वरूप होता है।**

§ ३०४. यहाँपर सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे पाँच अन्तराय प्रकृतियोंका निराकरण किया हुआ जानना चाहिए, इसलिए उन्हें छोड़कर चार ज्ञानावरण और तीन दर्शनावरण प्रकृतियोंका यहाँपर ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उनसे अतिरिक्त अन्य लब्धिकर्मांश यहाँ उपलब्ध नहीं होते। जिनका क्षयोपशमरूप परिणाम होता है वे लब्धिकर्मांश कहे जाते हैं, क्योंकि क्षयोपशमलब्धि होकर कर्मांशोंकी लब्धिकर्मांश संज्ञाकी सिद्धि होनेमें विरोधका अभाव है। इन लब्धिकर्मांशोंका अनुभागउदय अवस्थित ही होता है यह नियम नहीं है। किन्तु उनके अनुभागके उदयकी वृद्धि, हानि या अवस्थान होता है।

शंका—ऐसा किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि परिणाम प्रत्यय होनेपर भी उनकी छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थित परिणामका यहाँपर सम्भव होनेका उपदेश पाया जाता है। यथा—सर्वप्रथम अवधिज्ञानावरणका कहते हैं। उपशान्तकषायमें यदि अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम नहीं है तो अवस्थित उदय होता है, क्योंकि अनवस्थितपनेका कारण नहीं पाया जाता। यदि क्षयोपशम है तो वहाँ छह वृद्धियों, छह हानियों और अवस्थित क्रमसे अनुभाग का उदय होता है, क्योंकि देशावधि और परमावधि ज्ञानी जीवोंमें असंख्यात लोकप्रमाण भेदरूप अवधिज्ञानावरणसम्बन्धी क्षयोपशमके अवस्थित परिणामके होनेपर भी वृद्धि, हानि और अवस्थानके बाह्य और आभ्यन्तर कारणोंकी अपेक्षासे होनेमें विरोधका अभाव है। इसलिए सबसे उत्कृष्ट क्षयोपशमसे परिणत हुए उत्कृष्ट अवधिज्ञानी जीवमें अवधिज्ञानावरण-

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अवट्ठिदो ओहिणाणावरणाणुभागुदयो होइ, तत्तो अण्णत्थ छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिद-सरूवेणाणवट्ठिदो तदुदयो होदि त्ति एसो एदस्स भावत्थो।

§ ३०५. एवं मणपज्जवणाणावरणीयस्स वि वत्तव्वं। एवं सेसणाणावरण-दंसणावरणीयाणं पि समयाविरोहेण एसो अत्थो जाणिऊण परूवेयव्वो। संपहि अघादि-कम्माणि वि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो चेव होदि त्ति पदुप्पायणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

*** णामाणि गोदाणि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागोदएण।**

§ ३०६. एत्थ णामग्गहणेण वेदिज्जमाणणामपयडीणं गहणं कायव्वं, अवेदिज्ज-माणपयडीणमेत्थाणहियारादो। ताओ कदमाओ त्ति भणिदे—मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर० छण्हं संठाणाणमेकदर० ओरालियसरीरअंगोवंग० तिण्हं संघडणाणमेकदर० वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास० दोण्हं विहायगदीणमेकदर० तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुभासुभ० सुस्सर-दुस्सराणमेकदर० आदेज्ज-जसगित्ति-णिमिणमिदि एदाओ। एत्थ तेजा-कम्मइयसरीर-वण्ण-गंध-रस-सीदुण्ह-णिद्धरुक्खणामाणि अगुरुअलहुअ-थिराथिर-सुभासुभ-सुभगादेज्ज-जसगित्ति-णिमिणणाममिदि एदाणि परिणामपच्चइयाणि। गोदग्गहणेण उच्चागोदस्स

का उदय अवस्थित होता है। तथा उससे अन्यत्र उसका उदय छह वृद्धियों, छह हानियों और अवस्थितरूपसे अनवस्थित होता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

§ ३०५. इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरणकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये। इसी प्रकार शेष ज्ञानावरण और शेष दर्शनावरणकी अपेक्षा भी आगमानुसार यह अर्थ जानकर कथन करना चाहिये। अब अघातिकर्म भी जो परिणामप्रत्यय हैं उनका अवस्थित वेदक ही होता है इसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** जो नामकर्म और गोत्रकर्म परिणामप्रत्यय होते हैं उनका अनुभागउदयकी अपेक्षा अवस्थित वेदक होता है।**

§ ३०६. यहाँपर 'नाम' पदके ग्रहण करनेसे वेदी जानेवाली नामप्रकृतियोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि नहीं वेदी जानेवाली नामप्रकृतियोंका यहाँ अधिकार नहीं है। वे कौन हैं ऐसा कहनेपर मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानोंमेंसे कोई एक संस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग, तीन संहननोंमेंसे कोई एक संहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, दो विहायोगतियोंमेंसे कोई एक विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर और दुःस्वरमेंसे कोई एक, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माण ये प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे तैजस-शरीर, कार्मणशरीर, वर्ण, गन्ध, रस, शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और निर्माणनाम ये प्रकृतियाँ परिणामप्रत्यय हैं। गोत्रकर्मके ग्रहण करनेसे परिणामप्रत्यय उच्चगोत्रका ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार परि-

परिणामपच्चइयस्स गहणं कायव्वं । एवमेदेसिं परिणामपच्चइयाणं णामा-गोदाणमेसो अणुभागोदएणावट्ठिदवेदगो चेव होइ, परिणामपच्चइयाणं तेसिमवट्ठिदपरिणामविसये पयारंतरासंभवादो त्ति सुत्तत्थसंगहो । सेसाणं पुण भवपच्चइयाणमेत्थ वेदिज्जमाणसादादि-पयडीणं सादादीणं छवड्ढि-छहाणिकमेणाणुभागमेसो वेदेदि त्ति घेत्तव्वं । एवमेत्तिएण पबंधेण कसायोवसामगस्स परूवणाविहासणं कादूण संपहि पयदमत्थमुवसंहरेमाणो इदमाह——

* एवमुवसामगस्स परूवणा विहासा समत्ता ।

§ ३०७. सुगमं ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

णामप्रत्यय इन नाम और गोत्रकर्मका यह अनुभाग-उदयकी अपेक्षा अवस्थितवेदक ही है, क्योंकि परिणामप्रत्यय उनके अवस्थित परिणामविषयक होनेपर दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है यह सूत्रार्थसमुच्चय है । परन्तु यहाँपर वेदी जानेवाली भवप्रत्यय शेष सातावेदनीय आदि अघाति प्रकृतियोंके छह वृद्धि और छह हानिके क्रमसे अनुभागको यह वेदता है ऐसा ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा कषायोंके उपशामककी प्ररूपणाका विशेष व्याख्यान करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए इस सूत्रको कहते हैं——

* इस प्रकार उपशामकका प्ररूपणासम्बन्धी विशेष व्याख्यान समाप्त हुआ ।

§ ३०७. यह सूत्र सुगम है ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

परिसिट्ठाणि

परिसिट्ठाणि

दंसणमोहक्खवणा-अत्थाहियारो

१ सुत्तगाहा-चुण्णिसुत्ताणि

[1]दंसणमोहक्खवणाए पुव्वं गमणिज्जाओ पंच सुत्तगाहाओ। [2]तं जहा—

(५७) दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो दु।
णियमा मणुसगदीए णिट्ठवगो चावि सव्वत्थ ॥ ११० ॥

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(५८) [3]मिच्छत्तवेदणीए कम्मे ओवट्टिदम्मि सम्मत्ते।
खवणाए पट्ठवगो जहण्णगो तेउलेस्साए ॥ १११ ॥

(५९) [4]अंतोमुहुत्तमद्धं दंसणमोहस्स णियमसा खवगो।
खीणे देव-मणुस्से सिया वि णामाउगो बंधो ॥ ११२ ॥

(६०) [5]खवणाए पट्ठवगो जम्हि भवे णियमसा तदो अण्णो।
णाधिच्छदि तिण्णि भवे दंसणमोहम्मि खीणम्मि ॥ ११३ ॥

(६१) [6]संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा।
सेसासु खीणमोहा गदीसु णियमा असंखेज्जा (५) ॥ ११४ ॥

[7]पच्छा सुत्तविहासा। तत्थ ताव पुव्वं गमणिज्जा परिहासा। [8]तं जहा—तिण्हं कम्माणं ट्ठिदीओ ओट्टिदव्वाओ। [9]अणुभागफद्दयाणि च ओट्टियव्वाणि। [10]तदो अण्णमधापवत्तकरणं पढमं अपुव्वकरणं विदियं अणियट्टिकरणं तदियं। एदाणि ओट्टेदूण अधापवत्तकरणस्स लक्खणं भाणियव्वं। एवमपुव्वकरणस्स वि। अणियट्टिकरणस्स वि। [11]एदेसिं लक्खणाणि जारिसाणि उवसामगस्स तारिसाणि चेव।

अधापवत्तकरणस्स चरिमसमए इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ परूवेयव्वाओ। तं जहा—दंसणमोहक्खवगस्स० १। काणि वा पुव्वबद्धाणि २। के अंसे झीयदे पुव्वं ३। किं ट्ठिदियाणि कम्माणि ४।

[12]एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण अपुव्वकरणपढमसमए आढवेयव्वाओ। [13]अधापवत्तकरणे ताव णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा। णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि। सुहाणं कम्मंसाणमणंतगुणवड्ढिबंधो असुहाणं कम्मंसाणमणंतगुणहाणिबंधो। बंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हायदि। [14]एसा अधापवत्तकरणे परूवणा।

अपुव्वकरणस्स पढमसमए दोण्हं जीवाणं ट्ठिदिसंतकम्मादो ट्ठिदिसंतकम्मं तुल्लं वा विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा। ट्ठिदिखंडयादो वि ट्ठिदिखंडयं दोण्हं जीवाणं तुल्लं वा

---

(१) पृ. १। (२) पृ. २। (३) पृ. ४। (४) पृ. ७। (५) पृ. ९। (६) पृ. १०। (७) पृ. ११। (८) पृ. १२। (९) पृ. १३। (१०) पृ. १४। (११) पृ. १५। (१२) पृ. २१। (१३) पृ. २२। (१४) पृ. २३।

विसेसाहियं वा संखेज्जगुणं वा। [1]तं जहा—दोण्णं जीवाणमेक्को कसाए उवसामेयूण खीणदंसणमोहणीयो जादो। एक्को कसाए अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो। जो अणुवसामेयूण खीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। [2]जो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेदूण पच्छा कसाए उवसामेदि वा, जो दंसणमोहणीयमक्खवेयूण कसाए उवसामेइ तेसिं दोण्हं पि जीवाणं कसाएसु उवसंतेसु तुल्लकाले समधिच्छिदे तुल्लं ट्ठिदिसंतकम्मं।[3] जो पुव्वं कसाए उवसामेयूण पच्छा दंसणमोहणीयं खवेइ, अण्णो पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाए उवसामेइ एदेसिं दोण्हं पि खीणदंसणमोहणीयाणं खवण-करणेसु उवसमणकरणेसु च णिट्ठिदेसु तुल्ले काले विदिक्कंते जेण पच्छा दंसणमोहणीयं खविदं तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। जेण पुव्वं दंसणमोहणीयं खवेयूण पच्छा कसाया उवसामिदा तस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

[4]अपुव्वकरणस्स पढमसमये जहण्णगेण कम्मेण उवट्ठिदस्स ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। उक्कस्सेण उवट्ठिदस्स सागरोवमपुधत्तं। [5]ट्ठिदिबंधादो जाओ ओसरिदाओ ट्ठिदीओ ताओ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। अप्पसत्थाणं कम्माणमणुभागखंडयपमाण-मणुभागफद्दयाणमणंता भागा आगाइदा। [6]गुणसेढी उदयावलियबाहिरा। [7]विदियसमए तं चेव ट्ठिदिखंडयं तं चेव अणुभागखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो। गुणसेढी अण्णा। एवमंतोमुहुत्तं जाव अणुभागखंडयं पुण्णं। एवमणुभागखंडयसहस्सेसु पुण्णेसु अण्णं ट्ठिदिखंडयं ट्ठिदि-बंधमणुभागखंडयं च पट्ठवेइ। [8]पढमं ट्ठिदिखंडयं बहुअं। विदियं ट्ठिदिखंडयं विसेस-हीणं। तदियं ट्ठिदिखंडयं विसेसहीणं। एवं पढमादो ट्ठिदिखंडयादो अंतो अपुव्व-करणद्धाए संखेज्जगुणहीणं पि अत्थि। [10]एदेण कमेण ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं बहुएहिं गदेहिं अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं पत्तो। तस्स अणुभागखंडयउक्कीरणकालो ट्ठिदिखंडयउक्कीरण-कालो ट्ठिदिबंधकालो च समगं समत्तो। [11]चरिमसमयअपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं थोवं। पढमसमयअपुव्वकरणे ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। ट्ठिदिबंधो वि पढमसमयअपुव्वकरणे बहुगो। चरिमसमयअपुव्वकरणे संखेज्जगुणहीणो।

पढमसमय-अणियट्टिकरणपविट्ठस्स अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणुभागखंडयमपुव्वो ट्ठिदिबंधो तहा चेव गुणसेढी। [12]अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयमप्पसत्थमुव-सामणाए अणुवसंतं। सेसाणि कम्माणि उवसंताणि च अणुवसंताणि च।

[13]अणियट्टिकरणस्स पढमसमए दंसणमोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं सागरोवमसदसहस्स-पुधत्तमंतोकोडीए। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं कोडिसदसहस्सपुधत्तमंतोकोडाकोडीए। तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेहिं अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण दंसण-मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। [14]तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण चउरिंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण तीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण बीइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण एइंदियबंधेण ट्ठिदिसंतकम्मं समगं। [15]तदो ट्ठिदिखंडयपुधत्तेण पलिदोवमट्ठिदिगं जादं दंसणमोहणीयट्ठिदिसंतकम्मं। जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो ट्ठिदिखंडयं। पलिदोवमे ओलुत्ते तदो पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। [16]तदो सेसस्स संखेज्जा भागा आगा-

(१) पृ. २६। (२) पृ. २७। (३) पृ. २९। (४) पृ. ३१। (५) पृ. ३२। (६) पृ. ३३। (७) पृ. ३४। (८) पृ. ३५। (९) पृ. ३६। (१०) पृ. ३७। (११) पृ. ३८। (१२) पृ. ४०। (१३) पृ. ४१। (१४) पृ. ४२। (१५) पृ. ४३। (१६) पृ. ४४।

मार्गदर्शक :- एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जे भागे ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तदो सेसस्स असंखेज्जा भागा आगाइदा।

[1]एवं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागिगेसु बहुएसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु तदो सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा। [2]तदो बहुएसु ट्ठिदिखंडएसु गदेसु मिच्छत्तस्स आवलियबाहिरं सव्वमागाइदं। सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो सेसो।[3] तदो ट्ठिदिखंडए णिट्ठायमाणे णिट्ठिदे मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो उक्कसओ पदेससंकमो। ताधे सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सगं पदेससंतकम्मं। [4]तदो आवलियाए दुसमयूणाए गदाए मिच्छत्तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं। [5]मिच्छत्ते पढमसमयसंकंते सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जा भागा आगाइदा। एवं संखेज्जेहिं ट्ठिदिखंडएहिं गदेहिं सम्मामिच्छत्तमावलियबाहिरं सव्वमागाइदं।

[6]ताधे सम्मत्तस्स दोण्णि उवदेसा। के वि भणंति संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदाणि त्ति। पवाइज्जंतेण उवदेसेण अट्ठ वस्साणि सम्मत्तस्स सेसाणि। सेसाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ त्ति। [7]एदम्मि ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे ताधे जहण्णगो सम्मामिच्छत्तस्स ट्ठिदिसंकमो। सम्मत्तस्स उक्कस्सपदेससंतकम्मं।

[8]अट्ठवस्स-उवदेसेण परूविज्जिहिदि। तं जहा—अपुव्वकरणस्स पढमसमए पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागिगं ट्ठिदिखंडयं ताव जाव पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं जादं। पलिदोवमे ओलुत्ते पलिदोवमस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। तम्हि गदे सेसस्स संखेज्जा भागा आगाइदा। एवं संखेज्जाणि ट्ठिदिखंडयसहस्साणि गदाणि। तदो दूरावकिट्टी पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागे संतकम्मे सेसे तदो ट्ठिदिखंडयं सेसस्स असंखेज्जा भागा। एवं ताव सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव मिच्छत्तं खविदं ति। सम्मामिच्छत्तं पि खवेंतस्स सेसस्स असंखेज्जा भागा जाव सम्मामिच्छत्तं पि खविज्जमाणं खविदं संछुब्भमाणं संछुद्धं। ताधे चेव सम्मत्तस्स संतकम्ममट्ठवस्सट्ठिदिगं जादं। [9]ताधे चेव दंसणमोहणीयक्खवगो त्ति भण्णइ।

[10]एत्तो पाए अंतोमुहुत्तिगं ट्ठिदिखंडयं। [11]अपुव्वकरणस्स पढमसमयादो पाए जाव चरिमं पलिदोवमस्स असंखेज्जभागट्ठिदिखंडयं ति एदम्मि काले जं पदेसग्गमोकड्डमाणो सव्वरहस्साए आवलियबाहिरट्ठिदीए पदेसग्गं देदि तं थोवं। समयुत्तराए ट्ठिदीए जं पदेसग्गं देदि तमसंखेज्जगुणं। एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं। सेसासु वि ट्ठिदीसु विसेसहीणं चेव। णत्थि गुणगारपरावत्ती। [12]जाधे अट्ठवासट्ठिदिगं संतकम्मं सम्मत्तस्स ताधे पाए सम्मत्तस्स अणुभागस्स अणुसमय-ओवट्टणा। एसो ताव एक्को किरियापरियत्तो। [13]अंतोमुहुत्तिगं चरिमट्ठिदिखंडयं। [14]ताधे पाए ओवट्टिज्जमाणासु ट्ठिदीसु उदए थोवं पदेसग्गं दिज्जदे। से काले असंखेज्जगुणं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं। तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं देदि। तदो विसेसहीणं। [15]एवं जाव दुचरिमट्ठिदिखंडयं ति।

[16]सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे जाओ ट्ठिदीओ सम्मत्तस्स सेसाओ ताओ ट्ठिदीओ थोवाओ। दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं।

---

(१) पृ. ४८। (२) पृ. ४९। (३) पृ. ५१। (४) पृ. ५२। (५) पृ. ५३। (६) पृ. ५४। (७) पृ. ५५। (८) पृ. ५६। (९) पृ. ५८। (१०) पृ. ५९। (११) पृ. ६०। (१२) पृ. ६२। (१३) पृ. ६३। (१४) पृ. ६४। (१५) पृ. ७०। (१६) पृ. ७१।

[१]चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो गुणसेढीए संखेज्जे भागे आगाएदि । अण्णाओ च उवरि संखेज्ज-गुणाओ ट्ठिदीओ ।

[२]सम्मत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडए पढमसमयमागाइदे ओवट्टिज्जमाणासु [३]ट्ठिदीसु जं पदेस-ग्गमुदए दिज्जदि तं थोवं । से काले असंखेज्जगुणं ताव जाव ठिदिखंडयस्स जहण्णियाए ट्ठिदीए चरिमसमयअपत्तो त्ति । [४]सा चेव ट्ठिदी गुणसेढिसीसयं जादं । [५]जमिदाणिं गुणसेढि-सीसयं तदो उवरिमाणंतराए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं । तदो विसेसहीणं जाव पोराणगुणसेढि-सीसयं ताव । तदो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं । तदो विसेसहीणं । सेसासु वि विसेसहीणं । [६]विदियसमए जमुक्कीरदि पदेसग्गं तं पि एदेणेव कमेण दिज्जदि । [७]एवं ताव जाव ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धाए दुचरिमसमयो त्ति । ट्ठिदिखंडयस्स चरिमसमये ओकड्डमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि । एवं जाव गुणसेढिसीसयं ताव असंखेज्जगुणं । [८]गुणगारो वि दुचरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गादो चरिमाए ट्ठिदीए पदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमवग्गमूलाणि । [९]चरिमे ट्ठिदिखंडए णिट्ठिदे कदकरणिज्जो त्ति भण्णदे ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ताधे मरणं पि होज्ज । लेस्सापरिणामं पि परिणामेज्ज । [१०]काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साणं-मण्णदरो । उदीरणा पुण संकिलिट्ठस्सदु वा विसुज्झदु वा तो वि असंखेज्जसमयपबद्धा असं-खेज्जगुणाए सेढीए जाव समयाहिया आवलिया सेसा त्ति । [११]उदयस्स पुण असंखेज्जदिभागो उक्कस्सिया वि उदीरणा ।

[१२]पलिदोवमस्स असंखेज्जभागियमपच्छिमं ठिदिखंडयं तस्स ठिदिखंडयस्स चरिम-समए गुणगारपरावत्ती तदो आढत्ता ताव गुणगारपरावत्ती जाव चरिमस्स ट्ठिदिखंडयस्स दु-चरिमसमयो त्ति । सेसेसु समयेसु णत्थि गुणगारपरावत्ती । [१३]पढमसमय-कदकरणिज्जो जदि मरदि देवेसु उववज्जदि णियमा । [१४]जइ णेरइएसु तिरिक्खजोणिएसु वा मणुसेसु वा उववज्जदि णियमा अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो । [१५]जइ तेउ-पम्म-सुक्के वि अंतोमुहुत्तकदकरणिज्जो । [१६]एवं परिभासा समत्ता ।

[१७]दंसणमोहणीयक्खवगस्स पढमसमए अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव पढमसमयकद-करणिज्जो त्ति एदम्हि अंतरे अणुभागखंडय-ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं ट्ठिदिखंडय-ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्माणं जहण्णुक्कस्सयाणं आबाहाणं च जहण्णुक्कस्सियाण-मण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा— [१८]सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा । उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीरणद्धा विसेसाहिया । [१९]ट्ठिदिखंडयउक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च जहण्णियाओ दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ । ताओ उक्कस्सियाओ दो वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ । कदकरणिज्जस्स अद्धा संखेज्जगुणा । [२०]सम्मत्तक्खवणद्धा संखेज्जगुणा । अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा । अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा । गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । [२१]सम्मत्तस्स दुचरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । तस्सेव चरिमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं । अट्ठवस्सट्ठिदिगे संतकम्मे सेसे जं पढमं ट्ठिदिखंडयं तं संखेज्जगुणं । जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा । उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा । [२२]पढमसमयअणुभागं अणु-

(१) पृ. ७२ । (२) पृ. ७३ । (३) पृ. ७४ । (४) पृ. ७५ । (५) पृ. ७६ । (६) पृ. ७७ । (७) पृ. ७८ । (८) पृ. ७९ । (९) पृ. ८१ । (१०) पृ. ८२ । (११) पृ. ८३ । (१२) पृ. ८४ । (१३) पृ. ८६ । (१४) पृ. ८७ । (१५) पृ. ८८ । (१६) पृ. ८९ । (१७) पृ. ९० । (१८) पृ. ९१ । (१९) पृ. ९२ । (२०) पृ. ९३ । (२१) पृ. ९४ । (२२) पृ. ९५ ।

समयोवट्टमाणगस्स अट्ठ वस्साणि ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। सम्मत्तस्स असंखेज्जवस्सियं चरिमट्ठिदिखंडयं असंखेज्जगुणं। सम्मामिच्छत्तस्स चरिममसंखेज्जवस्सियं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं। मिच्छत्ते खविदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। [1]मिच्छत्तसंतकम्मियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। मिच्छत्तस्स चरिमट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं। [2]असंखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं पढमट्ठिदिखंडयं मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणं। संखेज्जगुणहाणिट्ठिदिखंडयाणं चरिमट्ठिदिखंडयं जं तं संखेज्जगुणं। पलिदोवमसंतकम्मादो ट्ठिदियं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। जम्हि ट्ठिदिखंडए अवगदे दंसणमोहणीयस्स पलिदोवममेत्तं ट्ठिदिसंतकम्मं होइ तं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। [3]अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। पलिदोवममेत्ते ट्ठिदिसंतकम्मे जादे तदो पढमं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। [4]पलिदोवमट्ठिदिसंतकम्मं विसेसाहियं। अपुव्वकरणे पढमस्स उक्कस्सगट्ठिदिखंडयस्स विसेसो संखेज्जगुणो। दंसणमोहणीयस्स अणियट्टिपढमसमयं पविट्ठस्स ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। दंसणमोहणीयवज्जाणं कम्माणं जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। [5]तेसिं चेव उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। दंसणमोहणीयवज्जाणं जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। तेसिं चेव उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। [6]एदम्हि दंडए समत्ते सुत्तगाहाओ अणुसंवण्णेदव्वाओ।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

संखेज्जा च मणुस्सेसु खीणमोहा सहस्ससो णियमा त्ति एदिस्से गाहाए अट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च। एवं दंसणमोहक्खवणाए पंचण्हं सुत्तगाहाणमत्थविहासा समत्ता।

१२ संजमासंजमलद्धि-अत्थाहियारो

[7]देसविरदे त्ति अणिओगद्दारे एया सुत्तगाहा। [8]तं जहा—

(६२) लद्धी य संजमासंजमस्स लद्धी तहा चरित्तस्स।
वड्ढावड्ढी उवसामणा य तहा पुव्वबद्धाणं ॥ ११५ ॥

[10]एदस्स अणियोगद्दारस्स पुव्वं गमणिज्जा परिभासा। तं जहा—एत्थ अधापवत्तकरणद्धा अपुव्वकरणद्धा च अत्थि, अणियट्टिकरणं णत्थि। [11]संजमासंजममंतोमुहुत्तेण लभिहिदि त्ति तदो प्पहुडि सव्वो जीवो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधं ट्ठिदिसंतकम्मं च अंतोकोडाकोडीए करेदि सुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च चदुट्ठाणियं करेदि। असुभाणं कम्माणमणुभागबंधमणुभागसंतकम्मं च दुट्ठाणियं करेदि। [12]तदो अधापवत्तकरणं णाम अणंतगुणाए विसोहीए विसुज्झदि। णत्थि ट्ठिदिखंडयं वा अणुभागखंडयं वा। केवलं ट्ठिदिबंधे पुण्णे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणेण ट्ठिदिं बंधदि। जे सुभा कम्मंसा ते अणुभागेहिं अणंतगुणेहिं बंधदि। जे असुहकम्मंसा ते अणंतगुणहीणेहिं बंधदि।

[13]विसोहीए तिव्व-मंदं वत्तइस्सामो। अधापवत्तकरणस्स जदो प्पहुडि विसुद्धो तस्स

(१) पृ. ९६। (२) पृ. ९७। (३) पृ. ९८। (४) पृ. ९९। (५) पृ. १००। (६) पृ. १०१। (७) पृ. १०३। (८) पृ. १०५। (९) पृ. १०६। (१०) पृ. ११३। (११) पृ. ११४। (१२) पृ. ११६। (१३) पृ. ११७।

पढमसमए जहण्णिया विसोही थोवा। बिदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। तदियसमए जहण्णिया विसोही अणंतगुणा। एवमंतोमुहुत्तं जहण्णिया चेव विसोही अणंतगुणेण गच्छइ। [1]तदो पढमसमए उक्कस्सिया विसोही अणंतगुणा। सेस-अधापवत्त-करणविसोही जहा दंसणमोहउवसामगस्स अधापवत्तकरणविसोही तहा चेव कायव्वा।

[2]अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं सागरोवमपुधत्तं। [3]अणुभागखंडयमसुहाणं कम्माणमणुभागस्स अणंता भागा आगाइदा। सुभाणं कम्माणमणुभागघादो णत्थि। गुणसेढी च णत्थि।[4]

ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्ज[illegible] अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदि-खंडय-उक्कीरणकालो ट्ठिदिबंधकालो च अण्णो च अणुभागखंडय-उक्कीरणकालो समगं समत्ता भवंति। तदो अण्णं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जभागिगं अण्णं ट्ठिदिबंधमण्णमणुभाग-खंडयं च पट्ठवेइ। एवं ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु अपुव्वकरणद्धा समत्ता भवदि।

[5]तदो से काले पढमसमय-संजदासंजदो जादो। [6]ताधे अपुव्वं ट्ठिदिखंडयमपुव्वमणु-भागखंडयमपुव्वं ट्ठिदिबंधं च पट्ठवेदि। असंखेज्जे समयपबद्धे ओकड्डियूण गुणसेढीए उदयावलियबाहिरे रचेदि। [7]से काले तं चेव ट्ठिदिखंडयं तं चेव अणुभागखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो। गुणसेढी असंखेज्जगुणा। गुणसेढिणिक्खेवो अवट्ठिदगुणसेढी तत्तिगा चेव। [8]एवं ट्ठिदिखंडएसु बहुएसु गदेसु तदो अधापवत्तसंजदासंजदो जायदे।

[9]अधापवत्तसंजदासंजदस्स ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा णत्थि। जदि संजमा-संजमादो परिणामपच्चएण णिग्गदो, पुणो वि परिणामपच्चएण अंतोमुहुत्तेण आणीदो संजमा-संजमं पडिवज्जइ तस्स वि णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा। [10]जाव संजदासंजदो ताव गुणसेढिं समए समए करेदि। [11]विसुज्झंतो असंखेज्जगुणं वा संखेज्जगुणं वा संखेज्ज-भागुत्तरं असंखेज्जभागुत्तरं वा करेदि। संकिलिस्संतो एवं चेव गुणहीणं वा विसेसहीणं वा करेदि। [12]जदि संजमासंजमादो पडिवदिदूण आगुंजाए मिच्छत्तं गंतूण तदो संजमासंजमं पडिवज्जइ अंतोमुहुत्तेण वा विप्पकट्ठेण वा कालेण तस्स वि संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स एदाणि चेव करणाणि कादव्वाणि।

[13]तदो एदिस्से परूवणाए समत्ताए संजमासंजमं पडिवज्जमाणगस्स पढमसमय-अपुव्व-करणादो जाव संजदासंजदो एयंताणुवड्डीए चरित्ताचरित्तलद्धीए वड्ढदि एदम्मि काले ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंतकम्मट्ठिदिखंडयाणं जहण्णुक्कस्सयाणमाबाहाणं जहण्णुक्कस्सियाणमुक्कीरणद्धाणं जहण्णुक्कस्सियाणं अण्णेसिं च पदाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो।[14] तं जहा—

सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा। उक्कस्सिया अणुभागखंडयउक्कीर-णद्धा विसेसाहिया। जहण्णिया ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा जहण्णिया ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। उक्कस्सियाओ विसेसाहियाओ।[15] पढमसमयसंजदासंजदप्पहुडि जं एगंताणुवड्डीए वड्ढदि चरित्ताचरित्तपज्जएहिं एसो वड्ढिकालो संखेज्जगुणो। अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा। जहण्णिया संजमासंजमद्धा सम्मत्तद्धा मिच्छत्तद्धा संजमद्धा असंजमद्धा सम्मा-मिच्छत्तद्धा च एदाओ छप्पि अद्धाओ तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। गुणसेढी संखेज्जगुणा।

(१) पृ. ११९। (२) पृ. १२०। (३) पृ. १२१। (४) पृ. १२२। (५) पृ. १२३। (६) पृ. १२४। (७) पृ. १२५। (८) पृ. १२६। (९) पृ. १२७। (१०) पृ. १२९। (११) पृ. १३०। (१२) पृ. १३१। (१३) पृ. १३२। (१४) पृ. १३३। (१५) पृ. १३४।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

[1]जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। जहण्णयं ट्ठिदिखंडय-मसंखेज्जगुणं। अपुव्वकरणस्स पढमं जहण्णयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। [2]पलिदोवमं संखेज्जगुणं। उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। [3]उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

संजदासंजदाणमट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा—संतपरूवणा दव्वपमाणं खेत्तं फोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च।[4] एदेसु अणिओगद्दारेसु समत्तेसु तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च कायव्वं।

[5]सामित्तं। उक्कस्सिया लद्धी कस्स? संजदासंजदस्स सव्वविसुद्धस्स से काले संजम-ग्गाहयस्स।[6] जहण्णिया लद्धी कस्स? तप्पाओग्गसंकिलिट्ठस्स से काले मिच्छत्तं गाहदि त्ति।

[7]अप्पाबहुअं। तं जहा—जहण्णिया संजमासंजमलद्धी थोवा। उक्कस्सिया संजमा-संजमलद्धी अणंतगुणा।

एत्तो संजदासंजदस्स लद्धिट्ठाणाणि वत्तइस्सामो।[8] तं जहा—[9]जहण्णयं लद्धिट्ठाण-मणंताणि फद्दयाणि।[10] तदो विदियलद्धिट्ठाणमणंतभागुत्तरं।[11] एवं छट्ठाणपदिदलद्धिट्ठाणाणि। [12]असंखेज्जा लोगा। जहण्णए लद्धिट्ठाणे संजमासंजमं ण पडिवज्जदि।[13] तदो असंखेज्जे लोगे अइच्छिदूण जहण्णयं पडिवज्जमाणस्स पाओग्गं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

[14]तिव्व-मंददाए अप्पाबहुअं। सव्वमंदाणुभागं जहण्णयं संजमासंजमस्स लद्धिट्ठाणं। [15]मणुसस्स पडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणं तत्तियं चेव। तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाण-यस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाण-मणंतगुणं। मणुससंजदासंजदस्स पडिवदमाणगस्स लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।[16] मणुसस्स पडिवज्ज-माणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।[17] तिरिक्खजोणियस्स पडिवज्जमाणगस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स पडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स पडिवज्जमाणगस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स जहण्णयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। [18]तिरिक्खजोणियस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवदमाणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं। मणुसस्स अपडिवज्जमाण-अपडिवद-माणयस्स उक्कस्सयं लद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

संजदासंजदो अपच्चक्खाणकसाए ण वेदयदि। [19]पच्चक्खाणावरणीया वि संजमा-संजमस्स ण किंचि आवरेंति। सेसा चदुकसाया णवणोकसायवेदणियाणि च उदिण्णाणि देसघादिं करेंति संजमासंजमं। [20]जइ पच्चक्खाणावरणीयं वेदेंतो सेसाणि चरित्तमोहणीयाणि ण वेदेज्ज तदो संजजमासंमलद्धी खइया होज्ज। [21]एक्केण वि उदिण्णेण खओवसमलद्धी भवदि।

१३ संजमलद्धि-अत्थाहियारो

[22]लद्धी तहा चरित्तस्से त्ति अणिओगद्दारे पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं। [23]तं जहा—जा चेव संजमासंजमे भणिदा गाहा सा चेव एत्थ वि कायव्वा। चरिमसमय-अधापवत्तकरणे चत्तारि

(१) पृ. १३५। (२) पृ. १३६। (३) पृ. १३७। (४) पृ. १३८। (५) पृ. १३९। (६) पृ. १४०। (७) पृ. १४१। (८) पृ. १४२। (९) पृ. १४३। (१०) पृ. १४४। (११) पृ. १४५। (१२) पृ. १४६। (१३) पृ. १४७। (१४) पृ. १४९। (१५) पृ. १५०। (१६) पृ. १५१। (१७) पृ. १५२। (१८) पृ. १५३। (१९) पृ. १५४। (२०) पृ. १५५। (२१) पृ. १५६। (२२) पृ. १५७। (२३) पृ. १५८।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

गाहाओ। तं जहा—[1]संजमं पडिवज्जमाणस्स परिणामो केरिसो भवे० (१)। काणि वा पुव्वबद्धाणि० (२)। के अंसे झीयदे पुव्वं० (३)। किं ट्ठिदियाणि कम्माणि० (४)। [2]एदाओ सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो संजमं पडिवज्जमाणगस्स उवक्कमविधिविहासा। तं जहा—जो संजमं पढमदाए पडिवज्जदि तस्स दुविहा अद्धा—अधापवत्तकरणद्धा च अपुव्वकरणद्धा च।

[3]अधापवत्तकरण-अपुव्वकरणाणि जहा संजमासंजमं पडिवज्जमाणयस्स परूविदाणि तहा संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि कायव्वाणि। तदो पढमसमए संजमप्पहुडि अंतोमुहुत्तमणंतगुणाए चरित्तलद्धीए वड्ढदि। [4]जाव चरित्तलद्धीए एगंताणुवड्ढीए वड्ढदि ताव अपुव्वकरणसण्णिदो भवदि। [5]एयंतरवड्ढीदो से काले चरित्तलद्धीए सिया वड्ढेज्ज वा हाएज्ज वा अवट्ठाएज्ज वा।

[6]संजमं पडिवज्जमाणयस्स वि पढमसमय-अपुव्वकरणमादिं कादूण जाव ताव अधापवत्तसंजदो त्ति एदम्हि काले इमेसिं पदाणमप्पाबहुअं कादव्वं। तं जहा—अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धाओ ट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धाओ जहण्णुक्कस्सियाओ इच्चेवमादीणि पदाणि। सव्वत्थोवा जहण्णिया अणुभागखंडय-उक्कीरणद्धा। सा चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया। जहण्णिया ट्ठिदिखंडय-उक्कीरणद्धा ट्ठिदिबंधगद्धा च दो वि तुल्लाओ संखेज्जगुणाओ। [7]तेसिं चेव उक्कस्सिया विसेसाहिया। पढमसमयसंजदमादिं कादूण जं कालमेयंताणुवड्ढीए वड्ढदि एसा अद्धा संखेज्जगुणा। अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा। जहण्णिया संजमद्धा संखेज्जगुणा। गुणसेढिणिक्खेवो संखेज्जगुणो। जहण्णिया आबाहा संखेज्जगुणा। उक्कस्सिया आबाहा संखेज्जगुणा। जहण्णयं ट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। अपुव्वकरणस्स पढमसमए जहण्णट्ठिदिखंडयं संखेज्जगुणं। पलिदोवमं संखेज्जगुणं। पढमस्स ट्ठिदिखंडयस्स विसेसो सागरोवमपुधत्तं संखेज्जगुणं। जहण्णओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो। [8]जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं। उक्कस्सयं ट्ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं।

संजमादो णिग्गदो असंजमं गंतूण जो ट्ठिदिसंतकम्मेण अणवट्ठिदेण पुणो संजमं पडिवज्जदि तस्स संजमं पडिवज्जमाणगस्स णत्थि अपुव्वकरणं णत्थि ट्ठिदिघादो णत्थि अणुभागघादो।

[9]एत्तो चरित्तलद्धिगाणं जीवाणं अट्ठ अणिओगद्दाराणि। तं जहा—संतपरूवणा दव्वं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भागाभागो अप्पाबहुअं च अणुगंतव्वं। [10]लद्धीए तिव्व-मंददाए सामित्तमप्पाबहुअं च।

[11]एत्तो जाणि ट्ठाणाणि ताणि तिविहाणि। तं जहा—पडिवादट्ठाणाणि उप्पादयट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि ३। [12]पडिवादट्ठाणं णाम जहा जम्हि ट्ठाणे मिच्छत्तं वा असंजमसम्मत्तं वा संजमासंजमं वा गच्छइ तं पडिवादट्ठाणं। [13]उप्पादयट्ठाणं णाम जहा जम्हि ट्ठाणे संजमं पडिवज्जइ तमुप्पादयट्ठाणं णाम। सव्वाणि चेव चरित्तट्ठाणाणि लद्धिट्ठाणाणि।

[14]एदेसिं लद्धिट्ठाणाणमप्पाबहुअं। तं जहा—सव्वत्थोवाणि पडिवादट्ठाणाणि। उप्पादयट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि। [15]लद्धिट्ठाणाणि असंखेज्जगुणाणि।

---

(१) पृ. १५९। (२) पृ. १६४। (३) पृ. १६५। (४) पृ. १६६। (५) पृ. १६७। (७) पृ. १६८। (७) पृ. १७९। (८) पृ. १७०। (९) पृ. १७१। (१०) पृ. १७४। (११) पृ. १७५। (१२) पृ. १७६। (१३) पृ. १७७। (१४) पृ. १७८। (१५) पृ. १७९।

[1]तिव्व-मंददाए सव्वमंदाणुभागं मिच्छत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणं। तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। असंजदसम्मत्तं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। [2]तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। संजमासंजमं गच्छमाणस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेवुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। [3]अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। [4]तस्सेवुक्कस्सयं पडिवज्जमाणयस्स संजमट्ठाणमणंतगुणं। कम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणयस्स उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। परिहारसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। [5]सामाइय-च्छेदोवट्ठावियाणमुक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदस्स जहण्णयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। तस्सेव उक्कस्सयं संजमट्ठाणमणंतगुणं। [6]वीयरायस्स अजहण्णमणुक्कस्सयं चरित्तलद्धिट्ठाणमणंतगुणं।

लद्धी तहा चरित्तस्से त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

१४ चरित्तमोहोवसामणा-अत्थाहियारो

[7]चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जं सुत्तं। तं जहा—

(६३) [8]उवसामणा कदिविधा उवसामो कस्स कस्स कम्मस्स।
कं कम्मं उवसंतं अणउवसंतं च कं कम्मं ॥ ११६ ॥

(६४) कदिभागुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च कदिभागो।
कदिभागं वा बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे पदेसग्गे ॥ ११७ ॥
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

(६५) [9]केवचिरमुवसामिज्जदि संकमणमुदीरणा च केवचिरं।
केवचिरं उवसंतं अणउवसंतं च केवचिरं ॥ ११८ ॥

(६६) [10]कं करणं वोच्छिज्जदि अव्वोच्छिण्णं च होइ कं करणं।
कं करणं उवसंतं अणउवसंतं च कं करणं ॥ ११९ ॥

(६७) [11]पडिवादो च कदिविधो कम्हि कसायम्हि होइ पडिवदिदो।
केसिं कम्मंसाणं पडिवदिदो बंधगो होइ ॥ १२० ॥

(६८) दुविहो खलु पडिवादो भवक्खयादुवसमक्खयादो दु।
सुहुमे च संपराए बादररागे च बोद्धव्वा ॥ १२१ ॥

(६९) [12]उवसामणाखएण दु पडिवदिदो होइ सुहुमरागम्हि।
बादररागे णियमा भवक्खया होइ परिवदिदो ॥ १२२ ॥

(७०) उवसामणाक्खएण दु अंसे बंधदि जहाणुपुव्वीए।
एमेव य वेदयदे जहाणुपुव्वीय कम्मंसे ॥ १२३ ॥

[13]चरित्तमोहणीयस्स उवसामणाए पुव्वं गमणिज्जा उवक्कमपरिभासा। तं जहा—

---

(१) पृ. १८२। (२) पृ. १८३। (३) पृ. १८४। (४) पृ. १८५। (५) पृ. १८६। (६) पृ. १८७। (७) पृ. १९१। (८) पृ. १९१। (९) पृ. १९२। (१०) पृ. १९३। (११) पृ. १९४। (१२) पृ. १९५। (१३) पृ. १९६।

[1]वेदयसम्माइट्ठी अणंताणुबंधी अविसंजोएदूण कसाए उवसामेदुं णो उवट्ठादि। सो ताव पुव्वमेव अणंताणुबंधी विसंजोएदि। तदो अणंताणुबंधी विसंजोएंतस्स जाणि करणाणि ताणि सव्वाणि परूवेयव्वाणि।[2] तं जहा—अधापवत्तकरणमपुव्वकरणमणियट्टिकरणं च। अधापवत्तकरणे णत्थि ट्ठिदिघादो वा अणुभागघादो वा गुणसेढी वा गुणसंकमो वा।[3] अपुव्वकरणे अत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च गुणसंकमो वि।[4] अणियट्टिकरणे वि एदाणि चेव। अंतरकरणं णत्थि।[5] एसा ताव जो अणंताणुबंधी विसंजोएदि तस्स समासपरूवणा।

तदो अणंताणुबंधी विसंजोइदे अंतोमुहुत्तमधापवत्तो जादो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तियादीणि ताव कम्माणि बंधादि।[6] तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयमुवसामेदि। ताधे ण अंतरं।[7] तदो दंसणमोहमुवसामेंतस्स जाणि करणाणि पुव्वपरूविदाणि ताणि सव्वाणि इमस्स वि परूवेयव्वाणि। तहा ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च अत्थि।

[8]अपुव्वकरणस्स जं पढमसमए ट्ठिदिसंतकम्मं तं चरिमसमए संखेज्जगुणहीणं।[9] दंसणमोहणीय-उवसामणा-अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु सम्मत्तस्स असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरणा। तदो अंतोमुहुत्तेण दंसणमोहणीयस्स अंतरं करेदि।

[10]सम्मत्तस्स पढमट्ठिदीए झीणाए जं तं मिच्छत्तस्स पदेसग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु गुणसंकमेण संकमिदि पढमदाए सम्मत्तमुप्पाएंतस्स तहा एत्थ णत्थि गुणसंकमो, इमस्स विज्झादसंकमो चेव।[11] पढमदाए सम्मत्तमुप्पादयमाणस्स जो गुणसंकमेण पूरणकालो तदो संखेज्जगुणं कालमिमो उवसंतदंसणमोहणीओ विसोहीए वड्ढदि। तेण परं हायदि वा वड्ढदि वा अवट्ठायदि वा।[12] तहा चेव ताव उवसंतदंसणमोहणिज्जो असाद-अरदि-सोग-अजसगित्तिआदीसु बंधपरावत्तसहस्साणि कादूण।[13] तदो कसाए उवसामेदुं कच्चे अधापवत्तपरिमाणस्स परिणामं परिणमइ। जं अणंताणुबंधी विसंजोएंतेण इदं दंसणमोहणीयं च उवसामेंतेण इदं कम्मं तमुवरि इदं।

[14]इदाणिं कसाए उवसामेंतस्स जमधापवत्तकरणं तम्हि णत्थि ट्ठिदिघादो अणुभागघादो गुणसेढी च। णवरि विसोहीए अणंतगुणाए वड्ढदि।[15] तं चेव इमस्स वि अधापवत्तकरणस्स लक्खणं जं पुव्वं परूविदं।[16] तदो अधापवत्तकरणस्स चरिमसमये इमाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ। तं जहा—कसायउवसामणपट्ठवगस्स० (१)। काणि वा पुव्वबद्धाणि० (२)। के अंसे झीयदे० (३)।[17] किं ट्ठिदियाणि० (४)।[18] एदाओ चत्तारि सुत्तगाहाओ विहासियूण तदो अपुव्वकरणस्स पढमसमए इमाणि आवासयाणि परूवेदव्वाणि।

जो खविददंसणमोहणिज्जो कसाय-उवसामगो तस्स खीणदंसणमोहणिज्जस्स कसायउवसमणाए अपुव्वकरणे पढमट्ठिदिखंडयं णियमा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।[19] ट्ठिदिबंधेण जमोसरदि सो वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।[20] असुभाणं कम्मंसाणमणंता भागा अणुभागखंडयं। ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए। ट्ठिदिबंधो वि अंतोकोडाकोडीए। गुणसेढी च अंतोमुहुत्तमेत्ता णिक्खित्ता।[21] तदो अणुभागखंडयपुधत्ते गदे अण्णमणुभागखंडयं पढमं ट्ठिदिखंडयं जो च अपुव्वकरणस्स पढमो ट्ठिदिबंधो एदाणि समगं णिट्ठिदाणि। तदो ट्ठिदि-

---

(१) पृ. १९७। (२) पृ. १९८। (३) पृ. १९९। (४) पृ. २००। (५) पृ. २०१। (६) पृ. २०२। (७) पृ. २०३। (८) पृ. २०४। (९) पृ. २०५। (१०) पृ. २०७। (११) पृ. २०८। (१२) पृ. २०९। (१३) पृ. २१०। (१४) पृ. २१२। (१५) पृ. २१३। (१६) पृ. २१४। (१७) पृ. २१५। (१८) पृ. २१६। (१९) पृ. २२२। (२०) पृ. २२३। (२१) पृ. २२४। (२२) पृ. २२५।

खंडयपुधत्ते गदे णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदो।[2] तदो अंतोमुहुत्ते गदे परभवियणामा-गोदाणं बंधवोच्छेदो।

[3]अपुव्वकरणपविट्ठस्स जम्हि णिद्दा-पयलाओ वोच्छिण्णाओ सो कालो थोवो। परभवियणामाणं वोच्छिण्णकालो संखेज्जगुणो।[4] अपुव्वकरणद्धा विसेसाहिया। तदो अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमए ट्ठिदिखंडयमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च समगं णिट्ठिदाणि। एदम्हि चेव समए हस्स-रइ-भय-दुगुंछाणं बंधवोच्छेदो। हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछाणमेदेसिं छण्हं कम्माणमुदयवोच्छेदो च।[5] तदो से काले पढमसमयअणियट्टी जादो। पढमसमयअणियट्टिकरणस्स ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।[6] अपुव्वो ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण हीणो। अणुभागखंडयं सेसस्स अणंता भागा। गुणसेढी असंखेज्जगुणाए सेढीए सेसे सेसे णिक्खेवो।[7] तिस्से चेव अणियट्टि-अद्धाए पढमसमए अप्पसत्थउवसामणाकरणं णिधत्तीकरणं णिकाचणाकरणं च वोच्छिण्णाणि।

आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोकोडाकोडीए।[8] ट्ठिदिबंधो अंतोकोडाकोडीए सदसहस्सपुधत्तं। तदो ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु ट्ठिदिबंधो सहस्सपुधत्तं। तदो अणियट्टि-अद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु असण्णिट्ठिदिबंधेण समगो ट्ठिदिबंधो।[9] तदो ट्ठिदिबंधपुधत्ते गदे चउरिंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो। एवं तीइंदिय-बीइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो। एइंदियट्ठिदिबंधसमगो ट्ठिदिबंधो।

तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगो ट्ठिदिबंधो।[9] णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं च दिवड्ढपलिदोवममेत्तट्ठिदिगो बंधो। मोहणीयस्स वेपलिदोवमट्ठिदिगो बंधो।[10] एदम्हि काले अदिच्छिदे सव्वम्हि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ट्ठिदिबंधेण ओसरदि। णामा-गोदाणं पलिदोवमट्ठिदिगादो बंधादो अण्णं जं ट्ठिदिबंधं बंधहिदि सो ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो।[11] सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जभागहीणो।

तदो प्पहुडि णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधे पुण्णे संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो होइ। सेसाणं कम्माणं जाव पलिदोवमट्ठिदिगं बंधं ण पावदि ताव पुण्णे ट्ठिदिबंधे पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागहीणो ट्ठिदिबंधो।[12] एवं ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। मोहणीयस्स तिभागुत्तरं पलिदोवमट्ठिदिगो बंधो। तदो जो अण्णो णाणावरणादिचदुण्हं पि ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो।

[13]तदो ट्ठिदिबंधपुधत्तेण गदेण मोहणीयस्स वि ट्ठिदिबंधो पलिदोवमं। तदो जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो आउगवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो।[14] तस्स अप्पाबहुअं। तं जहा—णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो थोवो। मोहणीयवज्जाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो संखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।[15] एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि। तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो। इदरेसिं चउण्हं पि तुल्लो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो।[16] एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।

---

(१) पृ. २२६। (२) पृ. २२७। (३) पृ. २२८। (४) पृ. २२९। (५) पृ. २३०। (६) पृ. २३१। (७) पृ. २३२। (८) पृ. २३३। (९) पृ. २३४। (१०) पृ. २३५। (११) पृ. २३६। (१२) पृ. २३७। (१३) पृ. २३८। (१४) पृ. २३९। (१५) पृ. २४०। (१६) पृ. २४१।

तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो। इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि। [1]तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेदणीय-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। [2]एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो णाणावरणादिट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जादो असंखेज्जगुणहीणो च। णत्थि अण्णो वियप्पो। जाव मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो उवरि आसी ताव असंखेज्जगुणो आसी। असंखेज्जगुणादो असंखेज्जगुणहीणो जादो। [3]तदो जो एसो ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं थोवो। मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो।

एदेण अप्पाबहुअविहिणा ट्ठिदिबंधसहस्साणि जादे बहूणि गदाणि। तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो एक्कसराहेण मोहणीयस्स थोवो। णामा-गोदाणमसंखेज्जगुणो। इदरेसिं चदुण्हं पि कम्माणं तुल्लो असंखेज्जगुणो। [4]एदेण कमेण संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो। एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णामा-गोदाणं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। [5]तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधस्स वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधादो ओसरंतस्स णत्थि वियप्पो संखेज्ज-गुणहीणो वा विसेसहीणो वा, एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो। एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि बहूणि गदाणि।

[6]तदो अण्णो ट्ठिदिबंधो। एक्कसराहेण मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो थोवो। णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो तुल्लो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ। [7]एत्थ वि णत्थि वियप्पो। तिण्हं पि कम्माणं ट्ठिदिबंधो णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो हेट्ठदो जायमाणो एक्कसराहेण असंखेज्जगुणहीणो जादो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो ताधे चेव णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधादो विसेसाहिओ जादो। एदेण अप्पाबहुअविहिणा संखेज्जाणि ट्ठिदिबंधसहस्साणि काढूण जाणि पुण कम्माणि बज्झंति ताणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। [8]तदो असंखेज्जाणं समय-पबद्धाणमुदीरणा च। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु मणपज्जवणाणावरणीय-[9]दाणंतरा-इयाणमणुभागो बंधेण देसघादी होइ।

तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु ओहिणाणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं लाभंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु सुदणाणावरणीयं अचक्खु-दंसणावरणीयं भोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि। [10]तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु चक्खुदंसणावरणीयं बंधेण देसघादिं करेदि। तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु आभिणिबोहिय-णाणावरणीयं परिभोगंतराइयं च बंधेण देसघादिं करेदि।

तदो संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधेसु गदेसु वीरियंतराइयं बंधेण देसघादिं करेदि। [11]एदेसिं कम्माणमक्खवगो अणुवसामगो सव्वो सव्वघादिं बंधदि। एदेसु कम्मेसु देसघादीसु जादेसु

(१) पृ. २४२। (२) पृ. २४३। (३) पृ. २४४। (४) पृ. २४५। (५) पृ. २४६। (७) पृ. २४७। (७) पृ. २४८। (८) पृ. २४९। (९) पृ. २५०। (१०) पृ. २५१। (११) पृ. २५२।

वि ट्ठिदिबंधो मोहणीये थोवो। णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइएसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। णामा-गोदेसु ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

तदो देसघादिकरणादो संखेज्जेसु ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु अंतरकरणं करेदि। चदुण्हं संजलणाणं णवण्हं णोकसायवेदणीयाणं च। णत्थि अण्णस्स कम्मस्स अंतरकरणं। जं संजलणं वेदयदि जं च वेदं वेदयदि एदेसिं दोण्हं कम्माणं पढमट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तिगाओ ठवेदूण अंतरकरणं करेदि। पढमट्ठिदीदो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ आगाइदाओ अंतरट्ठं। सेसाणमेक्कारसण्हं कसायाणमट्ठण्हं च णोकसायवेदणीयाणमुदयावलियं मोत्तूण अंतरं करेदि। उवरि समट्ठिदि-अंतरं हेट्ठा विसमट्ठिदिअंतरं।

[1]जाधे अंतरमुक्कीरदि ताधे अण्णो ट्ठिदिबंधो पबद्धो, अण्णं ट्ठिदिखंडयमण्णमणुभाग-खंडयं च गेण्हदि। [2]अणुभागखंडयसहस्सेसु गदेसु अण्णमणुभागखंडयं, तं चेव ट्ठिदिखंडयं सो चेव ट्ठिदिबंधो अंतरस्स उक्कीरणद्धा च समगं पुण्णाणि।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

अंतरं करेमाणस्स जे कम्मंसा बज्झंति वेदिज्जंति तेसिं कम्माणमंतरट्ठिदीओ उक्कीरेंतो तासिं ट्ठिदीणं पदेसग्गं बंधपयडीणं पढमट्ठिदीए च देदि विदियट्ठिदीए च देदि। [3]जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं सत्थाणे ण देदि, बज्झमाणीणं पयडीण-मणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। [4]जे कम्मंसा ण बज्झंति वेदिज्जंति च तेसिमुक्कीरमाणयं पदेसग्गं अप्पप्पणो पढमट्ठिदीए च देदि, बज्झमाणीणं पयडीणमणुक्कीरमाणीसु च ट्ठिदीसु देदि। [5]जे कम्मंसा ण बज्झंति ण वेदिज्जंति तेसिमुक्कीरमाणं पदेसग्गं बज्झमाणीणं पयडीण-मणुक्कीरमाणीसु ट्ठिदीसु देदि। [6]एदेण कमेण अंतरमुक्कीरमाणमुक्किण्णं।

[7]ताधे चेव मोहणीयस्स आणुपुव्वीसंकमो, लोभस्स असंकमो। मोहणीयस्स एगट्ठा-णिओ बंधो, णवुंसयवेदस्स पढमसमय-उवसामगो, छसु आवलियासु गदासु उदीरणा, मोहणीयस्स एगट्ठाणिओ उदयो, मोहणीयस्स संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो एदाणि सत्तविधाणि करणाणि अंतरकदपढमसमए होंति।

[10]छसु आवलियासु गदासु उदीरणा णाम किं भणिदं होइ। [11]विहासा। जहा णाम समयपबद्धो बद्धो आवलियादिक्कंतो सक्को उदीरेदुमेवमंतरादो पढमसमयकदादो पाए जाणि कम्माणि बज्झंति मोहणीयं वा मोहणीयवज्जाणि वा ताणि कम्माणि छसु आवलियासु गदासु सक्काणि उदीरेदुं, ऊणिगासु छसु आवलियासु ण सक्काणि उदीरेदुं। [12]एसा छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति सण्णा।

केण कारणेण छसु आवलियासु गदासु उदीरणा भवदि? णिदरिसणं। [13]जहा णाम बारस किट्टीओ भवे पुरिसवेदं च बंधइ तस्स जं पदेसग्गं पुरिसवेदे बद्धं ताव आवलियं अच्छदि। आवलियादिक्कंतं कोहस्स पढमकिट्टीए विदियकिट्टीए च संकामिज्जदि। [14]विदिय-किट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं तं कोहस्स तदियकिट्टीए च माणस्स पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदि। माणस्स विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं माणस्स च तदियकिट्टीए मायाए पढम-विदियकिट्टीसु च संकामिज्जदे। [15]मायाए विदियकिट्टीदो तम्हि आवलिया-दिक्कंतं मायाए तदियकिट्टीए लोभस्स च पढम-विदियकिट्टीसु संकामिज्जदि। लोभस्स

(१) पृ. २५३। (२) पृ. २५४। (३) . २५५। (४) पृ. २५६। (५) पृ. २५७। (६) पृ. २५८। (७) पृ. २५९। (८) पृ. २६१। (९) पृ. २६३। (१०) पृ. २६५। (११) पृ. २६६। (१२) पृ. २६७। (१३) पृ. २६८। (१४) पृ. २६९। (१५) पृ. २७०।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

विदियकिट्टीदो तम्हि आवलियादिक्कंतं लोभस्स तदियकिट्टीए संकामिज्जदि । एदेण कारणेण समयपबद्धो छसु आवलियासु गदासु उदीरिज्जदे ।

[1]जहा एवं पुरिसवेदस्स समयपबद्धादो छसु आवलियासु गदासु उदीरणा त्ति कारणं णिदरिसदं तहा एवं सेसाणं कम्माणं जदि वि एसो विधी णत्थि तहा वि अंतरादो पढम-समयकदादो पाए जे कम्मंसा बज्झंति तेसिं कम्माणं छसु आवलियासु गदासु उदीरणा । एदं णिदरिसणमेत्तं तं पमाणं कादुं णिच्छयदो गेण्हियव्वं ।

[2]अंतरादो पढमसमयकदादो पाए णवुंसयवेदस्स आउत्तकरणउवसामगो । सेसाणं कम्माणं ण किंचि उवसामेदि । जं पढमसमये पदेसग्गं उवसामेदि तं थोवं । जं विदियसमए उवसामेदि तमसंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामेदि जाव उवसंतं । णवुंसय-वेदस्स पढमसमय-उवसामगस्स जस्स वा तस्स वा कम्मस्स पदेसग्गस्स उदीरणा थोवा । उदयो असंखेज्जगुणो । णवुंसयवेदस्स पदेसग्गमण्णपयडिसंकामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं । उवसामिज्जमाणयमसंखेज्जगुणं । एवं जाव चरिमसमय-उवसंते त्ति ।

[3]जाधे पाए मोहणीयस्स बंधो संखेज्जवस्सट्ठिदिगो जादो ताधे पाए ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो संखेज्जगुणहीणो ट्ठिदिबंधो । मोहणीयवज्जाणं कम्माणं णवुंसयवेदमुवसामेंतस्स ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे अण्णो ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणहीणो । [4]एवं संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु णवुंसयवेदो उवसामिज्जमाणो उवसंतो ।

णवुंसयवेदे उवसंते से काले इत्थिवेदस्स उवसामगो । [5]ताधे चेव अपुव्वं ट्ठिदिखंडय-मपुव्वमणुभागखंडयं ट्ठिदिबंधो च पट्ठिदो । जहा णवुंसयवेदो उवसामिदो तेणेव कमेण इत्थिवेदं पि गुणसेढीए उवसामेदि । [6]इत्थिवेदस्स उवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो भवदि । जाधे संखेज्ज-वस्सट्ठिदिगो बंधो तस्समए चेव एदासिं तिण्हं मूलपयडीणं केवलणाणावरण-केवलदंसणा-वरणवज्जाओ सेसाओ जाओ उत्तरपयडीओ तासिमेगट्ठाणिओ बंधो । [8]जत्तो पाए णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं संखेज्जवस्सट्ठिदिओ बंधो तम्हि पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो संखेज्जगुणहीणो । तम्हि समए सव्वकम्माणमप्पाबहुअं भवदि । तं जहा—मोहणीयस्स सव्वत्थोवो ट्ठिदिबंधो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो असंखेज्जगुणो । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ । [10]एदेण कमेण संखेज्जेसु ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु इत्थिवेदो उवसामिज्जमाणो उवसामिदो ।

इत्थिवेदे उवसंते से काले सत्तण्हं णोकसायाणं उवसामगो । ताधे चेव अण्णं ट्ठिदि-खंडयमण्णमणुभागखंडयं च आगाइदं । अण्णो च ट्ठिदिबंधो पबद्धो । [11]एवं संखेज्जेसु ट्ठिदि-बंधसहस्सेसु गदेसु सत्तण्हं णोकसायाणमुवसामणद्धाए संखेज्जदिभागे गदे तदो णामा-गोद-वेदणीयाणं कम्माणं संखेज्जवस्सट्ठिदिगो बंधो । ताधे ट्ठिदिबंधस्स अप्पाबहुगं । तं जहा—सव्वत्थोवो मोहणीयस्स ट्ठिदिबंधो । णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्ज-गुणो । णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जगुणो । [12]वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ ।

एदम्मि ट्ठिदिबंधे पुण्णे जो अण्णो ट्ठिदिबंधो सो सव्वकम्माणं पि अप्पप्पणो ट्ठिदि-बंधादो संखेज्जगुणहीणो । एदेण कमेण ट्ठिदिबंधसहस्सेसु गदेसु सत्त णोकसाया उवसंता ।

---

(१) पृ. २७१ । (२) पृ. २७२ । (३) पृ. २७३ । (४) पृ. २७४ । (५) पृ. २७५ । (६) पृ. २७८ । (७) पृ. २७९ । (८) पृ. २८० । (९) पृ. २८१ । (१०) २८२ । (११) पृ. २८३ । (१२) पृ. २८४ ।

णवरि पुरिसवेदस्स वे आवलिया बंधा समयूणा अणुवसंता। [1]तस्समए पुरिसवेदस्स ट्ठिदिबंधो सोलस वस्साणि। संजलणाणं ट्ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। पुरिसवेदस्स पढमट्ठिदीए जाधे वे आवलियाओ सेसाओ ताधे आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो।

[2]अंतरकदादो पाए छण्णोकसायाणं पदेसग्गं ण संछुहदि पुरिसवेदे, कोहसंजलणे संछुहदि। [3]जो पढमसमय-अवेदो तस्स पढमसमय-अवेदस्स संतं पुरिसवेदस्स दोआवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता। जे दोआवलियबंधा दुसमयूणा अणुवसंता तेसिं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए उवसामिज्जदि। [4]परपयडीए पुण अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि। पढमसमय-अवेदस्स संकामिज्जदि बहुअं। से काले विसेसहीणं। एस कमो एयसमयपबद्धस्स चेव।

पढमसमय-अवेदस्स संजलणाणं ठिदिबंधो बत्तीस वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। [5]पढमसमय-अवेदो तिविहं कोहमुवसामेइ। सा चेव पोराणिया पढमट्ठिदी हवदि। [6]ट्ठिदिबंधे पुण्णे पुण्णे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो विसेसहीणो। सेसाणं कम्माणं ठिदिबंधो संखेज्जगुणहीणो। एदेण कमेण जाधे

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

आवलि-पडिआवलियाओ सेसाओ कोहसंजलणस्स ताधे विदियट्ठिदीदो पढमट्ठिदीदो आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। पडिआवलियादो चेव उदीरणा कोहसंजलस्स। [7]पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे कोहसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा। चदुण्हं संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। [8]पडिआवलिया उदयावलियं पविसमाणा पविट्ठा। ताधे चेव कोहसंजलणे दो आवलियबंधे दुसमयूणे मोत्तूण सेसा तिविहकोधपदेसा उवसामिज्जमाणा उवसंता। [9]कोहसंजलणे दुविहो कोहो ताव संछुहदि जाव कोहसंजलणस्स [10]पढमट्ठिदीए तिण्णि आवलियाओ सेसाओ त्ति। तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु तत्तो पाए दुविहो कोहो कोहसंजलणे ण संछुहदि।

[11]जाधे कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणावलिया सेसा ताधे चेव कोहसंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा। माणसंजलणस्स पढमसमयवेदगो पढमट्ठिदिकारओ च। [12]पढमट्ठिदिं करेमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव पढमट्ठिदिचरिमसमओ त्ति। विदियट्ठिदीए जा आदिट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणहीणं। तदो विसेसहीणं चेव। [13]जाधे कोधस्स बंधोदया वोच्छिण्णा ताधे पाए माणस्स तिविहस्स उवसामगो। ताधे संजलणाणं ट्ठिदिबंधो चत्तारि मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।

[14]माणसंजलणस्स पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो माणो माणसंजलणे ण संछुभदि। पडिआवलियाए सेसाए आगालपडिआगालो वोच्छिण्णो। [15]पडिआवलियाए एक्कम्हि समए सेसे माणसंजलणस्स दोआवलिसमयूणबंधे मोत्तूण सेसं तिविहस्स माणस्स पदेससंतकम्मं चरिमसमय-उवसंतं। ताधे माण-माया-लोभसंजलणाणं दुमासट्ठिदिगो बंधो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि।

---

(१) पृ. २८५। (२) पृ. २८६। (३) पृ. २८७। (४) पृ. २८८। (५) पृ. २८९। (६) पृ. २९०। (७) पृ. २९१। (८) पृ. २९२। (९) पृ. २९३। (१०) पृ. २९४। (११) पृ. २९५। (१२) पृ. २९६। (१३) २९७। (१४) पृ. २९८। (१५) २९९।

[1]तदो से काले मायासंजलणमोकड्डियूण मायासंजलणस्स पढमट्ठिदिं करेदि। ताधे पाए तिविहाए मायाए उवसामगो। माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो दो मासा अंतोमुहुत्तेण ऊणया। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। [2]सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिखंडयं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागो। जं तं माणसंतकम्ममुदयावलियाए समयूणाए तं मायाए त्थिवुक्कसंकमेण उदए विपच्चिहिदि।

[3]जे माणसंजलणस्स दोण्हमावलियाणं दुसमयूणाणं समयपबद्धा अणुवसंता ते गुणसेढीए उवसामिज्जमाणा दोहिं आवलियाहिं दुसमयूणाहिं उवसामिज्जिहिंति। जं पदेसग्गं मायाए संकमदि तं विसेसहीणाए सेढीए संकमदि। एसा परूवणा मायाए पढमसमय-उवसामगस्स। [4]एत्तो ट्ठिदिखंडयसहस्साणि बहूणि गदाणि। तदो मायाए पढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहा माया मायासंजलणे ण संछुहदि, लोहसंजलणे च संछुहदि। पडिआवलियाए सेसाए आगालपडिआगालो वोच्छिण्णो।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

समयाहियाए आवलियाए सेसाए मायाए चरिमसमय-उवसामगो मोत्तूण दो आवलियबंधे समयूणे। ताधे माया-लोभसंजलणाणं ट्ठिदिबंधो मासो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि। [5]तदो से काले मायासंजलणस्स बंधोदया वोच्छिण्णा। मायासंजलणस्स पढमट्ठिदीए समयूणा आवलिया सेसा त्थिवुक्कसंकमेण लोभे विपच्चिहिदि।

ताधे चेव लोभसंजलणमोकड्डियूण लोभस्स पढमट्ठिदिं करेदि। एत्तो पाए जा लोभवेदगद्धा होदि तिस्से लोभवेदगद्धाए बे-त्तिभागा एत्तियमेत्ती लोभस्स पढमट्ठिदी कदा। [6]ताधे लोभसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो मासो अंतोमुहुत्तेण ऊणो। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जाणि वस्साणि। [7]तदो संखेज्जेहिं ट्ठिदिबंधसहस्सेहिं गदेहिं तिस्से लोभस्स पढमट्ठिदीए अद्धं गदं। तदो अद्धस्स चरिमसमए लोहसंजलणस्स ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिबंधो वस्ससहस्सपुधत्तं। [8]ताधे पुण फद्दयगदं संतकम्मं।

से काले विदियतिभागस्स पढमसमए लोभसंजलणाणुभागसंतकम्मस्स जं जहण्णफद्दयं तस्स हेट्ठदो अणुभागकिट्टीओ करेदि। [9]तासिं पमाणमेगफद्दयवग्गणाणमणंतभागो। पढमसमए बहुआओ किट्टीओ कदाओ। से काले अपुव्वाओ असंखेज्जगुणहीणाओ। एवं जाव विदियस्स तिभागस्स चरिमसमओ त्ति असंखेज्जगुणहीणाओ। [10]जं पढमसमए पदेसग्गं किट्टीओ करेंतेण किट्टीसु णिक्खित्तं तं थोवं। से काले असंखेज्जगुणं। एवं जाव चरिमसमयो त्ति असंखेज्जगुणं। [11]पढमसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गं बहुअं। विदियाए पदेसग्गं विसेसहीणं। एवं जाव चरिमाए किट्टीए पदेसग्गं तं विसेसहीणं। [12]विदियसमए जहण्णियाए किट्टीए पदेसग्गमसंखेज्जगुणं। विदियाए विसेसहीणं। एवं जाव ओघुक्कस्सियाए विसेसहीणं। [13]जहा विदियसमए तहा सेसेसु समएसु।

तिव्व-मंददाए जहण्णिया किट्टी थोवा। विदियकिट्टी अणंतगुणा। तदिया किट्टी अणंतगुणा। एवमणंतगुणाए सेढीए गच्छदि जाव चरिमकिट्टि त्ति। [14]एसो विदियतिभागो किट्टीकरणद्धा णाम। किट्टीकरणद्धासंखेज्जेसु भागेसु गदेसु लोभसंजलणस्स अंतोमुहुत्तट्ठिदिगो बंधो। [15]तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो दिवसपुधत्तं। जाव किट्टीकरणद्धाए दुचरिमो ट्ठिदिबंधो ताधे

---

(१) पृ. ३०० । (२) पृ. ३०१ । (३) पृ. ३०२ । (४) पृ. ३०३ । (५) पृ. ३०४ । (६) पृ. पृ. ३०५ । (७) पृ. ३०६ । (८) पृ. ३०७ । (९) पृ. ३०८ । (१०) पृ. ३०९ । (११) पृ. ३१० । (१२) पृ. ३१२ । (१३) पृ. ३१४ । (१४) पृ. ३१५ । (१५) पृ. ३१६ ।

णामा-गोद-वेदणीयाणं संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ट्ठिदिबंधो। किट्टीकरणद्धाए चरिमो ठिदिबंधो लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तिओ। [1]णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमहोरत्तस्संतो। णामा-गोद-वेदणीयाणं वेण्हं वस्साणंतो। तिस्से किट्टीकरणद्धाए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु दुविहो लोहो लोहसंजलणे ण संकामिज्जदि। सत्थाणे चेव उवसामिज्जदि।

[2]किट्टीकरणद्धाए आवलिय-पडिआवलियाए सेसाए आगाल-पडिआगालो वोच्छिण्णो। पडिआवलियाए एकम्हि समए सेसे लोहसंजलणस्स जहण्णिया ट्ठिदिउदीरणा। ताधे चेव जाओ दो आवलियाओ समयूणाओ एत्तियमेत्ता लोहसंजलणस्स समयपबद्धा अणुवसंता। किट्टीओ सव्वाओ चेव अणुवसंताओ। तव्वदिरित्तं लोहसंजलणस्स पदेसग्गं उवसंतं। दुविहो लोहो सव्वो चेव उवसंतो णवकबंधुच्छिट्ठावलियवज्जं। [3]एसो चेव चरिमसमयबादरसांपराइयो।

से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयो जादो। तेण पढमसमयसुहुमसांपराइएण अण्णा पढमट्ठिदी कदा। [4]जा पढमसमयलोभवेदगस्स पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए इमा सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदी दुभागो थोवूणओ। पढमसमयसुहुमसांपराइओ किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदयदि। [5]जाओ अपढम-अचरिमेसु समएसु अपुव्वाओ किट्टीओ कदाओ ताओ सव्वाओ पढमसमए उदिण्णाओ। जाओ पढमसमए कदाओ किट्टीओ तासिमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मोत्तूण। [6]जाओ चरिमसमए कदाओ किट्टीओ तासिं च जहण्णकिट्टिप्पहुडि

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

असंखेज्जदिभागं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ किट्टीओ उदिण्णाओ। [7]ताधे चेव सव्वासु किट्टीसु पदेसग्गमुवसामेदि गुणसेढीए।

[8]जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते वि उवसामेदि। जा उदयावलिया छंडिदा सा त्थिवुक्कसंकमेण किट्टीसु विपच्चिहिदि। विदियसमए उदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिपडिभागमाफुंददि। एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति। [9]चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमंतोमुहुत्तिओ ट्ठिदिबंधो। [10]णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो सोलस मुहुत्ता। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो चउवीस मुहुत्ता। से काले सव्वं मोहणीयमुवसंतं।

तदो पाए अंतोमुहुत्तमुवसंतकसायवीदरागो। [11]सव्विस्से उवसंतद्धाए अवट्ठिदपरिणामो। गुणसेढिणिक्खेवो उवसंतद्धाए संखेज्जदिभागो। स[12]व्विस्से उवसंतद्धाए गुणसेढिणिक्खेवेण वि पदेसग्गेण वि अवट्ठिदा। पढमे गुणसेढिसीसये उदिण्णे उक्कस्सओ पदेसुदओ। [13]केवलणाणावरण-केवलदंसणावरणीयाणमणुभागुदएण सव्वउवसंतद्धाए अवट्ठिदवेदगो। [14]णिद्दा-पयलाणं पि जाव वेदगो ताव अवट्ठिदवेदगो। अंतराइयस्स अवट्ठिदवेदगो। [15]सेसाणं लद्धिकम्मंसाणमणुभागुदयो वड्ढी वा हाणी वा अवट्ठाणं वा। [16]णामाणि गोदाणि जाणि परिणामपच्चयाणि तेसिमवट्ठिदवेदगो अणुभागोदएण। [17]एवमुवसामगस्स परूवणा विहासा समत्ता।

---

(१) पृ. ३१७। (२) पृ. ३१८। (३) पृ. ३१९। (४) पृ. ३२०। (५) पृ. ३२१। (६) पृ. ३२२। (७) पृ. ३२३। (८) पृ. ३२४। (९) पृ. ३२५। (१०) पृ. ३२६। (११) पृ. ३२७। (१२) पृ. ३२८। (१३) पृ. ३३०। (१४) पृ. ३३१। (१५) पृ. ३३२। (१६) पृ. ३३३। (१७) पृ. ३३४।

१ अवतरण सूची

क्रमांक		पृष्ठ
ज	१ जम्हि जिणा केवली तित्थयरा	३

२ ऐतिहासिक नामसूची

		पृष्ठ
अ	अज्जमंखुमहावाचय	५४
ग	गुणहराइरिय	१
	गंथयार	२७७
च	चुण्णिसुत्तयार ८२, १०१, १७२, २१५, २१६	
ज	जइवसह	५४
ण	णागहत्थिमहावाचय	५४
स	सुत्तयार	१४३

३ ग्रन्थनामोल्लेख

		पृ०
अ	अण्णउवदेश	१७
	अपवाइज्जंत (उवएस)	५४
क	कसायपाहुड	१५७
च	चुण्णिसुत्त	१६, ५४, ९८, [illegible]
प	पवाइज्जमाण (उवएस)	५६
	पवाइज्जंत ,,	५४
स	सुत्तंतर	३

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

४ सूत्रगाथा-चूर्णिगत शब्दसूची

		पृ०
अ	अकम्मभूमिय	१८४
	अक्खवग	२५२
	अचक्खुदंसणावरणीय	२५०
	अजसगित्ति	२०९
	अट्ठवस्सउवदेस	५६
	अणउवसंत	१९, १९२, १९३, १९४
	अणियट्टिकरण	१४, ३८, ४०, ४१, ११३, आ.
	अणियोगद्दार	१०१, १०५, ११३, १३७ आ.
	अणुक्कीरमाण	२५७
	अणुभाग	४२
	अणुभागकिट्टि	३०७
	अणुभागखंडय	३२, ३४, ३५, ३७ आ.
	अणुभागघाद	२२
	अणुभागफद्दय	१३
	अणुवसामग	२५२
	अणुवसंत	४०
	अणुसंवण्णेदव्व	१०१
	अणंताणुबंधी	१९७, २०१, २१०
	अत्थविहासा	१०३
	अदिच्छिद	२३५
	अद्ध	७
	अद्धा	९२
	अधापवत्तकरण	१४, २२, २३, ११६ आ.
	अधापवत्तकरणद्धा	११२
	अधापवत्तकरणविसोहि	११८
	अधापवत्तसंकम	२८८
	अधापवत्तसंजदासंजद	१२६, १२७
	अपच्चक्खाणकसाय	१५३
	अपच्छिम	८४
	अपडिवद-अपडिमाणग	१५३
	अपसत्थ	४०
	अपुव्वकरण	१४, २१, २३ आ.
	अपुव्वकरणद्धा	३६, ३७, ११३ आ.
	अप्पसत्थ	३२
	अप्पसत्थउवसामणाकरण	२३१
	अप्पाबहुअ	१०१, १३७, १४१ आ.
	अरइ	२२८
	अरदि	२२८
	अवट्ठिदगुणसेढि	१२५
	अवट्ठिदपरिणाम	१२७
	अवट्ठिदवेदग	१३०, १३१
	अवेद	२८७
	अव्वोच्छिण्ण	१९३

असण्णिट्ठिदिबंध ४१, २३२
असुभ १२१
असुह २२
असुहकम्मंस ११६
असंकम २६३
आ आउग २३८
आउत्तकरण २७२
आगाइ ४ आ.
आगाल १२१
अंतर २५४
आगुंज १३०
आणुपुव्वं ११७
आबाहा
[illegible] २५१
आवलियबाहिर ४९, ५३
६० आ.
आवलिया २६५, २६६ आ.
आवलियादिक्कंत २६६,
२६८ आ.
इ इत्थिवेद २७८, २७९ आ.
उ उक्किण्ण २१०
उक्कीरणकाल ३७
उक्कीरणद्धा ९०, ९१,
९२ आ.
उक्कीरमाण २५७, २५९ आ.
उक्कीरमाणय २५८
उदय ६४, ७४, ८३ आ.
उदयवोच्छेद २२८
उदयावलिबाहिर ३३, ३४
उदिण्ण १५४, १५६
उदीरणा ४८, ८०, ८३ आ.
उवक्कमविधिविहासा १६४
उवक्कमपरिभासा १९६
उवट्ठिद ३१
उवदेस ५४
उवरिमाणंतरट्ठिदि ७६
उवसमकरण २९
उवसमक्खय १९४
उवसाम १९१
उवसामग १५, २७८
उवसामणा ४०, १०६,
१९० आ०
उवसामणक्खय १९५
उवसामिज्जमाण २७८,
२८२
उवसामिद २९, २७९
उवसंत ४०, १९१, १९२ आ
उवसंतकसायवीदराग ३२६
उवसंतद्धा ३२७
एइंदियट्ठिदिबंध २३२
एइंदियबंध ४२
[illegible] २४३
एगट्ठाणिय २६३
एगंताणुवड्ढि १३४, १३६
ओ ओकड्डमाण ६०, ७८, ९५
ओट्टिदव्व १२
ओट्टियव्व १३
ओवट्टणा ६२
ओवट्टिज्जमाण ६४, ७३
ओवट्टिद ५४
ओलुत्त ४३, ५६
ओसरिद ३२
ओहिणाणावरणीय २५०
ओहिदंसणावरणीय २५०
अंतर १०७, १३७, १७१ आ.
अंतरकद २८६
अंतरकरण २००, २५२ आ.
अंतरट्ठिदि २५६
अंतराय २३४, २३७
अंस १५, १५९, १९५
क कदकरणिज्ज ८१, ८६, ८८ आ.
कम्म १२, १५, २२ आ.
कम्मभूमिआद २
कम्मभूमिय १८३
कम्मंस २१
करण १९३, १९७ आ.
कसाअ २६, २७
कसाय २५३
कसायउवसामग २२२
किट्टि २६८, २६९ आ.
किट्टिकरणद्धा ३१५
किरियापरावत्त ६२
कोह २६८, २६९
कोहसंजलण २९१, २९२
ख खओवसमलद्धि १५६
खवणकरण २९
खवणा ४, ९
खविज्जमाण ५७
खविद ९५
खवेंत ५७
खीण ५९
खीणदंसणमोहणिज्ज २२२
खीणदंसणमोहणीय २६, २९
खीणमोह १०, १०१
खेत्त १०१, १३७, १७१
ग गदि १०
गुणगार ७९
गुणगारपरावत्ति ६०, ८४
गुणसेढि ३३, ३४, ७२ आ.
गुणसेढिणिक्खेव ९३, ११५
गुणसेढिसीसय ६०, ६४, ७५ आ.
गुणसंकम २०७, २०८
गोद २२३, २२५ आ.
घ घादिकम्म ३१६
च चउरिंदियबंध ४२, २३२
चक्खुदंसणावरणीय २५१
चदुकसाय १५४ आ.
चदुट्ठाणिय ११४
चरित्तलद्धि १०९, १६५
चरित्तलद्धिट्ठाण १७७
चरित्ताचरित्तपज्जय १३४
चरित्ताचरित्तलद्धि १३२
चरिमट्ठिदिखंडय ९२, ७१ आ.
ज जहण्णपुव्वो १९५
जारिस १५
जीव २६, २७ आ.
ट ट्ठिदि ३२, ५४ आ.

मार्गदर्शक आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

ट्ठिदिखंडय २१, ३४ आ.
ट्ठिदिखंडयपुधत्त ४२, ४३ आ.
ट्ठिदिखंडयसहस्स ४४
ट्ठिदिबंध ३२, ३४ आ.
ट्ठिदिबंधगद्धा ९२
ट्ठिदिसंकम ५१
ट्ठिदिसंतकम्म २६, ३८ आ.
ठ ठिदि १५
ठिदिसंतकम्म २३, २८
ण णवुंसयवेद २७३, २७४ आ.
णाणावरणीय २३४, २३७
णाम २२३, २३५ आ.
णामाउग ७
णिकाचणाकरण २३१
णिच्छय २७१
णिट्ठवग २
णिट्ठायमाण ५१
णिट्ठिद २९, ५१ आ.
णिदरिसण २६७
णिदरिसणमेत्त २७१
णिद्दा २२७
णिधत्तीकरण २३१
णियमसा ५१
णेरइय ८७
णोकसाय १५४, २५३ आ.
तारिस १५
तिरिक्खजोणिअ ८७, १५० आ.
त तिव्व-मंद ११७
तिव्व-मंददा १३८, १४९ आ.
तीइंदियट्ठिदिबंध २३२
तीइंदियबंध ४२
तेउलेस्सा ८२
थिबुक्कसंकम १०१
द दव्व १०१, १३७ आ
दव्वपमाण १०१, १३७
दाणंतराइय २५०
दुगुंछा २२८
दुचरिमट्ठिदिखंडय ७१
दुट्ठाणिय ११४
दूरावकिट्टि ४५, ५७
देव ७, ८६
देसघादि २५०, २५१
देसघादिकरण २५२
देसविरद १०५
दंडय [illegible] १०१
दंस[illegible]
दंसणमोहक्खवसामग ?५, १८[illegible]
दंसणमो[illegible]णा १[illegible]
दंसणमो[illegible]
दंसणमोहणीय [illegible]
दंसणमो[illegible]
दंसणाव[illegible]
प पच्चक्खाणावरणीय १५४,१५५
पट्ठवग ४, ९
पडिभागाऽ १९१
पडिवज्जमाण १४७, १४९
पडिवदमाणय १५०
पडिवदिद १९४, १९५
पडिवाद १९४
पडिवादट्ठाण १७५, १७६
पढमट्ठिदि २९०
पढमट्ठिदिखंडय [illegible]
पदेसग्ग ६०, ७४ आ.
पदेससंकम ५१
पम्मलेस्सा ८२, ८८
पयडि २५७, २५८
पयला २२७
परभवियणाम २२७
परभवियणामा-गोद २२६
परिणाम २१०
परिणामपच्चय १२७,१३३
परिभासा ८९, ११३
परिभोगंतराइय २५१
परिहारविसुद्धिसंजम १८५
परिहासा ११
पवाइज्जंत ५४
पविट्ठ १९३
पविसमाण २९३
पुरिसवेद २६८
पुव्वबद्ध १५, १०६ आ.
पूरणकाल २०८
पोराणगुणसेढिसीसय ७६
[illegible] २४३
[illegible] पृ०
ण णागहत्थिमहावाचय ५४
स सुत्तयार १४३
[illegible] १९४
बंधवोच्छेद २२५, २२८
म मणपज्जवणाणावरणीय २४९
मणुस ८७, १०१ आ.
मणुसगदि २
मणुस्स ७, १०
मरण ८१
माण २९९
माणसंजलण २९५, २९८
माया २६९
मायासंजलण ३००
मिच्छत्त ५१, ५२ आ.
मिच्छत्तवेदणीअ ४
मिच्छत्तसंतकम्मिय ९६
मूलपयडि २८०
मोहणीय २३७,२३८
र रइ २८८
रहस्स ६०
ल लक्खण १४, १५ आ.
लद्धि १३९, १४० आ.
लद्धिकम्मंस १३२
लद्धिट्ठाण १४१, १३३ आ.
लाभंतराइय २५०
लेस्सापरिणाम ८१

	छोम	१७० भा.
	लोहसंकमहा	३०४
	लोहसंजलण	१०२, ३०५
व	वग्गमूल	७९
	वड्ढावड्ढी	१०६
	विज्झादसंकम	२०७
	आगाइ	२९
	आगाल	१३१
	आगुंज	२५४
	आणुपुव्व	१३०
	आबाहा	११७
	आभिणिबोहियणाणावरणीय	[illegible]
	[illegible]	[illegible]
	वेद	[illegible]
	वेदणीय	२३४, २३७
	वेदयसम्माइट्ठि	१९७
	वाघिण्णकाल	२२७
स	संठाण	
	समग	
	समट्ठिदिविभत्ति	
	सम्मपयडी	४८, २१९, २
	समासपरूवणा	२०१
	सम्मत्त	४९, ५३, ५४
	सम्मत्तक्खवणद्धा	९३
	मिच्छत्त	४७, ५१, ५३
		२५२
		१४९
	सव्वविसु	१३
	[illegible]	[illegible]
	[illegible]	१९, १५
	सुत्त	१
	सुत्तगाहा	११, १०
	सुत्तविहासा	
	सुदणाणावरणीय	

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

६ जयधवलागत-पारि[illegible]

सूचना—इस सूचीमें वे पारिभाषिक शब्द लिये गये [illegible] कुछ स्पष्टीकरण मिलता है।

अ	अकम्मभूमिय	१८४
	अणुभागउवसामणा	१०९
	अपडिवादापडिवज्जमाण	१४२
	अपदाइज्जंत	५४
	अप्पसत्थउवसामणा	४०
	अप्पसत्थउवसा[illegible]	२३१
आ	आउत्तकरण	
	आगाल	
	आगुंजा	
उ	उत्पादकस्थान	
	उपक्रम	
	उपक्रमपरिभाषा	
	उवसामणा	
ए	[illegible]वराह	
ग	[illegible]गार	
च	चरित्ताचरित्तलद्धि	
	[illegible]उवसामणा	
ण	णिकाचणाकरण	
	णिकाचि[illegible]	